तन्त्र-महाविज्ञान

[द्वितीय खंड]

(तन्त्र के सिद्धान्तो का वैज्ञानिक निरूपण)

लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारो वेद, १०८ उपनिषद् षट् दर्शन, २० स्मृतियो
एवं १८ पुराणो के प्रसिद्ध भाष्यकार

संस्कृति संस्थान
बरेली [उ०प्र]

प्राक्कथन

'तन्त्र विज्ञान' के प्रथम खण्ड में भारतीय तन्त्र-शास्त्र की प्राचीनता और उसकी उपादेयता का परिचय दिया जा चुका है। उसमें बतलाया गया है कि वर्तमान समय में 'तन्त्र' के नाम पर सामान्य जनता में जिस जादू टोना का प्रचार हो रहा है वह वास्तविक तन्त्र नहीं है। और न बाजारू पुस्तकों में तन्त्र के नाम पर जिन अनगल सिद्धियों, धन वैभव की प्राप्ति, स्त्री वशीकरण, शत्रु नाश आदि बतलाने वाली क्रियाओं का वर्णन किया गया है वे ही तन्त्र विद्या के महत्वपूर्ण अंग माने जा सकते हैं। वस्तुतः तान्त्रिक साधना का उद्देश्य यह है कि सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी—सामान्य लोगों में पाई जाने वाली कुछ त्रुटियों के रहते हुए भी—मनुष्य आध्यात्मिक मार्ग पर यथाशक्ति चलने की चेष्टा कर सके।

राजयोग, ज्ञान योग, भक्तियोग आदि साधनों में आरम्भ में ही यम, नियम, सत्य, अहिंसा, शौच ब्रह्मचर्य आदि के इतने उच्च नियम बतला दिये गये हैं कि सामान्य कोटि का सांसारिक मनुष्य अपने को उसके अयोग्य मान लेता है। वह सोचता है कि ये तो साधु महात्माओं के पालन करने योग्य बातें हैं। हमारे जैसे गृहस्थी के जंजाल में फँसे, और चारों तरफ के दूषित वातावरण से प्रभावित व्यक्ति इस तरह के संयम-नियम, त्याग तपस्या के विधि विधानों का कैसे पालन कर सकते हैं? इस प्रकार की परिस्थितियों वाले व्यक्तियों के हितार्थ कुछ आचार्यों ने तन्त्र शास्त्र का उद्भव करके ऐसी विधियों और कार्यक्रम की योजना की कि जिसका साधन वे वर्तमान त्रुटिपूर्ण अवस्था में भी कर सकें और उन्हीं के सहारे उन्नति करके अध्यात्म मार्ग के उच्च स्तरों तक पहुँच जायें।

भारतीय शास्त्रों के अनुसार यह जगत त्रिगुणात्मक है। इसमें केवल सतोगुण–उच्च आध्यात्मिक प्रवृत्तियो की ही आशा रखना ठीक नही। सतोगुण के साथ सभी मे रजोगुण और तमोगुण भी रहता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति वालो मे सतोगुण की प्रधानता रहती है और भौतिक प्रवृत्ति वालो मे रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता पायी जाती है। हम ससार मे से रजोगुण या तमोगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियो को पृथक तो कर नही सकते, इस लिये जहाँ तक सभव हो उनके लिये इस प्रकार मार्ग-दर्शन करना चाहिये जिससे उनके दोष सीमित रूप मे ही रहें और वे क्रमश उनको कम करते हुये उच्च स्तरकी ओर बढाते रहें। तत्र मे जो अनेक स्थानो पर मदिरा, माँस आदि की चर्चा आती है, उसमें यही योजना रखी गई है कि जिनमे उस प्रकार की अवाछनीय प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं वे अपनी भावनाओ मे परिवर्तन करके अपने दोषो को कम करते जाये और तत्र शास्त्र के निर्देशानुसार अन्य हानि रहित वस्तुओ का व्यवहार करने लगें।

इस दूसरे खण्ड मे बतलाया गया है कि अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण तन्त्र-साधना किसी समय भारत ही नही भारत से दूर विदेशो मे भी फैल गई थी। तिब्बत, चीन लका, बर्मा, कम्बोडिया, मिश्र, यूनान रोम आदि तक मे कुछ परिवर्तित रूप में शक्ति (देवी) उपासना का प्रचार हो गया था और उसके साथ तान्त्रिक क्रियाएँ भी की जाती थी।

शक्ति साधना केवल कल्पना या अपनी व्यक्तिगत भावनाओ के आधार पर नही है, वरन वैज्ञानिक सिद्धांतो के अनुसार है, इसका विस्तृत विवेचन भी आगामी पृष्ठो मे किया गया है। अभी तक विज्ञान शक्ति का प्रयोग स्थूल यन्त्रो द्वारा ही कर रहा है पर वह दिन दूर नही जब मानसिक शक्ति द्वारा भी अनेक प्रत्यक्ष कार्य होते दिखाई पडेंगे। कारण यही है कि शक्ति वास्तव में एक सूक्ष्म तत्त्व है और उसका सचालन

तथा प्रयोग जितनी अच्छी तरह सूक्ष्म प्रक्रियाओं से हो सकता है, वैसा स्थूल यन्त्रों से नहीं हो सकता।

अन्तिम भाग में तीनों महाशक्तियों और दशों दुर्गाओं की साधना तथा पूजन विधि दी गई है। यह वास्तव में बहुत जटिल और रहस्य पूर्ण है और इस पुस्तक से पाठकों को उसकी रूप रेखा की ही जानकारी हो सकेगी। सामान्य पूजा पाठ और उपासना तो इसके आधार पर भी की जा सकती है, पर यदि किसी विशेष प्रयोजन से कोई तान्त्रिक-अनुष्ठान, पुरश्चरण आदि करना हो तो उसके लिये उसी कृत्य से संबंधित विशेष ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिये और उचित तो यही है कि किसी जानकार गुरु से मार्ग-दर्शन प्राप्त करके इस मार्ग में पैर रखा जाय। तन्त्र की कोई क्रिया जल्दीबाजी अथवा हल्केपन से करने नहीं होती, वैसा करने से लाभ के स्थान में हानि की सम्भावना अधिक रहती है। इसलिये तन्त्र साधन मार्ग में धैर्य और सावधानी से ही अग्रसर होना आवश्यक है। यदि साधक का प्रयत्न और भावना सत्य होगी तो महाशक्ति स्वयं उसे उचित मार्ग की ओर अग्रसर करती रहेगी।

—सम्पादक

विषय-सूची

भारत में शक्ति-उपासना का इतिहास

ऐतिहासिक साक्षी—

इतिहासवेत्ताओ ने अपनी खोजो के परिणामस्वरूप यह घोषणा की है कि भारत मे शक्ति-उपासना प्राचीनकाल से चली आ रही है। मोहनजोदडो में जो खुदाई हुई है, उसमे मकानो के सात-सात तह निकले हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि वहाँ पर क्रमश एक एक करके सात नगर बसे और नष्ट हो गए। ऐतिहासिको ने, जो इन नगरो के बसने के समय का अनुमान लगाया है, उसमे सबसे नीचे के नगर को ईसा से पूर्व ४००० वर्ष बताया गया है। इस खुदाई मे अन्य वस्तुओ के अतिरिक्त देवी-देवताओ की मूर्तियां भी उपलब्ध हुई हैं जिनमे से लिंग, शक्ति, स्वास्तिक, नन्दी के नाम उल्लेखनीय हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय भी भारतवर्ष मे शक्ति उपासना की मान्यता थी। वैदिक काल से लेकर आज तक इस उपासना का भारतवर्ष मे एक विशिष्ट स्थान रहा है। इसका हम क्रमश अध्ययन करेगे।

वैदिक काल—

भारतवर्ष मे सदा से स्त्रियों का समुचित मान रहा है। उन्हे पुरुषो की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता रहा है स्त्रियो को बहुधा 'देवी' के पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता रहा है। नाम के पीछे

उनकी जन्मजात उपाधि 'देवी' प्राय जुड़ी रहती है। इसलिए धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर-प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों मे नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया है और उसे उनकी महानता के अनुकूल प्रतिष्ठा दी गई है। वेदो पर दृष्टिपात करने मे स्पष्ट हो जाता है कि वेदो मन्त्रद्रष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकाएँ भी हैं। ईश्वरीय ज्ञान वेद महान् आत्मा वाले व्यक्तियो पर प्रकट हुआ है और उन्होने उन मन्त्रो को प्रकट किया। इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए, उन मन्त्र-द्रष्टाओ को 'ऋषि' कहते हैं। ऋषि केवल पुरुष ही नही हुए हैं, वरन् अनेक नारियाँ भी हुई हैं। ईश्वर ने नारियो के अन्त करण मे भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषो के अन्त करण मे, क्योकि प्रभु के लिए दोनो ही सन्तान समान हैं। महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु भला अपनी ही सन्तान मे नर नारी का पक्षपात करके अनुचित भेद-भाव कैसे कर सकते हैं ?

ऋग्वेद १०।७५ के सम्पूर्ण मन्त्रो की ऋषिका 'सूर्या सावित्री' हैं। ऋषि का अर्थ निरुक्ति मे इस प्रकार किया है—'ऋषिदर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति। ऋषियो मन्त्र द्रष्टार ।' अर्थात् मन्त्रो का द्रष्टा उनके रहस्यो को समझकर प्रचार करने करने वाला ऋषि होता है।

ऋग्वेद की ऋषिकाओ की सूची ब्रह्म देवता के २४ वें अध्याय मे इस प्रकार है—

घोषा गोवा विश्ववारा, अपालोपनिषर्न्नित् ।
ब्रह्म जाया जहुर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादिति ॥
इन्द्राणी चेन्द्र माता चा सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शाश्वती ॥
श्रीलक्ष्मी सार्पराज्ञी वाकश्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।
रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरित. ॥

अर्थात् "घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, जुहु, अदिति, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, यमी, शाश्वती, सूर्या, सावित्री आदि ब्रह्मवादिनी हैं।"

ऋग्वेद के १०-१३८, १०-३९, १०-४०, ८-९१, १०-९५, १०-१०७, १०-१०९, १०-१५४, १०-१५९, १०-१८९, ५-२८, ८-९१ आदि सूक्तों की मन्त्रदृष्टा यही ऋषिकाएँ हैं।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं। वे यज्ञ-विद्या और ब्रह्म-विद्या में पारगत थीं। कई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग-दर्शन करती थीं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सोम द्वारा 'सीता-सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का विस्तारपूर्वक वर्णन आता है—

"त त्रयो वेदा अन्य सृज्यन्त अथह सीता सावित्री सोम राजान चक्र मे तस्या उहत्रीन वेदान प्रददौ।

—तैत्तिरीय २।३।१०

इस मन्त्र मे बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता-सावित्री को तीन वेद दिये।

मनु की पुत्री 'इडा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय १।१।४ में उसे 'यज्ञानकाशिनी' बताया है। 'यज्ञानकाशिनी' का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ तत्व प्रकाशन समर्था' से किया है। इडा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽब्रवीदिडा मनुम्। तथावाऽएँ तवाग्नि माधास्यामि। यथा प्रमथा पशुभिर्मिथुनजनिष्यसे। प्रत्यस्मिंलोकेस्थास्यासि। अभि सुवर्ग लोक जेष्यसीति।

—तैत्तिरीय ब्रा० १।४

इडा ने मनु से कहा—"तुम्हारी अग्नि का ऐसा अवधान करूँगी जिससे तुम्हे पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो।"

इससे स्पष्ट है कि प्राचीनकाल मे नारी को उच्च सम्मान प्राप्त था और उसके सम्मान की समुचित व्यवस्था थी, बल्कि नर से नारी को अधिक प्रतिष्ठित माना जाता था। आर्यों का समाज पुरुष-प्रधान था, फिर भी उनके यहाँ नारी को उच्च दृष्टि से देखा जाता था। यह सामाजिक सम्मान ही देवी-उपासना की आधारशिला बना। वैदिक देवताओ के साथ उनकी अर्द्धाङ्गनियो के नाम भी आते हैं। पत्नियो के नामो को पतियो से पहिले सम्बोधित करने की यहाँ प्रथा थी। अत जहाँ देवताओ की उपासना होती थी, वहाँ देवियो को भी श्रद्धास्पद माना जाने लगा। वेद का देवी-सूक्त इसका प्रमाण है। जब इस सूक्त की रचना हुई होगी, तब देवताओ की अपेक्षा देवी की उपासना अधिक प्रचलित हो चुकी होगी, तभी वाक् अपने आपको ब्रह्मवादिनी और परब्रह्मात्मिका कहती है और ग्यारह रुद्र, आठ वसु, धाता आदि द्वादश आदित्य, विश्वेदेवा, मित्रावरुण, इन्द्राग्नि, अश्विदय आदि को अपना रूप बताती है (ऋग्वेद १०।१२५।१)। वह विश्व की अधीश्वरी, आराधको को ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली और यज्ञ-योग्य देवताओ मे प्रमुख होने की घोषणा करती हैं (अथर्व० ४।३०।२)। वह साधको को ईश्वर, सृष्टा और ऋषि बनाने की क्षमता रखती है (३)।

वेद में अदिति को देवमाता और विश्वमाता के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। दिति का भी यदा-कदा वर्णन है। उषस्, सरस्वती, घोस, रात्रि, वाणी इला, इडा, राका, सिनोवाली, बृहद्दिवा, सररायू, सूर्या, इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, रुद्राणी अश्विनी आदि देवियों के नाम आते हैं। इससे विदित होता है कि वैदिक काल मे देवी-उपासना प्रचलित थी।

यहाँ इस विवाद में पडने की आवश्यकता नही है, कि आर्य इस देश के मूल निवासी थे अथवा वह बाहर से आए और द्रविणो आदि पर विजय प्राप्त करके यहाँ के शासक बन बैठे। हमे तो केवल यह

देखना है कि यहां निवास करने वाली जातियो में शक्ति-उपासना का क्या स्थान था ?

इतिहास का परिशीलन करने पर प्रतीत होता है कि आर्यों और द्रविडो के धर्म संस्कारो, भाव, विचारो और जीवन के विषय में उनके दृष्टिकोण में समानता दृष्टिगोचर होती है। द्रविड शिमला हिल्स से लेकर काठियावाड तक फैले हुए थे और उनमे शिव-शक्ति की पूजा एक प्रमुख उपासना के रूप मे प्रचलित थी। द्रविड सभ्यता के जो अवशेष मिले हैं, उनमे कही शिव योग मुद्रा मे बैठे हैं, तो कही देवी की नाभि से कमल का फूल उग रहा है और कही लिंग और योनि दिखाई दे रहे हैं। शिव द्रविडो के उपास्य देव थे, इसका प्रमाण इस तथ्य से भी मिलता है कि शिव का तमिल नाम 'सिवन' है, जिसका अर्थ लाल होता है। यह आर्य नाम 'नील-लोहित' से मिलता है। संस्कृत का शम्भु तमिल मे 'सेम्बु' बना, जिसका अर्थ ताम्बा या लाल धातु होता है। द्रविणो मे ताम्र वर्ण के प्रतापी देवता शिव ही थे। आर्यों मे इसको 'रुद्र' से समानता की जा सकती है।

जहां शिव हैं, वहां शक्ति का होना आवश्यक है, क्योंकि शक्ति के बिना तो शिव, शव बन जाते हैं। ऐतिहासिको का मत है कि सम्भवत सती के देह-त्याग की कथा इसी काल की है जब सती के शरीर के टुकडे जगह-जगह गिरते हैं और वही शक्ति-पीठो की स्थापना हो जाती है।

पौराणिक काल—

पौराणिक युग शक्ति-उपासना का यौवन काल कहा जाता है क्योंकि पुराण-रचयिता और इनके व्यापक प्रचार से शक्ति-उपासना को इतना बल मिला कि वह घर-घर की उपास्य बन गई। शिव और शक्ति का युगल प्रसिद्ध है। दोनो मे कोई भेद नहीं है। दोनो एक हैं। जिस प्रकार अग्नि और उसकी दाहिका-शक्ति, पृथ्वी और उसकी गन्ध तथा

क्षीर व उसकी धवलता मे कोई भेद नही होता, उसी तरह शक्ति और शक्तिमान में अभेद सिद्ध होता है। पुराणो में शिव, वायु, आदि शिव का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते हैं। शिव-चरित्र के साथ तो पार्वती का घनिष्ठ सम्बन्ध है। देवी भागवत मार्कण्डेय और कालिका पुराण मे देवी का माहात्म्य वर्णित हैं। ब्रह्मवैवर्त मे भी राधा के रूप मे अच्छा निरूपण किया गया है।

पौराणिक शक्ति-उपासना के बीज हम वेद मे भी देखते हैं, जहाँ वागाम्भृणी सूक्त (ऋग्वेद १०।१२५)मे शक्ति-तत्व का प्रतिपादन किया गया है। पुराण निश्चय रूप से वैदिक सिद्धातो का विस्तार मात्र हैं। उनकी रचनाका उद्देश्य ही वेदार्थ का उपब्र हण करना था। वैदिक युग से पुराण-युग तक शक्ति-उपासना को पहुँचाने के लिए उपनिषदो का भी योग प्राप्त हुआ। केनोपनिषद् में उमा को वैदिक प्रधान देवता इन्द्र को ब्रह्म का उपदेश देने का श्रेय दिया गया और देवी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, सौभाग्यलक्ष्मी, त्रिपुरा, सीता, राधा, भावना, वह-वृचोपनिषदो में स्वतन्त्र रूप से मातृ उपासना का विवेचन करके इस भावना को बल दिया गया। इसे पौराणिक शक्ति-उपासना की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है, जहाँ देवी को सर्वस्व माना गया है। उदाहरण के लिए सीतोपनिषद् मे सीता के सम्बन्ध मे कहा गया है कि "सीता ही विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियो की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वे सब देवतास्वरूपा, सब लोकमयी, सर्व आश्रयभूता, सर्व कीर्तिसम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवो की आत्मा, सर्व देवगन्धर्व, मनुष्य आदि प्राणियो का स्वरूपभूता है। वे सभी प्राणियो की देहरूपा और विश्वरूपा हैं।"

जन-मानस मे जब देवी ने इस भावना का रूप लिया, तब इसकी उपासना व्यापक रूप से की जाने लगी। देवी-उपासना का अधिकाशत इसके भय निवारणी व शत्रु-विनाशिनी गुणो से हुआ है।

वैदिक युग मे जो स्थान इन्द्र को प्राप्त था, पौराणिक युग में वही स्थान दुर्गा को मिला है। इन्द्र ने वृत्रासुर आदि असुरो को मारकर जो ख्याति पाई थी, उससे अधिक श्रेय दुर्गा को महिषासुर, चण्ड-मुण्ड, शुम्भ-निशुम्भ, रक्तबीज आदि दैत्यो के वध से मिला था। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि दुर्गा का उद्भव भी देवताओ की सगठन-शक्ति का परिणाम था। जिस शक्ति मे समस्त देवताओ का तेज सम्मिलित हो, उसकी कल्पना करना भी सम्भव नही है। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि दुर्गा की उपासना मे सभी देवताओ की उपासना आ जाती है। तभी मार्कण्डेय पुराण के सप्तशती प्रकरण मे देवताओ से बार-बार देवी की स्तुति कराई गई है और देवी के सहयोग से ही देवताओ की विजय दिखाई गई है। यहाँ देवी को देवताओ की अपेक्षा अधिक सम्मानित पद दिया गया है। अत उसकी उपासना का विकास स्वाभाविक ही था।

यदि वैदिक काल को इस उपासना का आरम्भ माना जाए, तो पौराणिक युग में इसका यौवन माना जा सकता है।

बौद्ध काल—

बौद्ध धर्म पर शाक्त प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता हैं। इनके साहित्य मे शाक्तो से प्रभावित देवियो का वर्णन आता है। साधन माला को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता हैं। सेकोद्देश टीका मे वाराही, नारायणी, ब्राह्मी, रौद्री, लक्ष्मी, ईश्वरी, परमेश्वरी, का नाम आता है। वज्रयान-साहित्य से प्रतीत होता है कि इन देवियो की उपासना मन्त्रो और मूर्ति सहित प्रचलित हो गई थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालन्दा में तारा और हारीति की उपासना होती थी। वागीश्वरी, वसुधारा आदि देवियो के भी वहाँ चित्र उपलब्ध होते हैं। विक्रमशिला विश्वविद्यालय मे भी देवी उपासना प्रचलित थी।

बौद्ध धर्म में शाक्त-तत्वो के प्रवेश का श्रेय 'गुह्य समाज तन्त्र'

ग्रन्थ की है, जिसमे पाँच ध्यानी बुद्धो की उपासना का निर्देश दिया गया है। इन ध्यानी बुद्धो की अलग-अलग शक्तियो का वर्णन आता है।

बौद्ध मत मे—

'प्रज्ञापारमिता' की देवी के रूप में उपासना होती है, जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि वह ज्ञान और बुद्धि को प्रदान करने वाली है। वह भी आद्याशक्ति ही है। बौद्धो में 'तारा' की उपासना भी शक्ति की उपासना ही है। हिन्दू और बौद्ध-तन्त्रों की शक्ति-उपासना मे साम्य है, केवल शब्दो का अन्तर है। हिन्दू धर्म मे जिसे शक्ति के नाम से सम्बोधित किया है, उसे बौद्ध धर्म मे 'शून्य' की सज्ञा दी गई है। उनकी मान्यता है कि यह शून्य ही विज्ञान और सुख-शान्ति का प्रदाता । य ही सृष्टि का कारण है और इसी मे सब कुछ लय हो जाता है। ब्राह्मणो और बौद्धो के दर्शनशास्त्र व आचारशास्त्र मे भी साम्य दृष्टि-गोचर होता है। ब्राह्मणो की 'वाराही' और 'दण्डिनी' के साथ 'वज्र-वाराही' मिलती-जुलती है। साधना-पद्धति भी एक जैसी ही है। ब्राह्मण और बौद्ध प्रणव ओकार-साधना को 'तार' कहते हैं। इस देवता की पत्नी का नाम 'तारा' है। बौद्धो की इस तारा देवी के सम्बन्ध मे काफी सस्कृत साहित्य लिखा गया है। तारा के सम्बन्ध मे ३३ सस्कृत ग्रथ उपलब्ध बताए जाते हैं, जिनमे तारा-उपासना-पद्धति के प्रत्येक अङ्ग पर विस्तृत विवेचन है। यह 'तारादेवी' महायान सम्प्रदाय की है। हीनयान सम्प्रदाय की 'मणिमेखला' देवी है। श्रीलका और श्याम मे इसकी उपासना होती है। वहाँ इसे समुद्र की देवी के रूप मे मानते हैं, जो तूफानो से रक्षा करने वाली है। हिन्दू धम मे जैसे शिव-शक्ति का जोडा है, वैसे ही बौद्ध धर्म मे तार तारा का जोडा है, उनके गुण एक जैसे ही है।

यह साधना बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो के विरुद्ध थी परन्तु ऐसा लगता है कि बौद्ध साधक कठोर नियमो से तग आ चुके थे और वह किसी सरल

मार्ग की खोज मे थे जिसमे भौतिक सुखो को तिलाजलि न दी जाती हो और ससार के सभी कार्य करते हुए साधना का विकास किया जाए। 'गुह्य समाज तन्त्र' ने इसी सिद्धान्त का अस्थापन दिया कि भौतिक आलम्बन के साथ ही बुद्धत्व की प्राप्ति की जा सकती है। इससे सघ मे अन्य अनैतिक दोष भी उत्पन्न हो गए, जिससे साधना मे विघ्न पडना स्वाभाविक था। इसलिए उनका दिनो-दिन पतन होता गया।

नाथ व सिद्ध सम्प्रदाय पर शक्ति-उपासना का प्रभाव–

नाथो का प्रेरणा स्रोत वज्रयान सम्प्रदाय को माना जाता है। बौद्धो मे ८४ सिद्धो के नाम आते हैं। उनमे आरम्भ के ६ नाम नाथो के हैं। कोई समय था जब नाथ-सम्प्रदाय सारे उत्तरी भारत पर छाया हुआ था। ऐसा लगता है कि इसके व्यापक प्रचार ने वज्रयान को प्रभावहीन कर दिया और यही इसके लोप का कारण बना।

वुद्ध पुराण के अनुसार शिव ने ही मत्स्येन्द्र का रूप धारण किया था। मत्स्येन्द्र का कौल मत से विशेष सम्बन्ध लगता है। इसे नाथ-सम्प्रदाय का सर्वप्रथम आचार्य माना जाता है। यह गोरखनाथ के गुरु थे। जन-श्रुति है कि शिव पुत्र स्वामी कार्तिकेय ने 'कुलागम शास्त्र' को समुद्र में वहा दिया था। इसके उद्धार के उद्देश्य से शिव ने मत्स्यरूप ग्रहण किया और जिस मत्स्य ने उस शास्त्र का भक्षण किया था, उसे मारकर 'कुलागम शास्त्र' का उद्धार किया। इसीलिए उस आगम का नाम पडा— मत्स्यघ्न'।

ऐसी भी मान्यता है कि मत्स्येन्द्रनाथ ने 'कौल ज्ञान-निर्णय' ग्रथ की रचना की थी। वहाँ भैरव के मुख से यह शब्द कहलाए गए हैं कि कि "वे ही त्रेता, द्वापर और कलियुग मे क्रम से महाकौल, सिद्धकौल मत्स्योदर के रूप मे अवतार धारण करते हैं।"

'सिद्ध सिद्धात पद्धति' मे पाँच शिव और उनकी पाँच शक्तियो का नाम आता है—अपर-शिव, परम-शिव, शून्य शिव, निरञ्जन-शिव

और परमात्म-शिव की क्रमश शक्तियाँ हैं—विजा-शक्ति, परा-शक्ति, अपरा-शक्ति, सूक्ष्मा-शक्ति और कुण्डलिनी-शक्ति। शास्त्रकारो ने इसका सम्बन्ध सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा से स्थापित किया है।

'गोरक्ष सिद्धात सग्रह पूर्णनाथ' के अनुसार सृष्टि-रचना से पहले प्रलयावस्था मे शिव को शक्ति से परे की मान्यता दी गई है। जब शिव मे सृष्टि-रचना की इच्छा जाग्रत होती है, तो वह अपने को शक्ति से युक्त करते हैं, तभी यह कार्य सम्पन्न हो पाता है। शिव सहिता की मान्यता है कि माया ने अपने आवरण से ब्रह्म को ढक रखा है और वही अपनी विक्षेप-शक्ति के माध्यम से ब्रह्म को विश्व-रूप मे लाती है। यही माया जब तप से सयुक्त होती है, तो वह दुर्गा का रूप धारण करती हैं। सतोगुण से मिलने पर वही माया लक्ष्मी बन जाती है। रजोगुण से आलिगन होने पर सरस्वती-रूप मे अवतरित होती हैं।

नाथ-पथ मे देवी को कुण्डलिनी-शक्ति के रूप मे मान्यता दी गई है और उसी की विशेष रूप से उपासना होती है।

९वी शती का मध्य ही नाथ सम्प्रदाय का आरम्भ माना जाता है। इनका अन्त १२वी शती मे हुआ। वैसे तो आज भी नाथ-सम्प्रदाय, कापालिक, औघड, कानफाटे और योगाचारी उपासको के रूप मे तथा सुरत शब्द योगियों, दादू-पन्थी एव कबीर-पन्थी के रूप में सारे भारत मे मिलता है।

जैनधर्म पर शक्ति-उपासना का प्रभाव—

बौद्ध-धर्म की तरह जैन-धम के साधको ने भी इस सरल मार्गको अपनाया और जैन-धर्म के मूल सिद्धांतो से न मिलने पर भी वह भक्ति-भावना, वरदान, चमत्कार, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि साधनाओ की ओर आकर्षित हुए, इनसे उन्हे भौतिक सुखो की कामनाओ की पूर्ति की आशा थी। अत जैन धर्म ने देवी-उपासना को स्थान दिया।

जैन धर्म मे २४ तीर्थंकर माने जाते हैं। उनके बाये ओर एक यक्षिणी का निवास कहा है, जिसे शासन-देवी कहते हैं। इन शासन-देवियो की सख्या भी स्वभावत २४ है। इनमे मे चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका प्रसिद्ध हैं। पद्मावती २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की शासन-देवी है। इनके स्वतन्त्र मन्दिर और पूजा विधान बताए गए हैं। इन्हे त्रिपुर भैरवी, त्रिपुरा, नित्या, तोतला, त्वरिता और कामसाधिनी नाम से भी पुकारा जाता है। इनकी विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ मिलती हैं, जिनमे दो, चार, आठ, बारह, बाईस और चौबीस भुजाएँ प्रदर्शित की जाती हैं।

अम्बिका, नेमिनाथ तीर्थंकर की शासन देवी है। जैन पुराणो मे इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। इनके भी अलग मन्दिर, पूजा-विधान और स्तोत्र आदि उपलब्ध हैं। गौरी से इसकी तुलना की जा सकती है। उसके दो पुत्र—गणेश और कार्तिकेय हैं। अम्बिका के भी दो पुत्र बताए जाते हैं। दोनो का वाहन सिंह है।

चक्रेश्वरी आदिनाथ—ऋषभनाथ की शासन देवी है। उसके वाहन, स्वरूप और आयुध मे वह वैष्णवी और नारायणी देवी से मिलती-जुलती है।

सिद्धायिका चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की शासन-देवी है। अपराजिता और कामचण्डालिनी भी इसी के नाम हैं। उसका श्याम वर्ण, दिगम्बर शरीर है, चार भुजाएँ और खुले बाल हैं।

जैन पुराणो मे इन चार शासन-देवियो को ही प्रमुखता दी गई है। शेष की भी यदा-कदा पूजा होती रहती है।

जैन-धर्म ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नही करता परन्तु चौबीस तीर्थंकरो की उपासना हिन्दू-धर्म के देवी-देवताओ की तरह ही करता है। उनके तीर्थों मे देवो की मूर्तियो की प्रतिष्ठापना होती है। गुजरात में अम्बाजी माता के स्थान के पास 'कुम्भारिया' ग्राम में काफी सख्या मे जैन-मन्दिर हैं। जैन कवियो ने शक्ति-सम्प्रदाय के 'सारस्वत कल्प'

को माना है। सिद्ध सारस्वताचार्य श्री बालचन्द्र सूरि ने अपने महाकाव्य 'वसन्त-विलास' के प्रारम्भ में शक्ति-पद्धति को स्वीकार किया है। वह अपनी दिव्य कवित्व-शक्ति का श्रेय सरस्वती देवी की उपासना को ही देते हैं। जैन धर्म के दोनो सम्प्रदायो—श्वेताम्बर और दिगम्बर मे शक्ति की उपासना का प्रचलन है परन्तु उनकी मान्यता है कि पृथ्वी के नीचे और ऊपर देवी-देवताओ का निवास है और उनकी अलग-अलग श्रेणियाँ हैं। उनकी यह भी मान्यता है कि इनकी पूजा-उपासना से वरदान की प्राप्ति सम्भव है, जिससे सभी सासारिक इच्छाओ की पूर्ति हो सकती है। हिन्दू धर्म मे तो ऐसा मानते ही हैं। जैन-धर्म मे शक्ति-उपासना का प्रवेश इसके प्रभाव और महानता की ही साक्षी देता है।

शक्ति-उपासना का आरम्भ वैदिक काल से हुआ। पौराणिक काल मे यह फली-फूली। बौद्ध व जैन-धर्म जैसे इतर धर्मों ने इसे अपनाया। नाथ व सिद्ध सम्प्रदायो पर भी इसका प्रभाव पडा। आज भी उत्तर से लेकर दक्षिण तक व्यापक रूप से इसका प्रचार है।

• • •

विश्व में
शक्ति-उपासना का प्रसार

भारतीय साहित्य के दो भाग हैं—निगम और आगम। निगम कहते हैं वेद को और आगम तन्त्र को। निगम के प्रति सारे विश्व ने उच्च सम्मान की भावना व्यक्त की है और मैक्समूलर जैसे उच्चकोटि के दार्शनिकों ने तो अपने जीवन का अधिकांश समय इसी की खोज व प्रचार-प्रसार में ही व्यतीत किया। आगम विश्वरूपता तो ग्रहण न कर सका, परन्तु सर जान वुडरफ जैसे विदेशी विद्वानों ने इसके उद्धार के लिए जी-तोड़ प्रयत्न किए। तन्त्र के शाक्त-सम्प्रदाय की प्रमुख उपासना मातृ-साधना है। वैसे वैदिक साहित्य में भी इसके मूल को खोजा जा सकता है। वेद में अदिति, दिति, सरस्वती, उषा, इला, मही, सरमा, दक्षिणा और आपोदेवी जैसी देवियों का वर्णन आता है। उपनिषदों ने भी मातृ-उपासना को स्वीकार करते हुए अनेकों उपनिषद् इसके लिए अभिहित की हैं। वैदिक साहित्य की गूँज सारे विश्व में सुनाई दी। सम्भव है इसी से शक्ति-उपासना का बीज वहाँ अंकुरित हुआ हो। कुछ भी हो, विश्व के अधिकांश देशों में प्राचीनकाल से मातृ-उपासना चली आ रही है और वहाँ भारत की तरह देवियों की प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं।

शक्ति-उपासना के दो विशेष कारण बताए जाते हैं। सभी सभ्यताएँ इस मत से सहमत हैं कि प्रलय के समय केवल मातृ-सत्ता

विद्यमान थी और उसी के सहयोग से सृष्टि की रचना हुई। दूसरे यह कि सभी ने इसको कृपा और दया का प्रतीक माना है। उन्होंने यह आशा रखी है कि उनको भौतिक उलझनों का समाधान करने वाली वह एक विशेष शक्ति है। इस गुण के कारण जन-समूह का ध्यान इधर आकर्षित होना भी स्वाभाविक था। व्यवहारिक क्षेत्र मे भी सच्चे प्रेम की प्रतिमा यदि किसी को कहा जा सकता है, तो वह म है—उसी से दुलार की आशा रखी जा सकती है। इसलिए जहाँ भी मातृ-उपासना प्रचलित हुई, वहाँ उसे उपरोक्त गुणों के कारण पर्याप्त बल मिला। तभी सारे विश्व ने इसे अपनाने मे कोई सकोच नही किया। हम यहाँ प्राचीनकाल से प्रचलित विभिन्न देशो की मातृ-उपासना का सक्षिप्त वर्णन करेंगे—

बेबीलोनिया—

भारतीय देवी उमा से मिलता-जुलता नाम 'अमा' बेबीलोन मे प्रसिद्ध था, जो समस्त सृष्टि की रचयिता मानी जाती थी। इस देवी को तारा और इश्तर' कहते थे। इस तारा का दूसरा नाम 'निनसन' था, जिसका अभिप्राय नाशकर्त्री है। परन्तु 'इश्तर' को अधिकाशत दया और करुणा की देवी माना जाता है। वह धरती और स्वर्ग की स्वामिनी मानी जाती थी। उनके कृपापात्र इसे अपना रक्षक और सम्पत्तिदाता के रूप में सम्मान करते थे। वह शाति और प्रसन्नता की प्रतिमा स्वीकार की जाती थी। वह मानव-जाति से प्यार करने वाली थी। बेबीलोन में 'इश्तर' देवी का सर्वोच्च स्थान था। इसकी महत्ता अपने देश तक ही सीमित नही रही वरन् सीरिया, मोआब, दक्षिण अरब और अबीसीनिया मे भी इसकी ख्याति फैली और यह वहाँ के स्थानीय नामो से पूजी जाने लगी। सीरिया मे 'अस्टोर्ट' नाम से 'मोआब' मे 'अश्तर' के रूप मे, दक्षिण अरब में 'आस्तर' और अबीसीनिया मे 'आस्तर' के नाम से विख्यात हुई।

इस देवी के सिर पर गाय के दो सींग देखे जा सकते हैं। 'अरविन्द' गाय का प्रतीक प्रकाश मानते हैं। यह देवी वहाँ के सभी देवताओ मे विवाहित है।

बेबीलोन मे आदि-देव को अप्सु और उनकी पत्नी को 'तियायत' के नाम से पुकारा जाता है। वहाँ की मान्यता है कि सर्वप्रथम वह समुद्रो के रूप में विकसित हुए और तभी अन्य देवी-देवताओ की उत्पत्ति हुई। यह कल्पना ऋग्वेद के 'अप्रकेतम सलिलय' की ही प्रेरणा से बनी प्रतीत होती हैं। वहाँ के तीन प्रमुख देवता हैं—इनतिल, इया और अनु, जो भारत के त्रिदेवो—ब्रह्मा, विष्णु और महेश से मिलते हैं। इन तीन देवताओ की शक्तियाँ हैं—तिललिलु (धरती की देवी), दामकिना (जलदेवी) और अनातु (स्वर्ग की अधिष्ठात्री)। इस तरह से बेबीलोन ने मातृ शक्ति के महत्व को स्वीकार किया।

मिस्र—

मिस्र मे आकाश की देवी 'नुट' मानी जाती थी, जिसके सम्बन्ध मे यह धारणा थी कि वही सभी प्राणियो की रचना करती है। यह भी कथा प्रचलित है कि यहाँ के वायुदेव 'शु' ने देवी 'नुट' को अपने पैरो का सहारा दिया, फिर उसके सहयोग से लाखो तारो को उत्पन्न किया। 'नुट' को देवमाता कहा जाता था। 'शु' को 'नुट' का पति माना जाता था, जो भारतीय 'इन्द्र' की तरह पृथ्वी और आकाश के अधिपति थे। 'नुट' भारतीय 'सुरभि' की तरह 'गोरूपिणी' थी।

माता के सृजक और संहारक दोनों रूप भारत में प्रचलित हैं, वहाँ मिस्र की 'सोखित' और 'सेखित' देवियो का सिर सिंहनी का था। उनके हाथ मे खड्ग देखा जा सकता है। वहाँ की एक और देवी 'तेफनुनने' का रूप भी सिंहनी जैसा था।

ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्री देवताओ का नामकरण भारतीय देवताओ में थोडे परिवर्तन से ही हुआ है। उदाहरण के लिए भारतीय

नाम 'ओम' में 'आमन्' बन गया और 'विष्णु'—'वेस' मे परिवर्तित हो गया। 'ईश' का 'इसिन्' बन गया, 'माना' का 'मत', 'शक्ति' का 'सकित', 'दिनेश' का 'दायनेशियस' हो गया और 'हर' का तो 'हर' ही रह गया। मिस्री देवता 'राय' की कथा महर्षि दत्तात्रेय से मिलती-जुलती है। वहाँ दत्तात्रेय के पद-चिह्न, मत्स्येन्द्रनाथ की मूर्ति व महाकाल का मन्दिर भी है। मिस्र की गोदेवी का नाम 'इरिस' था। भारत मे कच्छप व वाराह आदि के भी अवतार माने गए है। मिस्र मे 'हेक्टदेवी' का रूप मेढक का था।

मिस्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा-प्राप्त देवी थी—'आइसिस' जो वहाँ की सहस्रनामा अन्नपूर्णा मानी जाती है। इसकी उत्पत्ति का इतिहास कुछ अच्छा नही है। देवी नुट का पति सूर्य-देवता 'रा' था परन्तु उसने उसकी उपेक्षा की और देवता 'जेव' से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करके पाँच सन्तानें उत्पन्न की, जिनमे 'आइसिस' भी एक थी। फिर आइसिस ने अपने युवा भाई 'ओसिरिसे' से विवाह कर लिया। 'रा' देवता से शक्ति प्राप्त करने के लिए उसे सप से डसवाने का षडयन्त्र रचा। यहाँ तक का इतिहास तो इसका काला है, परन्तु वहाँ की प्रजा के लिए वह देवी वरदान सिद्ध हुई। मानवीय नियमों की व्यवस्था और प्रथम सभ्यता का पाठ 'आइसिस' द्वारा ही आरम्भ किया हुआ मानते हैं। वह खाद्य-धान्यो के भण्डार भरने वाली देवी के नाम से प्रसिद्ध है।

'आइसिस' अपने देश मे इतनी लोकप्रिय हुई कि वह अन्य देशो में भी पूजित होने लगी। रोम में 'सेरस' और ग्रीस मे 'डिमीटर' के रूप में पूजी जाने लगी। मिस्र की देवियो मे इसका प्रमुख स्थान था। मातृत्व और पत्नीत्व में वह आदर्श मानी जाती थी। इसे वहाँ 'कुमारी माँ' की तरह पूजा जाता था। जब ईसाई धर्म का प्रचार बढा, तो इसी के नाम को कुछ जातियो मे 'मेरी' के नाम से सम्मान दिया जाने लगा। 'आइसिस' की पूजा मेरी' के रूप में रूपातरित हो गई।

सात्विक देवियो मे माइडर का प्रमुख स्थान है, जो सत्य, न्याय और बुद्धि की देवी मानी जाती है। मिस्र की आकाश-देवी का नाम था—'हाथर'। सहारक देवी के रूप मे 'हेकाट' का उच्च स्थान है। वह विभन्न प्रकार के शस्त्र धारण करती थी, वह छ भुजा वाली थी, सिहो और सर्पों से भी उसका सम्बन्ध था। कभी-कभी दिगम्बर वेष भी धारण करती थी। इस देवी की समानता भारतीय देवी काली मे सुविधापूर्वक की जा सकती है।

मिस्री पुराणो मे अनेको अन्य देवियो का भी वर्णन आता है। विश्व को यदि एक भवन माने, तो उसके चारो द्वारो की द्वारपालिकाएँ भी देवी-रूप मे पूजी जाती थी। विभिन्न पशुओ को भी देवी का प्रतीक माना जाता था। सार यह है कि मिस्री मस्तिष्क पर मातृशक्ति की महत्ता की अमिट छाप अङ्कित थी और वह सभी प्रकार की समृद्धि और सौभाग्यो का अवतरण इसी महाशक्ति की उदारता मे ही मानते थे।

चीन—

आज तो चीन में साम्यवाद का बोलबाला है, परन्तु प्राचीनकाल मे यह एक आस्तिक देश था और यहाँ आस्तिक धर्म पुष्पित-पल्लवित हुए थे, तब मातृ-उपासना का भी प्रचलन था।

चीन मे नौ देवता माने जाते थे। उनकी जन्मदात्री का नाम 'तुवो' था, जो आदिम जल-राशि 'अपस्' देवी के नाम से विख्यात थी। इस 'अपस्' से ही निखिल विश्व की सृष्टि मानी जाती थी। वहाँ की पौराणिक गाथाओ से ज्ञात होता है कि 'पश्चिम आकाश-देवी' व्याघ्र-रूपिणी थी।

भारतीय वेद की तरह प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ चीन मे 'ई-चिंग' (I-ching) था। इसके अनुसार 'याग' (Yong) और 'यिग' (Ying) दो सिद्धात थे, जिनको सृष्टि-रचना का मूल माना जाता था। इनका भारतीय रूपातर पुरुष और प्रकृति ही किया जा सकता है।

ताओवादी धर्म मे याग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'यिग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोडी या गाय के प्रतीक मे देखते हैं। वैदिक परिभाषा मे गाय को मातृ चेतना की शक्ति और प्रकाश के रूप मे समझा जाता है।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअन' और पृथ्वी को 'ख्वान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक मे इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—"खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिता है, मणि है, धातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षो का फल है। 'ख्वान' वस्त्र है, धन है, गौ है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उर्वरा मिट्टी है।' यह वर्णन Myths of China and Japan पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन मे बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप मे रही। भारत मे बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन में पहुँचकर नारी रूप मे परिणत हो गया—यह आश्चर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रो और अष्टभुजाओ वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती - जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ संतानो की सरक्षिका दु खहर्ता, सुखदाता और विपत्तियो को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रैत' ने अपनी पुस्तक 'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' मे लिखा है कि "कैथोलिको मे जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन मे इस देवी का है।'

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयो की तरह मन्दिर बनाकर देवों की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थी। इनमें सोने और हाथी दाँत की बनी 'अन्थेनी देवी' की मूर्ति शिल्प-कला

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। इसे वहाँ प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत मे।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एन्थेस नगर के नामकरण की कथा वहाँ प्रचलित है। बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनो की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण मे दोनो में मतभेद था। दोनो अपना मुकदमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए। जियस ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भेंट करना चाहेगे। पोसीडन ने एक सुन्दर घोडा भेंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड। जियस ने यह निर्णय किया कि घोडा युद्ध का प्रेरक है और जैतून का पेड जन-कल्याण का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेंस' हुआ। बुद्धि की देवी के उपासको को ही एथेंस को बुद्धि और विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय है।

काली चोरो और डाकुओ से रक्षा करती है। यूनान की 'लावर्न' का भी यही उद्देश्य है। 'जूनो' देवी 'ओलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है। पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है। पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओ के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है। उसके छ मुख और बारह नेत्र हैं। वह पार्वती को रक्षा करता है। जूनो का पुत्र 'मार्स' भी ऐसे ही गुणो वाला है।

वहाँ पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है। हेरा, डानाए और अर्तेमिस नामक देवियाँ भी वहाँ एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाहो की अधिष्ठात्री और वहाँ के सर्वोच्च देवता 'जोयस' की सलाहकार मानी जाती है। यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिनित्व करती है।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

ताओवादी धर्म मे याग के प्रतीक 'चिएन' (Chien) को अजगर या अश्व और 'यिंग' के प्रतीक कुन (Kun) को घोडी या गाय के प्रतीक मे देखते हैं। वैदिक परिभाषा मे गाय को मातृ चेतना की शक्ति और प्रकाश के रूप मे समझा जाता है।

चीनी 'कन्फ्यूशियस' धर्म में आकाश को 'खिअन' और पृथ्वी को 'क्वान' कहा जाता था। उनकी धर्म पुस्तक मे इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—"खिअन आकाश है, वृत्ताकार है, मार्ग है, पिता है, मणि है, धातु है, शक्ति है, हिम है, उत्तम अश्व है वृक्षो का फल है। 'क्वान' वस्त्र है, धन है, गौ है, पृथ्वी है, माता है, पृथ्वी पर की काली उपजाऊ मिट्टी है।' यह वर्णन Myths of China and Japan पुस्तक में दिया हुआ है। पृथ्वी माता ही काली है।

जब चीन मे बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ, तब भी मातृ-उपासना अपने पुराने रूप मे रही। भारत मे बुद्ध को अवलोकितेश्वर के नाम से भी याद करते हैं। यह अवलोकितेश्वर चीन मे पहुँचकर नारी रूप मे परिणत हो गया—यह आश्चर्य है। वहाँ देवी के अनेक रूप चित्रित किए गए थे। वहाँ की तीन नेत्रो और अष्टभुजाओ वाली देवी की समानता दुर्गा से की जा सकती है। चुन्टी (Chun-ti) चण्डी से मिलती - जुलती है। यह मातृशक्ति वहाँ सतानो की सरक्षिका दु खहर्ता, सुखदाता और विपत्तियो को दूर करने वाली मानी जाती थी। प्रसिद्ध लेखक 'प्रैत' ने अपनी पुस्तक 'दि पिलग्रिमेज आफ बुद्ध' मे लिखा है कि "कैथोलिको मे जो स्थान मैडोना का है, वही पवित्र स्थान चीन मे इस देवी का है।'

ग्रीक—

यूनानी लोग भारतीयो की तरह मन्दिर बनाकर देवो की पूजा करते थे। उनके मन्दिर स्थापत्य-कला की उत्तम कला-कृतियाँ होती थी। इनमें सोने और हाथी दाँत की बनी 'अन्येनी देवी' की मूर्ति शिल्प-कला

की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती थी। इसे वहां प्रमुख रूप से पूजा जाता था जैसे गायत्री देवी को भारत मे।

यह एक कथा से भी स्पष्ट है—यही एन्थेस नगर के नामकरण की कथा वहां प्रचलित है। बुद्धि की देवी 'एथेनी' और समुद्र के देवता 'पोसीडन' दोनो की इच्छा थी कि उनके नाम पर एक नगर बसाया जाए, परन्तु उसके नामकरण मे दोनो में मतभेद था। दोनो अपना मुकदमा लेकर 'जियस' देवता के पास ले गए। जियम ने पूछा कि वह अपने नगर को क्या उत्तम भेंट करना चाहेगे। पोसीडन न एक सुन्दर घोडा भेंट करने का सुझाव दिया और एथेनी देवी ने जैतून का पेड। जियस ने यह निर्णय किया कि घोडा युद्ध का प्रेरक है और जैतून का पेड जन-कल्याण का प्रतीक, इसलिए यह नगर एथेनी के नाम पर होगा उस नगर का नाम 'एथेंस' हुआ। बुद्धि की देवी के उपासको को ही एथेंस को बुद्धि और विद्या का केन्द्र बनाने का श्रेय है।

काली चोरो और डाकुओ से रक्षा करती है। यूनान की 'लावन' का भी यही उद्‌देश्य है। 'जूनो' देवी 'ओलम्पियन' पर्वत पर निवास करने वाली बताई जाती है। पार्वती का निवास-स्थान भी कैलाश पर्वत है और वह पर्वत की पुत्री बताई जाती है। पार्वती के पुत्र का वाहन मोर है और उसे देवताओ के सेनापति का गौरवपूर्ण पद मिलने का श्रेय प्राप्त है। उसके छ मुख और बारह नेत्र हैं। वह पार्वती की रक्षा करता है। जूनो का पुत्र 'आगर्स' भी ऐसे ही गुणो वाला है।

वहां पृथ्वी देवी को 'डीमीटर' के नाम से याद किया जाता है। हेरा, डानाप् और अर्तेमिस नामक देवियां भी वहां एक विशिष्ट स्थान रखती हैं। हेरा—मिलन की प्रतीक, विवाहो की अधिष्ठात्री और वहां के सर्वोच्च देवता 'जीयस' की सलाहकार मानी जाती है। यह प्रजोत्पादन का भी प्रतिनिनित्व करती है।

'अर्तेमिस' पालन, रक्षण, साहस, दयालुता, करुणा और

पवित्रता की प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उनकी रक्षा करती है।

'अहेना' वीरों की वीरता को प्रोत्साहित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य में आया है।

जैसे भारतीय प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिति है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता 'जीयस' की माता 'रेआ' (Rhea) मानी जाती है।

'अनो'का' मातृशक्ति वहाँ परात्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा में मातृ उपासना का एक उच्च स्थान रहा है।

रोम—

रोम में भी देवी-देवताओं की पूजा प्रचलित थी। 'एलियम' को देवी 'हेलेन' और देवता जुपीटर का युग माना जाता है। रोम के संस्थापक 'रीमस' और 'रोम्युलस' का पालन-पोषण एक मादा भेड़िया ने किया। इसलिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी 'ओटस' मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति 'श्री' है। रोम में इसका नाम 'सिरिस' है। गया के पास जो 'श्री' की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुलती है।

रोमन दुर्गा का नाम 'मिनर्वा' है। वह शस्त्र धारण करके राक्षसों का संहार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और बुद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ में एक वीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

बाबुल—

भारतीय रति की तरह बाबुल में 'मिलित्ता' देवी की आराधना

होती थी, जो प्रेम, दाम्पत्य और प्रणय का प्रतीक मानी जाती थी। नवविवाहित युगल के लिए इसकी पूजा करना अनिवार्य होता था। पत्नी के लिए तो देवी को प्रसन्न करना अनिवार्य होता था। इस देवी इस देवी की आराधना कुछ ऐसे विकृत ढग से की जाती थी, कि किसी भी स्वाभिमानी पति को इसे सहन नही करना चाहिए क्योंकि नव-विवाहिता जब तक किसी अपरिचित युवक के आकर्षण का केन्द्र नही बन जाती, तब तक वह योग्य पत्नी कहलाने की अधिकारिणी नही बन सकती थी। अनुमान है कि वेश्यावृत्ति की नीव इसी कुप्रथा ने रखी होगी।

'तियामत' बाबुल की आसुरी देवी है। अथर्ववेद में इसे 'तैयात' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तिलक ने 'तियामत' को 'तैमात' सिद्ध किया था। बाबुल मे यह 'अप्सू' देवता की पत्नी मानी जाती थी। ऋग्वेद मे भी 'अप्सव' शब्द आया है, जिसका सम्बन्ध जल से है। तियामत अकाल की प्रतीक है। जल को सोखकर सुखा डालना ही उसका काम है। भारतीय इन्द्र की तरह बाबुल में 'मर्दुक' है, जो आसुरी शक्तियो से सघर्षरत रहते हैं। 'तियामत' से भी वही युद्ध करते हैं। जैसे इन्द्र अपने वज्र से वृत्र आदि का सिर काट डालता है, वैसे ही 'मर्दुक' तियामत का सिर काटता है। जैसे ऋग्वेद में 'महोमर्णव जल धाराओ की निर्दोष गति से चलने की बात आती है, वैसे ही तियामत की मृत्यु पर होता है।

नेपाल—

नेपाल को एकमात्र हिन्दू-राष्ट्र होने का श्रेय प्राप्त है। वहाँ पर हर क्षेत्र मे हिन्दुत्व की सजीव मूर्ति होना स्वाभाविक ही है। वहाँ बौद्धो और हिन्दुओ का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। सरस्वती के मन्दिर में इसका व्यवहारिक उदाहरण देखा जा सकता है, जिसे 'मन्जूश्वरी भी कहा जाता है और जिनके चरण चिन्ह भी वहाँ स्थापित

पवित्रता की प्रतीक है। जब आत्माएँ नवीन शरीर धारण करती हैं, तो यह उनकी रक्षा करती है।

'अहेना' वीरो की वीरता को प्रोत्साहित करती है। वह स्थापत्य और शिल्पकला की प्रतीक है और पृथ्वी का स्वामित्व इसी के भाग्य मे आया है।

जैसे भारतीय प्रमुख देवता इन्द्र की माता अदिति है, वैसे ही यूनान के प्रमुख देवता 'जीयस' की माता 'रेआ' (Rhea) मानी जाती है।

'अनो'का' मातृशक्ति वहाँ परात्परा स्वरूप के लिए प्रसिद्ध है।

इस तरह से ग्रीक परम्परा मे मातृ-उपासना का एक उच्च स्थान रहा है।

रोम—

रोम मे भी देवी-देवताओ की पूजा प्रचलित थी। 'एलियम' को देवी 'हेलेन' और देवता जुपीटर का युग माना जाता है। रोम के सस्थापक 'रीमस' और 'रोम्युलस' का पालन-पोषण एक मादा भेडिया ने किया। इसलिए उसे देवी की मान्यता दी गई। वहाँ समृद्धि की देवी 'ओटस' मानी जाती थी।

भारत में सम्पत्ति 'श्री' है। रोम में इसका नाम 'सिरिस' है। गया के पास जो 'श्री' की मूर्ति उपलब्ध हुई है, वह इससे मिलती-जुलती है।

रोमन दुर्गा का नाम 'मिनर्वा' है। वह शस्त्र धारण करके राक्षसो का सहार करती है। वहाँ एक और मिनर्वा भी है, जो विद्या और वुद्धि की प्रतीक मानी जाती है, और जिसके हाथ मे एक वीणा रहती है। यह भारतीय सरस्वती का रूपान्तर है।

बाबुल—

भारतीय रति की तरह बाबुल मे 'मिलित्ता' देवी की आराधना

श्री जे० होम्स स्मिथ के शब्दो में "हम सभी विश्वमाता, धरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता है, तो हम पुन धरती मां, विश्व मां की ममता भरी गोद में चले जाते हैं। आज ससार में लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।"

क्रीट (Crete) मे मातृ उपासना रेआ (Rhea) के रूप मे होती थी, जिन्हें जीयस की माता कहा जाता था। उनका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इसी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) मे साइबेल (Cyble) पडा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी। इस देवी के सम्बन्ध मे महाकवि होमर और पिन्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओ का कहना है कि यही से देवी-पूजा रोम और ग्रीस मे गई क्योंकि इन देशो के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाईबिल मे सृष्टि-रचना के कारणो पर प्रकाश डालते हुए परमात्मा,श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका अभिप्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचाय रघुवीर ने तिब्बत और मगोलिया मे से भारतीय देवी-देवताओ के रेखा-चित्रो का सग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओ के साथ काली देवी की उपासना, तिब्बत, मगोलिया, सुदूर उत्तर मे स्थित मचूरिया तक होती थी।

तिब्बत मे भगवती का नाम—'सर्सिग्रास-स्पियनमा' है। तिब्बत पर बौद्धो का स्पष्ट प्रभाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम 'डलमा' था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पू- ाता का नाम वहाँ

हैं। महाकाली के भी वहाँ दर्शन होते हैं। बौद्धो का विश्वास है कि यह देवी लोकेश्वरी पद्मा पानी की मूर्ति है। अन्नपूर्णा देवी पर नेपाल-वासियो को अच्छी आस्था है, क्योकि वह अधिक अन्न उपजाने मे सहायक सिद्ध होती है। राधा-कृष्ण की युगल जोडी को भी नेपाली अभी भूले नही हैं। अन्य देवियाँ तो भारत की तरह ही ज्यो की-त्यो स्थित है।

अन्य देशों में--

उत्तरी अफ्रीका मे देवी-उपासना का प्रचलन था। तियामत, मिलिता, ईसिस, इश्तर, इनिन्ना नामक देवियो की आराधना वहाँ एक लम्बे समय तक होती रही।

मिस्र की 'ईसिस' की 'इश्तर' के नाम से 'असूरिया' मे पूजा हुई, जहाँ इसके दूसरे नाम 'निना' तथा 'नना' और 'इनिन्ना' थे।

सुमेर मे 'निन्नी' 'नन्ना' अथवा नन्नर', 'इनन्ना' देवी की पूजा के चिन्ह मिलते हैं। इस पर एक महाकाव्य की रचना भी हुई थी।

इश्तर देवी का आरम्भ ही सीरिया से माना जाता है।

ईसाई धर्म में कुमारी मेरी की उपासना सर्वोपरि मानी जाती है। १४वी शती तक वह देवमाता के पद पर प्रतिष्ठित हो चुकी थी। ईसा से चार सौ वर्ष बाद तक इसका नाम तक भी कोई नही जानता था। परन्तु ऐसा लगता है कि 'एशिया माइनर', सीरिया और दक्षिण योरोप में पहले से विद्यमान मातृ-उपासना का प्रभाव अन्ध-विश्वासी ईसाई जगत पर पडा और 'मेरी' को विपत्ति-निवारिणी माता के रूप में माना जाने लगा। तभी से फ्रास, जर्मनी आदि मे विशाल गिरिजाघरो की नीव रखी गई।

ईसाई जगत् में 'मेरी' के प्रति श्रद्धा ईसा के समान ही है। मेरी के सम्मान के रूप मे मई मास में उत्सव मनाए जाते हैं। वह उपासको के लिए आशाओ का केन्द्र है।

श्री जे० होम्स स्मिथ के शब्दो में "हम सभी विश्वमाता, धरती माता तथा मानव-माता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। भगवती माता तथा स्वर्गीय पिता की कृपा से हम जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और विकास करते हैं। और जब हमारे वर्तमान जीवन का कार्य तथा अर्थ समाप्त हो जाता है, तो हम पुन धरती माँ, विश्व माँ की ममता भरी गोद में चले जाते हैं। आज ससार मे लक्ष-लक्ष लोग भगवती माता के लिए समान श्रद्धा रखते हैं।"

क्रीट (Crete) मे मातृ उपासना रेआ (Rhea) के रूप मे होती थी, जिन्हे जीयस की माता कहा जाता था। उनका वाहन सिंह और पर्वत उनका निवास-स्थान था।

इसी का नाम फ्रायगिया (Phrygia) मे साइबेल (Cyble) पड़ा। वह 'क्रोस' देवता की पत्नी थी। इस देवी के सम्बन्ध मे महाकवि होमर और पिन्डर ने स्तुतियाँ लिखी हैं। इतिहास-वेत्ताओ का कहना है कि यही से देवी-पूजा रोम और ग्रीस मे गई क्योंकि इन देशो के साथ फ्रायगिया के घनिष्ठ सास्कृतिक सम्बन्ध थे।

कुरान और बाईबिल मे सृष्टि रचना के कारणो पर प्रकाश डालते हुए परमात्मा,श्वास और शब्द को ही प्रमुखता दी गई है। इनका अभिप्राय यहाँ भी आद्याशक्ति से ही है।

आचार्य रघुवीर ने तिब्बत और मगोलिया मे से भारतीय देवी-देवताओ के रेखा चित्रो का सग्रह किया था। आचार्य रघुवीर के अनुसार अन्य देवताओ के साथ काली देवी की उपासना, तिब्बत, मगोलिया, सुदूर उत्तर मे स्थित मचूरिया तक होती थी।

तिब्बत में भगवती का नाम—'सर्स्गिग्रास-स्पियनमा' है। तिब्बत पर बौद्धो का स्पष्ट प्रभाव था। बौद्ध देवी तारा की उपासना भी वहाँ प्रचलित थी। वहाँ उसका नाम 'डनमा' था। श्रद्धा, विश्वास, प्रेम और भक्ति की प्रतीक के रूप में पूजित माता का नाम वहाँ

—

'दाम', 'त्रिाग', 'डलमा' है। वैसे तारा की सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी जो वहाँ के धर्म-जीवन पर छाई हुई थी।

तिब्बत की तरह मगोलिया मे भी 'तारा' की उपासना होती थी। 'तारा' की मूर्तियाँ भी वहाँ प्रतिष्ठित थी, जो सम्भवत भारत से ही गई प्रतीत होती हैं।

यदि कही हिन्दुत्व पूर्ण रूप से जीवित और जाग्रत स्थिति मे है, तो वह बाली देश है, जहाँ की उपासनाएँ, उपासना-पद्धति, मान्यतायें और साहित्य उसी तरह श्रद्धा का पात्र है जैसा कि भारत मे बल्कि कुछ अशो मे भारत से अधिक। 'Island of Balı' नामक पुस्तक के अनुसार बाली द्वीप मे देवी 'दानु' देवी 'गगा', 'गिरिपुत्री', 'दुर्गा' तथा 'उमा' शिव की पत्नियाँ हैं।

कम्बुज मे वैदिक देवी-देवताओ की उपासना प्रचलित थी। रामायण-कथा की व्यापकता के कारण सीता की वहाँ अच्छी लोकप्रियता थी। हर्ष वधन द्वितीय ने मेवन' में शिव और पार्वती के मन्दिर बनवाये थे।

जिस तरह यहाँ की जलदेवी गगा मैया है, इसी तरह थाई देश मे जलदेवी को 'मेखोखा' कहते हैं। उसके प्रति उनकी अपार श्रद्धा है। आज भी बकाक के उच्च-न्यायालय के सामने शिव की मूर्ति स्थापित है, जिसकी जटाओ से गगा की धारा निकल रही है। वहाँ के ब्राडकास्टिंग स्टेशन के मुख्य द्वार पर सरस्वती देवी का सुन्दर चित्र देखा जा सकता है।

जावा के कुञ्जर भाग में शैव मन्दिर स्थापित है। श्री विजय साम्राज्य के शैलेन्द्र राजाओ द्वारा 'तारा' का मन्दिर बनवाया गया था (७०० शक)। वहा की भाषा मे 'चण्डी'—मन्दिर का नाम है। वहाँ पर 'सरस्वती-चण्डी', 'विष्णु-चण्डी', 'शिव चण्डी' आदि के मन्दिर मिलते हैं।

मलाया की उपासना-पद्धति भारतीय थी। अत प्रत्येक देवता की मूर्ति का निर्माण किया गया था। वहाँ पर दुर्गा की मूर्तियाँ भी मिलती हैं।

बर्मा के पगान नगर मे अन्य भारतीय देवताओ के साथ तारा की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं।

इस तरह से विश्व के अधिकाश देशो मे शक्ति-उपासना के प्रति मान्यता रही है।

• • •

शक्ति-विज्ञान

जगत दो प्रकार का है—जड और चेतन। जड, चेतन पर आधारित रहता है। चेतन से ही जड मे गति आती है। हम देखते हैं कि जड दिखाई देने वाली वस्तुओ मे भी एक व्यवस्थित गति है, एक नियमित प्रक्रिया के अनुसार वह काय करती रहती हैं। सर जगदीश चन्द्र बसु ने तो वृक्षो और धातुओ तक में जीवन-तत्व की विद्यमानता को सिद्ध किया था। प्लाटिनम का उदाहरण ले सकते हैं। वह विष से मर जाती है। उद्भिजो मे तो स्पष्ट रूप से चेतना शक्ति दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध जो प्रयोग किए गए हैं, उससे यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि उद्भिज मे सोचने की शक्ति है, उसमे गोचरता और इच्छा-शक्ति भी अवश्य हैं। ज्ञान और कर्म तन्तुओ के अभाव मे इन गुणो का विकास कैसे सम्भव हो सकता है ?

मानव में तो इसके विविध रूप हैं। घृणा, ईर्षा, द्वेष, लज्जा भी और दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, नि स्वार्थता, श्रद्धा, विश्वास भी। मस्तिष्क और इन्द्रियो की चेतना शक्ति प्रत्यक्ष है। इनमें दोनो प्रकार की विपरीत धारणाएँ रहती हैं, भावो का आवागमन रहता है। मन तो एक अपूर्व चेतना-पिंड है, जिसकी क्रियाशीलता का अनुमान लगाना भी सम्भव नही है। मानव के हर अङ्ग मे चेतना और स्फूर्ति है। इसी से सृजन और सहार की दोनो प्रकार की प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं। ऋतु आती है, दो प्राणियो में एक होने की इच्छा जाग्रत होती है। उनका मिलना सृष्टि-प्रक्रिया का मूल बन जाता है। दोनो के सयोग से

एक नया चेतन-पिंड स्थापित हो जाता है, जिसके अणु-अणु मे चेतना भरी रहती है। विज्ञान ने भी इस क्रिया को समझने का प्रयत्न किया है। जीवन विज्ञान का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों का यह मत स्थिर हो गया है कि जीवो मे जो जीवन-तत्व होता है, उसका नाश नही होता। जीवन-अंकुर (Chromosome) जीव के साथ रहते है और भौतिक शरीर के नष्ट होने पर वह सस्कार और चेतना-रूप मे रहते हैं। इसलिए जीवन को अनादि और अनन्त कहने मे कोई सन्देह नही रह गया।

विश्व में चेतना की प्रक्रिया व्यवस्थित है। जब सृजन होता है, तो ऐसा लगता है कि हर वस्तु अन्दर से बाहर आ रही है, चाहे यह मानव मे हो, पशु पक्षियो या पेड-पौधो मे हो। सहार के समय वह बाहर से अन्दर की ओर जाती है, क्योंकि उन्हे विश्व-चेता मे लीन होना है। यह दोनो खेल एक ही चेतना के हैं। अकुरो के आकाश की ओर उठने की प्रक्रिया मे भी और उनकी पत्तियो के पृथ्वी पर गिरने पर मिट्टी मे लीन होने की स्थिति मे भी एक ही चेतना-शक्ति काम करती है। वह सबमे व्याप्त है—किसी मे सुप्तावस्था में और किसी मे जाग्रतावस्था मे। जाग्रतावस्था होने पर वह विशेष रूप से क्रियाशील रहती है। परन्तु वह पक्षपातरहित है, उसे किसी से लगाव नहीं है। वह सबमे एक ही प्रकार की अविरल गति से प्रवाहित होती है।

इसके प्रमाण चारो ओर देखे जा सकते हैं। अपने शरीर का का ही उदाहरण लें। उसमे हृदय की गति बराबर चलती रहती है। इस गति का चलते रहना ही जीवन कहलाता है और रुकना ही मृत्यु। मन निरन्तर गतिशील रहता है। जो विचारो को गतिशील रखता है, वही व्यक्ति अलग-अलग क्षेत्रो मे महान् प्रतिभाशाली बनते हैं। शरीर एक कारखाना है। उसके सभी अङ्ग अपने आप कार्यरत रहते हैं। रक्त अविरल गति से प्रवाहित होता रहता है, भोजन करने पर पाचन-क्रिया

होती रहती है, मलो का विसर्जन होता रहता है और श्वासोच्छ्वास की क्रिया भी लम्बे समय तक सञ्चालित होती रहती है। शरीर को गतिशील रखने से वह स्वस्थ व शक्ति-सम्पन्न रहता है। मालिश व अन्य व्यायाम करने से शरीर में एक प्रकार की विद्युत दौडती है, जो उसकी शक्तियो का विकास करती है। जो इस विद्युतधारा के प्रवाहित करने में असमर्थ रहते हैं, वही अस्वस्थ और रोगी बने रहते हैं।

सूक्ष्म शक्तियों के विकास का आधार भी यही है। साधक व्रत, उपवास, जप तप, हवन, पाठ, पूजा, यौगिक क्रियाएँ, आसन, प्राणायाम, चिंतन, मनन आदि के द्वारा सूक्ष्म शरीर के सुप्त शक्ति-केन्द्रो को जाग्रत करता है। इसमें गति की ही अपेक्षा है।

ससार की हर वस्तु गतिशील है। वायु गति का परिणाम है। शब्द गति से ही सुनते हैं। स्पर्श, रस और गन्ध की अनुभूति भी विभिन्न प्रकार की तरगो से होती है। शरीर को सर्दी-गर्मी का अनुभव होना भी सूक्ष्म तरगों से सम्पन्न होता है। विद्युत और चुम्बक का आकर्षण भी गति से ही होता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत और तारा-मण्डल के तेज में भी तरगो का विज्ञान निहित है।

विश्व की हर वस्तु गतिशील है। जिस धरती पर हम निवास करते हैं, उसकी अनेकों गतियाँ है। वह अपनी धुरी पर घूमती है, मँडराती है, सूर्य की परिक्रमा करती है, सूर्य के साथ कृत्तिका मण्डल की परिक्रमा करती है। अपनी धुरी पर वह २४ घण्टो में घूम जाती है। सूर्य की परिक्रमा वह एक वर्ष में करती है। मँडलाने की गति २६ हजार वर्षो मे पूर्ण होती है।

पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले हर प्राणी में गति है। गति से ही वह प्राणी कहलाता है। मनुष्य के अतिरिक्त पशु, पक्षी, कीट, पतग और कीडे-मकोडे सभी गतिशील हैं। पेड-पौधो मे भी गति होती है, तभी तो वह निरन्तर बढ़ते रहते हैं। मिट्टी और पत्थर में भी अव्यक्त गति

रहती है। जब उन्हें ऊपर फेंका जाता है, तो पृथ्वी की आकर्षण शक्ति से वह नीचे आ जाते हैं।

वनस्पति जगत में भी इस असीम सक्रियता को प्रत्यक्ष अनुभव किया जा सकता है। यदि हम इस प्रक्रिया का निरीक्षण करें कि किस प्रकार पुष्प में रंग और गंध भरी जाती है और किस प्रकार भँवरों को आकर्षित किया जाता है—तो इसकी सत्यता सिद्ध हो जाएगी। केवल फूलों में ही नहीं, समस्त वनस्पतियों में यह सृजन-क्रिया दृष्टिगोचर होती है और यह बताती है कि अणु-अणु में, कण-कण में इसके दर्शन हो रहे हैं।

पदार्थ (Matter) में गतिहीनता नहीं है, गतिशीलता है। उसे सृजन क्रिया में व्यस्त देखा जा सकता है। आधुनिक विज्ञान ने भी इस तथ्य को सिद्ध कर दिया है। विज्ञान बताता है कि पदार्थ और जीवन अभिन्न है, एक हैं, इनको अलग नहीं किया जा सकता। कुछ वैज्ञानिक तो जीवन को पदार्थ का एक गुण घोषित करते हैं। विश्व-चेतना भी दोनों की एकता ही सिद्ध करती है, क्योंकि जब हम सृष्टि की हर जड़-चेतन वस्तु का निरीक्षण करते हैं, तो स्पष्ट विदित होता है कि हर वस्तु में सक्रियता है। यहाँ क्रियाहीन कोई पदार्थ है ही नहीं। अणु-विज्ञान इलेक्ट्रोन को भौतिक इकाई नहीं मानते। वे इस विद्युत पुञ्ज में गतिशीलता और इच्छा-शक्ति की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। अणु में इच्छा का होना वास्तव में वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य का विषय है, परन्तु है यह अटूट सत्य। कुछ भी हो पदार्थ और जीवन एक और अविभाज्य हैं।

बर्गसाँ इसे स्वीकार करते हुए कहते हैं—"पदार्थ (Matter) में ही जीवन की इच्छा निहित है। यह इच्छा शक्ति बाह्य नहीं, आतंरिक है, जो प्रगति की ओर ऊर्ध्वमुखी है। मनुष्य में यही इच्छा चेतना के स्तर पर पहुँच गयी है। पर सभी रूप-आकारों में यह इच्छा प्रगतिशील जीवन की जननी है। यही ब्रह्म का मातृरूप है।"

इस विश्व का हर परमाणु तीव्र गति से अपना कार्य कर रहा है। पृथ्वी तो सूर्य की परिक्रमा साढे अठारह मील प्रति सैकिंड की गति से करती है, परन्तु यहाँ हर एक परमाणु हजारो मील प्रति सैकिंड की गति से घूम रहे हैं। तभी तो परमाणु की शक्ति का मूल्यांकन करते हुए महान् वैज्ञानिक सर जे० जे० टामसन ने कहा था—"यदि एक परमाणु के अन्दर छिपी शक्ति निकल पडे, तो एक क्षण के अल्पांश मे ही लन्दन जैसे घनी आबादी वाले तीन नगर ध्वस्त हो जाएँ। यह उस परमाणु का विद्युत और गति के कारण ही है।"

सार यह कि सारा विश्व गतिमय है—शक्तिमय है। किसी की शक्ति व्यक्त है और किसी की अव्यक्त। सारे ब्रह्मांड मे शक्ति के खेत लहलहा रहे हैं। शक्ति के बीज बिखरे पडे है। हमारे अङ्ग-अङ्गमे शक्ति के कोष भरे पडे हैं, परन्तु हम उन्हे अनुभव नही कर पाते, जो अनुभव करते हैं वे शक्ति सम्राट बन जाते हैं। सारा विश्व उनके गीत गाता है, उनकी उपासना करता है और उनसे सहायता की अपेक्षारखता है। जब हम स्वय मे वह शक्ति और सामर्थ्य उपस्थित है, तो हम दूरक्यो भागते हैं, अपने सुप्त शक्ति-केन्द्रो को क्यो नही जगाते ? यह निश्चित है कि हममे भी वह शक्ति है, जो ससार के किसी भी प्राणी में है और हमारा भी उतना ही विकास सम्भव है जितना कि किसी भी प्राणी का हो पाया है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम शक्ति की उपासना उचित रीति से करें और अपने जीवन में गतिशीलता बनाए रखें। गति ही जीवन है, यही विकास और सफलता की आधार-शिला है। इसी क्रिया-शील इच्छा-शक्ति को जगदम्बा, जगज्जननी, जगन्माता कहा जाता है। जगदम्बा की उपासना ही क्रियाशील जीवन है।

यही चेतना-शक्ति साधनात्मक क्षेत्र मे दुर्गा,भवानी, देवी, शक्ति के रूप मे पूजित है। जब हम अष्टभुजी दुर्गा के चित्र या प्रतिमा की उपासना करते हैं, तो निश्चय रूप मे हम इस चेतना-शक्ति का ही

आवाहन करते हैं, क्योंकि वह सारे विश्व मे अनन्त रूपो मे व्याप्त है। शास्त्र मे भी कहा है—

"स्वर्वस्वरूपे सर्वेशे सवशक्तिसमन्विते।
यच्च किञ्चत्क्वचिद्वस्तु सदमद्वाखिलात्मिके।

अर्थात् "सबके स्वरूप वाले, सबके ईश और समस्त समन्वित मे जो भी कुछ, कही पर भी वस्तु है, सद् अथवा असत्, उन सबके स्वरूप वाले मे जो उसकी सबकी शक्ति है वही आप हैं।"

चेतना सर्वव्यापक है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति जड चेतन मे है, वह जीव-अजीव सब मे है। सारा जगत् शक्तिमयी है—"सर्व शक्ति मय जगत्।" यहाँ शक्ति के अतिरिक्त और कुछ है ही नही। मार्कण्डेय पुराण, देवी-माहात्म्य १।८२ मे कहा है—

यच्च किञ्चत्क्वचिद्वस्तु सदमद् वाखिलात्मिके।
तस्य सवस्य या शक्ति सा त्व कि स्तूयसे मया॥

अर्थात् "और जो भी कुछ कही पर भी वस्तु है, वह चाहे सत् हो या असत्, उन सबके आत्म-स्वरूप मे उस सबकी शक्ति म जो शक्ति है, वही आप मेरे द्वारा स्तूयमान होती हैं।"

देवी भागवत (५।३२, ७७-७८) के अनुसार—

या देवी सव भूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम.॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूताना चाखिलेषु या।
भूतेषु सतत तस्यै व्याप्त्यै देव्यै नमो नम॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमो नम॥

व्यापक चेतना की अनुभूति और अपन जीवन को गतिशील बनाए रखना ही सच्ची शक्ति-साधना है।

●●●

शक्ति और आधुनिक विज्ञान

वैज्ञानिक समर्थन—

आधुनिक विज्ञान भी शक्ति-सिद्धांत का समर्थन करता है। सर जान वुडरफ ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"जड प्रकृति की रचना के सम्बन्ध में जो शक्ति का सिद्धान्त (Dynamic view) प्रचलित है, जिसने प्रकृति को जडता से शून्य बना दिया है, जिस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति के परमाणुओ में शक्ति का एक महान् खजाना भरा हुआ है, जिस सिद्धान्त के अनुसार उसे अनिर्वचनीय तत्व का यन्त्रो के ढग से अवयवश विश्लेषण करते-करते उसका एक अश ऐसा बच जाता है, जिसका इस तरह विश्लेषण नही हो सकता। जिस सिद्धान्त के अनुसार रेडियो के आविष्कार ने भौतिक शक्तियो के क्षेत्र में—जो अब तक स्थिर एव सीमित मानी जाती थी—एक नवीन एव एक प्रकार से अनन्त शक्ति का सञ्चार कर दिया है, उसने इस बात को भी प्रमाणित करी दिया है, कि भौतिक विज्ञान शक्ति - सिद्धान्त के बहुत निकट पहुँच गया है। जिस सिद्धान्त के अनुसार—(क) शक्ति हीसबका सार है, (ख) प्रत्येक वस्तु के अन्दर अथवा यूँ कहिए कि समस्त विश्व के अन्दर रहने वाली शक्ति की वास्तव में कोई थाह नह लगा सकता और (ग) प्रकृति के प्रत्येक परमाणु मे शक्ति का पूर्ण भण्डार भरा पडा है।"

भौतिक ऊर्जाओं मे अभिन्नता—

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकाश, ताप, चुम्बक आदि भौतिक

शक्तियाँ मूलत एक और अभिन्न हैं। समझने के लिए विद्युत को ही लीजिए—विद्युत के चमत्कारो ने सारे ससार को मोह लिया है। यह अदृश्य भौतिक शक्ति है। इसे 'वल्व' के माध्यम से प्रकाश मे परिवर्तित करके अन्धेरे मे उजाला किया जाता है। 'हीटर' और लोहे की इस्त्री की सहायता से यही विद्युत ताप मे रूपातरित की जाती है। विद्युत-धारा को लोहे पर प्रवाहित करके चुम्बक बनता हैं, जो दूसरी भौतिक शक्ति है। इससे यह सिद्ध है कि भौतिक शक्तियो को एक-दूसरे मे बदला जा सकता है। विज्ञान के इसी सर्वमान्य तथ्य पर जरा गम्भीरता के साथ विचार करें, तो हम निष्कर्ष कर सकते हैं कि विद्युत प्रकाश, चुम्बक ऊष्मा आदि भौतिक शक्तियाँ विविध न होकर एक हैं। एक मूल ऊर्जा के ही रूप-प्रतिरूप हैं। भौतिक शक्तियो मे मूलत कोई भेद नहीं है।

मूल ऊर्जा और भौतिक पदार्थ—

मूल ऊर्जा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? भौतिक पदार्थों से उसका क्या सम्बन्ध है ? उसमें और भौतिक पदार्थों मे क्या अन्तर है ? इन प्रश्नो का उत्तर भी आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियो मे खोजना होगा।

विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने अपने प्रयोगो द्वारा स-प्रमाण सिद्ध कर दिखाया कि प्रकाश को पदार्थ मे बदला जा सकता है। जो बात प्रकाश के सम्बन्ध में है, वही अन्य भौतिक शक्तियो—चुम्बक, विद्युत, ताप, ध्वनि आदि के विषय मे भी कही जा सकती है। इसका सीधा-सा अर्थ हुआ—जहाँ ऊष्मा विद्युत आदि शक्तियाँ मूल रूप मे एक हैं, वहाँ जगती के यावत्मात्र चर अचर पदार्थ शक्तिरूप होने के कारण मूलऊर्जा के ही प्रतिरूप हैं। मूल ऊर्जा ही भौतिक शक्तियों मे अनेक विधि परिवर्तित होकर इन्ही के माध्यम से गैस, तरल और ठोस पदार्थों मे घनीभूत हो रही है।

मूल ऊर्जा और विभिन्न पदार्थ--

समस्त स्थावर जगम पदार्थ अणु-परमाणुओ के सयोग से बने हैं। ये अणु-परमाणु निरन्तर गतिशील हैं। तत्व या यौगिक के अणु-परमाणु जब दूर-दूर तेजी से घूमते हैं, तो वह पदार्थ की गैसावस्था कहलाती है। जब अणु परमाणुओ की गति गैस की अपेक्षा न्यून होती है, उसकी सज्ञा 'तरल' या 'द्रव' है। इसी प्रकार जब अणु-परमाणुओ की गति अत्यन्त सीमित हो, सकुचित हो, तो उसे ठोस पदार्थ कहा जाता है। अत्यन्त सूक्ष्म बनी अणु-परमाणुओ की जो गति गैस, द्रव और ठोस को अनुस्यूत किए रहती है, वही भौतिक शक्ति है और भौतिक शक्तियो की शक्ति 'मूल ऊर्जा' है।

गतिशीलता के साथ अविनाशिता भी—

आधुनिक विज्ञान जहाँ स्थावर जगम पदार्थों तथा भौतिक शक्तियो को गतिशील बताता है वहाँ 'पदार्थ नष्ट नही होता' ऐसा उद्घोष करके वह इनकी अविनाशिता को भी तुमुल ध्वनि से स्वीकारता है। इसका आशय यह हुआ कि मूल ऊर्जा वह 'सक्रिय तत्व' है, जो कभी नष्ट नही होता। यह 'सक्रियक गतिशीलता' ही उसकी प्रखर 'चैतन्यता' है।

मूल ऊर्जा की उत्पत्ति—

प्रश्न यह है कि वैज्ञानिको की 'मूल ऊर्जा',जो अविनाशी,शाश्वत, निरन्तर स्पन्दनशील, चैतन्य एव भिन्न-भिन्न पदार्थों और शक्तियो में प्रतिरूपित है, किससे उत्पन्न हुई? भिन्न-भिन्न शक्तियो को आकर्षण-विकर्षण मे बाँधने वाली, उनका नियमन करने वाली होने के कारण वह उनसे तो उद्भूत हो नही सकती, तब क्या वह 'शून्य' से पैदा हुई? नही, कदापि नही। सम्पूर्ण सृष्टि मे 'शून्य' जैसा कुछ नही है। सभी ओर सूक्ष्म और स्थूल पदार्थों के रूप मे मूल ऊर्जा ही व्याप्त है। अत

मूल ऊर्जा 'उत्पत्ति-रूप' नही है। यदि वह सभूत होती, उत्पत्ति का विषय होती, तो उस 'मूल' विशेषण क्यो दिया जाता। फिर शून्य तो शून्य ठहरा। शून्य से नि शून्य का पैदा होना—चैतन्य का पैदा होना—वैसे भी युक्तियुक्त नही जान पडता। इसलिए कहना ही होगा कि वैज्ञानिको की ऊर्जा 'स्वय-भू' है।

मूल ऊर्जा और आद्याशक्ति मे अभिन्नता—

निश्चय ही 'विज्ञान' की 'मूलऊर्जा' वह चैतन्य धारा है, जिसे आस्तिक वर्ग 'आद्याशक्ति' के रूप में पूजता है। उपनिषद् ग्रन्थो मे 'आद्याशक्ति' के जो-जो गुण बताए हैं, वे सब ही इसमे विद्यमान हैं।

वैज्ञानिको की 'मूल ऊर्जा' सर्वगत है। वह समस्त पदार्थों मे, भौतिक शक्तियो मे, अणु अणु मे, परमाणु परमाणु मे अनुस्यूत है। आद्याशक्ति भी सर्वगत है, सर्वव्यापक है। ऐसी कोई वस्तु नही, ऐसा कोई स्थान नही, जहाँ वह न हो। वैज्ञानिको की मूल ऊर्जा ही समस्त विश्व का मूल कारण है। विश्व के यावन्मात्र परिवर्तन उसी के हैं। अध्यात्मवादियो की आद्याशक्ति भी जगज्जननी हैं। समस्त भौतिक शक्तियो का नियमन करने वाली हैं। वैज्ञानिको की ऊर्जा गतिमय है, चैतन्य है। आद्याशक्ति को भी परम चैतन्य के रूप में स्मरण किया जाता है। मूल ऊर्जा अविनाशी और शाश्वत है, आद्याशक्ति भी आदि-अन्त रहित है। मूल ऊर्जा उत्पत्ति रहित है, स्वय-भू है। आद्याशक्ति भी आत्मरूप है, स्वय-भू और स्वय प्रकाश्य। अत हम कह सकते हैं कि आधुनिक विज्ञान भी आद्याशक्ति पर विश्वास करता है। सज्ञा शब्दो मे ही भेद है। विज्ञान जिसे 'मूल ऊर्जा' कहता है, हम उसे आद्याशक्ति। इसीलिए तो ससार-प्रसिद्ध विज्ञानाचार्य आइन्स्टीन ने कहा है—"विज्ञान और धर्म मे कोई भेद नही है। दोनो साथ-साथ चलते हैं।"

विज्ञान और साधना में अन्तर—

वैज्ञानिक और शाक्त दोनो शक्ति के सर्वव्यापक प्रभाव को स्वीकार करते हैं, परन्तु उनके दृष्टिकोण मे कुछ अन्तर है। विज्ञान तो शक्ति को एक अन्ध-प्रवाह मानता है जिसका नियन्त्रण करके जैसा भी चाहे उपयोग कर सकता है। वह अपने को शक्ति का नियन्त्रक समझता है। वह उस असुर की तरह है, जो शक्ति के केश पकडकर उस पर अपने प्रभुत्व की घोषणा करता है। इसमे मानव मूल्य का कोई भी स्थान नही है। उसका उद्देश्य केवल भौतिक स्थूल शक्तियो से काम लेना होता है। आध्यात्मिक शक्तियो से उसका कोई सम्बन्ध नही वह उसकी कल्पना भी नही कर सकते।

शक्ति को माता के रूप में पूजने वाले का दृष्टिकोण अलग होता है। वह देवी को सर्वशक्तिमयी चेतना, 'स्ववश विहारिणि' और सर्वेश्वरी मानता है। वह उसकी सगुण उपासना अवश्य करता है, परन्तु वह उसे पत्थर की प्रतिमा मात्र नही मानता, वह उसे चेतना का पुञ्ज मानकर उपासना करता है। उसके स्थूल विग्रह में सजीवता की अनुभूति करके करुण प्रार्थना करता है और भौतिक व आत्मिक सभी प्रकार के लाभ प्राप्त कर कराने आग्रह करता है और पाता भी है। विज्ञान की तरह यन्त्र और दासी की तरह नही, अपनी सर्वस्व मानकर वह उसका द्वार खटखटाता है। भक्त के लिए वह विश्व-जननी है। वह अपनी सन्तान के साथ लाड और दुलार करती है, उनकी सभी कामनाओ की पूर्ति करती है, उसे सद्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है, उसके जीवन का काया-कल्प करके नव-निर्माण का उत्तरदायित्व ग्रहण करती है। विज्ञान की शक्ति जड है, भक्त की चेतन। विज्ञान बाह्य जगत् तक सीमित रहता है। शक्ति अन्तर्जगत् के विकास का प्रयत्न करती है, दोनो के विधि विधान मे भी बडा अन्तर है। जो भी हो, विज्ञान शक्ति-सिद्धान्त को मान्यता देता है।

०००

शक्ति का दार्शनिक रूप

भारतीय दर्शन की आधार-शिला—

भगवान की स्तुति करते हुए भक्त कहता है—'त्वमेव माता च पिता त्वमेव'। गीता म भी कहा है—'माता धाता पितामह'। भगवान माता, पिता और पितामह हैं—यही भारतीय दर्शन की आधार-शिला है। उनकी उपासना हम किसी भी रुचिकर रूप में कर लें, परन्तु वास्तविकता यह है कि उसका कोई रूप नही, उसका कोई नाम नही। समझने की सुविधा के लिए ऋषियो ने कहा—'एकाकी न रमते, एकोऽह बहुस्याम्'' । सृष्टि-रचना के समय ऐसी प्रक्रिया हुई, इसे मूल-माया या आदि स्फूर्ति के नाम से सम्बोधित किया गया। वही ज्ञान-क्रिया शक्ति-रूप से द्वैत मे आई और विश्व की रचना हुई। ब्रह्म का ही व्यक्त रूप शक्ति है। जब अद्वैत, द्वैत मे परिणित हुआ, तो इस स्थिति को शिव-शक्ति, पुरुष प्रकृति, राम-सीता, गणेश-सिद्धि, कृष्ण-रुक्मिणी आदि नामो से पुकारा जाने लगा। यह नाम अलग-अलग हैं और लोक मे इनके शरीर भी भिन्न-भिन्न दिखाई दिए। इनकी लीलाएँ भी प्रथक् प्रथक् रहीं, परन्तु वास्तव मे सब एक हैं, इनमे कोई अन्तर नही—एक है। द्वैत तो केवल सृष्टि-रचना के लिए ही ग्रहण करना पडा है।

दार्शनिक भाषा मे इन दोनो की परिभाषा करें तो हम कह सकते हैं कि सारे ससार के अन्दर निवास करने वाली निर्विकार सत्ता का

नाम शिव और उसकी क्रिया का नाम शक्ति है। शक्ति के अनेक रूप हैं, जिनमे प्रधान हैं—चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया-शक्ति। एक विद्वान् ने इसे इस प्रकार व्यक्त किया है—"यह जो स्फुरण या क्रिया है, वह शिव का रूप है, और इस स्फुरण का जो आधारभूत अधिष्ठान है, वह शिव का रूप है। केवल सत्ता पुरुष है और समस्त क्रिया प्रकृति है।"

योग-वशिष्ठ (६।२।८५।१५) मे कहा है—

स पर प्रकृते' प्रोक्त, पुरुष पवनाकृति'।
शिवरूपधर शान्त शरदाकाश शान्तिमान्॥

"प्रकृति से परे दिखाई न देने वाला पुरुष है, जो कि सदैव ही शरद् ऋतु के आकाश की तरह स्वच्छ, शान्त और शिवरूप है।"

इससे स्पष्ट है कि अद्वैत कारण है और द्वैत उसका परिणाम है। दोनो मे कोई भेद नही।

शिव और शक्ति की एकरूपता—

देवी-भागवत के अनुसार ब्रह्मा ने शक्ति से प्रश्न किया कि आप स्त्री हैं या पुरुष? शक्ति ने उत्तर दिया—"पुरुष, और मैं हमेशा एक ही हूं। मुझमे और पुरुष मे कोई अन्तर नही है। जो पुरुष है, वही मैं हूं और जो मैं हूं, वही पुरुष है।" इसीलिए 'नवरत्नेश्वर तन्त्र' मे निर्देश है कि "सच्चिदानन्दरूपिणी देवी की स्त्री, पुरुष और शुद्ध ब्रह्म-रूप मे उपासना करनी चाहिए।"

श्री ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने 'अमृतानुभव' के प्रथम प्रकरण (शिवशक्ति समावेशन) में इस विषय का अच्छा स्पष्टीकरण किया है। वह कहते हैं कि "उनका सम्बन्ध ऐसा है, जैसे डण्डे दो पर ध्वनि एक, पुष्प दो पर सुगन्ध एक, दीपक दो पर दीप्ति एक, होंठ दो पर शब्द एक, नेत्र दो पर दृष्टि एक।"

ब्रह्म तो क्रियाहीन है, शक्ति मे क्रिया है, यह सारे जगत का

विस्तार उसी के बल पर हुआ है। ऋग्वेद के १०वें सूक्त में देवी ने स्पष्ट कहा है—'मैं राज्यों की अधिष्ठात्री और धन-प्रदात्री हूँ, जिसे मैं चाहूँ, वही मेरी कृपा से बलवान, मेधावी स्तोता और कवि हो सकता है। मैंने आकाश को प्रकट किया है, इसलिए मैं उसके पिता के समान हूँ। मैं सूर्य चन्द्रादि नक्षत्रों की सञ्चालिका हूँ, लोकों की रचना करती हूँ आकाश पृथ्वी में व्याप्त हूँ, समुद्र के जल में निवास करती हूँ।"

देवी-भागवत के सातवें स्कन्ध के ३२वें अध्याय में देवी ने स्वयं अपने रूप का वर्णन किया है—"मैं ही चिद्शक्ति, परब्रह्म-स्वरूपिणी हूँ, मैं अग्नि की उष्णता, सूर्य की किरणों और कमल की शोभा के समान ब्रह्म से अभिन्न हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गौरी, ब्रह्माणी, वैष्णवी, सूर्य, तारागण, चन्द्रमा, पशु, पक्षी, चाण्डाल, व्याघ्र, क्रूरकर्मा, सत्य-कर्मा, महाजन, स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, दृश्यादृश्य, श्रव्य, स्पर्शनीय सब कुछ हूँ।"

अध्यात्म-रामायण में सीता ने राम के सम्बन्ध में कहा है कि "राम तो कुछ करते नहीं, उन्हें कोई इच्छा भी नहीं है, न आना-जाना है। सब कुछ मैं ही करती हूँ।"

मार्कण्डेय पुराण में देवी महामाया ने कहा है "शिव की शक्ति उसके मुख पर अवस्थित थी, यम की शक्ति उसके केशों में प्रवाहित थी विष्णु का बल उसकी भुजाओं में था, उसके वक्ष मण्डल चन्द्रमा की तरह सुडौल थे, उसकी कटि में इन्द्र का तेज था, उसकी टाँगों और जंघाओं में वरुण का वेग था, ब्रह्मा उसके चरणों में थे और उसके पैर के अँगूठे में आग्नेय सूर्य चमक रहा था।"

इस तथ्य को भगवान विष्णु ने देवी-भागवत के चौथे अध्याय में स्वयं स्वीकार किया है। जब ब्रह्मा ने विष्णु से पूछा कि आप किसकी साधना करते हैं? उत्तर मिला—"बाह्य-दृष्टि से तो आप जगत के बनाने वाले हैं, परन्तु वेदज्ञ पुरुष हमारी इन सृजक, पालक और संहारक

शक्तियों को पराशक्ति के आश्रित मानते हैं। शक्ति की कृपा से ही मेरी सारी गतिविधियाँ सञ्चालित होती हैं। इसीलिए मैं उसी आदिशक्ति की आराधना करता हूँ।" तभी समस्त भूतों में चेतना-रूप से विद्यमान शक्ति को नमस्कार किया गया है—

या देवी सर्व भूतेषु चैतन्येत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
एकैव सा महाशक्तिः तया सर्वमिदं ततम्॥

एक ही शक्ति अलग-अलग नामों और रूपों में व्यक्त होकर अलग-अलग कार्यों का सञ्चालन करती है। जहाँ वह सृजनात्मक कार्य करती है, वहाँ वह संहारक कार्यों का भी उत्तरदायित्व निभाती है, ताकि विश्व की व्यवस्था और नियन्त्रण को सँभाल सके। जब वह सृजन-क्रिया में व्यस्त रहती है, तो मातेश्वरी कहलाती है, परन्तु जब पालन, पोषण और रक्षा करती है, तो विश्व-पिता के सम्मननीय पद से सुशोभित होती है। लक्ष्मी और अलक्ष्मी दोनों उसी के रूप हैं। भौतिक सुखों का सौभाग्य उन्हीं की कृपा से प्राप्त होता है और धन-ऐश्वर्य का दुरुपयोग करने वाले लोगों को उचित दण्ड देकर उन्हें सुमार्ग पर भी वही लाती है। भगवान, भगवती, महेश, महेश्वरी, ईश्वर, ईश्वरी और ब्रह्मशक्ति सब कुछ वही है।

समझने के लिए 'ब्रह्म' शब्द पुल्लिंग और 'शक्ति' शब्द स्त्री-लिंग होता है, परन्तु ब्रह्मशक्ति में इनका आरोपण नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए स्त्री वाचक और पुरुष-वाचक शब्दों को लें—पगड़ी, धोती, टोपी, साड़ी आदि स्त्री वाचक हैं, परन्तु उनके मूल में एक ही तरह का सूत है। यह सारी स्त्री वाचक व पुरुष-वाचक वस्तुएँ एक ही प्रकार के सूत से निर्मित हुई हैं, जिनमें स्त्रीत्व और पुरुष व कुछ भी नहीं है। इससे यह परिणाम निकलता है कि एक ही चैतन्य अलग-अलग नाम रूप में हमें दृष्टिगोचर होता है, लौकिक दृष्टि से कुछ को

स्त्री-वाचक और कुछ को पुरुष-वाचक घोषित किया जाता है, परन्तु वास्तव मे वह दोनो इन सज्ञाओ से तीन होते हैं क्योकि उस चैतन्य की कोइ निश्चित सज्ञा नही है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए शास्त्र-कारो ने यह घोषणायें की—'त्व हि माता च पिता त्वमेव' 'माता रामो मत्पिता रामचन्द्र'। भगवान की माता और पिता दोनो रूपो मे मान्यता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और शक्ति के नाम-रूप तो अलग-अलग दिखाई देते हैं, परन्तु मूलत वह एक ही हैं। उनमें कुछ भी भेद नहीं है।

शास्त्र इस अभेद की पुष्टि करते हैं। योग-वशिष्ठ ६।२।८४।३ मे कहा है—

यथैक पवनस्पन्दमेकमौष्ण्यानलौ यथा।
चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा॥

"जिस तरह वायु और उसकी क्रिया, अग्नि और उष्णता सदैव एक ही होते हैं, उसी तरह चिति और स्पन्द-शक्ति एक ही है।"

अन्यत्र भी कहा है—

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधिति।

'जिस तरह पावक मे गर्मी रहती है सूर्य मे किरण रहती हैं और चन्द्रमा में चन्द्रिका रहती हैं, उसी तरह शिव मे उसकी सहज शक्ति का निवास है।"

विष्णु पुराण के अनुसार—

स एव क्षोभको ब्रह्मन्! क्षोभ्यश्च पुरुषोत्तम।
स सङ्कोचविकाशाभ्या प्रधानत्वेऽपि च स्थित।॥
केचित्ता तप इत्याहुस्तम केचिज्जड परे।
ज्ञान मायाप्रधानञ्च प्रकृति शक्तिप्यजाम्॥
सा वा एतस्य सद्रष्टु शक्ति सदसदात्मिका।
माया नाम महाभाग! ययेद निर्म्ममे विभु॥

"वही पुरुषोत्तम भगवान क्षोभ्य और क्षोभक उभय रूप से प्रतिभात होते हैं एवं संकोच और विकास के द्वारा ब्रह्म और तच्छक्ति-स्वरूपिणी प्रकृति व प्रधान रूप से विद्यमान रहते हैं। यह प्रकृति कहीं इच्छा-रूप से, कहीं माया-रूप से और कहीं शक्ति रूप से वर्णित की गई है। यह शक्ति सदा-सदात्मिका है एवं चैतन्य-रूप भगवान इसके द्वारा ही समस्त विश्व की रचना किया करते हैं।"

अर्द्धनारीश्वर के रूप में शिव और शक्ति का अभेद—

शिव और शक्ति के ऐक्य को अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा के सुन्दर रूप मे प्रदर्शित किया गया है—जिसके आधे भाग मे शिव और आधे मे पार्वती उत्कीर्ण की गई हैं। इसे विद्वानो द्वारा मानव-इतिहास की सुन्दरतम कल्पना की संज्ञा दी गई है। अर्द्धनारीश्वर का शास्त्रीय अध्ययन व्यक्त भावों की पुष्टि करता है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ॥

"पुरुष से प्रकृति अलग कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसमे सम्मिलित रहती है और सनातन शक्ति कहलाती है।"

विद्यापति ने अर्द्धनारीश्वर की इस प्रकार आराधनात्मक स्तुति की है जिसमे शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति के समन्वित रूप की अभिव्यक्ति की है—

जय जय शंकर जय त्रिपुरारि।
जय अध पुरुष जयति अधनारी ॥
आध धवल तनु आधा गोरा।
साध सहज कुच आध कटोरा ॥
अध हडमाल आध गज मोती।
आध चन्दन सोहे आध अभभूती ॥

आधा चेतन मनि आधा भोरा।
आध पटोर आध मुज डोरा॥
आध जोग अध भोग विलासा।
आध विवान आध नगवासा॥

आध चान अध सिंदूर शोभा।
आध विरूप आध जग लोभा॥

भने कवि रतन विधाता जाने।
दुई कय वाटल एक पिराने॥

इस सम्बन्ध में भृंगी ऋषि की कथा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है, जिसमे शिव और पार्वती, पुरुष और प्रकृति, नर और नारी की एकता का बोध होता है। उसमें एक तरह से एक गम्भीर समस्या का समाधान भी किया गया है। कथावस्तु इस प्रकार से है कि एक बार देवता और ऋषि शिव की स्तुति के लिए कैलाश पर गये। जैसे देव-मन्दिरों मे देव-दर्शन के साथ स्तोत्रो का पाठ और मन्दिर की प्रदक्षिणा आवश्यक मानी जाती है, उसी तरह शिव को ईश्वर की साक्षात् प्रतिमा मानकर देवताओ और ऋषियो ने शिव और पार्वती दोनो की श्रद्धापूर्वक प्रदक्षिणा की, परन्तु भृंगी ऋषि के मन मे शिव के अतिरिक्त और कुछ था ही नही, उनकी श्रद्धा के पात्र केवल शिव ही थे। अत उन्होने केवल शिव की ही प्रदक्षिणा की। पार्वती ने इसे अपनी उपेक्षा समझी और भृंगी को कंकाल होने का शाप दिया। शाप प्रत्यक्ष हो गया। एक ओर भक्त है और दूसरी ओर पार्वती—दोनो को ही उन्हें सन्तुष्ट करना था। भृंगी को उन्होने तीसरा चरण प्रदान किया, जिससे वह प्रसन्नता से खिल उठा। वह शिव के महान् अनुग्रह का प्रतीक था। भृंगी की प्रसन्नता से पार्वती की अप्रसन्नता स्वाभाविक थी। शिव को उन्हे भी रुष्ट नही करना था। उन्हें वरदान दिया कि तुम आधे अङ्ग के रूप मे सदैव मेरे साथ रहोगी। शरीर-रूप में भी मुझसे अलग न होगी।

अब पार्वती शिव का आधा अंश बन गई और दोनो एक हो गए, तो भृंगी की समझ में आया कि शिव-पार्वती दोनो एक ही हैं, अलग-अलग नही हैं। तब उसने उस समन्वित रूप की प्रदक्षिणा की। इससे नर-नारी की वस्तु स्थिति का पता चलता है। यह प्रस्तर-प्रतिमा बादामी की गुफा में उपलब्ध है।

पुराण (शत रुद्र संहिता) मे अर्द्धनारीश्वर के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार वर्णित है—

"जिस समय ब्रह्माजी ने अपने द्वारा सृजन की हुई प्रजा की वृद्धि नही देखी, तो वे दुःख से अत्यन्त व्याकुल होकर परम चिन्तित हुए। उस समय एक आकाशवाणी हुई कि अब तुम मैथुनी-सृष्टि की रचना करो।" यह सुन ब्रह्माजी ने अपनी मैथुनी सृष्टि के निर्माण करने का मन मे निश्चय कर लिया। इसके पहले शिव से स्त्रियो के कुल का प्राकट्य नही हुआ था, इसी कारण से विधाता मैथुनी सृष्टि करने के कार्य मे समर्थ न हो सके। शिवजी के प्रभाव के बिना यह प्रजा किसी भी प्रकार से उत्पन्न नही हो सकेगी—ऐसा विचार कर ब्रह्मा शिव को प्रसन्न करने के लिए तत्पर हुए। पार्वती-स्वरूपिणी परम शक्ति से समन्वित परमेश्वर का हृदय के ध्यान करते हुए प्रीतिपूर्वक तप करने मे ब्रह्माजी लीन हो गये। कठोरतम तपस्या मे तत्पर ब्रह्माजी से शिवजी थोडे ही समय मे शीघ्र सन्तुष्ट हो गये। इसके अनन्तर पूर्ण चिद्रूप ईश्वर ने अपनी काम-प्रदायिनी मूर्ति मे प्रवेश करते हुए आधा नारी और आधा पुरुष का स्वरूप होकर ब्रह्माजी के समीप पदार्पण किया। तब ब्रह्मा ने भगवान शिव को अपनी परम शक्ति से संयुक्त देखकर दण्डवत-प्रणाम करते हुए करबद्ध होकर उनकी स्तुति की। शिवजी ने अपने शरीर के अर्द्ध भाग से शिवा शक्तिमयी देवी को प्रकट कर दिया, तब उनका शिव से पृथक् स्पष्ट स्वरूप दिखाई देने लगा।"

विष्णु-पुराण प्रथम अंश के चौथे अध्याय मे लिखा है—

अर्द्धनारीनरवपु प्रचण्डोऽति शरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधेतत. ।।

अर्थात् "सृष्टि के आरम्भ में रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे से नारी हुए। यह जानकर ब्रह्मा सन्तुष्ट हुए और इसका विभाजन करने की प्रेरणा दी, ताकि सृष्टि का सचालन किया जा सके।"

शास्त्रों ने पुरुष को तभी पूर्ण माना है, जब उसमे नारी सयुक्त हो जाती है। नारी के अभाव मे वह अपूर्ण, अधूरा, रहता है। भविष्य पुराण के सातवें अध्याय में लिखा है—

पुमावद्ध पुमास्तावद्यावाद्भार्या ।

अर्थात् "पुरुष का कलेवर तब तक पूर्णता को प्राप्त नहीं करता, जब तक कि उसके आधे अ ग को आकर नारी नही भर देती।"

बृहदारण्यकोपनिषद् (१४।१।३) मे भी ऐसे ही भाव प्रदर्शित किए गए हैं—'सर्वप्रथम सब कुछ ही आत्मा था। उसकी आकृति पुरुष जैसी थी। उसने चारो ओर नजर दौडाई, तो उसे अपने अतिरिक्त और कुछ दिखाई नही दिया। उसे अकेलापन अच्छा नहीं लगा, आनन्द नहीं आया। उसने अपने को दो भागो मे विभक्त किया। उसी से पति और पत्नी बने। इसीलिए दोनो में से प्रत्येक अपने ही आधे अ श की तरह है।"

शतपथ ब्राह्मण ५-२-३-१० मे भी कहा है—

अर्धो हवा एष आत्मनो यज्जायेति।

"जाया अपना आधा अ श ही है।"

व्यास-सहिता २।१४ में भी कहा है—

यावन्न विन्दते जायो तावदर्धो भवेत् पुमान्।

"जब तक स्त्री की प्राप्ति नही होती, तब तक पुरुष आधा ही रहता है।"

विवाह के समय पति पत्नी से कहता है—

यदेतद्धृदये तव तदस्तु हृदये ममायदेतद्धृदये मम तदस्तु हृदय तव।

"यह जो तुम्हारा हृदय है, सो मेरा हो जाय और जो मेरा हृदय है, सो तुम्हारा हो जाए।"

ब्रह्मवैवर्त पुराणकार ने इस सुन्दर रूप का वर्णन इस प्रकार से किया है कि 'भगवान प्रकृति देवी की सहायता से ही शक्तिमान रहते हैं। यह नर और नारी, पुरुष और प्रकृति—दोनो अलग-अलग दृष्टिगोचर होते हैं, परन्तु वस्तुत वह एक ही हैं '

अर्द्धनारीश्वर की कल्पना मे ब्रह्मवैवर्त-पुराण मे पुरुष को कृष्ण और नारी को राधा का रूप बताया गया है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि वह कृष्ण-प्रधान पुराण है। उसमें कृष्ण को ही सर्वस्व माना गया है। सृष्टि-रचना का रूप बतलाते हुए कहा गया है कि वह आरम्भ मे केवल अकेले ही थे।

एक से अनेक होने की इच्छा उनके मन मे उत्पन्न हुई। उन्होने सकल्प किया और वह पुरुष और प्रकृति दो भागो में बँट गये। इस विभाजन में दाया पक्ष पुरुष का और बाया नारीका हो गया। कृष्ण को पुरुष और राधा को प्रकृति और सनातन माया की सज्ञा दी जाती है।

शिव और पार्वती के इस सम्मिलित रूप को विश्व में सुन्दरतम रूप की सज्ञा दी जा सकती है क्योंकि इस कल्पना ने दो पक्षो को एक स्तर पर लाकर खडा कर दिया है। बाह्यदृष्टि से जो अलग-अलग दिखाई देते हैं, जिनके शरीर की बनावट मे अन्तर है, जिनके गुणों में विभिन्नता है, जिनकी प्रकृति भिन्न दिशाओ में प्रस्फुटित होती है, उनको आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में, एकता के बन्धनो में बांध दिया है। इसमें दिखाया है कि दोनो मिलकर ही एक इकाई बनते हैं। अलग २ दोनो अधूरे है। शिव सर्वशक्तिमान हैं, परन्तु शक्ति के अभाव में वह

गतिहीन हैं। पार्वती ही उनकी गति है, शक्ति है। यही क्रियाशीलता उत्पन्न करती हैं। पुराण-कथाओं में भी समझाया गया है कि पुरुष स्वयं सृष्टि-रचना करने में असमर्थ थे। प्रकृति के सहयोग से ही वह अपने उद्देश्य में सफल हुए। प्रकृति से जब पुरुष का मिलन हुआ, तभी एक से अनेक होने की कल्पना पूर्ण हुई। उपनिषद्कार ने पुरुष और को दो धाराओं के रूप में स्वीकार किया है, जिनका मिलन ही शक्ति का सृजन करता है।

शिव और शक्ति की एकता के सूत्र—

एक विद्वान् के शब्दों में "सृजक और सृजनात्मक कारण के रूप में शिव और शक्ति का सम्बन्ध भारतीय कल्पना में अमिट है। उनका विचित्र परिवार जीवन की सामूहिक जीवधारी रचना का प्रतिनिधित्व करता है।"

शिव का शक्ति से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह शिव-तत्व के आध्यात्मिक विश्लेषण से विदित होता है। शिव का त्रिनेत्र शक्ति के रूप में प्रदर्शित किया गया गया है क्योंकि इससे वह सारे विश्व में काम-शक्ति को प्रवाहित करने वाले कामदेव को भस्म कर देते हैं। शिव के मस्तक पर शांति-स्तम्भ के रूप में अर्द्धचन्द्र की स्थापना की गई है, जो इस तथ्य का प्रतीक है कि उसकी शांति-गंगा में कभी ज्वार-भाटा नहीं आता, आवेश रूपी लहरें शिव रूपी समुद्र में कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकती।

शिव का त्रिशूल संहारक-शक्ति का प्रतीक है। वह त्रिगुणात्मक प्रकृति से मुक्त होने की स्वाभाविक प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। वृषभ और डमरू भी शिव की शक्ति के रूप हैं। वृषभ का अर्थ है—वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा। जो शक्ति सारे संसार में अपने महाप्राणों को बिखेरे हुए है, वही शिव है, जो शक्ति अपने महाप्राणों

द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का कारण बनती है, उसी को शिव कहते हैं, वही वृषभ वाहन है ।

शिव के गले मे सर्प लटके रहते हैं । सर्प तमोगुण का प्रतीक है । शिव तम को नियन्त्रण मे रखते हैं । सर्प सहारक शक्ति है, वह काल का प्रतीक है । काल किसी को नही छोडता पर शिव उससे मुक्त है । सर्प क्रोध का साक्षात् रूप है, परन्तु जिसके मस्तिष्क मे निरन्तर शाति-गगा का प्रवाह बना रहता है, वहाँ क्रोध शक्ति का क्या प्रभाव पड सकता है ? सर्प अमगल रूप है, शिव अपने मगल रूप से उस पर विजय का जयघोष करते हैं ।

भस्म नाश का चिन्ह है । इसे वह अपने शरीर पर लगाते हैं । मुण्ड मृतकावस्था का बोधक है । शिव इन्हें अपने आभूषण बनाते हैं । इस अवस्था पर उनका नियन्त्रण है, क्योकि वह सहार के देवता हैं । वह कालरूप हैं—काल-मृत्यु को अपने गले से लगाते हैं ।

पिनाक शिव का धनुष है । यह उनका शक्तिशाली अस्त्र है, जिससे वह युद्धो मे विजय प्राप्त करते हैं । शिव व्याघ्र चर्म ओढ रहते हैं—व्याघ्र शक्तिशाली पशु है । शिव काल और सहार के प्रतीक है । काल शक्तिशाली सम्राटो को भी नही छोडता, फिर व्याघ्र की क्या बिसात है ? यह भी शक्ति का प्रदर्शन है ।

इससे स्पष्ट है कि शिव-तत्व की सभी क्रियाएँ शक्ति पर आधारित हैं । शक्ति के बिना तो शिव—शव के समान हैं ।

शिव का विराट् व विश्व-व्यापी रूप प्रसिद्ध है । शिव योग-तत्व के प्रथम अविष्कारक व प्रचारक माने जाते हैं । आयुर्वेदिक औषधियो के जन्मदाता भी वही हैं, स्वरो के जनक भी वही हैं, पशु जगत के स्वामी हैं, तभी पशुपति नाम पडा । वे समस्त ब्रह्माड की शक्ति हैं ।

माडूक्योपनिषद् (७) में ऋषि ने शिव-तत्व का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है—"जो भीतर-बाहर प्रज्ञा वाला नही है, जो दोनो ओर

प्रज्ञा वाला भी नहीं, जो न जानने वाला है और न अज्ञान है, जो अदृष्ट, अव्यवहार्य और अग्राह्य है, जो लक्षणरहित एव प्रज्ञान घन है, जो न बतलाने मे आ सकता है और न चिंतन में, जो प्रपचरहित, कल्याणकारी, अद्वैत, सर्वथा शात है,उसे ब्रह्म का चतुर्थ चरण कहा गया है, वही शिव है, उसे जानना चाहिए।"

शक्ति का रूप भी शिव की तरह विश्वव्यापी है। वह सृजन और विनाश की शक्तियो की अधिष्ठात्री है। शिव महाकाल के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं, तो विनाश-शक्ति का प्रतिनिधित्व करने वह काली के रूप आती है। शिव सयम और तप की प्रतिमूर्ति हैं, जिमसे उत्थान की समस्त प्रक्रियाएँ सञ्चालित होती हैं, तो उमा शिव-प्राप्ति के लिए मृत्यु को गले लगाने को तत्पर होती है। वह श्रद्धा की सजीव मूर्ति है। पार्वती के रूप मे वह प्रेम और दया का आगार है। जब आसुरी शक्तियाँ अपना विस्तार करने लगती हैं, तो इमे सहन नही होना और दिव्य-शक्तियो के सगठित रूप में वह दुर्गा बनकर उनका विनाश करने के लिए अवतरित होती है। कुमार जैसे पुत्र को वह इसीलिए जन्म देती है, ताकि बढते हुए अनीश्वरवाद असुरवाद को रोके और उनके सठगन को ध्वस्त करे।

रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भवानी को श्रद्धा और शिव को विश्वास का प्रतीक माना है। विश्वास वह शक्ति है जिसके आधार पर सभी साधनाएँ सफल होती हैं। इसके अभाव में साधनाएँ लडखडाने लगती हैं। आत्म विश्वास एक ऐसी महान् शक्ति है जिसके बिना समार की सभी प्रगति रुकी रहती है। आगे बढने और तैयारी करने वाले से इसका सम्बन्ध आवश्यक है। शिव इसी महाशक्ति के प्रतीक हैं। कथा है कि राम ने लङ्का पर चढाई करने के पूर्व रामेश्वर मे शिवलिंग की स्थापना और शिव-उपासना की। इसका अभिप्राय यह है कि उन्होने अपने आत्म-विश्वास को जगाया, तभी वह इतना महान् कार्य सम्पादन करने के लिए आगे बढे।

राम ने स्वय इस तथ्य को स्वीकार किया है—

द्रष्टुमिच्छासि यद्रूप मदीय भावनास्पदम् ।
आह्लादिनी परा शक्ति स्तूया सात्वतसम्मताम् ।।
तदाराध्यास्तदारामस्तदधीनस्तया विना ।
तिष्ठामि ना क्षण शम्भो जीवन परम मम ।।

—अगस्त्य-सहिता

"श्रीराम जी ने कहा—हे शम्भो ! अगर मेरे भावनास्पद रूप को देखने को इच्छा करते हो, तो भक्तजन सम्मत मेरी आह्लादिनी परा-शक्ति की स्तुति करें। मैं उसी के सहित आराध्य हूं, उसी मे मुझे आराम ह, मैं उसी के आधीन हूं। उसके बिना मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता, क्योंकि वह मेरा परम जीवन है।"

शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार--

शिव और शक्ति एकत्व हैं, अभेद हैं। वे दो दिखाई देते हैं, वास्तव में वे एक हैं। जब वे एक-दूसरे से अलग होते हैं, तो विश्व की शक्तियों में असन्तुलन उत्पन्न हो जाता है। उदाहरण के लिए एक पुराण-घटना प्रसिद्ध है—जब सती दक्ष के यज्ञ मे जलकर भस्म हो गई, तो शिव पागल-स हो गए। उनकी उन्मत्त अवस्था का कारण शक्ति का शिव से अलग होना ही है। तारकासुर के नेतृत्व मे आसुरी शक्तियों ने सिर उठाया। एक वरदान के अनुसार वह केवल एक नवजात शिशु शक्ति से ही मारा जाना था। सती ने उमा (पार्वती) के रूप मे हिमालय के यहाँ जन्म लिया। वह शिव प्राप्ति के लिए तप करने लगी। घोर तप के कारण उसका शरीर केवल मात्र ढाँचा रह गया। देवताओं ने शिव की समाधि तोडकर उनके मन में काम-वासना उत्पन्न करने की योजना बनाई और इस कार्य के लिए कामदेव को नियुक्त किया। शिव ने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया। अन्त में शिव पार्वती की तपस्या से सन्तुष्ट हुए और विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का विवाह

एक्य हुआ। तभी स्कन्द को जन्म हुआ और तारकासुर का वध किया जा सका। इस तरह शिव सृष्टि के सर्वोपरि परित्राता के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। समुद्र-मन्थन की घटना भी इसका प्रमाण है। समुद्र-मन्थन का अभिप्राय विकास की सनातन प्रक्रिया से है। एक विद्वान् के शब्दो मे जैसे-जैसे समुद्र-मन्थन आगे बढा, अन्धकार की माँ—अराजकता ने क्षुब्ध होकर पाप और मृत्यु का मारभूत विष पृथ्वी पर फेंका। इस विष को यदि मुक्त रहने दिया जाता, तो वह सृष्टि का विनाश कर देता। तब शिव सृष्टि के परित्राण के लिए आये और उन्होंने उस विष को पी लिया ताकि सृष्टि की विकास योजना मे अन्तत अच्छाई ही, इष्ट की विजय हो।"

एक विद्वान् ने शिव और शक्ति के रूप को इस प्रकार व्यक्त किया है—

'शिव और शक्ति के सम्मिलित स्वरूप को 'चणक' नाम से अभिहित किया गया है। एक चणक में दो दाने हैं लेकिन वे एक-दूसरे के इतने करीब है कि एक मालूम पडते हैं और जो एक ही छिलके से घिरे हैं, यह दो दाने शिव और शक्ति हैं तथा छिलका माया है। इस सकेत को वैज्ञानिक शब्दो मे यो कहा जा सकता है कि शिव धनात्मक आवेश है और शक्ति ऋणात्मक। इन आवेशो से उत्पन्न बल-क्षेत्र ही माया का स्वरूप है, जो आवेशो को घेरता है। ध्यान रहे कि उपर्युक्त सकेत जगत् प्रपच के उद्भव की स्थिति का है।"

शक्ति शिव की सनातन साथी है। वह सृष्टि की आद्या रचना-शक्ति है। वह सृष्टि और सहार की दोनो प्रक्रियाओ को सम्पन्न करने की क्षमता रखती है। शिव की तरह उसके भी अनेकों रूप हैं। वह तप की साक्षात् प्रतिमा है। आदर्श पत्नी के रूप मे भी उसकी प्रसिद्धि हैं सभी मनोवाछित वर प्राप्त करने के लिए गौरी की उपासना की जाती हैं। जहां पार्वती के रूप में वह नारी के भौतिक रूप का प्रदर्शन करती

है, वहाँ दुर्गा के रूप मे योद्धा के रूप में शक्तिशाली आसुरी सगठनो को विनष्ट करती है। जिस तरह शिव मगलकारी और रौद्र दोनो रूप धारण करते हैं, उसी तरह दुर्गा के भी दोनो रूप हैं। हरिवश-पुराण के अनुसार वह अन्धकार और प्रकाश दोनो है। मधुर और भयकर दोनो रूप उसने धारण किए हैं। तभी तो शिव और शक्ति की एकता स्थापित हो सकी है, क्योंकि दोनो के गुण और क्रियायें एक जैसी हैं।

विश्व-नारी और विश्व-पुरुष का यह मिलन सदा से अमर रहा है। यह सृष्टि की स्वाभाविक प्रक्रिया है। युग-युगान्तर से भारतीय कल्पना और साहित्य इस तथ्य से प्रभावित है कि पुरुष और शक्ति का मिलन सृष्टि के लिए मगलकारी है।

इससे स्पष्ट है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामाया में अभेद है। जिस तरह अग्नि मे उसकी दाहिका-शक्ति का निवास रहता है, उसी तरह ब्रह्मशक्ति रहती है। जैसे शिव शक्ति के अभाव मे शव हो जाते हैं, उसी तरह ज्ञान के बिना ब्रह्म अज्ञानी, क्रिया शक्ति के बिना अकर्मण्य, और आनन्द के बिना निरानन्द हो जाएगा। अत शक्ति और ब्रह्म में एकरूपता और अनन्यता है। शक्ति के बिना ब्रह्म क्रियाहीन हो जाता है, तो पुरुष के बिना शक्ति का भी अस्तित्व नही है।

श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने इस सिद्धात को अपने शब्दो में यो व्यक्त किया है—

पुरुष और शक्ति दो अलग और भिन्न सत्ताएँ नही हैं, बल्कि अभिव्यक्ति के समय में दिव्य सत्ता की दो स्थितियाँ हैं।

इनमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। उच्च सत्य के स्तर पर सत्ता की एकता है। दिव्य सत्ता स्वामी है, जो उत्पादन का कारण और अधिपति है। उसकी चेतन-शक्ति, सर्वोच्च शक्ति वह कार्यवाहिका है, जो निज में सृष्टि के उद्देश्य के मूल सत्य को धारण किए अपनी इच्छा को सफल करती है वही अभिव्यक्ति कारिणी है। उसके बिना पुरुष अव्यक्त है। पुरुष के बिना शक्ति का अस्तित्व नही है।

एक मूल सत्ता ही अनेकानेक भिन्नताओं और रूपों में सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करती है। शक्ति और पुरुष के इस सम्बन्ध के चारों ओर समस्त लीला चलती है। शक्ति के द्वारा पुरुष में जो कुछ भी अवस्थित है, वह बहिर्भूत होता और यथार्थ बनाया जाता है। अतः यह समस्तरीय सृष्टि दिव्य पुरुष में से दिव्य शक्ति के द्वारा आविर्भूत हुई है। वह सृष्टि, उत्पत्ति के सत्य को अपनी लीला में धारण करती और पुरुष के संकल्प के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति को रूपायित करती है। वह सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर तथा सृष्टि की प्रत्येक इकाई में कार्यशील है।'

शिव और शक्ति में ऐक्य, अद्वैत और अभेद है, इनको अलग करना सम्भव नहीं है। शक्ति-उपासना का दार्शनिक आधार यह अद्वैतवाद ही है।

• • •

शक्ति का तात्विक विवेचन

शास्त्रो मे शक्ति की महिमा—

शास्त्रों मे शक्ति की महत्ता पर काफी प्रकाश डाला गया है। एक तान्त्रिक श्री उमानन्दनाथ ने पराशक्ति का वर्णन करते हुए लिखा है—"पराशक्ति वह शक्ति है, जिसके लिए लिए ससार का कोई भी भाग अदृष्ट नही है, कोई ऐसा नरेश नहीं, जो उसके नियन्त्रण में न हो, कोई ऐसा शास्त्र नही जो उसके ज्ञान मे न हो।"

योगिनी-तन्त्र में कहा है—

कारणावस्थयापन्ना सदाह धातृरूपिणी।
नाकार्यं मे हि यत् किंचित्सदाह ह्यक्षरा परा॥
कार्यभाव समापन्ना सदा प्रकृतिरूपिणी।
सदा ब्रह्मादय. सर्वे सर्वे सर्वेऽप्याविर्भन्ति हि॥

अर्थात् "कारणावस्था को प्राप्त होकर मैं सदा ब्रह्मा-रूप में रहती हूँ। यह सब कुछ दृष्टिगोचर होने वाला मेरा ही कार्य है। मैं सदैव ही अक्षररूपिणी परा-शक्ति हूँ। कार्यावस्थापन्न होकर मैं प्रकृति-रूपिणी हो जाती हूँ, उसी समय से ब्रह्मादि देव तथा अन्य सभी उत्पन्न होते हैं।"

आराधना करने के लाभो की चर्चा करते हुए दुर्गा सप्तशती मे कहा गया है—

आराधिता सैव नृणा योग स्वर्गापवर्गदा।

अर्थात् "उपासना करने पर वह साधको को योग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती है।"

शिव शक्ति के बिना शव बन जाते हैं। इसे वह स्वयं स्वीकार करते हैं—

ईश्वरऽहं महादेवि ! केवलं शक्ति योगतः ।
शक्ति विना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपकः ॥
शक्ति युक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामदः ।

अर्थात् "हे महादेवि पार्वती ! केवल शक्ति के योग से ही मैं ईश्वर हूँ। शक्ति के अभाव मे मैं शव-रूप हूँ। जब शक्ति से मिलता हूँ तभी सर्वकामप्रद कल्याणकारी शिव बनता हूँ।"

महर्षि आत्रेय ने अपनी महिमा में शक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम् ।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

—चरक संहिता, चिकित्सा स्थान अ० २

"प्रीति विशेष प्रकार से स्त्रियों में ही रहती है। सन्तान की जननी भी वही होती हैं। धर्म उनमे रहता है, इसलिए उन्हे धर्मपत्नी कहते हैं। अर्थ उनमें रहता है, इसलिए उनमे लक्ष्मी का निवास मानते हैं। वे शक्ति-रूप हैं, उनमें सारा विश्व प्रतिष्ठित है।"

ब्रह्मसूत्र मे कहा है—सर्वोपेता तद्दर्शनात् (द्वितीय अध्याय, प्रथम पाद) "वह पराशक्ति सर्वसामर्थ्य से युक्त है, क्योंकि यह प्रत्यक्ष देखा जाता है।"

ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य (१।४।३) में कहा है—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टृत्वं सिध्यति ।
शक्ति रहितस्य यस्य प्रवृत्त्यनुपपत्ते ॥

"उसके बिना ईश्वर सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकते क्योंकि वह शक्ति के बिना क्रियाशील नहीं हो सकते।"

भगवान शङ्कराचार्य ने भी कहा है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति साद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यया जगत्सर्वमिद प्रसूयते ।।

"ईश्वर की अव्यक्त नाम वाली शक्ति जिसने इस समस्त जगत् की सृष्टि की है, अनादि, अविद्या, त्रिगुणात्मिका और जगत् रूपी कार्य के परे हैं। कार्यरूपी जगत् को देखकर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।"

शक्ति के विभिन्न प्रकार—

शक्ति एक व्यापक तत्व है। विश्व की हर वस्तु मे चाहे वह जड हो या चेतन—देखा जा सकता है। जीवन के हर क्षेत्र मे इसी के चमत्कार दिखाई देते हैं। शारीरिक शक्ति की कौन उपेक्षा कर सकता है? जगत् के सभी कार्य इसी के माध्यम से होते हैं। इसी की कमी का नाम रोग है। जहाँ यह सतेज रहती है, वहाँ रोग के कीटाणु आक्रमण करने का साहस नही कर सकते। मानसिक शक्ति का भी हमारे जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी निर्बलता से ही चिन्ताएँ, शोक, पाप, ताप, सर उठाते हैं। बौद्धिक शक्ति का विकास मानव-जीवन का एक महत्वपूर्ण अङ्ग है। आज विज्ञान के क्षेत्र मे जितने आश्चर्य-जनक चमत्कार दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वह इसी महाशक्ति का परिणाम हैं। शाश्वत सुख-शाति के लिए आत्म-बल की अपेक्षा रहती है। सबसे ऊँचे शिखर पर स्थित परमात्म-बल है, जिसके स्पर्श मात्र से हर क्षेत्र मे शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। इस शक्ति का लाभ तभी उठाया जा सकता है, जब हमारी श्रद्धा-शक्ति विकसित हो चुकी हो। यह परमात्म-शक्ति के आवाहन की कुञ्जी है।

समाज-कल्याण के लिए, सामाजिक कुरीतियो, दोषों और कुप्रवृत्तियो के शमन के लिए सघ शक्ति की अपेक्षा रहती है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए भी उसी शक्ति को विकसित करना होता है। विश्व-

शाति की नींव मे भी यही काम करती है। भौतिक क्षेत्रो में तो इसको प्रत्यक्ष रूप मे देखा जा सकता है। विद्युत का उदाहरण लें—इस शक्ति से हजारो लाखो कल-कारखाने चल रहे हैं, जिनमे मानव-हित की अनेको वस्तुओ का निर्माण होता है। यह सैकडो और हजारो व्यक्तियो के श्रम को बचाती है। शक्ति के यह भिन्न भिन्न प्रकार हैं। तन्त्र के अनुसार शक्ति के विभिन्न प्रकार इस तरह वर्णित किए गए हैं—

शक्ति जब गौरी या लक्ष्मी का रूप धारण करती है, तो वह परमात्मा की सभी कामनाओ को पूरा करने की क्षमता वाली होती है। इसलिए इसे एक तरह की शक्ति कहते हैं। इच्छा और माया के भेद यह दो प्रकार की हो जाती है। दोनो प्रकार की शक्तियो में उत्पत्ति और विनाश, परा व अपरा का भी उदाहरण आता है।

तीन प्रकार की शक्तियो मे यह नाम आते हैं—१ सात्विक, राजसिक, तामसिक २ ज्ञान, इच्छा, क्रिया ३ आदित्य, अग्नि, वायु ४ ब्रह्मा, विष्णु, महेश ५ महासरस्वती,महालक्ष्मी, महाकाली ६ लक्ष्मी, सरस्वती, गायत्री ७ सफेद, लाल, काला वर्ण।

१३ वष से २५ वर्ष की युवतियो में जो प्रसूता न हुई हो, उनमे रूप, यौवन, शील, सौभाग्य चार प्रकार के भेद होते हैं।

पांच प्रकार की शक्तियो मे राधा, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती और सावित्री का नाम आता है।

भौतिक शक्तियो मे यह छ प्रकार की है—ताप, तडित, चुम्बक, महाकर्षण (Energy of Gravitation), आलोक और रासायनिक। तन्त्र मे षट्शक्ति के नाम इस प्रकार आते है—पराशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, कुण्डलिनी और मातृका शक्ति।

पृथ्वी, आकाश, भूचक्र-भ्रमण, दिशाएँ, जगदाधार, वायु और आकाश—ये सात प्रकार की शक्ति हुई।

अष्ट-सिद्धियाँ भी प्रसिद्ध ही हैं—ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, इन्द्राणी कौमारी, नारसिंही, वाराही और वैष्णवी यह आठ प्रकार की शक्तियाँ हुई । मातृकाएँ १६ प्रकार की होती हैं । पीठ ५१ माने जाते । ६४ योगनियाँ प्रसिद्ध हैं । १०० रूपों मे भी शक्ति का वर्णन किया गया है । प्राणी व पदार्थ भेद से तो यह 'अगणित' की सज्ञा को प्राप्त हो जाती है ।

अर्थ—

परब्रह्म तत्व को शक्ति की सज्ञा दी जाती है—'सर्वं खल्विद ब्रह्म', 'एक मेवाद्वितीय ब्रह्म' आदि श्रुति-वाक्यो मे जो एक ही चित्तत्व 'ब्रह्म' नाम से वर्णित किया गया है, उसी को चिदानन्दमयी शक्ति कहते हैं ।

शक्ति को दूसरे शब्दो में पावर (Power) एनर्जी (Energy), सामर्थ्य और योग्यता कहते हैं । ससार की किसी भी वस्तु को उसके गुण धर्म और विशेषता के कारण सम्मानित किया जाय या उसकी आवश्यकता को अनुभव किया जाय, उसके मूल मे शक्ति की विद्यमानता है ।

व्यवहारिक रूप में शक्ति का अर्थ बल ही है । परमार्थ मे अर्थ 'उपाधि' किया जाता है । 'उप' का अर्थ है पास में, और आ+धि का अर्थ है रखना । इसका अभिप्राय यह है कि वस्तुओ के गुण, कर्म, स्वभाव मे जिस गुण के कारण परिवर्तन होता है, वही शक्ति कहलाती है ।

देवी भागवत (६।२।१०) में शक्ति शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बताई है—

ऐश्वर्यवचन. शश्च क्ति पराक्रम एव च ।

तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्ति परिकीर्तिता ।।

"श नाम ऐश्वर्य का है और क्ति नाम पुरुषार्थ का है। ऐश्वर्य और पुरुषार्थ स्वरूप व दोनो के देने वाली 'शक्ति' कहलाती है।"

ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार—

समृद्धिबुद्धिसम्पत्तियशसा वचनो भग ।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपाच सा सदा ॥

"समृद्धि, वृद्धि, सम्पत्ति और यश—इन चार अर्थों का प्रकट करने वाला 'भग' यह शब्द होता है। इससे युक्त शक्ति भगवती है और वह स्वय सदा भग रूप वाली है।"

अमरकोश मे शक्ति के यह अर्थ बताए गये हैं—

कास्त्र सामर्थ्ययो शक्ति ।
शक्ति पराक्रम प्राण ।
षड् गुणाश्शक्तयस्तिस्त्र ।

इससे उपरोक्त अर्थों की पुष्टि होती है।

"शक्लृशक्तौ' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर शक्ति शब्द बनता है। जिस पदार्थ में जो गुण होता है अथवा ये उसमें कार्य उत्पन्न करने की जो योग्यता और क्षमता होती है,उस उस पदार्थ से अलग नही किया जा सकता जैसे अग्नि से उसको दाह-शक्ति को इसी को शक्ति कहते हैं।

मार्कण्डेय पुराण मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

यच्च किञ्चिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्ति. सा त्वम् ॥

सद् और असद् दोनो तरह की वस्तुओ मे जो सत्ता 'वत्तद्-वस्तुता' है, वही शक्ति है।

सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया जाता है—ब्रह्म का आदि-सकल्प 'एकोऽहं बहु स्याम्' अर्थात् एक हूं, बहुत हो जाऊं—यही माया-शक्ति है।

जो तत्व आदिभूत और प्रकाश-रूप है, वही शक्ति है। आदि-भूत से अभिप्राय यह है कि वह सबकी आदि है, उसका कोई आदि नहीं है। मार्कण्डेय-पुराण मे कहा भी है—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥

"समस्त दृश्य प्रपञ्चो को व्याप्त करके स्थित, व्यक्त और अव्यक्त दोनो रूपो वाली, त्रिगुणो से युक्त परमेश्वरी महालक्ष्मी सबकी आदि-भूता है।"

प्रकाशरूपा का यह अर्थ है कि वह सबको प्रकाशित करती है, वह किसी से प्रकाशित नही होती। कहा भी है—

प्रकाशरूपा प्रथमे प्रयाणे अमृतरूपिणी इति, अत.।
सा एव सर्वाराध्या स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुरिति ॥

अर्थात् "श्रुति मे 'सर्वाराध्या' पद यह दिखलाया गया है कि सभी देवता और असुरो द्वारा वह आराधना करने योग्य है।"

व्याख्या—

स्वामी शिवानन्द ने 'शक्ति' की व्याख्या इस प्रकार से की है—

"शक्ति का आशय उस सत्ता से है, जो समस्त सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और लय का मूल है, वास्तव में जैसा सामान्यत माना जा रहा है, देवी-पूजा यह कोई सम्प्रदाय अथवा किसी तरह के 'तान्त्रिक-चक्र' का गुप्त भेद नही है अथवा, जैसा जन-साधारण का विश्वास है। यह देवी विष्णु या शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में भी नही है। देवी अथवा शक्ति का उल्लेख हम सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान चराचर जगत् की उत्पत्ति के कारण रूप मे ही करते हैं। दूसरे शब्दो मे कहे तो जगत की उत्पत्ति का मूल कारण अक्षर-ब्रह्म का व्यक्त स्वरूप यह 'शक्ति' ही है, परमात्मा इसी दिखाई पडने वाली शक्ति के द्वारा जगत् की उत्पत्ति,

स्थिति करता है, शक्ति के द्वारा ही संरक्षण, संहार और इसके द्वारा ही लय करता है। शक्तिमान एक ही है। सत्ता और सत्ता के मूल को पृथक् नहीं किया जा सकता।"

इसीलिए शक्ति-पूजा का अर्थ प्रभु की महिमा और प्रभुत्व तथा सर्वोपरि होने की पूजा है, वह सर्वशक्तिमान की आनन्दमय सेवा है। यह बड़े खेद की बात है कि कितने ही लोग देवी को 'खून की प्यासी हिन्दू देवी' के नाम से याद करते हैं। देवी केवल हिन्दुओं की जायदाद नहीं है—'देवी' किसी एक विशेष धर्म से सम्बन्धित भी नहीं है। इतना ही नहीं, देवी और देव की भिन्नता लिंग-भेद पर भी आधारित नहीं है, हमको यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि देव की प्रत्यक्ष शक्ति ही देवी कही जाती है। 'देवी' 'शक्ति' और दूसरे कितने ही नाम और उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप तो मनुष्य के संकुचित ज्ञान के परिणामस्वरूप निर्दिष्ट किए गए हैं। उस शक्ति की कोई व्याख्या अन्तिम नहीं कही जा सकती, मूल शक्ति तो मनुष्य की बुद्धि से परे (अगम्य) है।

सच्ची बात तो यह है कि समग्र जगत् किसी प्रकार शक्ति का ही उपासक है, क्योंकि संसार में एक भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो किसी-न-किसी तरह की शक्ति की अभिलाषा न रखता हो। भौतिक शास्त्र और विज्ञान के उपासकों ने भी यही सिद्ध किया है कि जगत् में सब कुछ अनन्त क्रियात्मक है, इस क्रिया-शक्ति को प्रतिक्षण स्थिर रखने वाली देवी 'शक्ति' वाली एक स्वरूप है।

वैज्ञानिक अर्थ—

शक्ति का वैज्ञानिक अर्थ भी है। विज्ञान, परमाणु की परिभाषा इस प्रकार करता है कि पदार्थ को, जिस सीमा के आगे विभाजित न किया जा सके, उसे परमाणु कहते हैं। शक्तिवाद का सिद्धांत एक पग आगे जाकर कहता है कि परमाणु विभिन्न प्रकार की शक्तियों का केन्द्र है। जिस तरह सूर्य के चारों ओर उसके ग्रह-उपग्रह चक्कर काटते रहते

हैं और वह एक सौर-मण्डल कहलाता है, उसी तरह परमाणु भी शक्तियों का केन्द्र है। साधारणत. यह धारणा है कि परमाणु का धर्म शक्ति है—यह ठीक नहीं है, न ही प्रकृति, शक्ति से कोई अलग पदार्थ है। यह दोनों एक हैं। शक्ति से भिन्न विश्व मे कोई पदार्थ है ही नहीं।

तान्त्रिक दृष्टि मे शिव को प्रकाश और विमर्श को ही शक्ति कहते हैं।

शक्ति का पर्याय—प्रकृति—

गीता में शक्ति को माया (४।६),योग (६।५) और प्रकृति आदि नामों से अभिहित किया गया है।

भगवान की स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति जीवभूता, परा-प्रकृति आदि शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।

प्रकृति इसका पर्यायवाची शब्द है, उसका अर्थ करते हुए देवी-भागवत ६।१।५-८ मे कहा गया है—'प्र' का अभिप्राय प्रकृष्ट (उत्कृष्ट) और 'कृति का अर्थ है सृष्टि। अत जगत् की उत्पत्ति मे उत्कृष्ट को प्रकृति कहा है।

ब्रह्मवैवर्त-पुराण २।१।५ इसी प्रकार प्रकृति शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

प्रकृष्टवाचक प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचक।
सृष्टौ प्रकृष्टा या प्रकृति सा प्रकीर्तिता॥

"'प्र' का अर्थ प्रकृष्ट है और 'कृति' सृष्टिवाचक है। सृष्टि-कार्य में जिसकी प्रकृष्टता (उत्कृष्टता) है, उस देवी को प्रकृति कहा जाता है।"

यह प्रकृति का तटस्थ लक्षण है। 'प्र शब्द प्रकृष्ट सत्वगुण मे वर्तता है, 'कृ' शब्द' मध्यम रजोगुण में और 'ति' शब्द तमोगुण में

वर्तता है। यह प्रकृति का स्वरूप-लक्षण है, जैसा कि सांख्य-शास्त्र में कहा है—

सत्वरजस्तमसा साम्यावस्था प्रकृतिः ।

इन तीन गुणों से ही तीन देवताओं की—सत्वगुण से विष्णु की, रजोगुण से ब्रह्मा की और तमोगुण से रुद्र की उत्पत्ति करके भगवती जगत् का पालन, उत्पत्ति और लय करती हैं।

प्रधानिक रहस्य में भी लिखा है—

स्वरया सह सम्भूय विरञ्चोऽण्डमजोगनत् ।
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।
सञ्जहार जगत सव सह गौर्या महेश्वर ॥

"ब्रह्मा, विष्णु और महेश अपने अर्धाङ्गीभूत त्रिविध शक्ति—सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी के सहयोग से जगत् का जनन, पालन और लय करते हैं।"

अह प्रकृति रीशानी सर्वेशा सवरूपिणी ।
सवशक्ति स्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत ॥

"प्रकृति ने कहा—मैं ईशानी प्रकृति हूं जो कि सबकी स्वामिनी और सर्वरूपिणी हूं। समस्त शक्तियों के स्वरूप वाली हूं और मेरे द्वारा ही यह सारा जगत् शक्ति वाला है।"

इसी पुराण मे एक और स्थान पर प्रकृति को जगज्जननी कहा गया है—

जगन्माता च प्रकृति ।

इसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—

प्रधानाशस्वरूपा च प्रकृतेश्च वसुन्धरा ।
आधार रूपा सर्वेषा सर्वशस्यप्रसूतिका ॥
रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकरालया ।
प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा ॥

सर्वोपजीव्यरूपा च सवसम्पद्विधायिनी ।
यया विना जगत्सर्व निराधार चराचरम् ॥

अर्थात् "यह वसुन्धरा प्रकृति की प्रधान अंश स्वरूप वाली है। सबकी आधार रूप वाली है तथा सम्पूर्ण शस्यों को सम्पन्न करती है। रत्नों की खान और अपने मध्य में बहुत-से रत्न रखने वाली। सभी प्रकार के रत्नों की खान का घर है। इसकी सब प्रजा और के स्वामियों द्वारा सदा वन्दना एवं अर्चना की गई है। यह सभी प्राणियों की उप-जीव्य रूप वाली होती है। इसके बिना यह सम्पूर्ण जगत् निराधार है, चाहे वह चर हो या अचर (स्थावर) हो।"

गीता में भी कहा है—

मयाध्यक्षेण प्रकृति सूयते सचराचरम् ।

अर्थात् "मुझ अध्यक्ष के द्वारा ही यह प्रकृति इस चराचर जगत् को प्रसूत किया करती है।"

गीता (६।८) मे कहा गया है—

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुन पुन ।

अर्थात् 'मैं अपनी प्रकृति को अवष्टम्भ करके ही बार-बार विसृष्ट किया करता हूं।"

गीता (४।६) में इसे माया कहा गया है—

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ।

"अपनी ही प्रकृति में अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूं।"

गीता (६।५) में इसे 'योग' कहा है—

पश्य मे योगमैश्वरम् ।

"देखो, यह कैसी मेरी ईश्वरीय करनी या योग-सामर्थ्य है।"

प्रकृति शब्द के तीन अक्षर प्र, कृ, ति क्रमश सत्, रज और त

के प्रतीक हैं। देवी-भागवत में इसकी पुष्टि करते हुए कहा गया है कि 'प्र' सत्वगुण का, 'कृ' रजोगुण का और 'ति' तमोगुण का द्योतक है। यह सत्, रज और तम क्रमश ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक हैं।

प्रकृति के यह तीन गुण 'परमा शक्ति' के तीन देवता माने गये हैं—

निर्गुणा या सदा नित्या व्यापकाऽविकृता शिवा।
योगगम्याऽखिलाधारा तुरीया य च संस्थिता॥
तस्यास्तु सात्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मी सरस्वती महाकालीति च स्त्रियः॥
तासां तिसृणां शक्तीनां देहांगीकारलक्षणात्।

"वह परमा शक्ति निर्गुण, सदा नित्य, व्यापक, विकार रहित, योगगम्य और सारे विश्व का आधार है। व्यक्त होने पर वह सत, रज, तम—तीन तरह की हो जाती है, जिन्हें महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली तीन स्त्रीवाचक नाम दिए गए। इनके तीन पुरुष शरीरधारी देवता हैं—विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र जो सात्विक, राजसिक और तामसिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।"

इस परमा शक्ति को परमात्मा की मूल प्रकृति कहा जाता है। परमात्मा सर्वशक्तिमान नियामक, नित्य, सनातन, निराकार, निर्विकार, निर्गुण, अचिन्त्य, अव्यक्त व अचल है। परमात्मा की मूल प्रकृति परमा शक्ति में भी इन गुणों का होना स्वाभाविक है। अन्तर केवल इतना है कि परमात्मा विकाररहित है, तो शक्ति विकारों की जननी है। शक्ति स्वयं सत्य नित्य है, परन्तु अनित्य पदार्थों की सृष्टि करती है।

प्रपञ्चसार-तन्त्र में प्रकृति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

प्रकृति निश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवात्मिका कुण्डलिनी शक्ति।

अर्थात् "प्रकृति अटल, परा-वाणी के रूप वाली पर-प्रणव के स्वरूप वाली कुण्डलिनी शक्ति है।"

अत्र मच्छब्देन स्वसंवेद्यस्वरूपा संयुक्ता परा प्रकृति गृह्यते ।

अर्थात् "यहाँ मच्छब्द से स्व संवेद्य स्वरूप वाली है अर्थात् स्वयं ही उसके स्वरूप का ज्ञान किया जा सकता है। वह परा-प्रकृति कही हुई ग्रहण की जाती है।"

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।

अर्थात् "यहाँ पर प्रकृति पर उपलक्षित होने वाली परा कही गयी है।"

प्रकृति की सांख्य सम्मत व्याख्या--

सांख्य शास्त्र के अनुसार जगत् के सब पदार्थों का जो मूल द्रव्य है, उसे प्रकृति कहते हैं। सत, रज व तम—यह तीन गुण मूल द्रव्य में आरम्भ से ही रहा करते हैं, इसलिए इन तीन गुणों को ही प्रकृति कहा गया है।

प्रकृति को ही 'परमाशक्ति' कहा गया है—

प्रकृतौ विद्यमानाया विकृतिर्न बलीयसी ।
प्रकृतिः परमा शक्तिर्विकृतिप्रतिबिम्बता ॥

"जब तक प्रकृति विद्यमान रहती है, तब तक विकृति शक्तिशाली नहीं हो सकती। प्रकृति ही परमा शक्ति है और विकृति ही उसकी छाया।"

स च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी ।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाऽग्नौ दाहिका स्थिता ॥

"और वह ब्रह्म के स्वरूप वाली, नित्य और सनातनी (सदा से चली आने वाली) है। जिस प्रकार आत्मा है, वैसे ही शक्ति है, जो अग्नि में दाह करने वाली जिस प्रकार स्थित रहा करती है।"

सांख्य के अनुसार सत् रज-तम्—मूल प्रकृति के तीन गुण हैं, जो कभी साम्यावस्था मे रहते हैं और कभी विषम अवस्था में। जब

यह गुण साम्यावस्था में होते हैं, उस समय को 'प्रलय' कहा जाता है। मूल प्रकृति और पुरुष के अतिरिक्त और कोई नहीं होता। फिर जब प्रकृति में संयोग होता है, तो तीनों गुणों में न्यूनाधिकता होने लगती है और सर्वप्रथम सत्वगुण की प्रधानता से महत्तत्व अथवा बुद्धि तत्व की उत्पत्ति होती है। जब अहङ्कार में तमोगुण की प्रबलता होने लगती है, तो शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन सूक्ष्म 'तन्मात्राओं' की उत्पत्ति होती है। जब तम की अधिकता बढ़ती है, तब इन सूक्ष्म तन्मात्राओं से पाँच स्थूल भूतों अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। इन्हीं पाँच महाभूतों के मिलने और तीनों गुणों की न्यूनाधिकता के फलस्वरूप बाद में भाँति-भाँति की स्थावर जंगम सृष्टि प्रकट होती है।

प्रकृति के विभिन्न रूप—

प्रकृति दो प्रकार की होती है—परा और अपरा। इन दोनों से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं—

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।

—गीता ७।६

प्रकृति के आठ प्रकार बताए गए हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार।

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च।
अह।ार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

—गीता ७।४

इसे अपरा प्रकृति कहते हैं और यह गीता (७।५) के अनुसार निम्न श्रेणी की है। परा उच्च श्रेणी की मानी गई है।

अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्॥

परा प्रकृति—

परा प्रकृति के सम्बन्ध मे शारदा-तिलक तन्त्र में कहा है--

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशदर्णैः क्रमाद् ।
व्याप्तं येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत् ।।
शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतम् ।
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महः ।।

"नित्य ही आनन्द-स्वरूप से युक्त निरन्तर गलत् पचास वर्ण वाला क्रम से है, जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण चर और अचर शब्दार्थ रूप वाला जगत् व्याप्त है। सुकृतीगण, जिसको शब्द-ब्रह्म कहते हैं, यह चैतन्य अन्तर्गत है, वह वाणियो का अधीश चन्द्र के सदन वाला महः अर्थात् तेज आपकी सर्वदा रक्षा करे।"

परा का स्पष्टीकरण मुण्डकोपनिषद् में किया गया है। महर्षि अङ्गिरा के पास शौनक मुनि ने आकर प्रश्न किया—'भगवन्! किसके जान लेने पर यह सब जाना हुआ होता है? इतना ही मुझे बताइए' (१।१।३)। महर्षि अङ्गिरा ने उनसे कहा कि 'ब्रह्मज्ञानी दो विद्याओं को ही जानने योग्य बताते हैं, उनमे एक परा और दूसरी अपरा कही गई हैं' (१।१।४)। अगले श्लोक में परा की व्याख्या की है—

परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (१।१।५)

"जिसके द्वारा अविनाशी परमेश्वर तत्व पूर्वक जाना जाता है, उसे परा-विद्या कहते हैं।"

इस पर श्री शंकराचार्य की व्याख्या इस प्रकार है—

पराविद्यागम्यम् असाध्यसाधनलक्षणम्, अप्राणमनोगोचरम् अतीन्द्रिया विषयं शिवं शान्तम् अविकृतमक्षरं सत्यं पुरुषाख्यम्।

"परा विद्या के द्वारा जानने के योग्य असाध्य साधन के स्वरूप वाला, प्राण तथा मन गोचर (प्रत्यक्ष) न होने वाला, इन्द्रियों के द्वारा

न जान। जानने वाला तथा इन्द्रियो का अविषय, शिव-कल्याण तथा मङ्गल स्वरूप, परम शान्त, विकार से रहित, अक्षर(अविनाशी), सत्य और पुरुष नाम वाला है।"

श्री ज्ञानेश्वर ने अपनी 'भावार्थ दीपिका' मे कहा कि हम लोगो की दृष्टि में यह श्रेष्ठ भक्ति है, शैवो की दृष्टि में 'शक्ति' और ज्ञानियो की दृष्टि में 'स्वसंवित्ती' है।

व्यास ने इसे 'सनातन धर्म' कहा है—

सत्य दान तप शौच सन्तोषो ही क्षमार्जवम्।
ज्ञान शमो दया ध्यानमेषो धर्म सनातन ॥

"सत्य, दान, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, ऋजुता (सरलता), ज्ञान, शम, दया और ध्यान—यही सनातन धर्म का स्वरूप है।"

गीता ७।५ में परा को जगत् को धारण करने वाली उच्च श्रेणी की जीवन स्वरूपी प्रकृति कहा है। गीता १४।२७ में इसे 'शाश्वत धर्म' की संज्ञा दी गई। गीता १५।३ में इसे 'दैवी सम्पत्ति' घोषित किया गया है। गीता के अनुसार—

राजविद्या राजगुह्य पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगम धर्म्य सुसुख कर्तुमव्ययम् ॥

"यह ज्ञान सब गुह्यो में राजा अर्थात् श्रेष्ठ है। यह समस्त विद्याओ मे श्रेष्ठ, पवित्र, उत्तम और प्रत्यक्ष बोध देने वाला है। यह आचरण करने मे सुखदायक, अव्यय और धर्म्य है।"

अपरा प्रकृति—

गीता ७।४ में अपरा प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

भूमिरापोऽनिलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च।
अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥

"पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—यह पाँच महाभूत मन, बुद्धि और अहङ्कार—इन आठ प्रकारो मे मेरी प्रकृति विभाजित है।"

भगवान ने इसे अपरा कहकर निम्न श्रेणी की कहा है। इससे भिन्न को उन्होने परा कहा है—

अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्योतिषमिति ।

"अपरा विद्या में चारो वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष सभी आते हैं।"

मुण्डकोपनिषद् (१।१।५) मे अपरा की परिभाषा करते हुए कहा है—

अपराविद्यागोचर संसार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

श्री शकराचार्य ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है ।

अपराविद्यागोचर संसार व्याकृतविषय साध्यसाधनलक्षण अनित्यम् ।

"यह ससार अपरा विद्या के द्वारा जाना जाता है—व्याहृत विषयो वाला है और साध्य एव साधन के स्वरूप वाला तथा अनित्य है।"

साख्यकार के अनुसार अपरा की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है—

प्रकृति के आठ विभाग माने गये हैं और उसमे से सोलह विकारो की (विकृति) उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियाँ ये हैं—

१ मूल प्रकृति, २ महत्तत्व (बुद्धि), ३ अहङ्कार, ४. शब्द, ५ स्पर्श, ६ रूप, ७ रस, ८ गन्ध। शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। साख्य प्रकृति उसको कहते हैं, जिससे आगे चलकर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो। इसीलिए बुद्धि और अहङ्कार के साथ तन्मात्राओं को भी प्रकृति माना गया है, क्योंकि उनसे ही सोलह विकृतियो की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार हैं—

पाँच स्थूल भूत—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। पाँच

ज्ञानेन्द्रियां—श्रोत्र, त्वचा, नत्र, रसना और घ्राण। पांच कर्मेन्द्रियां—वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ और गुदा, ग्यारहवां मन कहा गया है।

यह पांच स्थूल भूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियां प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्व की उत्पत्ति नहीं होती, इसलिए इन्हें विकृति कहा गया है। यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राओं से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है, तो उसे सूक्ष्म और निमल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होता है। जब इन पांचों के भी मूल उद्गम की खोज की जाती है, तो 'अहवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। 'अहङ्कार' से भी ऊपर उठ कर विचार करने से 'महत्तत्त्व' अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नहीं चलता, तो अनुमान द्वारा 'महत्तत्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है, जो कि अनादि है। इस प्रकार महर्षि कपिल ने जडतत्व के जो चौबीस विभाग बतलाए गए हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नहीं किए गये हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणों—सत् रज, तम् की न्यूनाधिकता के कारण जगत् के विभिन्न तत्वों तथा नाम-रूपों में प्रकट होकर विश्व-रचना करती रहती है।

परा और अपरा के विभिन्न पर्याय—

इस परा और अपरा शक्ति को चिच्छक्ति और जडा भी कहा जाता है। 'चिच्छक्ति' का 'अजडा' नाम भी है। गीता १५।१६ में इनकी 'अक्षर' और 'क्षर' संज्ञा भी दी गई है—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षर सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥

"इस लोक में क्षर और अक्षर दो पुरुष हैं। नष्ट होने वाले भूतों को क्षर कहा जाता है और इनके मूल में निवास करने वाले अव्यय तत्त्व कूटस्थ को अक्षर।"

साख्य दशन में अव्यक्त प्रकृति को अक्षर और प्रकृति से होने होने वाले पदार्थों को क्षर कहा है।

परमाशक्ति के इन दो अङ्गो को 'क्षेत्र' और क्षेत्रज्ञ' कहा गया है। गीता १३।२६ में कहा है—

यावत्सञ्जायते किंचित्सत्व स्थावरजगमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ।।

"हे भरत श्रेष्ठ! याद रखो, कि स्थावर या जगम किसी भी वस्तु की रचना क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के सहयोग से होती है।"

क्षेत्र का अर्थ है—शरीर, और क्षेत्रज्ञ का अर्थ है—आत्मा। तिलक की भाषा मे "मानसिक और शारीरिक सब द्रव्यो और गुणो का प्राणरूपी विशिष्ट चेतनायुक्त जो समुदाय है, उसी को क्षेत्र कहते है और उस शरीर का स्वामी क्षेत्रज्ञ है।

इस तरह से 'जडा' और 'अजडा', 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ', 'क्षर' और 'अक्षर', 'अपरा' और 'परा' प्रकृति उस परमाशक्ति के व्यक्त रूप हैं, जिससे सृष्टि की रचना हुई है। इससे स्पष्ट है कि यह शक्ति-तत्व चेतन-अचेतन दोनो है।

प्रकृति और माया—

साख्य-शास्त्र की त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही गीता में माया कहा है। इससे मोक्ष की आशा नही की जा सकती। भगवान ने इसे गुणात्मक और दिव्य माया को दुस्तर कहा है—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

—गीता ७।१४

अगले श्लोक में कहा है—

नमा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमा ।
मायायापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ।।

—गीता ७।१५

"माया ने जिनका ज्ञान नष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि में पडकर मेरी शरण मे नही आते।"

१५वें अध्याय मे अश्वत्थ वृक्ष का उदाहरण देकर भगवान ने समझाया है कि उसकी जड ऊपर है और शाखाएँ नीचे हैं। इसे ब्रह्म-वृक्ष और ससार वृक्ष भी कहा जाता है। अनुगीता मे इसे 'ब्रह्मारण्य-ब्रह्मवन' कहा गया है। वेदान्त दर्शन इसे 'भगवान की माया का पसारा' और साख्य-दर्शन 'प्रकृति का विस्तार' कहता है। विष्णु सहस्रनाम मे इसे 'वारुणी वृक्ष' कहा है। इसकी व्याख्या करते हुए भगवान कहते हैं—

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य गुणप्रवृद्धा विषयप्रवाला ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ।।

—गीता १५।२

"नीचे और ऊपर भी उसकी शाखाओ का विस्तार है कि जिनका सत्, रज, तम तीन गुणो से पालन होता है और जिनसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध रूपी विषयो के अकुर फूटे हुए हैं। अन्त में कर्म का रूप पाने वाली उसकी जड नीचे मनुष्य लोक मे बढती गहरी चली गई हैं।"

इस गहरी जडों वाले अश्वत्थ वृक्ष को काटने का उपाय भी भगवान ने बताया है और वह है—अनासक्ति योग। इसकी सुदृढ तलवार से ही उस गहरी जडो वाले ससार-वृक्ष को काटने का परामर्श दिया है (१५।३)।

शक्ति-तत्व—

देवी-भागवत में सावित्री के पूछने पर यमराज ने शक्ति-तत्व को समझाते हुए कहा—

'वे भगवती सर्वात्मा है, उन्ही को सबका ईश्वर और कारणो का भी कारण समझो, वही सबकी आदि और सबका परिपालन करने

वाली हैं। वे नित्यरूपी, नित्यानन्द, प्राकृतिरहित, निरकुश, निर्गुण, निराश्रय तथा प्राशङ्कारहित हैं। वे ही निर्लिप्त, सबकी सवसाक्षी सबकी प्राधार, परात्पर, मायाविशिष्ट, मूलप्रकृति तथा सभी विकारों की उत्पत्ति करने वाली हैं। परमात्मा ही प्रकृति से मिलकर प्रकृति कहलाने लगते हैं। प्रकृति ही 'शक्ति' महामाया और सच्चिदानन्द नाम धारण करती है, वे रूपरहित होकर भी भक्तों पर अनुग्रह करने के हेतु विभिन्न रूपों को धारण करती हैं।"

'उन्होंने ही पूर्व समय में गोपाल सुन्दरी (श्रीकृष्ण) का अत्यन्त मनोहर रूप धारण किया था। भक्ति में तन्मय भक्तजन भगवान के इसी रूप का ध्यान करते है। सबके स्वामी श्रीकृष्ण के शासन को मानकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। उन्ही के शासन मे स्थित कालाग्नि रुद्र सब संहारकारी होते हैं। उन्ही के ज्ञान से युक्त होकर मृत्युञ्जय शिव योगेश्वर, प्रभु, परमानन्दयुक्त एव भक्ति-वैराग्य से युक्त होते हैं, उन्ही के भय से पवन चलता है और सूर्य तपते है, इन्द्र वर्षा करते, मृत्यु प्राणियों को मारती, अग्निदेव दाघ करते और वरुण सबको शीतल करते हैं। प्राकृतिक प्रलयकाल मे देवतादि युक्त सम्पूर्ण चराचर विश्व, धाता और विधाता भी इन्ही श्रीकृष्ण के नाभिकमल मे लीन हो जाते हैं। क्षीरशायी एव वैकुण्ठ मे निवास करने वाले विष्णु इनके वाम-पार्श्व मे विलीन होते हैं। ज्ञानाधीश शिवजी उनके ज्ञान मे लीन होते हैं तथा सभी शक्तियाँ विष्णु माया दुर्गा में समा जाती हैं। वे विष्णुमाया-दुर्गा भी बुद्धि की अधिष्ठात्री होने के कारण श्रीकृष्ण की बुद्धि मे लीन हो जाती हैं। इस प्रकार परमात्मा के पलक झँपने पर प्रलय और जाग्रत होने पर सृष्टि का पुनराविर्भाव होता है, वे भगवान श्रीकृष्ण प्रलय-काल मे अपनी प्रकृति से मिलकर एकाकार हो जाते हैं। तब एक परा-शक्ति ही शेष रहती है। ऐसे विशिष्ट गुणों वाली उन देवी का गुण-कीर्तन करने में कौन समर्थ हो सकता है।"

जिन पाठकों ने सृष्टि-तत्त्व और देव-तत्त्व पर अच्छी तरह विचार

नहीं किया है, उनको यह वर्णन शायद कुछ अटपटा-सा जान पड़े, पर इसका आशय यही है कि भगवान के स्वरूप को निराकार अथवा साकार मानकर कैसा भी वर्णन क्यों न किया जाय, चाहे उसका राधा-कृष्ण के रूप में शृङ्गारमय वर्णन किया जाय, पर संसार और सत्य-धर्म का मूल सदा एक ही है और एक ही रहेगा। जब-जब सृष्टि होती है, वह अनेक नाम और रूपों में प्रकट हो जाता है, पर अन्त में फिर सब एक ही तत्व में समा जाता है। यदि उसे 'परा-शक्ति' या 'महाशक्ति' कहा है, तो ठीक ही है। उसके विष्णु, शिव या कृष्ण आदि नाम साम्प्रदायिक दृष्टि से रख लिए गये हैं, पर सबका मूल तात्पर्य एक ही है।

• • •

शक्ति का स्वरूप

देवी के स्वरूप का जो वर्णन 'देवी-भागवत' या अन्य पौराणिक अथवा तन्त्रशास्त्र के ग्रन्थो मे पाया जाता है, वह बड़ा अद्भुत है। उसमें कहीं तो उसका स्वरूप ऐसा वीभत्स जान पड़ता है कि उसे पढ़कर एक सामान्य व्यक्ति भयभीत हो सकता है। एक जगह काली देवी का ध्यान करने के लिए उसका वर्णन इस प्रकार किया है—

मेघागी शशिशेखरा त्रिनयना रक्तावर विभ्रती।
पाणिभ्यामभय वरं च विकमदरक्तारविन्दस्थिताम्॥
नृत्यन्त पुरतो निपीय मधुर मव्वीकमद्य महा—
काल वीक्ष्य प्रकाशितानन परामाद्या भजे कालिकाम॥

"जिसका वर्ण मेघ के समान श्यामल है, ललाट में चन्द्रलेखा प्रकाशमान है, जिसके तीन नेत्र हैं, शरीर पर रक्त-वस्त्र धारण किये हैं, जिसके दोनो हाथों में वर और अभय है, जो खिले हुए लाल कमल के ऊपर खड़ी है, जिसके सम्मुख पुष्पो का मधुर रस (मद्य) पीकर महाकाल नृत्य कर रहा है और उसकी ऐसी अवस्था देखकर देवी हँस रही है। उसी आदिशक्ति कालिका का मैं भजन करता हूँ।"

उनके इस स्वरूप की विशेष व्याख्या करते हुए 'कालीध्यान' में कहा गया है—

"कालिका देवी का मुख भयंकर और दर्शनीय है, चार भुजाये हैं, सिर के बाल छूटे और बिखरे हुए हैं, मुण्ड माला धारण करने से

अत्यन्त शोभा पा रही है, उसके दोनों बाये हाथों में तुरन्त के काटे दो मस्तक हैं, वे ही उसके खड्ग रूप हैं। दायीं तरफ के दो हाथों मे अभय और वरदान हैं। यह देवी प्रचण्ड मेघ के समान श्याम रंग की और दिगम्बर है। कण्ठ में पड़ी हुई मुण्ड-माला से गिरते हुए रक्त से उसका समस्त शरीर सना हुआ है। उसके मुख और दाढ़ अत्यन्त भयंकर जान पड़ते हैं और बड़े स्तन हैं। दोनों कानों में नर-कपालों के आभूषण धारण करने से उसकी शोभा बढ़ गई है। उसका मुख हास्ययुक्त है और मुख से गिरती हुई रक्त-धारा के कारण मुख-कमल कम्पायमान होता जान पड़ता है। उसकी ध्वनि घोर मेघ गर्जना के समान महा-भयंकर है। वह श्मशान में निवास करने वाली है। उसके तीनों नेत्र सूर्य के समान तेजस्वी, दांत बड़े बड़े और केश लम्बे हैं। वह शिव रूपी महादेव के हृदय पर पैर रखकर खड़ी है। महाकाल के साथ विलक्षण क्रीडा करने में वह निमग्न है। कामदेव के समान प्रफुल्लित और प्रसन्न मुख है। वह मनोरथ के सिद्ध करने वाली है। इस प्रकार देवी कालिका का ध्यान करना चाहिए।"

केवल शब्दार्थ पर ध्यान देने से तो यह वर्णन बड़ा बीभत्स जान पड़ता है, पर जब इसके गूढ़ अर्थ पर विचार किया जाता है, तो इसमें अनेक ज्ञान के तथ्य समाविष्ट प्रतीत होते हैं। एक 'देवी-भक्त' ने इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

'जिस तरह श्वेत, पीत आदि सब रंग काले रंग में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार समस्त भूतों (पंच तत्वों) का विलीनीकरण प्रकृति में हो जाता है। इसीलिए योगीजनों की उपास्य, निर्गुण, निराकार, परा-शक्ति कृष्ण वर्ण की वर्णन की गई है। अविनाशी काल स्वरूप, अव्यय महाकाली के ललाट में जो चन्द्रकला का चिह्न बतलाया गया है, उसका आशय यही है कि वह चन्द्र, सूर्य और अग्निरूपी नेत्रों से समस्त जगत का निरीक्षण कर रही है।' इसीलिए उसके तीन नेत्र कहे

गये हैं। वह समस्त प्राणियों का ग्रास करती है और अपने कालरूपी दाँतों द्वारा चबा डालती है, इसी से उसके वस्त्र रक्त वर्ण के कहे गये हैं। विपत्ति काल में वह सज्जनों की रक्षा भी करती है, इससे उसके हाथ में वर और अभय बतलाये गये हैं, वह देवी रजोगुण जनित विश्व में व्याप्त है, इसलिए लाल कमल पर विराजमान बतलाया है। वह काल-स्वरूप और समस्त जीवात्माओं की साक्षी स्वरूप देवी मोहरूपी मदिरा पीकर नृत्य करने वाले काल को देखकर हँस रही है।"

यह देवीके प्रतीकात्मक स्वरूप का वर्णन है। उसका वास्तविक, सूक्ष्म और दार्शनिक रूप तो कुछ और ही है।

शक्तिवाद के दार्शनिक साहित्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि इस उपासना का मूल स्वरूप अद्वैतवाद है। ब्रह्म का व्यक्त रूप शक्ति को माना जाता है, जिसकी क्रियाशीलता जड-चेतन हर पदार्थ मे परिलक्षित होती है, वह सर्वव्यापक है। वह सृष्टि की रचना, पालन-पोषण और लय सभी काम करती है। यह व्यक्त जगत उसकी इच्छा-शक्ति का परिणाम है। अणु-अणु मे वह व्याप्त दृष्टिगोचर होती है। सच्चे शाक्त साधक को उसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई ही नही देता, हर वस्तु मे वह उसे ही निहारता है। बाह्य रूप तो सबके अलग-अलग हैं, परन्तु मूल एक ही है। यही शक्तिवाद की भित्ति है।

अपने रूप को देवी ने स्वयं व्यक्त किया है। 'देवी-भागवत' का संक्षिप्त में उपदेश देते हुए भगवान विष्णु से कहा—

सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।

अर्थात् "यह सब कुछ सनातन मैं ही हूं। मुझसे अलग कोई तत्व नही है।"

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किंचिन्नगाधिप।

'हे नगाधिप! मैं ही सब कुछ हूं, मेरा अखण्ड अनन्त ब्रह्मरूप अप्रतर्क्यं एवं अनिर्देश्य है, अनौपम्य और अनामय है।"

दुर्गा सप्तशती में वर्णन है कि जब शुम्भ-निशुम्भ से देवी का घोर युद्ध हुआ और निशुम्भ मारा गया, तो शुम्भ ने देवी से कहा—'तुम्हारा अहंकार व्यर्थ का है तू दूसरों की शक्ति के सहारे पर युद्ध करती है ।" इस पर देवी ने जो उत्तर दिया, उससे उसके मूल रूप पर प्रकाश पड़ता है । देवी ने कहा—' इस विश्व में दूसरा कोई नहीं है, मैं एक ही हूं । यह जो अन्य देवियाँ दिखाई दे रही हैं यह समस्त मेरी अनुभूतियाँ हैं, मुझमें इनका प्रवेश हो रहा है । यह कहना ही था कि ब्रह्माणी प्रमुख देवी का उनमें लय हो गया और वह अकेली ही रह गई ।"

एकैवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतय ॥
तत समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणी प्रमुख लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥

देवी ने कहा—' मेरी विभूति के कारण यह मेरे विभिन्न रूप थे । अब मैंने इन सबका उपसंहार कर लिया । अब मैं अकेले ही युद्ध करूँगी । तू सावधान हो जा ।"

देवी-भागवत में ब्रह्मा ने जब यह समाधान करना चाहा कि तुम स्त्री हो या पुरुष ? तो देवी ने उत्तर दिया कि "मुझमें और पुरुष में कोई अन्तर नहीं है हम दोनों एक ही हैं । जो पुरुष है वही मैं हूं । जो मैं हूं, वही पुरुष है । यह भेद केवल सृष्टि के समय ही होता है । महाप्रलय के समय मेरी संज्ञा न पुरुष रहती है, न स्त्री न नपुंसक । जो भेद बाह्य रूप से दिखाई देता है, वह माया के कारण होता है । ब्रह्म तो 'एकमेवाद्वितीयम्' है । सृष्टि के समय उसके दो रूप हो जाते हैं । फिर दीपक दर्पण और छाया के उदाहरण देते हुए समझाया कि किस तरह यह एक होते हुए भी दो प्रतीत होते हैं । इसी तरह हमारी मूर्तियाँ भी माया के कारण अनेक प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में वह एक ही है ।"

नवरत्नेश्वर मे तो इस भेद को मिटा ही दिया और उपासकों को आदेश दिया कि "देवी की स्त्री, पुरुष और ब्रह्म के रूप मे भावना करनी चाहिए।"

पुराणो मे सृष्टि, पालन और संहार की विभिन्न शक्तियो का वर्णन आता है तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश को उनका अधिष्ठाता माना गया है, परन्तु तन्त्र ग्रंथो मे लिखा है कि इन तीनो देवताओ का जन्म भी शक्ति से हुआ है। 'शक्ति संगम तन्त्र' मे शिवोत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—

त विलोक्य महेशानि सृष्ट्युत्पादनकारणात्।
आदिनाथ मानसिक स्वभर्तार प्रकल्पयेत् ॥

"हे महेशानि! यह (अपना रूप) देखकर उस शक्ति ने अपने पति आदिनाथ को विश्व के सृजन-कार्य के लिए अपने मन से उत्पन्न किया।"

ऋग्वेद के देवी सूक्त (१०।१२५।७) मे भी कहा गया है—

अहं सुवे पितरमस्य मूधन्,
मम योनिरप्स्वन्त समुद्र।
ततो वि तिष्ठे भुवनाधु विश्वो—
तामू द्या वष्मणोप स्पृशामि ॥

'मैं जगत पिता (हिरण्य गर्भ) को प्रसव करती हूं। इसके ऊपर आनन्दमय कोष मध्यस्थ विज्ञानमय कोष मे मेरा कारण-शरीर स्थित है। मैं सारे भुवन मे अनुप्रविष्ट होकर अवस्थित हूं। मैं अपने ऊंचे शरीर से स्वर्ग का स्पर्श करती हूं।"

इसी सूक्त के चौथे मंत्र मे कहा है कि जगत की सभी क्रियाएँ जगदीश्वरी की शक्ति से सञ्चालित होती है—

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति य प्राणिति मई शृणा-
त्युक्तम्।

"प्राण, धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सब कर्म मेरी सहायता द्वारा ही किए जाते हैं।'

सीतोपनिषद् के अनुसार सीता विश्व का कल्याण करने वाली समस्त प्राणियो की उत्पत्ति स्थिति और विनाश करने वाली, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सभी पदार्थों और जीवो की आत्मा, सभी प्राणियो की देहरूपा और विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं।

'देव्यथर्वशीर्ष' मे देवी ने कहा कि प्रकृति पुरुषात्मक जगत का आविर्भाव मुझमे ही हुआ है और मैं ब्रह्मरूपिणी हूँ—

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी मत्त प्रकृति पुरुषात्मक जगत शून्यञ्चाशून्यञ्च।

और यह भी घोषणा की है कि मैं ही जगत हूँ—

अहमखिल जगत्।

भगवती ने माया से भी अपने अभेद का वर्णन किया है और कहा है कि माया शक्ति ही विश्व का निर्माण करती है। व्यवहारिक रूप से जो माया और अविद्या है, वह भी मुझसे अलग नही है—

व्यवहारदृशायेयं विद्यामायेति विश्रुता।
तत्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्वमेवास्ति केवलम्॥

देवी के विराट् रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

"उस विराट् रूप का स्वर्ग—मस्तक, सूर्य और चन्द्र—नेत्र, दिशाएँ—कान, वायु—प्राण, हृदय—जगत, टाँगें—पृथ्वी, व्योम—नाभि नक्षत्र—छाती, महर्लोक—कण्ठ, जनलोक—मुख, देवता—बाहु, अश्विनीकुमार—नासिका, मुख—अग्नि, पलकें—दिन-रात, समुद्र—पेट, पर्वत—हड्डी नदी—नाड़ी, वृक्ष—केश, दोनो सन्ध्यायें—वस्त्र, चन्द्रमा—मन, विज्ञान-शक्ति—विष्णु, अन्त करण—महेश, शब्द—श्रवण, गन्ध—घ्राणेन्द्रिय, रस—रसना, मुख— अग्नि हैं।

देवी भागवत के अनुसार जब देवी ने हिमालय को अपना विराट् रूप दिखाया, तो उसे देवता भी देख रहे थे, उस समय देवी के हजारो मस्तक, नेत्र और पैर थे। करोडो सूर्यों की तरह उसकी चमक थी।

बौद्धों मे तन्त्र और शक्ति उपासना का प्रवेश हिन्दू धर्म से ही हुआ है। अत इसमें शक्ति के इस सिद्धान्त का मिलना स्वाभाविक ही है। पारिभाषिक शब्दो में कुछ भिन्नता आ गई है। शक्ति शब्द वहाँ 'शून्य' हो गया है। इस ही वह समस्त सुखो का आधार मानते हैं। उत्पत्ति, स्थिति और लय इसी मे होता है। जीवात्मा को वह बोधिसत्व कहते है। इसका अर्थ है—जिसका मन नि श्रेयस की उपलब्धि के लिए उत्कठित है। बौद्ध-तन्त्रो मे 'नैरात्मा' को परम शून्य का प्रतीक माना जाता है। 'बोधिसत्व' और 'नैरात्मा' जब आपस मे मिलते हैं, तो एक-दूसरे मे इस प्रकार एकाकार हो जाते हैं, जिस प्रकार नमक जल मे घुल कर अपना अस्तित्व खो देता है और जल ही हो जाता है। 'तन्त्रयान' नामक बौद्ध सम्प्रदाय में इस परम शून्य का प्रतीक 'निरात्मा देवी' है। उपासक जब अपने अह को मिटाकर अपनी इष्ट देवी के विग्रह मे लीन हो जाता है, तो वह अपने को ही 'देवी' मानने लगता है। देवी और उसमें कुछ अन्तर नही होता। इस प्रकार से बौद्ध-तन्त्रो ने भी शक्ति के इस सिद्धांत को स्वीकार किया है, जिस तरह वह हिन्दू-तन्त्रो मे वर्णित है, भले ही उसके बाह्य रूप में कुछ परिवर्तन हो गया हो।

उच्चकोटि का शाक्त-साधक वही है, जो द्वैत से अद्वैत की ओर उन्मुक्त होता है और समस्त जड-चेतन मे अपने इष्ट के दर्शन करता है। वेद के अनुसार देवी स्वय इस रूप का समर्थन करती है—"मैं ही सब मे व्याप्त रहती हुई भोजनादि का कारण व हेतु रूप हूं। मेरे ही द्वारा सब चेष्टाएँ होती हैं। अन्तर्यामी रूप मे सबमें विद्यमान मुझ चित्-शक्ति को जो नही जानते, वे अज्ञानी लोग जगत् में बहुत दुख उठाते हैं (ऋग्वेद १०।१२५।४)।

"ससार में सभी प्रकार की शक्तियाँ मेरी ही हैं अथवा सब शक्तियाँ मेरा ही रूपान्तर हैं। अत इसी भाव से शक्ति की उपासना श्रेयस्कर है। इस स्तर पर पहुँचा हुआ साधक यह समझता है कि उसकी बुद्धि, मन और इन्द्रियो पर भगवती का नियन्त्रण है, उसी के इशारे पर यह सब काम होते हैं, हमारा शरीर तो केवल यन्त्र मात्र है। उसके सभी कार्य भगवती को अर्पित होते है, सभी गतिविधियाँ उसी के लिए होती हैं—अपने शरीर के लिए नही। महाभारत (अश्व० ३२। १७-२३)के ब्राह्मण सवाद में जनक ने इसे और ढग से स्पष्ट किया है— "जिस (वैराग्य) बुद्धि को मन मे धारण करके मैं सब विषयो का सेवन करता हूँ, उसका हाल सुनो—नाक से मैं अपने लिए वास नही लेता (आँखों से मैं अपने लिए नही देखता आदि) और मन का भी उपयोग मैं अपने लाभ के लिये नही करता। अतएव मेरी नाक, आँख आदि और मन मेरे वश में हैं अर्थात् मैंने उन्हे जीत लिया है।"

भगवती का उपासक अपने शरीर, उसके समस्त अवयवो, मन, बुद्धि, इन्द्रियो, विषयो और इच्छाओ को भगवती का रूप मानता है। स्त्री को भी वह भोग की सामग्री न मानकर भगवती का ही रूप मानता है। इस मान्यता से उसकी भावना मे परिवर्तन होता है और वह इन्द्रियो और विषयो का उपयोग उसी तरह करता है, जिस तरह जनक करते थे।

जब मन, वचन और शरीर से यह भावना परिपक्व हो जाती है कि यह शरीर उस आद्या-शक्ति की ही अभिव्यक्ति है, उसी का रूप है, तो वह अपने और भगवती में कुछ अन्तर नही समझता। अन्त में वह भगवती को ही अपना रूप समझने लगता है। दोनो में एकता और अभिन्नता स्थापित हो जाती है।

●●●

शक्ति सत्य है

ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या का सिद्धान्त—

'योग वसिष्ठ' वेदान्त-सिद्धान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। यह भी अद्वैत वेदान्त के इस सिद्धान्त को मान्यता देता है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। योग वसिष्ठकार का मत है कि—

एव तावदिद विद्धि दृश्य जगदिति स्थितिम्।
अह चेत्याद्यनाकार भ्रान्तिमात्रमसन्मयम्॥

—४।१-२

"जो दिखाई देने वाला जगत् और अहं आदि पदार्थ स्थित दृष्टिगोचर होते हैं, वह भ्रान्तिमात्र और असत्य है।"

मृगतृष्णाम्बुवद्वासत्य सत्यवत्प्रत्ययप्रदम्।

—४।१।७

"मृगतृष्णा की तरह, अनुभव सिद्ध जगत् की तरह, यह जगत् सत्य प्रतीत होता है परन्तु है भ्रान्तिमय और असत्य।"

मायेय स्वप्नवद् भ्रान्तिमिथ्या रचित चक्रिका।
मनोराज्यमिवालोलसलिलावर्तसुन्दरी॥

—४।४७।४१

"यह सृष्टि माया है, स्वप्न की तरह भ्रम है, मिथ्या बनाए हुए चक्र की तरह है, मनोराज्य की तरह चञ्चल और जल के भँवर की तरह सुन्दर दृष्टिगोचर होती है।"

समस्त कल्पनामात्रमिदम् । —६।२१०।११

"यह समस्त जगत् कल्पना मात्र है ।

द्यौ क्षमा वायुराकाश पर्वता सरितो दिश' ।

सकल्पकचित सर्वमेव स्वप्नवदात्मन ॥

—३०।१०९।३५

"द्यौ लोक, पृथ्वी लोक, वायु, आकाश, पर्वत, सरिताएँ, दिशाएं, मन आत्मा के सकल्प से इस तरह निर्मित हुए हैं, जिस तरह स्वप्न की सृष्टि होती है ।"

योग वशिष्ठ के अनुसार यह जगत् न तो सत्य है और न असत्य—

नात' सत्यमिद दृश्य न चासत्य सदाचन ।

—३।४४।३३

"यह दिखाई देने वाला जगत् न सत्य है और न असत्य ।"

न तत्सत्य न चासत्य रज्जुसर्पभ्रमो यथा ।

—३।४८।४१

"जैसे रस्सी से सर्प का भ्रम होता है, वैसे ही यह जगत् न सत्य है और न सर्वथा असत्य ही ।"

सत्य इसलिए नही कहा क्योंकि यह आदि और अन्त में नित्य नहीं है—

आदावन्ते न यन्नित्य तत्सत्य नाम नेतरत् ।

—५।५।१२

और असत्य इसलिए नही कहा कि असत्य उसे कहना युक्तियुक्त है, जो कभी भी दिखाई न दे ।

जगत् को मिथ्या और असत्य प्रमाणित करने वालो मे प्रमुख थे—स्वामी शकराचार्य । यह अद्वितीय विद्वान् और मेधावी थे तथा इन्होंने ३२ वर्ष की छोटी आयु मे अपने सिद्धातो का डका समस्त भारतवर्ष में बजा दिया । ब्रह्मसूत्र पर इनका 'शारीरिक भाष्य' जगत्

प्रसिद्ध है। इनके अद्वैत सिद्धात का साराश यह है कि इस जगत् मे हमको नेत्रों से जो कुछ दीखता है वह सत्य नही है। इस समस्त विश्व-प्रपच में यदि कोई वस्तु सत्य है तो वह ब्रह्म की चैतन्य सत्ता है। जो अपनी माया या अविद्या नाम वाली शक्ति मे इस दृश्य जगत् की उत्पत्ति और सहार करती है। वह माया न सत् हे न असत् है वरन् उसे हम 'अनिर्वचनीय' ही कह सकते हैं। इस माया द्वारा जगत् की उत्पत्ति मे किसी प्रकार की वास्तविकता नही है, वरन् उसके द्वारा निर्मित यह जगत् एक प्रकार का भ्रम या स्वप्न के सदृश्य है, जो सत्य जान पडता है, पर जिसकी सत्ता रस्सी में सर्प का भ्रम हो जाने से अधिक नहीं है।

इस सिद्धान्त को 'विवर्तवाद' कहा जाता है। माया के सम्पर्क ही ब्रह्म को ईश्वर कहा जाता है और इस प्रकार अविद्या मे पड कर वह जीवात्मा कहलाने लगता है। इस प्रकार इस जगत् के मूल मे ब्रह्म को छोडकर और कोई तत्व सत्य नही है। इसी माया के वशीभूत होकर जीव अपने को अल्पज्ञ, अल्प शक्ति वाला, सीमित, कर्म-बन्धनो मे बँधा हुआ समझने लगता है। इसके फल से वह कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता बन जाता है और आवागमन के चक्र मे पडकर पुण्य पाप के फलो को भोगने लग जाता है। जब जीव अविद्या (माया) के रूप को समझ जाता है, तो अपने को इन्द्रियो और मन से पृथक् पूर्ण चैतन्य सत्ता अनुभव करने लगता है, तब उसके कर्म बन्धन टूट जाते हैं, अल्पज्ञता और सीमित होने का भाव भी मिट जाता है और वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है। यही अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार मुक्ति की अवस्था है।

जगत् की सत्यता-सिद्धांत के समर्थक—

वेदान्त समर्थक सभी विद्वान् इस सिद्धान्त के पक्ष में नहीं हैं। इस पर अनेको देशी-विदेशी विद्वानो द्वारा आलोचनाएँ हुई हैं। उनका मत है कि शकराचार्य ने वेदान्त सूत्रो का जो अर्थ अपने भाष्य में

प्रतिपादित किया है, वह अनेक अंशों में सूत्रों के वास्तविक आशय के प्रतिकूल है और उसे शङ्कराचार्य ने अपने सिद्धांतों का प्रचार करने की दृष्टि से शब्दों की खींचतान करके निकाला है। जर्मनी के एक विद्वान 'थीबो' ने वेदान्त दर्शन के अपने अनुवाद की भूमिका में लिखा है कि "बादरायणका सिद्धांत शङ्कराचार्य के सिद्धांतसे बहुत भिन्न था। इसलिए शंकर भाष्यको पढ़ने से बादरायण के सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं हो सकता।"

इसी प्रकार एक अन्य विद्वान ने कहा है कि "वेदान्त सूत्रों का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि उनका आशय शंकराचार्य के 'विवर्तवाद' के अनुकूल न होकर भास्कराचार्य के 'परिणामवाद' से अधिक मिलता है।" तीसरे विद्वान के मतानुसार 'सूत्रों को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि शंकर की अपेक्षा रामानुज 'बादरायण' के अधिक निकट है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि शंकराचार्य के समय में दक्षिण भारत में बौद्ध धर्म का जोर बहुत बढ़ रहा था, जिससे वैदिक धर्म का सूर्य प्रायः अस्त हो रहा था। उस परिस्थिति में शंकराचार्य ने ब्रह्म सूत्र का जो भाष्य लिखा है उसके सूत्रों के मूल आशय की ओर इतना ध्यान नहीं दिया है जितना कि इस बात पर कि उनके द्वारा बौद्ध और जैन आदि वेद-विरोधी मतों का खण्डन करके उनको परास्त किया जाय।

वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय भी शंकर के मत से सहमत नहीं हैं। रामानुज के मतानुसार 'माया-मिथ्यात्ववाद' और अद्वैत सिद्धान्त दोनों गलत हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त जीव और जड़ जगत् अर्थात् चित् और अचित् भी नित्य और स्वतन्त्र तत्व हैं, यद्यपि वे ब्रह्म के ही अंश हैं और ब्रह्म उनके भीतर अन्तर्यामी रूप में रहता है। ये दोनों तत्व ही ब्रह्म की विशेषता हैं, जो प्रलयकाल में तो ब्रह्म के भीतर सूक्ष्म रूप में रहते हैं और विश्वोत्पत्ति के अवसर पर स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। इसी से इसका नामकरण 'विशिष्टाद्वैत' किया गया है।

माधवाचार्य का कहना है कि जब भगवान् सत्य हैं, तो उनका बनाया हुआ जगत् कैसे मिथ्या हो सकता है ?—

श्रीमन्मध्वमेत हरि परतम सत्य जगत, तत्वतो ।

"श्री माधवाचार्य के मत से हरि (विष्णु) ही परम तत्व हैं और जगत् सदैव सत्य है ।"

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत सिद्धान्त शब्दार्थ की दृष्टि से अद्वैत सिद्धान्त का सबसे बडा प्रतिपादक है । शकराचार्य ने जहाँ ब्रह्म के साथ माया को स्वीकार किया है और उसी के कारण जगत् का आविर्भाव स्वीकार किया है, वहाँ वल्लभाचार्य ने माया को सर्वथा अस्वीकार करके ब्रह्म को केवल एक शुद्ध तत्व माना है । इसी ब्रह्म से जीव और जगत् प्रादुर्भूत होते हैं और उसी मे लीन हो जाते हैं । भगवान सच्चिदानन्द रूप हैं । जब उनकी इच्छा होती है, तो वे अपने तीनो गुणो सहित ईश्वर के रूप में प्रकट होते हैं और अपने इन्ही गुणो से जीव तथा जगत् की रचना करते हैं ।

इस तरह से वेदान्त के अन्य सम्प्रदायाचार्य भी शकर के जगत को मिथ्या सिद्ध करने वाले सिद्धान्त के पक्षपाती नही हैं ।

उपनिषद् भी ब्रह्म और जगत् के सत्य होने की घोषणा करते हैं । तैत्तरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक मे ब्रह्म को सत्य ज्ञान वाला कहा है—

सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म ।

षष्ठ अनुवाद में ब्रह्म को सत्य न समझने वाले को ही असत्य कहा गया है—

असात्न्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चित् ।

ब्रह्म ही जगत है, यह उपनिषद् वाक्यो से सिद्ध है । इसी अनुवाक में कहा है कि "परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तपस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी मे प्रविष्ट हो गया ।"

स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इद ँ सर्वमसृजत यदि किं च तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्।

ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रथम अनुवाक मे सृष्टि-रचना का वर्णन करते हुए स्पष्ट कहा है कि "परमात्मा ने आकाश प्रकट किया। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधियाँ और ओषधियो से अन्न की उत्पत्ति हुई। अन्न से मनुष्य हुआ, क्योकि मनुष्य का देह अन्न-रस वाला है।"

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाश सम्भूत। आकाशद् वायु वायोरग्नि.। अग्नेराप। अद्भ्य पृथिवी। पृथिव्या ओषधय। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुष। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय।

इससे स्पष्ट है कि जगत ही ब्रह्म का साकार रूप है। जगत की हर वस्तु ब्रह्मरूप है। तैत्तरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली मे जब भृगु ऋषि अपने पिता वरुण के पास ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए जाते हैं तो वरुण अन्न, प्राण चक्षु योग, मन, वाणी सबको ब्रह्म की सज्ञा देते है। इन सबको ब्रह्म ही कहते हैं।

योगवशिष्ठ मे भी यही कहा है—

सत्य ब्रह्म जगच्चैक स्थितमेकमनेकवत्।
सर्वं वा सर्ववद्भदाति शुद्ध चाशुद्धवत्ततम्॥
—६ २।३५।६

"एक सत्य ब्रह्म विभिन्न प्रकार के जगत के रूप मे प्रकट हो रहा है, एक सबके आकार मे शुद्ध-अशुद्ध के रूप में।"

यह भी कहा है कि—

ब्रह्मबृहैव हि जगज्जगच्च ब्रह्मबृहणम्।
ब्रह्मैव तदनाद्यन्तब्धिवत्प्रविजृम्भते। —६-१।२।२७
आत्मैव स्पन्दते विश्व वस्तुजातैरिवोदितम्।
तरङ्गकणकल्लोलैरनन्ताम्ब्वम्बुधाविव॥ —५।७२।३

जगत तो ब्रह्म की वर्द्धन शक्ति है और ब्रह्म का बृहण है।

ब्रह्म जो अनादि और अनन्त है, वही समुद्र की लहरो, कणो और तरगो रूप मे दिखाई देता है। उसी तरह आत्मा ही जगत की सारी आत्माओ मे दृष्टिगोचर होता है—

करण कर्म कर्ता च जनन मरण स्थिति।
सर्वं ब्रह्मैव नह्यस्ति तद्विना कल्पनेतरा॥

—३।१००।३०

"ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नही है। करण, कर्म, कर्ता, जन्म, मरण, स्थिति—सब कुछ ब्रह्म ही है।"

ब्रह्म ही जगत के रूप में प्रकट होता है, जगत को मिथ्या कहना भ्रम के अतिरिक्त और कुछ नही है।

तन्त्र का अभिमत—

तन्त्र-दार्शनिक भी जगत को सत्य मानते हैं। उनकी मान्यता है कि इस जगत मे जितने जीव निवास करते हैं, वे शिव का ही रूप हैं। इसलिए यह असत्य नहीं हो सकता। वे जीव को शरीर और मन से युक्त शिव ही मानते हैं। तन्त्र की दृष्टि मे शिव चेतना का अव्यक्त रूप है और शक्ति उसका क्रियाशील रूप है। जब शिव सत्य है, तो शक्ति असत्य कैसे हो सकती है, क्योंकि वह तो उसी का व्यक्त रूप है।

एक तान्त्रिक विद्वान का मत है कि "इस आद्याशक्ति को माया-रूपा अर्थात मिथ्या नही माना गया है। यदि अग्नि के दाह-प्रकाश धर्म को मिथ्या माना जाय तो अग्नि का स्वरूप ही स्थिर नही हो सकता। इसी प्रकार सत् वस्तु के स्वयस्फुरण-सामर्थ (चिति) को और स्वय तृप्ति दिखाने वाले वेग (आनन्द) को मिथ्या मान लिया जाय तो ब्रह्म का स्वरूप ही नही बनता। ब्रह्म वस्तु के स्वभाव धर्म और औपाधिक धर्म पृथक्-पृथक् हैं। जो स्वभाव-धर्म हैं, वे ब्रह्म की शक्तिरूप हैं और जो औपाधिक धर्म हैं, वे ब्रह्म के गुण हैं। जिस प्रकार महासमुद्र मे अन्त स्पन्द होने पर उसकी तरङ्गमयी स्थिति हो जाती है और पुन निस्तरग स्थिति हो जाती है। दोनो ही अवस्थाओ मे जिस प्रकार समुद्र का

समुद्रत्व एकरस रहता है उसी प्रकार ब्रह्म चैतन्य की स्पन्द वाली अर्थात् स्वय स्वरूप को जानने वाली स्थिति (जिसे विमर्श कहते हैं) और पुन अन्तर्मुख होने की स्थिति ब्रह्म के ब्रह्मत्व को बाध करने वाली नही है। एक ही वस्तु अनेक प्रकार भासती है। उसमे जो वस्तु भासती है, वह मिथ्या नही, परन्तु सत्य है। हाँ, उसके आकारो में सत्यत्व बुद्धि का होना भ्रम है। अतएव शक्तिवाद मे ब्रह्म का विश्वमय भासना मिथ्या नही है परन्तु उसमे जो भेद भासमान होते हैं उन्हे स्वतन्त्र मानने वाली बुद्धि अनरूपा है। विश्वरूप मे भासने की ब्रह्म-सामर्थ्यरूप शक्ति ब्रह्म पक्षपातिनी है और उन आभासो मे होने वाली सत्यत्व बुद्धि मिथ्या माया है। साराश यह है कि जो वस्तु अनेकाकार भासती है, वह स्वय सत्य है, परन्तु उन आकारो मे सत्यत्व बुद्धि मिथ्या है। इसलिए शाक्त-अद्वैत मे यह विश्व ब्रह्मरूप होने से ब्रह्ममयी का विलास है अर्थात अधिकरण की चमत्कृति है। इसलिए विश्व का अनुभव ब्रह्मरूप होने से सत्य है यानी ब्रह्म सत्य है।"

तन्त्र दार्शनिक श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने अपनी पुस्तक तान्त्रिक साधना' मे लिखा है—'तत्र के ऋषियो ने अपनी सम्पूर्ण शिक्षा को इस के केन्द्रीय साक्षात्कार के आधार पर प्रचारित तथा निर्मित किया कि सृष्टि ब्रह्म या सद्वस्तु की अनन्त सत्ता वहिर्भूत एक अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति सत्ता मे छिपी हुई चेतन शक्ति के द्वारा बाहर निकाली गई प्रक्षेपित की गई है। शक्ति जो कि ब्रह्म की, आत्म-चेतना की क्रिया-शक्ति है, माया कही जाती है अथवा उस चेतना का शक्तिरूप ही माया कहलाता है। वह मापती है—'मियते अनेन इति माया।' इस प्रकार ब्रह्म सत्य है, शक्ति सत्य की सत्य शक्ति है और सत्य की विशालता से बना हुआ यह ब्रह्माड भी उसी की तरह से सत्य है। तन्त्र कहता है कि विश्व दिव्य रूप से सत्य है और इसमे रहने वाला व्यक्ति भगवान की सत्य सत्ता का अशी है।"

अत ब्रह्म सत्य है। इस अव्यक्त चेतना का व्यक्त रूप शक्ति भी

सत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण जब सत्य है, तो उसका परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चित है।

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमे एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर कार्य मे रुचि लेना सिखाता है। तान्त्रिक जगत के कार्यों को अपनी साधना के रूप मे करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु मे उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देता है। वह जड चेतन मे इसी भावना का आरोपण करता है। तभी तो वह 'सोऽहं' और शिवोऽहं' की उच्चतम साधना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे उपेक्षा और घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नही कर सकता क्योंकि जगत को वह अपने से भिन्न मानता है। इसीलिए चारो ओर बिखरे प्रेम-सरोवर की लहरो से वंचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति और सिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता को भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने से ही यह भावना सफल हो सकती है। अत तन्त्र-साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने मे समर्थ है।

• • •

शक्ति-उपासना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

नैतिक पक्ष--

देवी-उपासना की स्थापना का उद्देश्य यही है कि समाज में स्त्रियों के प्रति आदर और सम्मान के भाव जाग्रत हों। जिस तरह साधक अपनी इष्ट देवी को जगतमाता के रूप में देखता है, उसी तरह वे विश्व की हर स्त्री में वह अपने इष्टदेव का ध्यान करे और उसे पवित्र भाव से देखे।

ऋषियों ने अनुभव किया था कि मनुष्य की इन्द्रियाँ बलवान घोड़ों की तरह सशक्त होती हैं, वह अपनी तृप्ति के लिये उसे अपने इच्छित मार्ग पर घसीट कर ले जाती हैं। इन्द्रियों के वश में होकर मनुष्य अन्धा हो जाता है, उसकी सोचने समझने की शक्ति क्षीण हो जाती है। विवेक उसका साथ छोड़ देता है। इन्द्रियाँ रूपी घोड़े जहाँ भी उसे ले जाते हैं, वह मदमस्त हाथी की भाँति उनका पीछा करता है और गड्ढे में गिर जाता है।

इतिहास साक्षी है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कभी-कभी इन्द्रियों को अपने वश में न रख सके, उनके पैर डगमगा गये और वह गलत रास्ते पर चल पड़े जिससे आज तक उनके ऋषित्व पर कलंक का टीका लगा हुआ है। विश्वामित्र जैसे महान् तपस्वी ऋषि जिन्होंने नवीन सृष्टि की रचना का साहस किया है, वह भी एक अप्सरा के काम-जाल में फँस गये और भोग-क्रियाओं में लम्बे समय तक लिप्त रहे, जिससे

सत्य है, जगत भी सत्य है। मूल कारण ब्रह्म सत्य है, तो उसका परिणाम भी सत्य ही होना चाहिए—यह निश्चित है।

तन्त्र का यह सिद्धान्त हमे एक नया दृष्टिकोण देता है। इसके हर कार्य मे रुचि लेना सिखाता है। तान्त्रिक जगत के कार्यों को अपनी साधना के रूप मे करता है, वह जगत को ब्रह्म का साकार रूप मानता है, हर वस्तु मे उसे ब्रह्म का रूप दिखाई देता है। वह जड चेतन मे इसी भावना का आरोपण करता है। तभी तो वह 'सोऽहं' और शिवोऽहं' की उच्चतम साधना के लिए अपने को तैयार पाता है। जगत को मिथ्या कहने वाला उससे उपेक्षा और घृणा करता है। प्रभु के साकार रूप की उपेक्षा करने वाला साधना के क्षेत्र में प्रगति नही कर सकता क्योंकि जगत को वह अपने से भिन्न मानता है। इसीलिए चारो ओर बिखरे प्रेम-सरोवर की लहरो से वंचित रहता है। भिन्नता की भावना जहाँ सशक्त होती है, वहाँ शक्ति और सिद्ध का स्रोत सूखने लगता है। एकता की भावना ही शक्ति-विकास का साधन है। जगत को सत्य मानने मे ही यह साधना सफल हो सकती है। अत तन्त्र साधना हमें उच्चतम शिखर तक पहुँचाने मे समर्थ है।

• • •

न रही। मुहम्मद गोरी जब आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता हुआ सिर पर आ पहुँचा, तो उसके प्रधानमन्त्री ने काम-निन्द्रा से उसे जगाया। परन्तु अब क्या हो सकता था? इसका अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही बदल डाले।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल मे फँस गये थे। प्रधानमन्त्री चाणक्य ने उसे सावधान किया था। दिग्विजयी सिकन्दर दिग्विजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रूप-लावण्य की साक्षात मूर्ति फिलिस को अपने साथ लाए। उनके गुरु अरस्तू ने उसे सावधान किया कि यह विष-कन्या है। इसके शरीर का स्पर्श ही तुम्हारे सारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकन्दर उनसे दूर रहने लगा। इससे फिलिस चिढ गई और काम-बाण फेंकने आरम्भ कर दिए। वह सफल हुई और अरस्तू उसके प्रेमजाल मे फँस गये। एक दिन उसने अरस्तू को खेल मे घोडा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर सारे कमरे मे उसे घुमाया। सिकन्दर ने यह सारा दृश्य देखा। वह आश्चर्यचकित रह गया। जब गुरु से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रवीण अनुभवी वयोवृद्ध पडित को भी वशीभूत करके हीन-से-हीन काम करवा सकती है, वह मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए और भी अधिक खतरनाक नही हो सकती क्या?

पुराणाचार्यों ने काम के सभी उत्पातो का सर्वेक्षण किया था और वह इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज मे उच्च भावनाओ को उत्पन्न करने से ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। वह समाज तो आसुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमे किसी युवक ने किसी युवती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उससे विवाह करने की सोचने लगा। राजाधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर मे लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

उनका तेज क्षीण हो गया। पराशर मुनि नदी पार करते हुए नाव में नाविक की कन्या पर आसक्त हो गये। उनके मन में काम वासना आयी और तूफान की तरह आई और नाव में ही उन्होंने अपनी ज्वार-भाटा की तरह उछलती लहरों को शान्त किया। शान्तनु भी एक नाविक की लड़की पर आसक्त हो गए और उससे विवाह की सोचने लगे। यह उदाहरण बताते हैं कि हमें अपने कामतत्व के सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए। उसकी प्रबलता को नियन्त्रण में रखने की क्षमता प्राप्त करनी चाहिए। किसी सुन्दर लड़की को देखकर उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखना अपनी मानसिक कमजोरी का चिन्ह है। इस असन्तुलन से समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है। यह दृष्टिकोण अपनाने से तो किसी की माँ-बहिन-लड़की का सम्मान सुरक्षित नहीं रह सकता।

इतिहास ने जहाँ-जहाँ ऐसे उदाहरणों को दोहराया है वहाँ तबाही, बर्बादी और खून-खराबी के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया। अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के रूप-लावण्य के समाचार सुने थे। उसे प्राप्त करने करने के लिए वह कामरूपी राक्षस हजारों प्राणियों का खून करने के लिए उद्यत हो गया। इतिहास ने रावण जैसे महापण्डित का भी इन्द्रियों के वशीभूत होकर एक नीच कर्म करने पर वाध्य किया। धर्माचार्यों ने ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति से सावधान रखने के लिए रावण के क्षुद्र-कर्म का प्रदर्शन करना प्रारम्भ कर दिया, ताकि समाज उससे शिक्षा ले।

हिन्दू धर्म कहता है कि स्त्री को भोग की सामग्री मात्र मत समझो, जीवन की पूर्णता प्राप्त करने के लिए अपना जीवन-साथी मानो, सृष्टि-रचना की प्रभु-लीला का माध्यम समझो। यदि उसे सावधानी से न बरतोगे, तो वह नरक की खान बन जायगी। पृथ्वीराज संयोगिता को स्वयंवर से भगाकर ले गया और उसमें इतना अधिक आसक्त हुआ कि उसे अपने राज्य के काम-काज की कुछ भी खबर न

न रही। मुहम्मद गोरी जब आक्रमण करता और विजय प्राप्त करता हुआ सिर पर आ पहुँचा, तो उसके प्रधानमन्त्री ने काम-निन्द्रा से उसे जगाया। परन्तु अब क्या हो सकता था? इसका अभिप्राय है काम ने राष्ट्रों के भविष्य ही बदल डाले।

चन्द्रगुप्त मौर्य एक विदेशी सुन्दरी के कामजाल मे फँस गये थे। प्रधानमन्त्री चाणक्य ने उसे सावधान किया था। दिग्विजयी सिकन्दर दिग्विजय करते हुए अपने देश लौटे तो एक रूप-लावण्य की साक्षात मूर्ति फिलिस को अपने साथ लाए। उनके गुरु अरस्तू ने उसे सावधान किया कि यह विष-कन्या है। इसके शरीर का स्पर्श ही तुम्हारे सारे शरीर को विषाक्त बना देगा और तुम्हारा जीवन नष्ट हो जाएगा। सिकन्दर उससे दूर रहने लगा। इससे फिलिस चिढ गई और काम बाण फेंकने आरम्भ कर दिए। वह सफल हुई और अरस्तू उसके प्रेमजाल मे फँस गये। एक दिन उसने अरस्तू को खेल मे घोडा बनाया और उसकी नाक में नकेल डालकर सारे कमरे मे उसे घुमाया। सिकन्दर ने यह सारा दृश्य देखा। वह आश्चर्यचकित रह गया। जब गुरु से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला, 'जो रमणी मुझ जैसे प्रवीण अनुभवी वयोवृद्ध पंडित को भी वशीभूत करके हीन-से-हीन काम करवा सकती है, वह मुझसे कम आयु के कम अनुभवी युवक के लिए और भी अधिक खतरनाक नहीं हो सकती क्या?

पुराणाचार्यों ने काम के सभी उत्पातो का सर्वेक्षण किया था और वह इस परिणाम पर पहुँचे थे कि नारी जाति के प्रति समाज मे उच्च भावनाओं को उत्पन्न करने मे ही इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सकती है। वह समाज तो आसुरी समाज कहलाया जायगा, जिसमे किसी युवक ने किसी युवती को देखा, उसके सौन्दर्य पर वह आसक्त हो गया, उससे विवाह करने की सोचने लगा। राजाधिकारी हुआ तो अपने प्रभाव से उसे अपने घर मे लाने का प्रयत्न किया, अन्यथा और तरह-

के षडयन्त्र करने लगा। वह तो पशुओं का-सा समाज हो गया, जिनमे कोई विधिवत् पति-पत्नी नही होते। भगवान ने मनुष्य को बुद्धि और विवेक इसीलिए दिया है कि वह इनका सदुपयोग करे।

समाज की इस निर्बल वृत्ति को अनुभव करते हुए ही देवी-उपासना का प्रारम्भ किया गया ताकि देवियो के प्रति साधक के अन्त -करण मे पवित्र भावनाओ का सचार हो, समस्त नारी जाति मे वह इष्टदेवी के दर्शन करे और उन्हे माता, बहिन और पुत्री के पवित्र भाव से देखे। धर्म के साथ जुडी हुई यह भावना साधक के मन मे जम जाती है और वह एक सभ्य मनुष्य की तरह समाज मे विचरण करता है। यही देवी-उपासना का रहस्य व लक्ष्य है। देवी-उपासना के इस नैतिक दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर जो साधक गायत्री, दुर्गा, लक्ष्मी, काली आदि देवियो की साधना करते हैं वही अपने चारित्रिक, मानसिक व आत्मिक स्तर को ऊँचा उठाने मे सफल हो पाते हैं, शेष तो अन्धकार मे ही भटकते रहते हैं।

काम तत्व जैसी विनाशकारी प्रवृत्ति को नियन्त्रित रखने का यह अनोखा मनोवैज्ञानिक साधन है, जिससे साधक के मानसिक स्तर मे परिवर्तन आता है, उसकी विचार-भूमि मे सात्विक अकुर उगने लगते हैं। वह भोगो के दुष्परिणामो के प्रति जागरूक हो जाता है। नारी को भोग की सामग्री समझने वाला मस्तिष्क काम का दास बनता है और नीच-से नीच और जघन्य-से-जघन्य अपराध भी उसकी लिप्सा की शाति के लिए करने पर तत्पर हो जाता है। इस विनाश को रोकने का वैज्ञानिक साधन देवी-उपासना है, जब हर स्त्री को साधक विश्व माता के रूप मे देखता है।

देवी उपासना का उद्देश्य काम पर रोक लगाना नही है। यह तो कामेन्द्रिय का स्वाभाविक धर्म है। आवश्यकता पडने पर इसका उपयोग करना ही चाहिए, परन्तु वह काम भोग की सज्ञा मे न आए।

भोग के प्रति आसक्ति से शास्त्रकारो ने बचने के लिए प्रेरित किया है, और सुझाव दिया है कि भोग मे त्याग की प्रवृत्ति श्रेयस्कर है। इससे इन्द्रियो के स्वाभाविक धर्म का भी पालन हो जाता है और कोई हानि नही हो पाती।

इच्छा-शक्ति का विकास—

यह सभी कार्य इच्छा-शक्ति के सहयोग से ही सुविधापूर्वक हो पाते हैं। मनीषी ऋषियो ने इच्छा शक्ति को देवी का रूप दिया। वह भली प्रकार जानते थे कि जीवन की सफलता-असफलता उत्कर्ष-अपकर्ष, उन्नति-अवनति और उत्थान-पतन सब मनुष्य की इच्छा शक्ति की सबलता तथा निर्बलता के परिणाम हैं। सब और दृढ इच्छा शक्ति सम्पन्न लोगो को अभद्र विचार, कुकल्पनाएँ भयानक, परिस्थितियाँ, उलझने भी विचलित नही कर सकती। वे अपने निश्चय पर दृढ रहते हैं। उनके विचार स्थिर और निश्चित होते हैं। वे उन्हे बार बार नही बदलते। प्रबल इच्छा शक्ति से शारीरिक कष्ट भी उन्हे अस्थिर नही कर सकते। ऐसे व्यक्ति हर परिस्थितियो मे अपना रास्ता निकाल कर आगे बढते रहते हैं। अपने व्यक्तिगत हानि-लाभ से भी प्रभावित नही होते।

दृढ इच्छा-शक्ति मानसिक क्षेत्र का वह दुर्ग है, जिसमें किसी भी बाह्य परिस्थिति, कल्पना, कुविचारो का प्रभाव नही हो सकता। दृढ इच्छा-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति जीवन की भयङ्कर झझावातो मे भी अजेय चट्टान की तरह अटल और स्थिर रहता है। ऐसा मनुष्य सदैव प्रसन्न और शात रहता है। जीवन का सुख, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रसन्नता, शाति उसके साथ रहते हैं।

जिस व्यक्ति में इच्छा-शक्ति की जितनी प्रबलता है, वह उतना ही अधिक कार्यक्षम होता है। मानव-देह पर इच्छा-शक्ति का ही शासन है, क्योकि इच्छा द्वारा ही सब इन्द्रियाँ अपने कार्यों में लगती हैं। अत्यन्त निर्बल मनुष्य भी इसके बल से बलवान बन जाते हैं।

बडे-बडे तपस्वियों की साधनाओ में इच्छा-शक्ति का ही हाथ

था। बडे-बडे सग्रामो में विजय-श्री प्राप्त कराने का श्रेय भी इच्छा-शक्ति को ही रहा है। बडे-बडे हत्याकाडो में जो वीभत्सता उत्पन्न हुई वह सब इच्छा-शक्ति के कारण ही हुई। आप इसे जिस कार्य में लगायेंगे, वह उसी मे लग जायगी। उसी को पूर्ण करने का प्रयत्न करेगी।

देवी-उपासना से इच्छा-शक्ति को विकसित करके हम जीवन के हर क्षेत्र मे द्रुतगति से बढ सकते हैं।

भयङ्कर रूप का अभिप्राय—

चित्रो, मूर्तियों और कथाओ मे देवी के दो रूपो का चित्रण किया गया है। एक भयकर और दूसरा उन्नयनकारी। भयङ्कर रूप के दर्शन हम तब करते हैं, जब देवी को देव कार्य के लिए युद्ध-क्षेत्र मे उतरना पडता है। सामने शक्तिशाली योद्धा हैं, जिन्होने देवराज इन्द्र जैसे वीरो को परास्त करके आसुरी साम्राज्य स्थापित कर रखा है। उन्हें धराशायी करने के लिए देवी को भयङ्कर रूप धारण करना पडा, जो विजय की कामना करने वाले हर पक्ष में होना स्वभाव-सिद्ध है। आसुरी शक्तियो के विनाश के लिए यही रूप अपेक्षित है। जिन परिस्थितियो में देवी को असुरो मे जूझना पडा, वे हर मानव के जीवन में आती हैं। किसी-न किसी रूप मे यह होना ही है। भगवान बुद्ध के सामने भी यही स्थिति थी। हमारे और आपके सामने भी आयेगी। उसका डटकर सामना करने के लिए अपनी दैवी-शक्तियो को एकत्रित करके पूरी शक्ति के साथ उन पर आक्रमण करना चाहिए। देवी का सौम्य रूप ही प्रशस्त माना गया है, परन्तु आवश्यकता पडने पर इस रूप को धारण करने मे भी कोई हानि नही है। इस भयङ्कर रूप की अनुकृति बनकर हमें भी अपने मानसिक शत्रुओ का सिर काटना होगा, यही देवी के क्रूर रूप का अभिप्राय है।

कुप्रवृत्तियो के त्याग की भावना—

पशु-बलि देवी-उपासना का आवश्यक अङ्ग माना जाता है। यह प्रतीकात्मक रहस्य है, जिसे न समझ कर देवी के पवित्र नाम को कलङ्कित किया जाता है। वास्तव मे बलि का तात्पर्य आन्तरिक कुप्रवृत्तियो का त्याग ही है।

उपनिषद् का वचन है—

काम क्रोध लोभादय पशव.।

अर्थात् "काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्ही को मार कर यज्ञ में हवन करना चाहिए।"

इसी प्रकार—

काम क्रोध सुलोभ मोह पशु काच्छित्वा विवेकासिना।
माम निर्विषय परात्म सुखद भुञ्जति तेषा बुधा ॥

—भैरवयामल

अर्थात 'विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओ को विवेक रूपी तलवार मे काटकर दूसरे प्राणियो को सुख देने वाले निर्विषय-रूप मास का भक्षण करते हैं।"

महानिर्वाण तन्त्र में भी इसी आशय का श्लोक आया है—

कामक्रोधौ द्वौ पशु मनसा बलिमर्पयेन।
कामक्रोधौ विघ्नकृतो बलि दत्वा जप चरेत् ॥

"काम और क्रोधरूपी दोनो विघ्नकारी पशुओ का बलिदान करके उपासना करनी चाहिए। यही शास्त्रोक्त बलिदान-रहस्य है।"

अलङ्कारिक रूप से यह आत्म-शुद्धि की, कुविचारो, पाप, तापो, कषाय कल्मषो से बचने की शिक्षा है।

रहस्य-तन्त्र का कथन है—

कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलि दद्याज्जप चरेत्।

एक दूसरे तन्त्र का वचन है—

इन्द्रियाणि पशून हत्वा।

अत देवी कुप्रवृत्तियो के त्याग की प्रेरणा देती है।

उन्नयनकारी रूप का उद्देश्य—

मातृ उपासना का दूसरा रूप उन्नयनकारी है। वह उत्थान की प्रतिमा है। अवगुणो पर कुठाराघात करना उसका सर्वप्रथम कर्तव्य है। दोष उसके सामने सकुचित हो जाते हैं। दोषो के विनाश के साथ ही आत्मिक प्रगति होती चलती है। देवी तो सद्गुणो की खान है। पवित्रता, उदारता शील, लज्जा, चेतना, बुद्धि, शिष्टता उसके चारित्रिक अङ्ग हैं। देवताओ के सम्मिलित प्रयत्न से उसका जन्म हुआ। वह दिव्य गुणो की समन्वित मूर्ति है। जो देवी-भक्त सद्गुणों के विकास की ओर ध्यान नही देता, वह माता के आध्यात्मिक पयदान से वचित रह जाता है। जिस पर माता का वरद् हस्त रहता है, वही उसे प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त कर पाता है। शेष तो भौतिक कामनाओ की पूर्ति मे ही उलझे रहते हैं। देवी प्रेरित करती है कि जीवन के आधार-स्तम्भ सद्गुण हैं। अपने गुण, कर्म, स्वभाव को श्रेष्ठ बना लेना, अपनी आदतो को श्रेष्ठ सज्जनों की तरह ढाल लेना वस्तुत एक ऐसी बडी सफलता है, जिसकी तुलना किसी भी अन्य सासारिक लाभ से नहीं की जा सकती। विदेशी मनीषी भी इस रूप की प्रशसा किए बिना नही रह सके हैं। 'दि ग्रेट मदर' नामक पुस्तक के प्रणेता श्री एरिश न्यूमन ने लिखा है—

"कालातर मे भारतीय मातृशक्ति ने प्रकाशपूर्ण उन्नयनकारी रूप के चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर लिया। केवल तन्त्रो की शक्ति के रूप मे नही, काली—जो स्वय भयकारी मूर्ति थी, उन्नयनकारी आध्यात्मिक स्तर पर स्वतन्त्रता और सुरक्षा की महान् देवी बन गई, जिसकी तुलना में पश्चिम की कोई देवी ठहर नही सकती और सर्वोत्तम रूप मे 'तारा'

का उदय हुआ, जिसके दैवी-प्रकाश की कोई सीमा नही। प्रज्ञापारमिता के रूप में वह बोधिसत्वों की भी जननी है।"

देवी प्रकाशरूपा है, वह दिव्यता का पुञ्ज है। कथा भी है कि आदि में सब अन्धकार था, देवी की कृपा से प्रकाश हुआ। दैत्यों ने उसका भक्षण कर लेना चाहा, परन्तु देवी ने उनको ही नष्ट कर दिया। देवी प्रकाश, ज्योति और ज्ञान की द्योतक है। अन्धकार उसके समक्ष रह नही सकता। दिव्यता के आगार मे कुविचारों को कहाँ स्थान मिल सकता है? वह तो प्रचण्ड ज्ञानाग्नि में जलकर भस्म हो जाएंगे। देवी का रोम-रोम करोड़ों सूर्यों के प्रकाश से दमकता है। उनकी चमक देव-राज्य की स्थापना का उद्घोष करती है। हमारा मनोराज्य भी ऐसे ही प्रकाश पुञ्जों से अलकृत होना चाहिए। यही देवी की उपासना, समीपता का रहस्य है।

नव-निर्माण की प्रेरणा—

सृजन-शक्ति माता का एक विशेष गुण है, जिसके कारण उसे इस पवित्र नाम से सम्बोधित किया जाता है। शरीरधारी माँ प्राण-पिंड का निर्माण करती है, जबकि विश्व-माता सारे विश्व को जन्म देती है। यह उसकी स्वभावगत विशेषता है। यह विश्व के हर अणु, परमाणु में विद्यमान है—एक-दूसरे मे न्यूनता भले ही हो जाए। मानव मे यह अधिक विकसित होती है। महर्षि विश्वामित्र तो इसके प्रतीक ही बन गए थे। उन्होंने नई सृष्टि की रचना का महान् प्रयत्न किया था। राष्ट्र में नई चेतना, समाज मे नया प्रकाश, व्यक्ति मे नया जोश ही इससे अभिप्रेत है। जीवन को नए साँचे में ढालना, विचारों को उच्च, पवित्र और परिपक्व करना, अपनी शक्ति-साधनों को गति देना ही अभीष्ट है। निर्माण की शक्ति और क्षमता तो ईश्वर-प्रदत्त है, जो इसका उपयोग नही करता, वह अविकसित, पिछड़ा हुआ और दीन-हीन रह जाता है। वह मातृशक्ति की उपासना से वंचित रहता है। सृजन-शक्ति से जीवन का नव-निर्माण लक्षित है।

परिवर्तन की क्षमता—

परिवर्तन की क्षमता नारी का जन्मजात सौभाग्य है। इसके प्रमाण नित्य देखने में आते हैं। वह शुक्र को शिशु में बदलती है, रक्त से दुग्ध-धारा का प्रस्फुटन करती है। वह शिशु के विचार-चक्र को अपना इच्छानुसार चलाती है—उसे जैसा बनाना चाहे बना सकती है। शिशु-जन्म के बाद भी वह उसमें परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। मदालसा जैसी विदुषी नारियों के उदाहरण जगत् प्रसिद्ध है, जिन्होंने लोरियों से आत्मोत्थान की भूमिका तैयार की थी। नारी गृहस्थ को नरक और स्वर्ग दोनों बना सकती है। जहाँ उसके शरीर से प्रेम, स्नेह, से हुआ। इसमें संगठन शक्ति और भौतिक साधनों के अभाव में भी स्वर्गीय वातावरण निर्माण कर डालती है परन्तु जहाँ रौद्र रूप के दर्शन होते हैं, वहाँ साधन-सम्पन्न घरानों में भी कलह, क्लेश और असन्तोष व्याप्त रहता है। मातृशक्ति परिवर्तन चाहती है। वर्तमान परिस्थितियों और क्षमताओं में जो अपूर्णता है उसे पूर्णता में परिवर्तित करना ही उसे अभीष्ट है।

दिव्य शक्तियों का सङ्गठन—

देवी का जन्म देवताओं की सम्मिलित शक्ति सौहार्द की फुहार निकलती है, घन की महत्ता परिलक्षित होती है। कहा भी है—"संघ शक्ति कलौयुगे"। प्रगति के लिए संगठन शक्ति आवश्यक है। देवी इसके द्वारा सामाजिक जीवन में विकास चाहती है।

देवी के जन्म का उद्देश्य आसुरी शक्तियों का विनाश था। उसने समाज को अव्यवस्थित करने वाले शक्ति-स्रोतों पर प्रहार किया, घोर संघर्ष हुआ, विजयश्री देवी के पक्ष में रही। वह तो रहनी ही थी क्योंकि अन्तिम विजय दिव्यता की ही होती है। हमारे मन क्षेत्र में जो आसुरी तत्व विद्यमान हैं, उनसे लोहा लेने के लिए देव-तत्वों को संगठित करना होगा और उनके विरुद्ध जिहाद बोलकर ललकारना होगा। उन्हें परास्त किए बिना आत्म-कल्याण सम्भव नहीं है। यह

संग्राम आवश्यक है। जो व्यक्ति इसके लिए अपने को तैयार नहीं करता, वह असुरों से प्रभावित होकर असुर ही बन जाता है, जिसे जीवन-नाश की संज्ञा दी जाती है।

अनासक्त भावना—

कमल का पुष्प देवी को प्रिय है। तारा का आसन कमल का बना है। देवी मेडोना और डेमेनेर के हाथों में इसे देखा जा सकता है। आइसिस के रथ का पहिया इससे बना हुआ है।

कमल भारतीय संस्कृति का महाप्रतीक माना जाता है। इसका जन्म पंक में होता है, परन्तु फिर भी यह निर्मल और पवित्र रहता है। यह जल में रहते हुए भी उससे अलग रहता है, जल से अलिप्त रहता है। कमल के प्रतीक से यह प्रेरणा मिलती है कि हमें संसार में रहते हुए भी उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए, उससे अलिप्त रहना चाहिए। संसार के भोग बुरे नहीं हैं, परन्तु उन्हें त्यागपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। परिवार के पालन-पोषण को एक परम पवित्र कर्तव्य मानना चाहिए। हर सदस्य के बौद्धिक व आत्मिक विकास के लिए जी-तोड़ प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु उनमें मोह और ममता नहीं होनी चाहिए।

कमल को प्रकाश प्रिय है, वह सदैव प्रकाश के सम्मुख रहता है। जब सूर्य निकलता है—कमल अपनी पंखुड़ियाँ खोल देता है, मानो अपनी अपार प्रसन्नता का प्रदर्शन कर रहा हो। जब तक सूर्य रहता है, उसका मुख प्रकाश की ओर ही रहता है। उसे अन्धकार प्रिय नहीं है, वह प्रकाश पर मरता है। वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का पुजारी है, मानो वह यही प्रार्थना करता रहता है—मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। भगवान उसकी पवित्र भावना से ओत-प्रोत प्रार्थना स्वीकार भी कर लेते हैं। कमल की प्रेरणा है कि हमें भी अज्ञानान्धकार और अविवेक से सदैव दूर रहना चाहिए तथा ज्ञान, प्रकाश, ज्योति और विवेक को आदर्श बनाना चाहिए।

पर्वतीय उन्नता का बोध--

देवी का पर्वत से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। पावती तो तो पर्वतराज की पुत्री ही घोषित की गई। देवी को पवत प्रिय भी है। देवी के अधिकांश प्रसिद्ध उपासना ग्रह पर्वनो पर स्थित है। पर्वत से उच्चता का बोध होता है। देवी का आसन पर्वत पर रहता है। हमारे जीवन का आधार उच्च विचार होने चाहिए। उच्च वचारो के पर्वतीय आसन पर बैठकर ही आध्यात्मिक उन्नयन को क्षमता प्राप्त की जा सकती है।

परमार्थिक भावना—

देवी अन्नपूर्णा है, विश्वधात्री है, शाकाहारी है। वह अपने पुत्रो को भूखा नही देख सकती। वह उनके दु ख-दर्द को अपना समझती है, उसे अपना समझती है, उसे दू' करने का प्रयत्न करती है, निरन्तर विश्व-कल्याण मे रत रहती है। हमारा समाज कुरीतियो, कुप्रवृत्तियो और बुराइयो से भरा पडा है, इसे स्वच्छ और पवित्र बनाने के लिए देवो की सम्मिलित और सगठित प्रयत्न करने चाहिए।

प्राणी-मात्र मे प्रेम का प्रसार—

देवी केवल मनुष्यो की ही माता नहीं है। वह पशु, पक्षियो, पर्वतो, चट्टानो और लताओ की भी जननी है। सिंह तो उसका प्रसिद्ध वाहन है ही। बैल, हस, मोर, गजराज, ऐरावत भी देवी के वाहन हैं। वह सभी प्राणियो की माँ है। उसका रूप सबमे बिखरा पडा है। वह यही चाहती है कि उसके हर रूप का सम्मान किया जाए अपने स्वार्थ के लिए उसकी हिंसा न की जाए, किसी प्रकार की पीडा न दी जाए, पशुओ मे भी देवी के दर्शन करके उनसे प्रेम-व्यवहार किया जाए और यथासम्भव उनका पालन-पोपण किया जाए।

सद्गुणों का प्रयास—

देवी को ज्ञान, प्रकाश, पवित्रता, श्रेष्ठता, उच्चता, दिव्यता प्रिय हैं। इसी से उसकी शोभा और सौन्दर्य निहित है। अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, कामुकता असयम, स्वार्थ, झूठ, फरेब सब मन की गन्दगी है। इनसे दुर्गन्ध फैलती है, जो देवी को अप्रिय है। तभी वह इस दिव्य सौंदर्य का पुन्जीभूत विग्रह मानी जाती है।

प्रेरणाओं को स्रोत—

स्पष्ट है कि देवी-भावना मानव में अनेकों जन्मों से व्याप्त जड़ता को नष्ट करके आन्तरिक प्रकाश और स्फुरणा को उद्भावित करती है। वह अवगुणों की गन्दगी से हटाकर सद्गुणों के उच्च पवनीय आसन पर प्रतिष्ठित करती है। यह काम सहज में ही नहीं हो जाता, इसके लिए दीर्घकालीन प्रयत्न और पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। इस संघर्ष के लिए वह हमें तैयार करती है। वह केवल व्यक्तिगत उत्थानके लिए ही प्रेरित नहीं करती, उत्थानको व्यक्तिगत सामाजिक प्रगति से सम्बन्धित मानती है। इसके लिए उपाय भी सुझाती है। तप, त्याग की वलि—आहुति मांगती है। अपनी सृजक शक्तियों को सतेज रखने का आह्वान करती है। कमल की तरह भोग में त्याग की परम्परा को निभाते हुए, सभी स्त्रियों में मातृ-भावना की ज्योति जगाकर काम-तत्त्व पर विजय प्राप्त करके आन्तरिक सत्ता को जाग्रत करने की प्रेरणा देती है। उसका उद्देश्य मानवीय मूल्यों की परिधि को हटाकर दिव्यता के दर्शन कराना है। मातृ-शक्ति की दिव्य किरणें हमें शक्ति से आप्लावित करती हैं और झकझोर कर कहती है—तुम हाड-मांस के पुतले मात्र नहीं हो, तुम सजीव शक्ति-सम्पन्न चेतन आत्मा हो, शक्तियों का स्रोत हो। तुममे वह शक्तियाँ निहित हैं कि विश्व के किसी भी असम्भव कार्य को सम्भव बना सकते हो। गति, सक्रियता, सजीवता

तुम्हारे विशेषण हैं, अस्त्र शस्त्र हैं, इन्हे उठाओ और जीवन का संघर्ष आरम्भ करो, जो रुकावटें आये उन्हे दूर करते हुए निरन्तर आगे बढते चलो। यही जीवन है। तुम शक्ति, आशा और साहस के रूप हो, अत. जीवन का निखार करो।

शक्ति-उपासना का रहस्य--

शक्ति उपासना विभिन्न उद्देश्यो से की जाती है। वास्तविकता की ओर बहुत कम लोगों का ध्यान जाता है। शक्ति अणु-अणु मे व्याप्त है। विश्व की सभी वस्तुओ मे क्रियाशीलता का कारण यही है। यही उनका पालन-पोषण करती है। इसलिए इसे जगज्जननी कहा जाता है। इसकी सच्ची उपासना इसे व्यापक रूप से अनुभव करना है। सृष्टि की रचना कर्तव्य बुद्धि से करना तो आवश्यक है। परन्तु अपनी पत्नी के अतिरिक्त विश्व की किसी भी अन्य स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखना दुर्गा का अपमान और अवहेलना हैं। दुर्गा अन्धभक्तो से प्रसन्न नही होती, जो उनके लिए पशुओ का बलिदान करें, बच्चे की बलि करे अथवा अपनी जिह्वा काट डाले। उनका वरद हस्त तो उस भक्त के लिए उठता है, जो नारी जाति के प्रति मातृ भाव की पवित्र भावना रखता है। वही शक्ति सम्राट है। ब्रह्मचर्य से शक्ति की सुरक्षा होती है। भोग और उसकी भावना से उसका अपव्यय होता है। शक्ति विकास के साधन अपनाए जाये और अनावश्यक व्यय को रोका जाए, यही शक्ति के सञ्चय का उपाय है। दुर्गा विद्या की देवी है, वह बुद्धिमानोको ही वरदान देती है। बुद्धिमान वही है जो अपने शक्ति-कोषो को सुरक्षित रखना जानता है।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर आदि सभी शक्ति के विरोधी तत्व हैं, शत्रु है। दुर्गा इनको नष्ट करके इनकी मुण्डमाला गले में धारण करती हैं, तभी तो वह सिंह की सवारी करती है और राक्षसो का दलन

करती है। जो इन्द्रियों के गुलाम हैं, काम के वश मे होकर तरह-तरह का नाच नाचते हैं, जिह्वा के वश मे होकर शरीर को जर्जर करते रहते हैं, तामसिक व राजसिक आहार से मनोवृत्तियो को तमोगुणी व रजोगुणी बनाते रहते हैं, उनका मन निरन्तर अशात रहता है। दुर्गा की अपार स्तुति करने वाले ऐसे भक्त उनसे निराश ही होते हैं और कुछ भी प्राप्त नही कर सकते। इन्द्रियो को वश मे करके उनका सदुपयोग करने वाले ही सच्चे शक्ति-उपासक माने जाते हैं। इन्हे ही दुर्गा की सिद्धि प्राप्त होती है।

यह है शक्ति-साधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, जिसे अपनाकर हम विकास-पथ की ओर उन्मुख हो सकते हैं।

• • •

नारी रूप में शक्ति-उपासना क्यों ?

कई व्यक्ति पूछते हैं—महाशक्ति को नारी के रूप में क्यों पूजा जाता है, जबकि अन्य सभी देवता नर-रूप हैं ?

इस शंका के मूल आधार में मनुष्य की वह मान्यता काम करती है, जिसके अनुसार नर को श्रेष्ठ और नारी को निकृष्ट माना गया है। घरों में नारियाँ नर की सेवा-पूजा करती हैं, उसके अधिकार-आधिपत्य में रहती हैं, उन्हें छोटा या हेय माना जाता है। स्त्री का वर्चस्व स्वीकार करने में पुरुष अपना अपमान मानते हैं। किसी स्त्री अफसर के नीचे पुरुष कर्मचारियों को काम करना पड़े, तो बाहर से कुछ न कहते हुए भी कुड़कुड़ाते हैं। किसी घर में स्त्री की बात चलती हो, पुरुष अनुगामी हो तो उसका मखौल उड़ाया जाता है। नर को नारी के प्रति जो यह सामन्तकालीन तिरस्कार बुद्धि है, उसी से प्रभावित होकर उसे यह सोचना पड़ता है कि वह नारी-शक्ति की पूजा क्यों करे ? जब नर देवता मौजूद है, तो नारी के आगे मस्तक झुकाकर अपने नरत्व को हेय क्यों बनाया जाय ?

भगवान को नारी-रूप में पूजने से किसी की कोई हानि नहीं वरन् लाभ ही है। माता के हृदय में अपार वात्सल्य है। जितनी करुणा एवं ममता माता में होती है, उतनी और किसी सम्बन्धी में नहीं। उपासना के लिए भगवान के किसी घनिष्ट सम्बन्धी रूप में ही मान्यता प्रदान

करनी पड़ती है। निराकार ब्रह्म का ध्यान सम्भव नही, ध्यान के बिना उपासना नही हो सकती। निराकारवादी भी ध्यान-उपासना प्रयोजन के लिए प्रकाश का ध्यान करते हैं। प्रकाश भी आखिर पचभूतो के अन्तर्गत आता है। ध्यान भूमिका मे प्रयुक्त किए जाने वाले प्रकाश-बिन्दु एव सूर्य मण्डल का एक आकार बन ही जाता है, इसलिए उपासना मे कोई न कोई आकार तो निर्धारित करना ही पड़ता है। इस आकार के साथ जितनी ही आत्मीयता, ममता, घनिष्ठता होगी, उतना ही मन लगेगा और चित्त एकाग्र होगा और भावनात्मक तन्मयता की ओर दृष्टि के साथ भगवत् प्राप्ति की ओर प्रगति होती चली जायगी।

जिसके साथ घनिष्ठता स्थापित की जाती है, उनके साथ कोई रिश्ता बन जाता है। रिश्ते का अर्थ है—असाधारण घनिष्ठता। परिवार के सदस्य, कुटुम्बी और कन्याओ के आदान-प्रदान में सम्बन्धित रिश्तेदार कहलाते हैं। उसमे अतिरिक्त लोगो को मित्र कहते हैं, गुरुजन भी। इन्ही वर्गों मे स्वाभाविक प्रेम बढता है। इनके सान्निध्य से सुख और वियोग म दु ख मिलता है। भगवान को प्राप्त करने के लिए उससे प्रेम-सम्बन्ध दृढ करना होता है और उसके लिए उसे कोई प्रेम-पात्र कुटुम्बी रिश्तेदार अथवा मित्र जैसा सम्बन्ध स्थापित करना पडता है। इस सम्बन्ध—मान्यता—मे जितनी अधिक आत्मीयता होगी, उतनी ही प्रतिक्रिया भी मिलेगी। गुम्बज अथवा कुएँ की प्रतिध्वनि की तरह हमारा प्रेम ही ईश्वरीय प्रेम एव अनुग्रह बनकर हमारे पास वापिस लौटता है। जिस स्तर का भाव या प्यार हम भगवान के प्रति व्यक्त करते हैं उसी के अनुरूप दीवार पर मारी हुई रबड की गेद की तरह लौटकर भगवान की अनुकम्पा हमारे पास वापिस आ जाती है। इसलिए भगवान को कोई न-कोई सम्बन्धी मानकर चलना होता है। उस मान्यता के आधार पर ही हमारी उपासना में प्रगति होती है।

भगवान से कोई भी सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। उस

एक को ही किसी भी आत्मीय भावना के साथ देखा जा सकता है। उसके लिए हर मान्यता उपयुक्त है। कहा भी है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव भ्राता च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव.॥

प्रार्थना में जिन सम्बन्धों को गिनाया गया है, उनमे माता का सम्बन्ध सर्वप्रथम है। वह सर्वोपरि है, क्योंकि माता से बढकर परम निःस्वार्थ, अतिशय कोमल करुणा एवं वात्सल्य से पूर्ण और कोई रिश्ता हो ही नही सकता। जब हम भगवान को माता मानकर चलते हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया किसी सहृदय माता के वात्सल्य के रूप मे ही उपलब्ध होती है। इस उपलब्धि को पाकर साधक धन्य हो जाता है।

पिता से माता का दर्जा सौ गुना अधिक बताया गया है। यों पिता भी बच्चो को प्यार करते हैं, पर उस प्यार का स्तर माता की तुलना नही कर सकता। इसलिए सबमे भगवान को माता मानकर चलना अपने ही हित मे है। इसमे अपने को ही अधिक लाभ होता है।

नारी के प्रति मनुष्य मे एक वासनात्मक दुष्टता भी जड जमाए बैठी रहती है। यदि इसे हटाया जा सके—नर और नारी के बीच काम-कौतुक की कल्पना हटाई जा सके, तो विष को अमृत में बदलने जैसी भावनात्मक रसायन बन सकती है। नर और नारी के बीच 'रयि' और 'प्राण' विद्युत-धारा-सी बहती है, उनका सम्पर्क वैसा ही प्रभाव उत्पन्न करता है, जैसा कि बिजली के 'नेगेटिव' और 'पोजेटिव' धाराओ के मिलन से विद्युत सचार का माध्यम बन जाता है। माता और पुत्र का मिलन एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर की आध्यात्मिक विद्युत-धाराओं का सृजन करता है। मातृ-स्नेह से विहीन बालको मे एक बडा मानसिक अभाव रह जाता है, भले ही उन्हे अन्य सासारिक सुविधाएँ कितनी ही अधिक क्यो न हो। पत्नी, बहिन, पुत्री आदि के रूप मे भी नारी नर को महत्वपूर्ण भावनात्मक पोषण प्रदान करती है और उसकी मानसिक

अपूर्णता को पूर्ण करने मे सहायक होती है। यह सासारिक स्तर की बात उपासना के भावना-क्षेत्र में भी लागू होती है। माता का नारी-रूप ध्यान भूमिका मे जब प्रवेश करता है, तो उसमे प्राण की एक बड़ी अपूर्णता पूरी होती है।

युवती नारी के रूप मे माता का ध्यान करके हम नारी के प्रति वासना-दृष्टि हटाकर पवित्रता का दृष्टिकोण जमाने का अभ्यास करते है। इसमें जितनी ही सफलता मिलती है, उतना ही बाह्य जगत में भी हमारा नारी के प्रति वासना-दृष्टि रखने मे मन हटता जाता है। इस प्रकार नर-नारी के बीच जिस पवित्रता की स्थापना हो जाने पर अनेक आत्मिक बाधाएँ, कुण्ठाएँ एव विकृतियाँ दूर हो सकती हैं, उसका लाभ सहज ही मिलने लगता है। माता का ध्यान एक वृद्ध नारी का नहीं वरन् एक युवती का होता है। युवती मे यदि उत्कृष्टता की तथा पवित्र दृष्टि रखी जा सके, तो समझना चाहिए कि आत्मिक स्तर सिद्ध योगियो जैसा तेजस्वी बन गया। उपासना में इस महाशक्ति को नारी रूप देकर इस एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया गया है।

भाषा-विज्ञान की दृष्टि मे शक्ति स्त्रीलिंग है। इसलिए यदि ध्यान-कल्पना मे उसे नारी रूप में निश्चित किया जाय, तो उसमे अनुचित कुछ भी नही है। सच तो यह है कि शक्ति-तत्व को स्त्री-पुरुष के वर्गों मे विभक्त ही नही किया जा सकता। यह विभाजन तो शरीरधारी प्राणियो में सन्तानोत्पत्ति प्रयोजन के लिए होता है। दिव्य शक्तियाँ न तो शरीरधारी हैं और न उन्हें प्रजनन ही करना है, ऐसी दशा मे उनमें वास्तविक लिंग-भेद नही। उन्हे नर-नारी के रूप मे तो ध्यान सुविधा के लिए ही चित्रित किया जाता है अथवा भाषा मे जिस प्रकार का लिंग प्रयुक्त होता है, उसी आधार पर उनका शरीर बना दिया जाता है। यह वस्तु वास्तविक नही वरन् मानवी कल्पना का खेल है।

अग्नि स्त्री लिंग है, तेजस् पुल्लिंग है। शब्दो मे लिंग-भेद है, पर वस्तु एक ही है। वायु स्त्री-लिंग और मरुत पुल्लिंग। बात एक ही है, पर शब्दो के आधार पर लिंग बदल गया। उपवन पुल्लिंग है, वाटिका स्त्री-लिंग—एक ही चीज के दो स्वरूप। शय्या और पलंग एक होते हुए भी लिंग पृथक् है। चन्द्रमा को हिन्दी मे नर और अंग्रेजी मे नारी मानते है। वस्तुत चन्द्रमा एक ग्रह पिंडमात्र है, वह नर है न नारी। भाषा और कल्पना में उसे नर-नारी के रूप में सोचा जाता है। परब्रह्म की सर्वोपरि शक्ति को स्त्री कहा जाय या पुरुष, यह हमारी भाषा और कल्पना पर निर्भर है। वस्तुत वह लिंगभेद से परे है। उपासना मे शक्ति की तुलना नारी रूप मे करके हम अपना ही साधनात्मक एव भावनात्मक प्रयोजन पूर्ण करते है। अतएव इसमे सन्देह तथा विवाद की कोई गुंजाइश नही है।

नर की जननी होने के कारण वस्तुत नारी उससे कही अधिक श्रेष्ठ एव पवित्र है। उसका स्थान सम्भवत बहुत ऊँचा है। माता का पूज्य स्थान उससे भी ऊँचा है। पुरुष की अपूर्णतायें नारी के स्नेह क सिंचन से ही दूर होती हैं। इसलिए यदि नारी के रूप मे हमारा उपास्य-इष्ट हो, तो वह एक औचित्य ही है। अनादि काल से भारतीय धर्म मे ऐसी मान्यता चली आ रही है, माता को ही नही पत्नी को भी पति से अधिक एव प्रथम स्थान मिला है। पति-पत्नि के सम्मिलित नामो मे पत्नी की प्राथमिकता है। लक्ष्मी नारायण, सीता राम, राधे-श्याम, उमा-महेश, शची-पुरन्दर, माता-पिता, गंगा-सागर आदि नामो मे पत्नी को ही प्राथमिकता मिली है। कारण उसकी वरिष्ठता ही है। इस तरह से भी यदि देवता का पुल्लिंग स्वरूप अधिक उत्तम है या स्त्री लिंग स्वरूप, तो उसका सहज उत्तर नारी के ही रूप मे आयेगा। ऐसी दशा में यह शका करना उचित नही।

शक्ति को नारी का रूप देकर उसे जो पूज्य स्थान पर बैठाया गया है, उसमें कुछ अनुचित नही हुआ है।

उपरोक्त तथ्यो की पुष्टि में अगणित शास्त्रोय प्रमाण मिलते हैं, उनमे मे कुछ का उल्लेव नीचे किया जाता है—

अचिन्त्यस्याप्रमेस्य निर्गुणस्य गुणात्मन ।
उपासकाना मिद्धयर्थं ब्रह्मणो रूप कल्पना ॥

"परब्रह्म की सभी शक्तियाँ अचिन्त्य और निर्गुण हैं। उन स्वरूपो को उपासको को समझाने के उद्देश्य मे ऋषियो ने उनके रूपो की कल्पना करके मूर्तियो को बनाया है।"

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गा प्रभवत्यज ।
दृश्यादृश्य विभेदोऽय द्वैविध्ये सति सर्वथा ॥
नाऽह नारी पुमाश्चाह न क्लीव सर्गसक्षये ।
सर्गे सति विभेद स्यात् कल्पितोऽय धिया पुन ॥
अह बुद्धिरह श्रीश्च घृति कीर्ति स्मृतिस्तथा ।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा ॥

—देवी भागवत

"उत्पत्ति के समय सृष्टि के अर्थ से ही भेद प्रतीत होता है। यह दृश्य अदृश्य का विभेद—द्वैतवाद सदैव रहता है अर्थात् सृष्टि-दशा मे ब्रह्म और शक्ति दोनो स्वतन्त्र रूप से प्रकट होते हैं। प्रलय हो जाने पर न मैं स्त्री हूँ, न पुरुष और न क्लीव हूँ। केवल सृष्टिकाल मे ही बुद्धि द्वारा कल्पित भेद-दृष्टि में आता है। सृष्टि की विकास-अवस्था में ही बुद्धि, श्री, घृति कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, पिपामा और क्षमा मैं ही हूँ।"

अरूप भावनागम्य पर ब्रह्म कुलेश्वरि ।
अरूपा रूपिणी कृत्वा कर्मकाडरता नर' ॥

—कुलार्णव तन्त्र

"वह ईश्वरी शक्ति अरूप और केवल भावनागम्य है। पर कर्मकाण्ड में संलग्न मनुष्य उस अरूप में से ही रूप की कल्पना कर लेते है।"

जगन्माता च प्रकृति पुरुषश्च जगत्पिता।
गरीयसीति जगता माता शतगुणं पितु॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

"जगज्जननी प्रकृति है और जगत का पिता पुरुष है। जगत में पिता से सौ गुना अधिक महत्व माता का है।"

न बाला न च त्वं वयस्था न वृद्धा,
न च स्त्री न षण्ढ पुमान्नैव च त्वम्।
सुरो नासुरो नरो वा नारी,
त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा॥

—महाकाली स्तवन

"हे महामाया! न तुम बालिका हो, न वयस्क हो, न वृद्ध हो, स्त्री, क्लीव और पुरुष भी तुम नही हो, न देवता हो, न दानव हो, न नर हो, न नारी हो, तुम केवल परब्रह्मस्वरूपिणी हो।"

अचिन्त्यापि साकार शक्तिस्वरूपा,
प्रतिव्यक्त्यधिष्ठान सत्वैक मूर्ति।
गुणातीतानिर्द्वन्द्व बोधैकगम्या,
त्वमेका परब्रह्म रूपेण सिद्ध॥

—महाकाली स्तवन

"तुम अचिन्तनीय होते हुए भी साकार मूर्तिरूपा हो। प्रत्येक प्राणी मे सत्वगुण रूप में विराजमान रहती हो तथा गुणातीत हो। केवल तत्वज्ञान से ही तुम जानी जाती हो। तुम परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हो।"

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं,
कुमार उत वा कुमारी।

त्व जीर्णो दण्डेन वचसि त्व,
जातो भवति विश्नतो मुख ।।

—श्वेत० ४.३

"तू स्त्री है, तू पुरुप भी है, तू ही कुमार और कुमारी है तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है।"

सा च ब्रह्म स्वरूपा च नित्या स च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता।।
अतएव हि योगीन्द्रै स्त्री पुम्भेदो न मन्यते।
सर्व ब्रह्ममय ब्रह्मन् शश्वत् सदपि नारद ।।

—देवी भाग० ९।१।१०।११

"वही ब्रह्म प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी है। हर-ब्रह्म परमात्मा के अनुरूप सभी गुण उस प्रकृति में निहित हैं जैसे अग्नि मे दाहिका शक्ति सदैव रहती है। इसी से परम योगीगण स्त्री-पुरुष मे भेद नही मानते। हे नारद! वे कहते हैं कि सत्-असत् जो कुछ भी है, सब ब्रह्ममय है।"

'कामधेनु तन्त्र' मे कहा है कि—

युवती सा समाख्याता सा महाकुण्डली परा।

अर्थात् "वह परा जैसी महाकुण्डली युवती के रूप मे कही गई है।"

स तस्मिन्नेवाकशे स्त्रियामाजगाम बहुशोभ मानामुमा हैमवतीम्।

"इन्द्रादि देवताओ को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने को ब्रह्मस्थान मे जो प्रतिमा प्रकट हुई, उसी स्त्री-मूर्ति का दर्शन इन्द्र को हुआ।"

जगद्धात्री महामाया ब्रह्म रूपा सनातनीम्।
दृष्ट्वा प्रमुदिता सर्वे देवताप्सर किन्नरा ।।

—हद् विष्णु-पुराण

"जगन्माता, महामाया, ब्रह्मरूपा, सनातनी, महाशक्ति को देखकर देवगण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर सब परम हर्षित हुए।"

जयखिला सुराराध्ये जय कामेशि कामदे ।
जय ब्रह्ममयि देवि ब्रह्मानन्द रसात्मिके ॥

—ललितोपाख्यान ८।२

"हे महादेवि ! तुम ही समस्त देवताओं की आराध्या हो, तुम्हीं सर्व कामनाओं की ईश्वरी और उनको पूर्ण करने वाली हो।"

त्वमेव सवजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी ।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका ॥
कार्यार्थे सगुणा त्व परमानुग्रहाविग्रहा ।
परब्रह्म स्वरूपा त्व सत्या नित्या सनातनी ॥
तेज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा ॥
सर्वबीज स्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया ।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्व मङ्गल मङ्गला ॥

—ब्रह्मवैवर्त पु० प्रकृति० २१६।७।१०

'तुम्ही विश्व-जननी, मूल-प्रकृति ईश्वरी हो, तुम्ही, सृष्टि-उत्पत्ति के समय आद्याशक्ति के रूप मे विराजमान रहती हो और स्वेच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती हो। यद्यपि वस्तुत तुम निर्गुण हो तथापि प्रयोजनवश सगुण हो जाती हो। तुम परब्रह्मस्वरूप, सत्य, नित्य एव सनातनी हो। परम तेजस्वरूप, सर्वपूज्या एव आश्रय-रहित हो। तुम सर्वज्ञ, सब प्रकार से मगल करने वाली और सर्वमगलो की मगल हो।'

कथ जगत् किमर्थं तत् करोषि के न हेतुना ।
नाह जानामि तद्देव यतोह हि त्वदुद्भव. ॥

—शक्ति-दर्शन

"हे देवी ! तुम किसके लिए, किस हेतु जगत् की सृष्टि करती हो—मैं इस बात को नहीं जानता, क्योंकि मैं तुमसे उत्पन्न हूँ।"

माया ख्याया कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वराबुभौ ।

—शक्तितत्व विमर्शिनी

"जीव और ईश्वर दोनो माया रूपी कामधेनु के दो बछडे हैं।"

उपरोक्त प्रमाणो में परब्रह्म को नारी-रूप में चित्रण करने का रहस्य प्रकट किया गया है। नर और नारी में से किसे प्राथमिकता मिले ? इस प्रश्न के उत्तर मे नृतत्व-विज्ञान का, जीवविज्ञान का भी सहारा लिया जा सकता है। शोधकर्ता इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्राथमिकता नारी को ही है। पहले भूमि बनी, बीजो का आविर्भाव इसके उपरान्त हुआ।

नृतत्ववेत्ता 'हेवलाक ऐलिस' इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मानव जाति का आरम्भ नारी से ही होता है। पुरुष का अस्तित्व पीछे प्रकाश में आया। उन्होने लिखा है—

"प्राथमिकता और प्रकृति के नियमानुसार पहले नारी की ही उत्पत्ति हुई। साधारणतया प्राणीमात्र की उत्पत्ति नारी जाति पर ही अवलम्बित है। प्राणी जगत् की सृष्टि के लिए पुरुष की आवश्यकता ही न थी अथवा गौण थी। रज और वीर्य के सयोग से विभिन्न गुणो द्वारा जीवन-शक्ति को परिपुष्ट एव प्रस्फुटित करने के हेतु लाभ की दृष्टि से पुरुष जाति का पीछे से विकास हुआ।"

नारी मे देवत्व की मात्रा पुरुष की तुलना मे कहीं अधिक है। इसलिए जहाँ पुरुष को अपने गुण, कर्म, स्वभाव की उत्कृष्टता होने पर ही पूज्य पद एव सम्मान मिलता है, वहाँ नारी को उसकी जननी, भगिनी, कन्या आदि विशेषताओं के कारण जन्मजात सम्मान मिल जाता है। उनके हृदय में वह विशालता विद्यमान है जिसके आधार पर शिशु को अपने शरीर का रस निचोडकर प्रदान कर सकती है।

इन्ही विशेषताओ के कारण मानवी होते हुए भी उसे देवी कहा जाता है। अधिकाश स्त्रियो के नाम के अन्त मे देवी पद जोडा जाता है जैसे कि शकुन्तला देवी, उर्मिला देवी, भगवती देवी आदि।

शास्त्र कहते हैं—

स्त्रीषु प्रीतिर्विशेषेण स्त्रीष्वपत्यं प्रतिष्ठितम्।
धर्मार्थौ स्त्रीषु लक्ष्मीश्च स्त्रीषु लोका प्रतिष्ठिता।

—चरक संहिता–चि० स्था० अ० २

"प्रीति का निवास अधिकतर स्त्रियो मे ही होता है। सन्तान की जननी भी वे ही होती हैं। धर्म स्त्रियो मे रहता है, लक्ष्मी भी स्त्रियो मे रहती है। इसलिए संसार स्त्रियों मे ही स्थिर है।"

नारी-रूप मे परमात्मा का दिव्य दर्शन हम पग-पग पर कर सकते हैं। इस प्रकार की दिव्य दृष्टि जिसे प्राप्त है, उसे सच्ची आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त हुई समझनी चाहिए। शक्ति-उपासना मे नारी-प्रतिमा को वन्दनीय मानकर मनुष्य को पवित्रतम बनाने का प्रयत्न किया गया है। नारी वस्तुत मूर्तिमान महामाया ही है। देखिए—

जननी जन्म काले च स्नेह काले च कन्यका।
भार्या भोगाय सम्पृक्ता अन्तकाले च कालिका।
एकैव कालिका देवा विहरन्ती जगत्त्रये॥

"यही महामाया जननी रूप मे हमको जन्म देती है, कन्या-रूप में हमारी स्नेह की पात्र बनती है, भार्या के रूप में भोगदात्री बन जाती है और अन्त समय मे कालिका के रूप मे हमारी इहलीला संवरण कर देती है। इस प्रकार एक ही महादेवी तीनो लोको मे विचरण करती रहती है।"

तन्त्र-ग्रन्थो में नारी को भगवान की मूर्तिमान प्रतिमा मानकर उसकी विधिवत् पूजा करने का विधान है। विभिन्न आयु तथा स्थिति की नारियों को विभिन्न देवियों के रूप मे पूजनीय मानकर उनका

वन्दन अर्चन किया जाता है। ब्राह्मण भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य माना जाता है। नव-रात्रियो मे, पुरश्चरणो के अन्त मे तो विशेष रूप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एव सेवा के आधार पर ही ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं, पर कन्याओ मे वह तत्व जन्मजात रूप से स्वभावत' अनायास ही विद्यमान रहता है।

कुमारी कन्याओ तक ही यह दिव्य भाव सीमित नहीं माना गया है। वरन् उसका क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। प्रत्येक नारी मे देवत्व की मान्यता रखना और उसके प्रति पवित्रतम श्रद्धा रखना एव वैसा ही व्यवहार करना उचित है, जैसा कि देवी देवताओ के साथ किया जाता है। नारी मात्र को भगवती की प्रतिमायें मानकर जब साधक के हृदय को पवित्रता का अभ्यास हो जाय, तो समझना चाहिए कि उसके लिए परम सिद्धि की अवस्था अब समीप है। शास्त्र उसी प्रकार की मनोभूमि बनाने का हमे निर्देश करते हैं और बताते हैं—

सर्वस्त्रीनिलया, जगदम्बामय पश्य स्त्रीमात्रमाविशेषत ।

"स्त्री-मात्र को जगत्माता और जगतगुरु मानकर पूजो।"

विद्यासमस्तास्तव देवि भेदा,
स्त्रिय. समस्तासकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्ब वैतत्,
कास्ते स्तुति स्तव्य परा परोक्ति ॥

"इस सम्पूर्ण ससार मे जो परा-अपरा विद्याएँ हैं, सो आपका ही भेद हैं। इस ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही भेद हैं। ससार मे समस्त नारियाँ आपका ही रूप हैं।"

या काचिदङ्गना लोके सा मातृ कुलसम्भवा ।
कुप्यन्ति कुलयोगिन्यो वनिताना व्यतिक्रमात् ॥
स्त्रिय शतापराधाश्चेत पुष्पेणापि न ताडयेत्।
दोषान्न गणयेत् स्त्रीणा गुणानव प्रकाशयेत् ॥

"इस संसार में जो भी कोई नारी है, वे सब माता के समान होती हैं अर्थात मातृत्व शक्ति सम्पन्न होने के कारण मातृसम आदर की पात्र होती हैं। यदि स्त्रियों का समादर नहीं होता है और कोई भी व्यतिक्रम किया जाता है, तो कुलयोगिनी कुपित हो जाती है। यदि स्त्री के सौ अपराध हों, तो भी उसे पुष्प से भी ताड़ित नहीं करना चाहिए। स्त्रियों के दोषों का भी ध्यान में नहीं लाना चाहिए और उनके विशेष गुणों का ही प्रकाशन करते रहना चाहिए।"

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्र नार्यो न पूज्यन्ते श्मशानं तत्र वै गृहम् ॥

—मनु

"जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं, जहाँ नारी का तिरस्कार होता है, वह घर निश्चय ही श्मशान है।"

स्त्रीणां निन्दां प्रहारं च कौटिल्यं चाप्रियं वचः ।
आत्मनो हितमान्विच्छन्देवो भक्तो विवर्जयेत् ॥

"अपना कल्याण चाहने वाला, माता का उपासक स्त्री की निन्दा न करे, न उन्हें मारे, न उनसे छल करे, न उनका जी दुखाये।"

नारी मात्र के प्रति उच्च भावना रखने और उनके साथ सहृदय सद्व्यवहार करने से व्यक्ति एवं समाज का सर्वांगीण उत्कर्ष हो सकता है। भावनात्मक पवित्रता से बढ़कर मनुष्य के पास और कोई श्रेष्ठता हो नहीं सकती।

जब हम भगवान को माता के रूप में पूजते हैं तो वे भी हमारे लिए माता जैसा वात्सल्य लेकर प्रस्तुत होते हैं। कहना न होगा कि पिता की तुलना में माता का हृदय अत्यधिक कोमल होता है। वह अपने पुत्र एवं भक्त के प्रति सहज ही करुणार्द्र हो उठती है। माता की शरण लेने वाला अपेक्षाकृत सदैव ही अधिक लाभ में रहता है। ऐसे उदाहरण भी हैं—

पिते वत्वत्प्रेयाजननि परिपूर्णागसि जने ।
हित स्रोनी वृत्या भवति च कदाचित्कलुषधी ॥
कि येतन्निदोप व इह जगतीति त्वमुचितै ।
रूपायै विस्यार्य स्वजनयसि माता तद सिन ॥

—पराशर भट्ट

"परम पिता परमात्मा जब अपराधी जीव पर पिता के समान कुपित हो जाते हैं, तब आप ही उन्हे समझाती हो कि—यह क्या करते हो ? इस ससार मे पूर्ण निर्दोष कौन है ? उनका क्रोध शान्त कर आप हा उनमे दया उपजाती हैं । इसलिए आप ही हमारी दयामयी माता हैं ।"

पुरत पतित देवी धारण्या वायस तदा ।
तच्छिर. पादयो स्तस्य योजयामास जानकी ॥

—रामायण

"जब काकरूपी जयन्त तीनो लोको मे आश्रय न पाकर रामचन्द्र जी की शरण आकर दूर पड गया, तो जानकीजी ने उसका सिर रामचन्द्रजी के पैरो मे रखकर उसकी रक्षा की प्रार्थना की ।"

अस्तु, नारी को हेय या छोटा मानकर उसे पूजा के अयोग्य होने की कुशका मन में नही उठने देनी चाहिए और न यह सोचना चाहिये कि पुल्लिग देवता का पूजन मातृ पूजन से अधिक उत्तम है । माता ही प्रथम देवता है । माता की शरण लेकर हम अपने ऊपर चढ़े हुए चिन्ताओ, कुण्ठाओ, द्वेष दुर्भावो एव शोक-सतापो से छुटकारा पा सकते हैं ।

●●●

कुमारी-पूजन का उद्देश्य

आधार और उद्देश्य—

कुमारी-पूजन का महत्व भारतवर्ष मे प्राचीन काल से प्रतिष्ठित रहा है। भारत अध्यात्मवादी देश है। प्रत्येक क्रिया जिसका अध्यात्म से सम्बन्ध है, यहाँ उच्च सम्मान की पात्र रही है। जहाँ पेड, पौधो और जलाशयो तक की पूजा-अर्चा होती हो, वहा सात्विकता की प्रत्यक्ष मूर्ति—कुमारी की कैसे उपेक्षा की जा सकती है। उसे उच्च आसन पर बिठाना हमारे उच्च सिद्धातो का ही प्रतीक है। देवी-देवताओ की आराधना मे हमारा उद्देश्य ईश्वर के किन्ही विशिष्ट गुणो को अपने मे ओत-प्रोत करना होता है। जब मूर्ति-पूजा से हम गुणो के आकर्षण की प्रक्रिया को साकार रूप दे सकते हैं, तो क्रियाशील आराधना शीघ्र फलदायी सिद्ध हो सकता है।

शास्त्रो मे ईश्वर को सनातन-कुमारी माना गया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् (४।३) मे ईश्वर को स्त्री, पुरुष, कुमार और कुमारी सभी की सज्ञा दी गई है—

त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उत वा कुमारी।

क्योकि—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा।
तदेव शुक्र तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापति॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४।२

"वही अग्नि है, वही सूर्य है, वही वायु है, वही चन्द्रमा है, वही नक्षत्र है, वही जल और प्रजापति है तथा ब्रह्म भी वही है।"

सबमें विभु को देखने वाला कुमारी में भी अपने इष्टदेव के दर्शन करता है। एक विद्वान् ने बड़े ही सुन्दर शब्दों मे अपने भावों को अभिव्यक्त किया है—

"ईश्वर ही सनातन कुमारी है, जो खिले हुए कमलों के गुच्छे के समान नवीन और कोमल है और जिसके नेत्र-रूपी कमल विश्व-रूपी जल मे तैरते रहते हैं। वह मनुष्यों की ओर प्रेमपूर्ण और करुणा भरी दृष्टि से देखती है और उसकी वाणी मे सन्ध्याकालीन मन्द-मन्द वायु का सुकोमल संगीत भरा हुआ है। जब मनुष्य की आँखें उसकी आँखों के स्पर्श मे आती हैं और उसके अधरों पर थिरकने लगते हैं, तब वह उसकी आत्मा को अपने में और अपनी आत्मा को उसके अन्दर देखने लगता है। यहाँ तक कि उसका पुरुष-भाव भी मिट जाता है और संसार के सभी पदार्थ मधुर और कोमल हो जाते हैं।"

ईश्वर की कुमारी के पवित्र रूप मे उपासना करना एक विशिष्ट जीवन पद्धति है, जो नैतिक व आध्यात्मिक गुणों का विकास करने के साथ-साथ मनोविकारों और दुष्प्रवृत्तियों के शमन मे भी सहायक सिद्ध होती है। ऐसा साधक नारी को भोग की सामग्री नहीं, पवित्रता की मूर्ति मानता है। जहाँ भी इसके दर्शन होते हैं, उसका मस्तक स्वतः झुक जाता है। इसके विपरीत जिस मन में नारी के प्रति बुरे भाव उत्पन्न हो जाते हैं, वह आत्मघाती तो है ही, सामाजिक न्याय से भी वह पापी ठहरता है। वह अपने शरीर, मन, आत्मा, समाज और राष्ट्र सभी के साथ विश्वासघात करता है। विषय-वासनाओं का गीता मे इस प्रकार दुष्परिणाम घोषित किया है—

"विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष का इन विषयों मे संग बढ़ जाता है। फिर इस ढंग से यह वासना उत्पन्न होती है कि हमको

काम (अर्थात् वह विषय) चाहिए और इस (काम की तृप्ति होने मे विघ्न होने से) काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। क्रोध से सम्मोह अर्थात् अविवेक होता है, सम्मोह से स्मृति-भ्रंश, स्मृतिभ्रंश से बुद्धिनाश और बुद्धिनाश से (पुरुष का) सर्वस्वनाश हो जाता है।" (२।६२-६३)

ऋषि मानव मन का विश्लेषण और अध्ययन करके इस परिणाम पर पहुँचे थे कि साधारण व्यक्तियो मे पुराने संस्कारो वश पशु-भाव का आधिपत्य रहता है थोडा-सा भी उत्तेजक कारण मिलने पर वह उस ओर प्रवृत्त होने लगते हैं, अतः उन्हे एक मनोवैज्ञानिक मोड देना ही उचित है। व्यवहार मे देखा गया है कि काम जीवन के किसी भी मोड पर व्यक्ति को पथभ्रष्ट कर सकता है। बडे-बडे ऋषि भी इसका शिकार हो चुके हैं। इससे तो तभी बचा जा सकता है, जब व्यक्ति का मन पूर्ण रूप से सस्कारित हो चुका होता है और वह अपने चारो ओर सत्य-शिव-सुन्दर के ही दर्शन करता है। नारी को पवित्र रूप मे देखना एक उच्च साधना है, जो उसे आत्मिक उत्थान की ओर तीव्र गति से ले जाने मे सहायक होती है। देवी का उपासक पतन मे सुरक्षित रहता है यह साधना की आवश्यक प्रक्रिया है। यदि इसका पालन न हो सके, तो मार्ग में अनेको प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती रहती हैं।

शक्ति-रूपिणी—

कुमारी शक्ति, सिद्धि, तेजस्विता, सात्विकता, पवित्रता, शालीनता व कोमलता की प्रतिमूर्ति है। आसुरी तत्व उसपे पनप नही सकते। यदि वह ऐसा साहस करते हैं, तो वह उनका भक्षण कर जाती है, उन्हे नष्ट कर देती है, उसका तेज इतना प्रचण्ड है। योगिनी-तन्त्र में इस सम्बन्ध मे एक प्रेरक कथा आती है—

ततः काली करास्या द्विजकन्यास्वरूपतः।

गत्वा कोलापुरं देवी कोलासुरसमीपतः ।
तमयाचत् तद्भक्ष्यं कुमारी दैत्यपुङ्गवम् ॥

'एक समय की बात है कि करालवदना महाकाली ने ब्राह्मण कन्या का रूप धारण कर कोलासुर के कोलापुर में पहुँचकर उस दैत्य से भोजन माँगा।"

मातृतातविहीनाहं सहायपरिवर्जिता ।
क्षुधिताहं महाराज भोज्यं मह्यं प्रदीयताम् ॥

वह बोली—मैं माता-पिता विहीना एवं असहाय कन्या हूँ। हे राजन्! मुझे भोज्य पदार्थ दीजिए।"

ततः कोलासुरो देवि मायया परिमोहितः ।
दयया तां करे धृत्वा विवेशान्तः पुरे स्वयम् ॥

"उस कुमारी पर कोलासुर मोहित हो गया और हाथ पकड़कर उसे अपने अन्तःपुर में ले गया।"

उवाच भोज्यं दास्यामि तुभ्यं तत्ते समीप्सितम् ।
अत्रोपविश बाले त्वमासने मणिरञ्जिते ॥

"और कहने लगा—हे बाले! तुम्हारी जो इच्छा हो, वही भोजन मैं तुम्हें दूँगा। तुम इस मणि-जटित श्रेष्ठ आसन पर आकर बैठो।"

इत्युक्त्वासौ ददौ भोज्यं नानाविधमनेकशः ।
भुक्त्वा सा सकलं देवि पुनर्देहीति वादिनी ॥

पुनर्ददौ बहुतरं तच्चापि बभुजे स्वयम् ।
नाहं तृप्ता वदन्ती तां तदोवाच महासुरः ॥

यथा तृप्तिर्भवेद्बाले तावद्धि कुरु तत्तथा ।
इत्युदीरितमाकर्ण्य काली बालस्वरूपिणी ॥

कोपं हयं हयं हस्तिनश्च रथं सैन्यं सबान्धवम् ।
क्षणेन बभुजे काली कोलं चापि महाबलम् ॥

"यह कहकर दैत्य ने अनेक प्रकार के भोजन उसे दिये, बालिका ने उन्हे खाकर कहा—इनसे मैं तृप्त नही हुई, अभी और भोजन दो। दैत्य ने फिर बहुत-सा भोजन दिया और उसे भी खाकर बाली कि—मैं इससे भी तृप्त नही हुई। यह सुनकर दैत्य कहने लगा कि जिससे तुम्हारी तृप्ति हो सके, वही भक्षण कर लो। यह सुनकर बालरूपिणी काली ने उसका कोष, अश्व, हाथी, रथ, सेना, बान्धव आदि का भक्षण कर कोलासुर का भी भक्षण कर लिया।"

अथासुरास्तथा नाष्टान् दृष्ट्वा विष्णुमुखा सुरा ।
निरन्तरे पुष्पवृष्टि चक्रस्ते ननृतु परम् ॥
जगु सुललित गीत देवगन्धर्वकिन्नरा ।
विद्याधरी देवपत्नी किन्नरीभि समन्तत ॥

"फिर विष्णु आदि देवताओ ने सब शत्रुओ का सहार हुआ देखकर पुष्प-वृष्टि की। देव, गन्धर्व, किन्नर एव विद्याधरी किन्नरियाँ और देव पत्नियाँ हर्षातिरेक म नृत्य करने लगी।"

पूजिता तै कुमारी सा कुसुमर्नन्दनोद्भवै ।
सर्वलोके पूजिता च कुमारी सा दिने दिने ॥

"फिर सबने नन्दन वन मे उत्पन्न पुष्प और चन्दनादि से उस कुमारी का पूजन किया। फिर सभी के यहाँ कुमारी की पूजा होने लगी।"

इस कथा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि कुमारी मे स्वाभाविक रूप मे इतनी शक्ति होती है कि वह अवगुणो व दुष्प्रवृत्तियो को नष्ट कर डालती है। कुमारी-पूजन से साधक मे भी यह शक्ति अवतरित होती है। इस शक्ति के विकसित होने पर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त होना सम्भव है। हिन्दू धर्म मे कुमारी-पूजन का यही कारण है। तन्त्रो ने भी इसे साधना के रूप मे अपनाया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण साधुबेला तीर्थ मे देखा जा सकता है, जहाँ दोनो नवरात्रो मे अष्टमी के दिन

नियमपूर्वक कुमारी-पूजन होता है। ब्राह्मण-भोजन की तरह ही कन्या-भोजन का भी पुण्य माना गया है। नवरात्रियों में, पुरश्चरणों के अन्त में तो विशेष रूप से कन्या-भोजन कराने की ही परम्परा है। ब्राह्मण तो विद्या, तपश्चर्या एवं सेवा के आधार पर ब्राह्मणत्व प्राप्त करते हैं पर कन्याओं में वह तत्त्व जन्मजात रूप में स्वभावतः अनायास ही विद्यमान रहता है।

कुमारी-लक्षण—

कुमारी किसे माना जाए? इस पर शास्त्रों में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। बृहज्ज्योतिषार्णव, धर्मस्कन्ध ८, उपासना स्तम्भ ३, अध्याय १२८ में कुमारी का निरूपण किया गया है और पूजा योग्य कुमारी के लक्षण बताए गये हैं—

एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्।
गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते॥

द्विवर्षोत्तर मारभ्य दशवर्षावधि क्रमात्।
पूजयेत्सर्वकार्येषु यथाविध्युक्तमार्गतः॥

कुमारिका द्विवर्षा तु त्रिवर्षा च त्रिमूर्तिनी।
चतुर्वर्षा तु कल्याणी पञ्चवर्षा तु रोहिणी॥

षड्वर्षा तु भवेत्काली सप्तवर्षा सु चण्डिका।
शाम्भवी चाष्टवर्षा तु दुर्गा तु नवमा स्मृता॥

दशवर्षा सुभद्रेति नामाभिः परिकीर्तिता।
तत्तत्कामनया वयोऽवस्था विशेषेण पूजनम्।
दुःख दारिद्र्यारिद्रधनानाशाय शत्रूणां नाशहेतवे॥

"दो वर्ष की आयु वाली कन्या से लेकर १० वर्ष की अवस्था तक की कुमारी ही पूजा के योग्य मानी गई है। एक वर्ष की कन्या को गन्ध-पुष्पादि में कोई प्रीति नहीं होती है। अतः वह पूजा के योग्य नहीं होती है। दो वर्ष की कन्या कुमारिका होती है। तीन वर्ष की आयु

वाली त्रिमूर्तिनी कही जाती है। चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी छै वर्ष की कालिका, सात वर्ष की चण्डिका, आठ वर्ष की शाम्भवी, नौ वर्ष की अवस्था वाली कन्या दुर्गा का अवतार कही जाती है और दस वर्ष की सुभद्रा के नाम के तान्त्रिकों के यहाँ प्रसिद्ध है। तन्त्र साधना में उसी अवस्था वाली कन्या का पूजन करना चाहिए। दुःख और दरिद्रता का नाश करने के लिए तथा शत्रुओं के विनाशार्थ और आयुष्य एवं बल की वृद्धि के लिए कुमारिकाओं का पूजन होता है। उक्त कामनाओं के लिए दो वर्ष की कन्या का अर्चन करना चाहिए।"

अन्य तन्त्रों में इस प्रकार वर्णन है—

"एक वर्ष वाली बालिका 'कुमारी' कहलाती है, दो वर्ष वाली 'सरस्वती', तीन वर्ष वाली 'त्रिधामूर्ति', चार वर्ष वाली 'कालिका', पाँच वर्ष की होने पर 'सुभगा', छः वर्ष की 'उमा', सात वर्ष की 'मालिनी' आठ वर्ष की 'कुब्जा', नौ वर्ष की 'काल सन्दर्भा', दसवें में 'अपराजिता', ग्यारहवें में 'रुद्राणी', बारहवें में 'भैरवी', तेरहवें में 'महालक्ष्मी', चौदह पूर्ण होने पर 'पीठनायिका', पन्द्रहवे में 'क्षेत्रज्ञा' और सोलहवे में 'अम्बिका' मानी जाती है। इस प्रकार जब तक ऋतु का उद्गम न हो, तभी तक क्रमशः संग्रह करके प्रतिपदा आदि से लेकर पूर्णिमा तक वृद्धि-भेद से कुमारी पूजन करना चाहिए।"

—रुद्रयामल, उत्तराखण्ड ६ पटल

"आठ वर्ष की बालिका गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या कही गई है। इसके बाद वही महामाया और रजस्वला भी कही गई है। बारहवें वर्ष से लेकर बीसवें वर्ष तक वह सुकुमारी कही गई है।"

—विश्वसार तन्त्र

"यजमान को चाहिए कि दस कन्याओं का पूजन करे। उनमें से

भी दो वर्ष से लेकर दस वष तक की अवस्था की कुमारियो का ही पूजन करना चाहिए। जो दो वर्ष की आयु वाली है वह कुमारी, तीष वर्ष की त्रिमूर्ति, चार वर्ष की कल्याणी, पाँच वर्ष की रोहिणी, छ वर्ष की कालिका, सात वष की चण्डिका, आठ वष की शाम्भवी, नौ वर्ष की दुर्गा और दस वर्ष सुभद्रा कही गई है। इनका मत्रो द्वारा पूजन करना चाहिए। एक वप वाली कन्या को पूजा से प्रसन्नता नही होगी। अत उसका ग्रहण नही है और ग्यारह वष से ऊपर कन्याओ का पूजा मे ग्रहण वर्जित है।"

– मन्त्र महोदधि १८ तरङ्ग

'जो कुमारी को अन्न, वस्त्र, जल अर्पण करता है, उसका वह अ न मेरु के समान और जल समुद्र के समान अक्षुण्ण और अनन्त होता है। काली-तत्र मे कहा गया है— सभी बडे बडे पर्वों पर अधिकतर पुण्य मुहूत मे और महानवमी की तिथि को कुमारी-पूजन करना चाहिए। सम्पूर्ण कर्मों का फल प्राप्त करने के लिए कुमारी-पूजन अवश्य करे।" वहन्नील तन्त्र के अनुसार—"पूजित हुई कुमारियाँ विघ्न, भय और अत्यन्त उत्कट शत्रु को भी नष्ट कर डालती हैं।" रुद्रयामल में लिखा है—'कुमारी साक्षात् योगिनी और श्रेष्ठ देवता है। विधियुक्त कुमारी को अवश्य भोजन कराना चाहिए। उसे पाद्य, अर्घ्य कुंकुम और शुभ चन्दन आदि अपण करके उसकी पूजा करे।"

तस्माच्च पूजयेद्बाला सर्वजातिसमुद्भवाम् ।
जातिभेदो न कर्तव्य कुमारी पूजने शिवे ।।

"सभी जाति की कुमारियो का पूजन करना चाहिए, क्योंकि कुमारी की पूजा मे जाति-भेद निषेध है।"

जातिभेदान्महेशानि नरकान्न निवर्तते ।
विचिकित्सापरो मन्त्रा ध्रुवञ्च पातकी भवेत् ।।

"इस कार्य में जो मनुष्य जाति-भेद का विचार करता है, वह

नरक में गिरकर उठ नहीं सकता। यदि स प्रकार मनुष्य कर्म करने में न देह करे, तो वह पापी होता है इसे सत्य समझो।'

माहात्म्य—

तन्त्रों में कुमारी पूजा के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। योगिनी तन्त्र में साधना का फल इस प्रकार बताया गया है—

देवीबुद्ध्या महाभक्त्या तस्मात्तां परिपूजयेत् ।
सर्वविद्यास्वरूपा हि कुमारी नात्र संशयः ॥

"इसलिए महाभक्ति भाव से और देवी में बुद्धि करके बालिका की पूजा करे। बालिका सब विद्या स्वरूपिणी है, इसमें संशय नहीं है।

एका हि पूजिता बाला सर्वं हि पूजितं भवेत् ।
यदि भाग्यवशाद्देवि वेश्या कुल समुद्भवाम् ॥

कुमारी लभते कान्ते सर्वस्वेनापि साधक ।
यत्नत पूजयेत्तां तु स्वर्णरौप्यादिभिर्मुदा ॥

"एक बालिका की पूजा करने से ही सब देवी-देवताओं की पूजा हो जाती है। यदि भाग्य से वेश्या के वंश में उत्पन्न बालिका मिल जाय, तो प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वर्ण, चाँदी आदि सर्वस्व प्रदान करके और पूजा करे।"

तदा तस्य महासिद्धिर्जायते नात्र संशय ।
महासिद्धिर्भवेदस्य स एव सदाशिव ॥

"ऐसा करने से साधक महासिद्धि को प्राप्त करता है, और वह सदाशिव के समान हो जाता है।"

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि तच्छृणुष्व प्रियंवदे ।
वपुस्तस्य महेशानि काञ्चनं परिजायते ॥
सर्वसिद्धियुतो भूत्वा क्रीडते भैरवोयथा ॥

"जो कुमारी की साधना करता है, उसका देह कञ्चन के समान

कान्तिवान होता है और सब सिद्धियों से सम्पन्न होकर भैरव के समान क्रीडा करने वाला होता है।"

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गतिस्तस्य सुनिश्चितम् ।
हठात्तु जायते सर्वं यद्यन्मनसि वर्तते ॥

"वह स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तथा सर्वत्र ही गमन कर सकता है। जब जैसा चाहे वैसा रूप धारण कर सकता है।"

देवदानव गन्धर्व नाग किन्नर पोषित ।
विद्याधरी राजनारी सेवन्ते त दिवानिशम् ॥

"देव, दानव, गन्धर्व, नाग, किन्नरी, विद्याधरी, राजनारी यह सभी कन्या-साधक की सेवा करती है।"

अन्ते च प्राप्यते तेन पर निर्वाणमुत्तमम् ।
कुमारीपूजने काले साधक शिवता व्रजेत् ॥

साधक अन्त में परम निर्वाण-पद प्राप्त करता है और कन्या-पूजा के समय में उसे शिवत्व की प्राप्ति होती है।"

कुमारी पूज्यते यत्र स देश क्षितिपावन. ।
महापुण्य तमो भूयात्समन्तात्क्रोश पचकम् ॥

"जहाँ कन्या की पूजा होती है, वह स्थान पृथ्वी मे पवित्र है। पाँच कोश तक उसमे अपवित्रता नही रहती।"

महाराज प्रयत्नेन सर्वसिद्धिफलप्रदम् ।
सर्वयज्ञोत्तम भूप कुमारीपूजन शृणु ॥
कृते यस्मिन्महालक्ष्मीरचिरेण प्रसीदति ।
आमन्त्रयेद्दिने पूर्वे कुमारी भक्तिपूर्वकम् ॥
पूजादिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम ।
कुमारीपूजन कृत्वा महालक्ष्मी प्रसीदति ॥
मण्डले चरणौ तस्या क्षालयेच्छुभवारिणा ।
अर्चयेद्धेमपात्रेण वारि पुष्पाक्षतै समम् ॥

सुविताने शुभे स्थाने पङ्कजोपरि पीठके।
उपवेश्य कुमारी ता स्वाङ्गे न्यासान्समाचरेत् ॥
—बृहज्ज्योतिषार्णव, धर्मस्कन्ध ८, वरानना स्तम्भ ३, अध्याय १२८

'हे राजन् ! इस नवरात्री पूजा के विधान में कुमारिका के पूजन का बहुत बड़ा महत्व होता है और यह सर्वसिद्धि के फल को प्रदान करने वाला होता है। समस्त यज्ञों में इसे उत्तम बतलाया जाता है। इसके करने पर महालक्ष्मी बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाती है। मण्डप मे कुमारिका के चरणों का पहिले शुभ एवं शुद्ध जल से प्रक्षालन करना चाहिए। किसी हेम पात्र द्वारा पुष्पाक्षत से उसका अर्चन करे। सु-वितान मे शुभ स्थान पर पीठ पङ्कज के ऊपर उस कुमारिका को बैठा-कर अपने अङ्गो मे न्यास करे।"

विसर्जयेत्कुमारी ता स्वगृहे सत्वनिभर ।
अनेन विधिना भक्त्या कुमारी योऽभिपूजयेत् ॥
पृथिव्या राज्यमासद्द शिवसायुज्यता व्रजेत् ।
य य प्रार्थयते काम देवनामपि दुर्लभम् ॥
कुमारीपूजन कृत्वा त त प्राप्नोत्यसशयम् ।
ब्रह्माविष्णुमहेशाना कुमारो परमा कला ॥

"इस विधि से जो कुमारी का पूजन करता है, वह पृथ्वी पर राज्य जैसा वैभव पाकर अन्त मे शिव की सायुज्यता को प्राप्त होता है। जिस जिस कामना की प्रार्थना साधक करता है, चाहे वे दुर्लभ भी क्यो न हो, कुमारी के पूजन करने से उन सबकी निश्चय ही प्राप्ति हो जाती है।"

आयुष्यबलवृद्ध्यथ कुमारी पूजयेन्नर. ।
आयुष्कामस्त्रिमूर्ति तु त्रिवर्गस्य फलाप्तये ॥
अपमृत्युव्याधि पीडादु खानामपनुत्तये ।
सौख्यधान्य धनारोग्य पुत्रपौत्रादिवृद्धये ॥

कल्याणी पूजयेद्धीमान् नित्य कल्याणवृद्धये ।
आरोग्य सुखकामी च जयकामी तथैव च ॥
यशस्कामी नरो नित्य रोहिणी परिपूजयेत् ।
विद्यार्थी च जयार्थी च राज्यार्थी चविशेषत ॥
शत्रूणा च विनाशार्थं कालिका पूजयेन्नर ।
ऐश्वय शुभकामी च स्वर्गकामी च यो नर ॥
सग्रामे जयकामो च चण्डिका परिपूजयेत् ।
दु ख दारिद्रयनाशाय नृप समोहनाय च ॥
महापाप विनाशाय शाम्भवी च प्रपूजयेत् ।
सवल्लोत्कट शत्रूणा सुग्रमावन कर्मणि ॥
दुर्गां दुर्ग विनाशाय पूजयेद्यत्नतो बुध. ।
सौभाग्यधन धान्यादिवाञ्छितार्थ फलाप्तये ॥

"जो अपनी आयु की कामना रखता है, वह उसकी पूर्ति के लिए तथा त्रिवर्ग के फलो की प्राप्ति के लिए त्रिमूर्तिनी कुमारी का यजन करे । अप-मृत्यु व्याधि, पीडा के दु खो के नाश के लिये धन, धान्य, सौख्य, आरोग्य, पुत्र, पौत्रादि के लिए कल्याणी नाम वाली कन्या का पूजन करे । इससे नित्य उक्त वस्तुओ की वृद्धि और कल्याण होता है । आरोग्य के सुख तथा जय की कामना वाला और यशोवृद्धि के के इच्छुक पुरुष को 'रोहिणी' नाम वाली कन्या का यजन करना चाहिए । विद्या, जय और राज्य की इच्छा वाले को यह पूजन अभीष्टप्रद होता है । शत्रुओ के विनाश करने की कामना वाले को छ वर्ष की आयु वाली 'कालिका' नाम की कन्या का पूजन करना चाहिए । अपने ऐश्वर्य, शुभ, स्वर्ग और सग्राम मे जय प्राप्त करने का मनोरथ रखने वाले पुरुष को 'चण्डिका' नाम धारिणी सात वर्ष की आयु वाली कन्या का पूजन करना चाहिए । दारिद्र्य, दु ख के नाश, नृपो का सम्मोहन और महापापो के नाश के लिए 'शाम्भवी' नाम की कन्या का पूजन

करे। सबल और उत्कट शत्रुओं के उग्र दुर्ग के विनाश के लिये दुर्गा का यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिए। सौभाग्य और धन-धान्य की वृद्धि के लिए तथा वाञ्छित श्रय की फल-प्राप्ति के लिए और दास दासी की बढ़ोत्तरी के लिए सुभद्रा का यजन करना चाहिए।"

उपरोक्त कन्या-पूजन के माहात्म्य को अतिशयोक्ति शैली में भले ही वर्णन किया गया हो, परन्तु यह निश्चित है कि इस प्रक्रिया में नैतिकता का उच्च मूल्यांकन निहित है। यदि पुरुषों में आरम्भ से ही हम कुमारियों के प्रति पवित्र और उच्च सम्माननीय भाव रखने की शिक्षा व प्रेरणा देने की पद्धति को अपनाएँ, तो कोई कारण नहीं कि पुरुषों में नारी जाति के प्रति कुत्सित भाव उत्पन्न हो सके। आज के युग में जब चारों ओर चलचित्रों, कहानी, उपन्यासों और पत्र-पत्रिकाओं ने स्वार्थवश कामुक वातावरण बना रखा है तो इसकी अतीव आवश्यकता अनुभव हो रही है। इस पूजन को व्यापक रूप में प्रचलित किया जाना चाहिए और इसमें निहित चरित्रगत उच्च भावों का विश्लेषण करना चाहिए। मनु जैसे महर्षियों के मन में भी नारी ने अपनी पवित्रता की धाक जमा ली थी, तभी उन्हें कहना पड़ा था कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

अतः कुमारी पूजन को नैतिक उत्थान की एक उत्तम साधना मानना चाहिए।

कुमारी पूजन-विधि—

देवी-पुराण में विधि का निर्देश इस प्रकार है—

ब्रह्मोवाच

न तथा तुष्यते शक्र होमदान जपेन तु।
कुमारी भोजने नात्र यथा देवी प्रसीदति ॥
अत्र नवरात्रे प्रक्षाल्य पादौ सर्वासां कुमारीणां।
च वासव सुलिप्ते भूतले रम्ये तत्रता आसन स्थिता ॥

पूजयेद् गन्ध पुष्पैश्च स्रग्भिश्चापि मनोरमैं ।
पूजयित्वा विधानेन भोजन तासु दापयेत् ॥
खण्ड लड्डु गुड सर्पि दधिक्षीर ममाक्षिकम् ।
ताम देय कुमारीणा शनै स्स भोजयेत्तु ता ॥
पानीय याचित देयमन्न वा याचित शुभम् ।
तास्तृप्तास्तु यदा सर्वास्तदा त्वाचमनद्ददेत् ॥
आचम्य चाक्षतान्दत्वा त्वया क्षन्तव्य मित्युत् ।
दातु शिरसि दातव्याः कन्यकाभिरथाक्षता' ॥
तेनापि प्रणिपातस्तु कर्तव्यो भक्ति पूर्वक ।
अनेन विधिना शक्र ! देवी क्षिप्र प्रसीदति ॥
ददाति विविधान्कामान्मनोभीष्टान्सुराधिप ।
राज्य कृत्वा तत पश्चाद्देवीलोकञ्च गच्छति ॥
स्कान्देऽपि ! एकैका पूजयेत्कन्यामेकवृद्धया तथैव च ।
द्विगुण त्रिगुण वापि प्रत्येक नवक वरम् ॥
नवभिर्लभते भूमिमैश्वर्यं द्विगुणेन तु ।
एक वृद्धया लभेतक्षेममेकैकेनश्रियभमेत ॥
एक वर्षा तु या कन्या पूजार्थं ता तु वर्जयेत ।
गन्ध पुष्प फला दीना प्रीतिस्तस्या न विद्यते ॥
यथोक्ता लाभेतु विवाहितापि या पुष्पिणी तावत—
पूज्याविवाहानन्तर मपि कन्या त्वमुपजायते ॥
तावत्सपूज्यते कन्या यावत्पुष्प न दृश्यते ।
इति भगवन्त भास्कर धृत देवी पुराणवचनात ॥
कामना परत्वेन आसा क्रमेण पूजाया विशेष उक्त ।
तत्रैव ! दु.ख दारिद्र. नाशाय शत्रूणा शनाय च ॥

सुभद्रा पूजयेन्मर्त्यो दासी दासविवृद्धये ।
पूजा प्रकारश्च तत्रैव । प्रातःकाले विशेषेण कृताभ्यङ्गो विशेषत ॥

अथ वर्ज्य कन्या आह

हीनाधिकाङ्गी कुष्ठादि विकारां कुकुलातथा ।
ग्रन्थि स्फुटित सर्वाङ्गी रक्त पूय व्रणाङ्किता ॥
जात्यन्धा केकरा काणा कुरूपा तनु रोमशाम् ।
सत्यजेद्रोगिणी कन्या दासी गर्भ समुद्भवाम् ॥
अथ ज्ञाति भेदेन कामना भेदेषु तत्पूज्य तामाह ।
ब्रह्माणी सर्व कार्येषु जयार्थे नृप वंशजाम् ॥
लाभार्थे वैश्य वंशोत्था सुतार्थे शूद्र वंशजाम् ।
दारुणे चान्य जातीया पूजयेद्विभिना नर ॥
अथ वर्ण भेदेन पूजाभेद ॥
गौरी सर्वेष्ट ससिद्धयै पीताङ्गी जय कीर्तये ।
लाभार्थेऽरुणवर्णांगीमसितामारणादिष्वति क्वचित् ॥
एक वंश समुद्भूता कन्या सम्यक् प्रपूजयेदिति कौलावलि तन्त्रे ॥

तन्त्र विधि

यजमान पूजयेच्च कन्याना नवक शुभम् ।
द्वि वर्षाद्यादशाब्दान्ता कुमारी परिपूजयेत् ॥
अर्थादेक हायनाल्प वयस्का वर्ज्या. ।
त आसने उपवेश्यावाहयेत् मन्त्रेण ॥

अथावाहन मन्त्र

ॐ मन्त्राक्षर मयी लक्ष्मी मातृणा रूप धारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिका साक्षात्कन्यामावाह्याम्यहम् ॥

अनेनैव मन्त्रेण नवापि आवाहयेत ।
अशक्तौ यथाशक्ति एकामपि पूजयेत् ॥

॥ पाद्यादि पूजनं विधाय ॥

द्विहायना कुमारी सञ्ज्ञा

सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे ! सर्वशक्ति स्वरूपिणि !
पूजा ग्रहाण कौमारि ! जगन्मातर्नमोस्तु ते ॥१

त्रिहायना त्रिमूर्ति सञ्ज्ञा

त्रिपुरा त्रिपुराधारा त्रिवर्षां ज्ञानरूपिणीम् ।
त्रैलोक्य वन्दिता देवी त्रिमूर्ति पूजयाम्यहम् ॥२

चतुर्वर्षा कल्याणी

कलात्मिका कलातात कारुण्य हृदया शिवाम् ।
कल्याण जननी देवी कल्याणी पूजयाम्यहम् ॥३

पञ्चवर्षा रोहिणी

अणिमादि गुणाधारामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।
अनन्त शक्तिका लक्ष्मी रोहिणी पूजयाम्यहम् ॥४

षड्वर्षा कालिका

कामचारा शुभा कान्ता कालचक्र स्वरूपिणीम् ।
कामदा करुणोदारा कालिका पूजयाम्यहम् ॥५

सप्तवर्षा चण्डिका

चण्डवीरा चण्डमाया चण्ड मुण्ड प्रभञ्जनीम् ।
पूजयामि सदा देवी चण्डिका चण्ड विक्रमाम् ॥६

अष्टवर्षा शाम्भवी

सदानन्दकरी शान्ता सर्व देव नमस्कृताम् ।
सर्वभूतात्मिका लक्ष्मी शाम्भवा पूजयाम्यहम् ॥७

नवहायना दुर्गा

दुगर्मे दुस्तरे कार्ये भवदु ख विनाशिनीम् ।
पूजयामि सदा भक्तया दुर्गां दुर्गति नाशिनीम् ॥८

दशवर्षा सुभद्रा

सुन्दरी स्वर्ण वर्णाभा सुख सौभाग्य दायिनीम्।
सुभद्रजननी देवी सुभद्रा पूजयाम्यहम् ॥९

नित्य आरती यहाँ करना

कुमारी पूजनान्ते तद्धस्तादक्षतादिक स्वशिरसी विधाय भक्त्या अनुव्रजेत् सुवासिनी ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् इष्टमित्र-बान्धवादिना सह स्वयमपिभुञ्जीत शेष काल गीत वाद्यादि-भिर्नयेत् ।

॥ इति कुमारी पूजनम् ॥

अष्ट रात्रे न दोषोऽय नवरात्रे तिथिक्षये।
सूतके पूजन प्रोक्त जपदान विशेषत ॥
देवो मुद्दिश्य कर्तव्य तत्र दोषो न विद्यते।
रजस्वला तथा शौच ब्राह्मणैश्च सुपूजयेत् ॥
सभर्तृकाणां स्त्रीणा नवरात्रे गधादि सेवन न दोषाय।
तदुक्त हेमाद्रौ। गन्धालकर ताम्बूल पुष्पमालानुलेपनै ॥
कुमारी पूजने विशेष कौलावलो तन्त्रे।
एव प्रणवयोगेन चतन्य तत्तुमचयेत् ॥
वाणी माया तथा लक्ष्मीर्माया कूचद्वय तत।
एते च प्रणवा ज्ञेया कुमार्या परि पूजने ॥
चतुदश स्वरेणाढ्यो भृगुविन्द्विन्दु सयुत।
चैतन्य बीज कथित साधकाना समृद्धिदम् ॥
एव द्वाभ्या त्रिभिश्चैव सप्रधानवधा पुन।
नित्यक्रमेण नियत पूजयेद्विधि पूर्वकम् ॥
वाग्भवेन जल देय मायया पादशौचकम्।
लक्ष्म्याचार्घ्य प्रदद्यात् कूचबीजेन चन्दन ॥
शक्ति बीजेन पुष्पाणि धूप षष्ठेन दापयेत्।
वाग्भवेन पुरक्षोभ मायया च गुणाष्टकम् ॥

श्री बीजेन श्रियोलाभ मायया शत्रु सक्षय ।
भैरवेण तु बीजेन खड्गत्वमनुगच्छति ॥
न्यासादिक प्रकुर्वीत आदौस्वीय क्रमेण तु ।
कुमार्यगे तत पश्चाद्विशेपन्यासमुत्तमम् ॥

॥ तपोऽखण्ड दीपदानम् ॥

दीपादि विचारो डामर तन्त्रे ।

सौवर्ण राजत ताम्र कास्य लोह च मार्तिकम् ।
गोधूम माष मुद्गाना चूर्णेन घटित तथा ॥
सौवर्णे कार्यसिद्धि स्याद्रौप्ये वश्यजगद्भवेत् ।
ताम्र तयोरभावेऽपि कास्ये विद्वेषण भवेत् ।
मारण लौहपात्रेस्यादुच्चारो मृण्मये तथा ॥
गोधूम चूर्ण घटिते विवादे विजयो भवेत् ।
माषजे शत्रु सस्तम्भो मौद्गेस्याच्छान्तिसत्तमा ॥
सन्धिकार्ये नदीकूलद्वयमृत्स्ना समुद्भवम ।
अलाभेसर्व पात्राणा कुर्यात्ताम्र च मार्तिकम् ॥

विभिन्न शक्तियाँ और उनके वाहन

शक्ति एक है। वह विभिन्न नामों से विख्यात है। जब रक्त-बीज के मारे जाने पर शुम्भ और निशुम्भ के साथ देवी का युद्ध हो रहा था और निशुम्भ भी मारा गया, तो शुम्भ ने देवी की सहायक सप्त मातृका-शक्तियों—ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही तथा ऐन्द्री की ओर संकेत करते हुए कहा—'तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूठमूठ अभिमान करती हो।' इस पर देवी ने इन सातों शक्तियों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि 'यह सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ हैं, जो मेरी इच्छा से प्रकट रहती हैं, अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।

तन्त्रों में देवी की आठ शक्तियों का वर्णन आता है। इसलिए वह अष्टभुजी कहलाती हैं। इन शक्तियों के अलग-अलग वाहन हैं। इन शक्तियों और उनके वाहनों का वर्णन इस प्रकार है—

१—ब्राह्मी—

सृष्टि-शक्ति को ब्राह्मी कहते हैं। ब्रह्मा सृष्टि के अधिष्ठाता हैं। तन्त्र की परिभाषा में एक विद्वान् ने इसे ऐसे व्यक्त किया है—

'पश्यन्ती वाणी में अवस्थित प्रकाशांश को वामाशक्ति और विमर्शांश को इच्छाशक्ति कहते हैं। महासत्तात्म पराशक्ति अपने गर्भ में स्थित बीजभावापन्न विश्व का कार्यरूप में बाह्य प्रसार करने को जब

उत्पन्न होती है तो उसमें विश्ववमनकर्तृत्व रहने के कारण उसे वामा-शक्ति कहा जाता है। इसका पर्याय ही ब्रह्मा है। महात्रिकोण की वाम रेखा का उपलक्षक होने के कारण इसे अङ्कुशाकार कहा गया है। पिता-मह ब्रह्मा की शक्ति—भारती के पर्यायरूप इच्छाशक्त्यात्मक जनन-सामर्थ्य इसमे विद्यमान रहता है।"

ससार की उत्पत्ति करने वाली शक्ति ब्रह्मा निराकार व सूक्ष्म है। उसे स्थूल नेत्रो से देखा जाना सम्भव नही है। इसलिए कलाकार ने उसके गुणो को सुन्दर ढग से चित्रित किया है। ब्रह्मा के चार मुख और चार हाथ बनाए गए हैं। एक साधारण मकान बनाने वाले मिस्त्री को भी बडी सावधानी और सूझ-बूझ से काम लेना पडता है। फिर ८४ लाख योनियो का निर्माण करने वाले ब्रह्मा को तो अपने कार्यकर्ताओ से काम लेने के लिए चारो ओर दृष्टि रखनी पडती है। यदि उसके निरीक्षण मे शिथिलता आ जाए, तो निर्माण कार्य मे अव्यवस्था होना स्वाभाविक है।

निर्माण का कार्य कोई साधारण कार्य नही है। उसमे चारो ओर अर्थात् हर दृष्टि से विचार करना पडता है। वह चारो दिशाओ मे काम करने की क्षमता रखते हैं। चारो हाथो में चार वेद हैं अर्थात् वह ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। पुराणो मे वेदो की उत्पत्ति ब्रह्मा से ही बताई जाती है। ससार को सभ्य और सुसस्कृत बनाने वाली शिक्षाओ व सिद्धान्तो के मूल स्रोत वही हैं। विचार-शक्ति का उद्भव उन्ही से हुआ है।

ब्रह्मा तप-शक्ति के भण्डार माने जाते हैं। ब्रह्म-वैवर्त पुराण मे कथा आती है कि जब ब्रह्मा को सृष्टि की उत्पत्ति का आदेश मिला, तो वह विस्मय मे पड गए कि इस महान् कार्य को कैसे किया जाय? आकाशवाणी हुई कि सौ वर्ष तक गायत्री की उपासना करो, तो सृष्टि की उत्पत्ति करने की क्षमता प्राप्त हो सकेगी। ब्रह्मा ने सौ वर्ष तक तप किया, परिणामस्वरूप वह इस योग्य हुए।

ब्रह्मा को कमल के पुष्प पर बिठाया दिखाया जाता है। कमल जल में रहकर भी उससे अलग रहता है, जल का प्रभाव उस पर नहीं हो पाता। ब्रह्मा ८४ लाख योनियों के अरबों-खरबों जीवों की उत्पत्ति हर क्षण करते रहते हैं, परन्तु किसी के साथ उनका लगाव, मोह व आसक्ति नहीं है। यदि ऐसा न होता, तो वह अपनी सन्तान का शोक मनाते ही न थकते और शोक मनाने के लिए अलग विभाग खोलना पड़ता। अतः इस झंझट से दूर रहने के लिए वह अलिप्तता व अनासक्ति के सिद्धांत को अपनाते हैं। इसी ब्रह्मा की शक्ति को ब्रह्माणी कहा गया है।

ब्रह्माणी का वाहन हंस है। हंस विवेक बुद्धि का प्रतीक है। उसके सामने दूध और पानी रख दिया जाय तो वह उन्हें अलग-अलग कर देगा और पानी को छोड़कर दूध-ही-दूध पी लेगा। ब्रह्मा प्रत्येक जीव रूपी हंस में यही अपेक्षा रखते हैं कि हमारा विवेक सदैव जाग्रत रहे। वस्तुतः में तत्व और अतत्व का, सत्य और असत्य का, श्रेय और अश्रेय का जो निर्णय बुद्धि देती है—हमें क्या करना, क्या न करना, इसका निर्णय दिव्य प्रकाश के आधार पर करने वाली ऋतम्भरा बुद्धि एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति है, जिसकी तुलना में विश्व की और कोई शक्ति मनुष्य के लिए हितकारी नहीं है।

तमसाच्छन्न बुद्धि से, चाहे वह कितनी ही उपजाऊ क्यों न हो, उससे मनुष्य का सच्चा हित नहीं हो सकता और न उसे आत्मिक सुख शांति के दर्शन हो सकते हैं। भोग विलास के थोड़े से उपादान वह जरूर जमा कर सकती है, पर इन उपादानों के कारण चिन्ता, भय, आशङ्का, तृष्णा, मोह, मद आदि की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि उनका भार आत्मा के लिए असाधारण रूप से कष्टदायक सिद्ध होता है। जो सम्पत्ति नीति-अनीति का ध्यान न रखकर इसलिए कमाई जाय कि इससे सुख की वृद्धि होगी, वह विपरीत परिणाम उपस्थित करती

है। थोड़ी-सी बाहरी तड़क-भड़क दिखाकर भीतर का सारा आनन्द नष्ट कर देती है। इस आन्तरिक अशान्ति के कारण छोटे-मोटे अनेकों शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक रोग उत्पन्न होते हैं और वे हर घड़ी उस आदमी को बेचैन बनाये रहते हैं, जो अपने को बुद्धिमान समझने का दम भरता है। तमसाच्छन्न बुद्धि जितनी अधिक तीक्ष्ण होगी, उतनी ही अधिक विपत्ति का कारण बनेगी। ऐसी बुद्धि तो जितनी मन्द हो उतना ही उत्तम है।

तमसाच्छादित बुद्धि द्वारा उत्पन्न हुए विचार और कार्य हमारी प्राण शक्ति को दिनों-दिन घटाते हैं। भोग प्रधान कार्यों से शरीर दिनों-दिन क्षीण होता है स्वार्थ प्रधान विचारों से मन दिन-दिन अथाह पाप-पंक में फँसता है। इस प्रकार जीवन की पेंदी में असंख्य छिद्र हो जाते हैं जिनमें होकर सारी उपार्जित शक्ति नीचे गिरकर नष्ट हो जाती है। चलनी में चाहे कितना ही दूध दुहा जाय सब नीचे गिर जायगा और चलनी खाली की-खाली रह जायगी। यही बात तमसाच्छन्न बुद्धि के लोगों के बारे में है। कुछ भी कीमती भोजन खायें, सब विषय-भोग की, चटोरपन की उष्णता में जल जायगा वे चाहे जितनी बुद्धि दौड़ा-कर नई कमाई करें पर तृष्णा स्वार्थपरता, भय, अहङ्कार, लोभ आदि कारणों से चित्त सदा दुःखी ही रहेगा और उससे मानसिक शक्तियाँ नष्ट होती रहेंगी। इन दोनों कारणों से प्राण निर्बल ही रहेगा और वह न्यून प्राण व्यक्ति संसार में नाना प्रकार के उद्वेगों के साथ किसी प्रकार हीन जीवन ही व्यतीत करता रहेगा।

सतोगुणी, ऋतम्भरा विवेक बुद्धि हमारे शारीरिक आहार-विहारों को सात्विक रखती है, संयम, ब्रह्मचर्य, आस्वाद, श्रमशीलता, सादगी, प्राकृतिक दिनचर्या होने से बलवीर्य बढ़ता और शरीर सक्रिय रहता है और दीर्घायु की प्राप्ति होती है। मन में अपरिग्रह, परमार्थ, सेवा, त्याग, सहिष्णुता, तितिक्षा, दया, सहानुभूति, मैत्री, करुणा,

नम्रता, निरहङ्कारता, धर्म, श्रद्धा, ईश्वरपरायणता आदि की भावना काम करती है। यह भावना जहाँ रहती है, वहाँ के परमाणु सदैव प्रफुल्ल और चैतन्य रहते हैं तथा उनका विकास होता है। इस प्रकार शरीर और मन दोनो की सुरक्षा एवं वृद्धि की सात्विक उन्नति होने के प्राण शक्ति सुरक्षित रहती है और उसकी वृद्धि होती रहती है। ब्राह्मणी शक्ति का वाहन हंस हमें इसी विवेक बुद्धि के विकास की प्रेरणा देता है।

२—माहेश्वरी—

यह लय शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। प्रलय भाव का प्रतीक माहेश्वर है। यह महान् प्रेरणाओं का स्रोत है।

सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है। यह प्रकृति का स्वाभाविक क्रम है। गीता (८।१८) में कहा है—"ब्रह्मा का जब दिन प्रारम्भ होता है, तब अव्यक्त से व्यक्त में प्रकट जाता है और जब रात्रि होती है, तो पहले की तरह अव्यक्त में लीन हो जाते हैं।" अगले श्लोक में और अधिक स्पष्ट करते हुए भगवान ने कहा है—"इच्छा हो या न हो दिन होने पर जन्म लेना और रात्रि होने पर लीन होना—यह चलता ही रहता है" (८।१९)। उत्पत्ति, स्थिति और लय को हम प्रत्यक्ष रूप से खुले नेत्रों से देखते हैं। जो उत्पन्न हुआ है, उसे नष्ट होना ही है। जिसने शरीर धारण किया है, उसे एक दिन मरना है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है और मरने के बाद फिर जन्म लेना है।

इस स्वाभाविक क्रम में कुछ भी निराश होने की बात नहीं है। अज्ञानवश हम विनाश होने वाले तत्वों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। जब वह सृष्टि के स्वाभाविक प्रवाह में बहने लगता है, तो व्यर्थ की अशान्ति और दुःख को अपने सिर मढ़ लेते हैं। जब हम नित्य देखते हैं कि सृष्टि के आदिकाल से यह क्रम बराबर चला आ रहा है और अन्त तक,

चलता रहेगा, तो इसमे दु ख की कौन-सी बात है ? चूँकि हम शरीर को सर्वस्व मानकर चलते हैं इसलिए उसके विनाश होने पर दु खी होते हैं। सांसारिक दु खो से बचने के लिए आवश्यक है कि हम वस्तु-स्थिति को समझें और नाशवान तत्वों के नष्ट होने पर दु खी न हो। हम अपना आत्म-निरीक्षण करे कि हम शरीर नही, वरन् आत्मा है। नाश शरीर का होता है, आत्मा का नही। यदि शरीर नष्ट हो रहा है, तो उसका अभिप्राय केवल पुराने जीर्ण शीर्ण वस्त्र बदलकर नए पहनना है। उसके मूल तत्व का विनाश नही हो रहा। चाहे कैसी भी भयङ्कर आँधियाँ और तूफान आवें, भूचाल और घोर वर्षा हो, नगर-के नगर ध्वस्त हो जाये और सारे विश्व का भी विनाश होकर प्रलयकारी स्थिति उत्पन्न हो जाय। आधुनिक काल के विनाशकारी अस्त्र शस्त्रो, एटम व हाइड्रोजन बमो का हम पर कोई प्रभाव नही पडता। वह तो स्थूल वस्तुओ को ही नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। हानि और नाश के क्रम इस जगत मे पग-पग पर चलते रहते हैं उनसे सुरक्षित रहने का एक-मात्र उपाय है—अनन्य-भाव में स्थित रहना।

यदि शास्त्रो मे वर्णित प्रलय की-सी स्थिति कभी उत्पन्न हो जाए, जिसमे सारे विश्व का विनाश हो जाए और चारो ओर जल-ही-जल दिखाई दे, तो यह समझना चाहिए कि उस स्थिति मे हमारा कुछ नष्ट नही हुआ। उस समय भी केवल पचभौतिक शरीर ही नष्ट होगा। वस्तु स्थिति यह है कि शरीर अनेको बार नष्ट हो चुका है और अनेको बार जन्म ले चुका है। यदि एक बार और नष्ट हो जायगा, तो इसमे दु ख और चिन्ता की कौन-सी बात है ? वेदान्त (२।३।१७) मे कहा गया है कि "जीवात्मा उत्पन्न होता या मरता नही है।" श्रुति मे भी ऐसा ही कथन मिलता है। उन श्रुतियो के द्वारा ही इसको अविनाशी होना कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद् (६।११।३) में भी स्पष्ट कहा है—"जीव के मरने पर शरीर ही मरता है जीवात्मा स्वय नही

मरता।" अत यदि हम अपने वास्तविक रूप को समझ लें, तो प्रलय से भयभीत होने की कोई बात नही है। प्रलय तो हमारी पथ-प्रदर्शिका है और हमें शिक्षा देती है कि इस जगत की हर वस्तु नष्ट होने वाली है, अत, उनकी प्राप्ति मे ही अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट न करके अविनाशी तत्व को प्राप्त करो, जिसका कभी नाश नही होता। माहेश्वरी की भी यही प्रेरणा है।

माहेश्वरी का वाहन वृष (बैल) है। इसकी आध्यात्मिक व्याख्या निम्न प्रकार है। वृषभ को मनुस्मृति (८।१६) मे धर्म की सज्ञा दी गई है—

वृषो हि भगवान् धमस्तस्य य कुरुते अलम्।
वृषल त विदुर्येवास्तस्माद्धर्म न लोपयेत्॥

"भगवान् धर्म साक्षात् 'वृष' है। जो इसको नष्ट करेगा वह वृषल—पापी कहा जायगा। इसलिए धर्म को लुप्त न करना चाहिए।"

शिव-पुराण (रुद्र सहिता पार्वती खण्ड) मे शिव पार्वती के विवाह के समय का वर्णन करते हुए कहा गया है—'विशुद्ध स्फटिक के तुल्य दीप्तिमान परम सुदर वृषभ पर भगवान महेश्वर विराजमान हुए। इस वृषभ को बडे-बडे महर्षियो ने शास्त्र मे धम बतलाया है।"

कामनाओ और इच्छाओ की वर्षा करने वाला होने के कारण 'वृषभ' नाम पडा। कामनाओ की पूर्ति करना रुद्र के अधिकार मे है। वे ऋद्धि-सिद्धि दाता हैं। वे भोले शकर प्रसिद्ध हैं। शीघ्र ही प्रसन्न होकर साधक को वरदान दे देते हैं शक्ति के सम्राट हैं, शरीरधारियो को समस्त कष्टो से दूर रखने की क्षमता रखते हैं। यजुर्वेद मे उन्हे देवता कहा गया है (१८।२०), अत वह प्राणियो का कल्याण ही करते रहते हैं। इसीलिए उनका नाम शिव है—वह तो कल्याण के साक्षात् रूप हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत्—यह

उनकी अष्टमूर्ति कही गई है, वह तो प्राणीमात्र के लिए निरन्तर सहयोग की भावना रखता है। इनके अभाव मे शरीरधारियो का जीवन यहाँ असम्भव हो जाए। यह सब साक्षात् देव स्वरूप है।

वेद मे वृष को चार पैर वाला अवर कहा गया है। वे चार पैर है—धर्म अर्थ, काम और मोक्ष। वृषभ का एक अर्थ है—वीर्य की वर्षा, महाप्राण की वर्षा।

काम की सज्ञा वृष है। सृष्टि की उत्पत्ति के लिए वह उपयोगी तत्व है। इसका गणना जीवन की आवश्यकताओ मे आती है। यदि इसके अकुर मानव मन मे उत्पन्न न होते, तो सृष्टि रचना भी न हुई होती। जहाँ तक आवश्यकता का प्रश्न है, वहाँ तक तो यह पवित्रता का प्रतीक है, परन्तु जब इसमें मर्यादा-उल्लघन किया जाता है, तब वह भोग की सीमा मे आ जाता है और यह मानव का शत्रु बन जाता है तथा इसकी गणना आसुरी शक्तियो मे होने लगती है।

अथर्ववेद ४।११।१०८ मे "वृषभ को पृथ्वी का पोषक, धारक, उत्पादक, प्रकाशक, प्रेरक, विजेता और फलदाता की उपाधियो से विभूषित करते हुए अन्त मे ब्रह्म और विराट् के समान बनाया गया है।"

माहेश्वरी का वाहन-आधार वृषभ के धर्म आदि गुण हैं। माहेश्वरी की सच्ची पूजा इन्हे अपनाना ही है।

३—कौमारी—

जो शक्ति देव-शक्तियो का नेतृत्व करती हुई आसुरी शक्तियो पर विजय का उद्घोष करती है उसे कौमारी कहते है। कुमार उसकी अधिष्ठात् शक्ति को कहते हैं। कुमार को पुराणो मे स्वामी कार्तिकेय, स्कन्द, सनत्कुमार, पारामातुर के विभिन्न नामो से भी याद किया जाता है। उनके ६ मुख और १२ नेत्र हैं। उनमे तप और शक्ति का समन्वय है। उनके हाथो की सख्या और अन्य अङ्ग शक्ति के प्रत्यक्ष रूपक हैं।

'स्कन्दिर-धातु' से स्कन्द शब्द बनता है। स्कन्दिर का अर्थ स्पष्ट है—गतिशीलता और सोखना। क्रियाशीलता सेनापति की मुख्य विशेषता होनी चाहिये। सूर्य मे वस्तुओ को सोखने की शक्ति है। इससे वह अत्यन्त जन-उपयोगी सिद्ध होतो है। जहां नमी अधिक होती है, वहाँ रोग उत्पन्न होते हैं। जहाँ सूर्य पहुंचता है, वहाँ रोग के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। सोखना एक अत्यन्त उपयोगी तत्व है और यह अग्नि को विशेष गुण है।

कुमार रुद्र को भी कहते हैं और रुद्र अग्नि को। इसलिए कुमार अग्नि का नवां रूप बताया गया है। महाभारत वन-पर्व २२५।१५-१६, ऋग्वेद ५।२।१, १०।१३५, कठोपनिषद् १।२, तैत्तरीय ब्राह्मण ३।११, ८।१५ के अनुसार कुमार से अग्नि का घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है।

स्कन्द देवताओ का सेनापति है। इसलिए उनकी पत्नी का नाम अलकारिक रूप से 'देवसेना' ठीक ही रखा गया है। काठक सहिता ३६। ८, मैत्रायणी सहिता १।१०।१४, ४।३।८ के अनुसार अग्नि को ही देवताओ का सेनापति माना गया है। इसलिये स्कन्द अग्नि का अलङ्कारिक रूप है।

स्कन्दकुमार का लाल रङ्ग से विशेष सम्बन्ध बताया गया है। अग्नि भी इसी वर्ण की होती है। वाचस्पत्य कोष इसकी पुष्टि करता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि का घोडा भी अलङ्कारिक रूप से 'रोहित' लाल कहा जाता है। कौमारी शक्ति के यही गुण बतलाये जाते हैं।

कौमारी का वाहन मयूर है। मयूर का प्राकृतिक सौदर्य प्रसिद्ध है। शारीरिक सौन्दर्य तो अस्थायी रहता है—जीवन का वास्तविक सौन्दर्य तो सद्गुणो का विकास करना है, जिसकी ओर सुन्दरता के प्रतीक मोर इगित करते है।

मोर मे वर्षा की भविष्यवाणी करने की सूक्ष्म शक्ति विद्यमान है। वह अपने सूक्ष्म नेत्रो से वर्षा के आगमन को अनुभव करता है और 'मेहो मेहो' करके उसकी चेतावनी देता है। मेघो को देखकर वह इतना प्रसन्न होता है मानो कुबेर का खजाना उसे ही मिल गया हो। जिस तरह एक साधक को अपनी कठोर साधना के फलस्वरूप अपने इष्टदेव के दर्शन कर अपार आनन्द की प्राप्ति होती है, उसी तरह मोर भी मेघो के साथ आत्मसात होना चाहता है। वह आनन्द-विभोर हो नाचता है। किसी नतकी का नाच तो कुछ क्षणो के लिए मानस-पटल पर स्थिर रहता है परन्तु मोर का यह अद्‌भुत नाच कवियो व साहित्यकारो के कल प्रिय हृदयो मे युगो से विद्यमान है और जब भी उनका मन अपनी मस्ती में नाचता है, तो वह मोर के वर्णन कभी नही भूलते।

मोर और सर्प की शत्रुता प्रसिद्ध है। मोर जहाँ भी सर्प को देखता है, उसे नोचने लगता है। सर्प क्रोध, स्वार्थ, अहकार व दम्भ का प्रतीक है। इसके विपरीत मोर को ज्ञान, विवेक व परोपकार का प्रतिनिधि माना जाता है। इसीलिए भगवान कृष्ण ने अहकार व दूसरो से बडा समझने वाली भावना उत्पन्न करने वाले रत्न-मणियो की सहायता से शोभा-वृद्धि नही की। वह ज्ञान के प्रतीक मोर-पख से ही सन्तुष्ट रहे। इसका अर्थ है कि वह राजा होते हुए भी भौतिकता की सीमाओ मे बहुत दूर थे।

कौमारी का वाहन मोर हमे सद्‌गुणो के विकास करने की प्रेरणा देता है।

४—वैष्णवी —

विश्व के पालनकर्ता को विष्णु कहते हैं, उसकी शक्ति वैष्णवी कहलाती है।

विष्णु का आधार शेष है, शेष का नाम अनन्त है। अनन्त सूर्य

और आकाश दोनों को कहते हैं। आकाश का हम अन्त नहीं पा सकते इसलिए उसे अनन्त कहते हैं। विष्णु का शयन-स्थान यही अनन्त अर्थात् आकाश है। हमें भी आकाश जैसी विशाल उदारता का परिचय देना चाहिए।

शतपथ ब्राह्मण (१।२।५।५) ने घोषणा की है 'वामनोह विष्णुराम' अर्थात् जो विष्णु है, वही वामन है। वामन को बौना दिखाया गया है। वह पहले छोटा था, अल्प था, फिर वह बड़ा और विराट् हो गया। अणिमा ही भूमा बनता है। अणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है। छोटे-से वामन ने अपने छोटे छोटे पैरों से सारी सृष्टि को नाप लिया।

ऋग्वेद १०'९०।१६ में कहा है—'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' वह प्रथम धर्म थे, उन्हीं का धारण संरक्षण विष्णु करते हैं। वह धर्मों को संभालते हैं—धारण करते हैं।

विष्णु वह सत्व है, वह व्यक्ति विशेष है, जो सर्वत्र व्यापक है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक में फैला हुआ है, जो तीन पगों में सारी सृष्टि को घेर लेता है। त्रिविक्रम तो वह प्रसिद्ध ही है। उसकी जगमगाहट तीनों लोकों के अणु अणु में दृष्टिगोचर होती है, प्राणीमात्र में वह समाया हुआ है।

विष्णु तीन पैरों से सारी सृष्टि को नाप लेते हैं। यह 'चलना' उनकी गति, क्रियाशीलता और सतर्कता की ओर इंगित करता है। वह सदैव जागरूक रहते हैं। जो नियम विश्व की उत्पत्ति के समय बने थे उनको धारण किये रहना, उनकी देखरेख और संभाल रखना विष्णु का धर्म है।

शतपथ ब्राह्मण १।२ में यज्ञ को ही विष्णु कहा गया है और कहा है कि यज्ञ के प्रथम पद से पृथ्वी, द्वितीय से अन्तरिक्ष और तृतीय से आकाश में प्रवेश करता है।

विष्णु सर्वव्यापक पवित्र और बलि आसुरी शक्तियों का प्रतीक है। वामन द्वारा बलि का बाँधा जाना ईश्वर द्वारा विश्व की नियमबद्धता का सूचक है।

विष्णु सर्वव्यापक हैं और चारों दिशाओं में व्याप्त हैं, कण कण में समाए हुए हैं, प्राणीमात्र में उनका निवास है। जल में, थल में, पुष्प, लताओं, पहाड़ों, कन्दराओं, वनों, पशु पक्षी, पुरुष और स्त्री में वही दिखाई देते हैं।

ऐसी दृष्टि रखने वाला ही उच्च वैष्णवी साधक है।

वैष्णवी शक्ति का वाहन गरुड़ है। भागवत १२।११।१९ में तीनों वेदों को गरुड़ कहा है। उसे ही यज्ञ रूप विष्णु वाहन करते हैं। वेदत्रयी रूप गरुण ही यज्ञ स्वरूप भगवान के वाहन हैं। ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद में ही यज्ञ की समाप्ति मानी जाती है। अतः वेदात्मा ही गरुड़ है और भगवान विष्णु उन पर विराजते हैं।

स्थूल रूप में गरुड़ और सर्प की शत्रुता है। गरुड़ सर्प भक्षक है। सर्प क्रोध और दुष्टता का प्रतीक है वह विष से भरा हुआ है। बिना कारण इस विष का दुरुपयोग करके किसी की भी जीवन-लीला को समाप्त कर देना है—यह उसका स्वभाव है। गरुड़ ज्ञान के प्रतीक हैं। उन्हें यह दुष्टतापूर्ण व्यवहार पसन्द नहीं, इसलिए इसे वह पनपने नहीं देना चाहते। भगवान ऐसी शक्ति को नियन्त्रण में रखते हैं, जो दुष्टों, असुरों और राक्षसों का संहार करने में दक्ष हो। सर्प तम का प्रतीक है। भगवान सत् में ओतप्रोत रहते हैं। भगवान की सत्-शक्ति तम को खा जाती है। जो भगवान की पूजा, उपासना, पाठ और ध्यान आदि करते हैं, उनमें भी सत् तत्व विकसित होता है जो तम को निगल जाता है। यह गरुड़ का सर्पों को खाना है।

वैष्णवी साधक ज्ञान को लक्ष्य बनाकर अपनी साधना का क्रम

बनाता है और जब कभी भी आसुरी शक्तियाँ उसके मार्ग मे बाधक बनती है, वह उन्हे शक्तिपूर्वक नष्ट करने मे सावधान रहता है।

५–वाराही—

कालशक्ति का नाम वराह है। वर का अर्थ श्रेष्ठ अथवा आत्मा है। उसे आहृत अथवा आवृत करने वाली शक्ति का नाम वराह है। यही पृथ्वी को दाँतो द्वारा पाताल से निकालती है। इसका अधिष्ठान वाराही करती है।

काल से सभी भयभीत होते हैं। इसका विख्यात नाम मृत्यु है। साधारणतया शरीर के नष्ट होने को मृत्यु कहते हैं। भारत के तत्त्व-ज्ञानियो ने इस पर गहन अनुसन्धान और खोज की है। वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि स्थूल शरीर के नष्ट होने पर मनुष्य का नाश नही समझना चाहिए। उन्होने सिद्ध किया है कि मनुष्य एक ऐसा अदृश्य गुप्त-तत्व है, जो इस पार्थिव शरीर के नष्ट होने पर भी ज्यों-का त्यो बना रहता है। यह शरीर तो आत्मा का खोल है। इसके हट जाने से आत्मा के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नही पडता। वह तो जैसा पहले था वैसा ही बना रहता है।

गीतकार ने इसे यूँ समझाया है कि मृत्यु पुराने वस्त्रो को बदल कर नये ग्रहण करने की क्रियामात्र है और स्पष्ट कहा है कि "यह शरीर का स्वामी आत्मा नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है" (गीता २।१८)। "यह किसी से मारे जाने वाला नही है" (२।१९)। 'इसको शस्त्रो से काटा नही जा सकता है, इसे अग्नि में जलाया नही जा सकता, इसे पानी से भिगोया या गलाया नही जा सकता और वायु से सुखाया नहीं जा सकता।' (२।२३)। "इसकी रक्षा ऐसे यन्त्र करते हैं, जिन पर इस जगत की किसी भी वस्तु का कोई भी प्रभाव नही पडता। यह ऐसा अदृश्य तत्व है जो सदैव एक सा बना रहता है जिसकी वृद्धावस्था और नाश कभी नही होता, जिसमें किसी प्रकार का कोई भी परिवर्तन नही

होता। इससे सम्बन्धित शरीर का वध भी हो जाय, तो यह मारा नहीं जाता" (२।२०)। यह अज, नित्य, शाश्वत और पुरातन है।

अत हमे काल मे डरना नहीं है, वरन् उसे गले लगाने के लिए सदैव तत्पर रहना है। वह ईश्वरीय शक्ति है, उसका स्वागत करना ही हमारा धर्म है।

वाराही का कोई वाहन नहीं है।

६–नारसिंही—

नरसिंह शब्द का विश्लेषण करते हुए नरसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद् मे कहा है कि 'सब प्राणियो मे मानव का पराक्रम प्रसिद्ध है और सिंह भी सबसे अधिक पराक्रमी होता है। अत नर और सिंह दोनो के संयुक्त रूप से पराक्रम मे अधिक प्रबलता होती है, इसीलिए भगवान ने यह रूप धारण किया है। वे अपने इस रूप से विश्व का कल्याण करते हैं। उनका यह स्वरूप अविनाशी एव सनातन है।"

नृसिंह, हिरण्यकश्यप का वध करते हैं। हिरण्यकश्यप आत्मा की उस स्थिति को कहते हैं, जब वह विषयो मे लिप्त हो जाती है और उसका पतन आरम्भ होता है। आत्म ज्ञान का विकास ही उसके उत्थान का एकमात्र उपाय है। यही ब्रह्मविद्या नारसिंही शक्ति है क्योंकि यही जीव को नृसिंह बनाती है।

ब्रह्मविद्या के आधार पर उपलब्ध ज्ञान से मनुष्य अपनी निज की वस्तु-स्थिति को समझ सकता है, आत्मज्ञान उपलब्ध कर सकता है। ब्रह्म की महानता और उसके सान्निध्य की उपयोगिता भी उसकी समझ में आती है। प्रिय-अप्रिय परिस्थितियो मे जो राग, द्वेष, हर्ष, शोक भरे आवेश उठते रहते हैं, उनकी उत्तेजनात्मक अशुभ प्रतिक्रियाओं से भी बचे रहना ब्रह्म-ज्ञान के आधार पर ही सम्भव है। बाह्य जीवन मे सुख और अन्त करण मे शान्ति को समुचित मात्रा में प्राप्त कर सकना भी ब्रह्म-सम्बन्ध की प्रगाढता पर ही निर्भर है। सुख और शांति की

इन्द्र की प्रशंसा के वेद में सूक्त-के-सूक्त भरे पड़े हैं। ऐसा लगता है कि उस युग में इन्द्र ने अत्यन्त वीरतापूर्ण कार्य किए थे और अनार्यों से आर्यों की रक्षा की थी। महान् रक्षक और योद्धा के रूप में इन्द्र ने आर्यों का हृदय जीत लिया था, तभी उन्हें सर्वोच्च आसन पर अवस्थित किया गया था। इसीलिए उनकी कीर्ति देश की सीमाओं को तोड़कर विदेशों में भी फैली। श्री त्रिवेणीप्रसाद सिंह के अनुसार "वृत्रहन बहराम' अथवा राम के रूप में ईरान तथा 'वाहाजन' में एवं पराक्रमी 'हरकुलेश' के रूप में मध्यपूर्व तथा यारुप में भी इन्द्र की पूजा हुई, तथा वरुण, मित्र एवं नासत्य के साथ इन्द्र नाम से भी यह मिश्र के राजाओं के देवता रहे।"

इन्द्र का जीवन हमें बताता है कि संसार में शांति-द्रोहियों का नाश करना चाहिए, अन्यायों और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखना चाहिए, जब तक कि उनको समाप्त न किया जाए। हर व्यक्ति को असुरता निरन्तर परेशान किए रहती है। अतः उसे निरन्तर संघर्ष-रत रहना है, जीवन भर उसे अपने आंतरिक शत्रुओं से लड़ते रहना है, उसे तब तक दम नहीं लेना है, जब तक कि उन पर विजय प्राप्त करके इन्द्रासन पर विराजमान न हो जाये। ऐन्द्री-शक्ति की यही प्रेरणा है।

इन्द्र का वाहन ऐरावत है। 'ईर्' धातु का अर्थ गति है। 'रावान्' का अर्थ गतिविशिष्ट है। ऐरावत से क्रियाशीलता का ही भास होता है। इन्द्र में यदि क्रियाशीलता का गुण न होता तो वह कैसे आसुरी शक्तियों के महादुर्गों का विध्वंस कर सकने में समर्थ होते। व्यावहारिक क्षेत्र में भी हम इसका समर्थन पाते हैं।

क्रिया से बल की प्राप्ति होती है। क्रियाहीन व्यक्ति की शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं। सरिता का जल क्रियाशील रहता है, तो उसमें जीवन तत्व की मात्रा अधिक पाई जाती है। खड़ा पानी उस पक्षी की तरह है, जिसके पंख काट लिए जायें ताकि वह वह उड़ने में मजबूर हो

जाए। प्रवहहीन जल सड़ने लगता है और चलते पानीमें शक्ति का इतना विकास हो जाता है कि उसके सहयोग से विद्युत् उत्पन्न की जाती है, मशीनें चलाई जाती हैं, अन्य अनेकों कार्य किए जा सकते हैं। शक्ति का प्रयोग जहाँ भी किया जायगा, वहीं सफलता उनका हार्दिक रूप से स्वागत करेगी।

जो व्यक्ति परिश्रम नही करते, उनका स्वास्थ्य गिरने लगता है, खाना हजम नही होता, दस्त साफ नही होता—जीवन रसहीन हो जाता है। क्रियाशील जीवन व्यतीत करने वालो के स्वास्थ्य की सुरक्षा रहती है। उनके मुख-मण्डल पर एक अपूर्व तेज चमकता है, जो क्रियाशीलता का ही द्योतक है। निरन्तर गद्दी पर बैठने वाले व्यापारी का पेट बढ जाता है, शरीर ढीला पड जाता है। रोग पनपते है, बढते हैं और उन्हे प्रोत्साहन मिलता है। मजदूर सूखी रोटी खाकर भी अत्यन्त परिश्रम का कार्य करने की क्षमता रखता है। दण्ड, बैठक, दौड, कुश्ती, मुग्दर आदि के व्यायाम से स्वास्थ्य के निखरने का भी यही अभिप्राय है।

केवल चैतन्य जीवो मे ही नही, जड पदार्थों में भी यही नियम लागू होता है। लोहा एक स्थान पर पडा रहे, तो उसे जग लग जाता है। परन्तु जो सान पर रखा जाता है, उसकी धार तेज होती है। हीरा जब खराद पर चढाया जाता है, तभी उसका रूप-रग निखरता है अन्यथा वह मिट्टी से सना हुआ एक पत्थर ही लगता है। पत्थर से हीरा बनाने का श्रेय क्रियाशीलता को ही है। स्पष्ट है कि हम भी यदि अपने पत्थर रूपी जीवन को हीरा बनाना चाहते हैं तो हमे इसी अटल सिद्धान्त का अनुकरण करना होगा, तभी हमारे जीवन मे जीवन आ पायेगा।

इन्द्र साक्षी हैं कि जीवन में सर्वोच्च पद प्राप्त करने के लिए हमें निरन्तर गतिशील रहना होगा।

८—चामुण्डा—

काली ने चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर असुरो का युद्ध मे वध किया था, इसलिए उनका नाम चामुण्डा पड़ा।

चण्ड प्रकृति और मुण्ड निवृत्ति के बोधक हैं। इन्हें नष्ट करने वाली प्रलय शक्ति ही चामुण्डा कहलाती है। इस जगत में अपार सख्या मे चण्ड और मुण्ड भरे पडे हैं और वह निरन्तर आसुरी प्रहार करते हैं। यदि उनके प्रति सावधानी न बरती जाय, तो निश्चय ही हमें दुःख-कलह-क्लेश का ही सामना करना पडेगा। हमे अपनी शक्तियो का विकास करना होगा और इनसे युद्धरत रहने के लिए सदैव तैयार रहना होगा अन्यथा जीवन मे निराशा-ही-निराशा देखेंगे। आशा और विश्वास के दर्शन के लिए चामुण्डा का आह्वान आवश्यक है।

चामुण्डा का कोई वाहन नही है।

यह शक्ति के विभिन्न वाहनो का रहस्य है। यदि इन आध्यात्मिक रहस्यो को जीवन मे उतारा जाय, तो जीवन अबाध गति से प्रगति-पथ पर आरूढ हो सकता है, इस कुछ भी सन्देह नहीं है।

●●●

आचार्य शंकर और शाक्त मत

स्वामी शङ्कराचार्य वैदिक धर्म के संस्थापक माने जाते है, साथ ही उन्हे शाक्त-सिद्धान्तो के विवेचन मे प्रमाण स्वीकार किया जाता है। कुछ शाक्त उन्हे मायावादी और अपने कुछ सिद्धातो का विरोधी भी समझते है। सम्भव है कभी उन्होने शाक्त-मत का खण्डन भी किया हो। कथा है कि वह एक बार शाक्तमत का खण्डन करने के लिए कश्मीर गये थे। वहाँ दस्तो मे वह बिलकुल अशक्त हो गए, तो एक बारह वर्ष की कन्या उनके पास आई और कान मे कहा कि आप तो शाक्त-मत का खण्डन करने आये हैं? शङ्कर ने धीरे मे कहा—'मैं आया तो इसी उद्देश्य मे था परन्तु अभी मुझमें बोलने की शक्ति नही है। रोग से मुक्त होकर जब स्वस्थ हो जाऊँगा और शक्ति आ जायगी तो कुछ करूँगा। शक्ति के बिना तो कुछ भी करना सम्भव नही है।"

उस कन्या ने कहा—"जब आप शक्ति के अभाव मे कुछ भी करने मे असमर्थ है तो शाक्तमत का खण्डन और अद्वैत मत का मण्डन किस प्रकार कर सकेंगे? मैं ही शिव की शक्ति शिवा हूँ। शिव तो एक, अद्वितीय, कूटस्थ, अचल, ध्रुव और एकरस है। उनमे क्रिया का अभाव है। शिव ने मेरी—शक्ति की रचना की है—इससे आप भी सहमत हैं। फिर आप उसका खण्डन कैसे कर सकते हैं? खण्डन-मण्डन तो मैं ही करूँगी, शिव कुछ नही करेंगे। जिसके अभाव मे आप कुछ भी करने में असमर्थ हैं, उसका आप खण्डन कैसे करेंगे? मैं शिव से

अभिन्न हूं फिर भी जगत् जीव शिव और अपने अस्तित्व की सत्ता को मैं सिद्ध करते हूं। अत मेरा खण्डन कैसे करोगे ?

सुनते है, शङ्कर अवाक रह गए और कश्मीर से लौट आए। तब से उन्होने शाक्त मत का खण्डन नहीं किया। एक किंवदन्ती और है कि एक बार वह महादेव के दर्शनो के लिए कैलाश गये और उनसे सौंदर्य लहरी मांगी, जो शिव ने दे दी। नन्दी को यह अच्छा नहीं लगा जब वह चलने लगे तो नन्दी ने झपट्टा मारा और पुस्तक को छीनने का प्रयत्न किया। वह आधी पुस्तक प्राप्त करने में सफल हो गया। शङ्कर के पास आधी ही रह पाई। यहां आकर उन्होंने इसका पुनरुद्धार किया। शाक्तो के लिए सौंदय-लहरी का प्रत्येक श्लोक मन्त्र-रूप होता है। अत इससे वह एक महान् शाक्त दृष्टिगोचर होते हैं।

ऐसा लगता है कि शङ्कर को शाक्त दृष्टि गुरु परम्परा से ही प्राप्त हुई है। उनके परमगुरु गौड़पाद महान् वेदान्तिक होने के नाते माण्डूक्य-कारिका के रचयिता थे। दूसरी ओर वह योगाचारो के अद्वैतवाद के भी पक्षपाती थे। आगम-मत के वह विशिष्ट विद्वान थे—यह उनकी 'सुभगोदय स्तुति' से परिलक्षित होता है। इस पर अनेको टीकाएँ हैं। आचार्य शङ्कर ने भी इस पर टीका लिखी थी। उन्होंने 'श्री विद्यारत्न सूत्र' की भी रचना की थी। इसकी अनेको टीकाएँ हुई हैं।

कुछ प्राचीन ग्रन्थो से प्रतीत होता है कि शङ्कर गुरु-परम्परा से मे शाक्त मत के उपदेष्टा व उपासक रहे हैं। श्री क्रमोत्तम' श्रीविद्या का श्रेष्ठ ग्रन्थ है उसमे शिव से प्रारम्भ करके वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुकदेव, गौडपाद, गोविन्दपाद और शङ्कर का नाम आता है। मातगी-पूजा के एक ग्रन्थ 'सुमुखि पूजा पद्धति' मे भी इस क्रम में कुछ समानता है। अन्तर इतना ही है कि शङ्कर के बाद 'बोधघन' और ज्ञानघन' है। 'भुवनेश्वरी रहस्य' मे भी इसका वर्णन आता है। इससे स्पष्ट है कि वह भुवनेश्वरी, मातगी और श्रीविद्या के उपासक व प्रचारक थे।

शङ्कर ने तन्त्रमत के प्रसिद्ध छः सम्प्रदायो—शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, गाणपत्य और कापालिक के सिद्धान्तो को स्वीकार किया गया था और उनकी दृढता से प्रतिष्ठापना की थी। इन सम्प्रदायो के उपास्य देवो की स्तुतियो की भी उन्होने रचना की थी। इस तरह से तान्त्रिक सम्प्रदायों की एकता मे उनका व्यक्तित्व आदर्श रहा।

शङ्करकृत भवानी-स्तुति प्रसिद्ध है। उसका पहला श्लोक इस प्रकार है—

भवानि स्तोतु त्वा प्रभवति चतुर्भिर्न वदनै ।
प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथन पञ्चभिरपि ॥
न षड्भि सेनानीदशशतमुखैरप्यहिपति—
स्तदान्येषा केषा कथा कथमस्मिन्नवसर ॥

"हे भवानी ! सृष्टि की रचना करने वाले ब्रह्मा अपने चार मुखो से, त्रिपुर दैत्य पर विजय प्राप्त करने वाले शङ्कर अपने पाँच मुखो से, छः मुखो वाले कार्तिकेयजी और हजार मुख वाले शेषजी भी तुम्हारी स्तुति करने में असमर्थ रहते हैं। फिर मेरे जैसे जीवो के लिए तो यह कैसे सम्भव है ?"

ब्रह्मसूत्रो के भाष्य मे भी उन्होने शाक्त-मत का प्रतिपादन किया है। यथा—

न हि तया विना परमेश्वरस्य स्रष्टत्व सिद्ध्यति ।
शक्तिरहितस्य तस्य प्रवृत्यनुपपत्तते' ॥

—ब्र०सू० शा०भा० १।४।३

"शक्ति के अभाव में ईश्वर सृष्टि की रचना नही कर सकते, क्योंकि इसके बिना उनका क्रियाशील होना सम्भव नही है।"

इसी प्रकार—

एकस्यापि ब्रह्मणो विचित्रशक्तियोगात् क्षीरादिवद्विचित्र-परिणाम उपपद्यये ।

—ब्र०सू० शा०भा० २।२।२४

इस परा शक्ति की सामर्थ्य से ही ब्रह्मा को शरीर अथवा इन्द्रियो के धारण की अपेक्षा नही रहती। इनके बिना भी वह सर्वज्ञ और सब शक्तिमान रहते है।

'सौदय-लहरी' शङ्कर की एक अनुपम रचना है, जिसे यदि कवित्व और तान्त्रिक ज्ञान की त्रिवेणी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी। इसमे ३५ टीकाएँ प्राप्य हैं, जिनमे कामेश्वरसूक्ति, नरसिंह, अच्युतानद और कैवल्याश्रम की टीकाएँ अभी तक भी प्रकाशित नही हो पाई हैं। लक्ष्मीधर की टीका उत्तम है। शङ्कर ने इसमे श्रीविद्या का समुद्धार किया है।

सौदर्य-लहरी का प्रथम श्लोक ही शिव-शक्ति के सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है—

> शिवशक्तयायुक्तो यदि भवति शक्त प्रभवितु,
> न चेदेव देवो न खलु कुशल स्पन्दितुमपि।
> अतस्त्वामाराध्या हरिहरविरिञ्चादिभिरपि,
> प्रणन्तु स्तोतु वा कथमकृतपुण्य प्रभवति।

"शिव यदि शक्ति से सचित होता है, तो वह प्रभावशाली एव शक्ति-सम्पन्न हो सकता है और यदि ऐसा नही होता, तो वह देव स्पन्दन न करने के लिये भी कुशल नहीं होता है। अतएव आराधना करने के योग्य आप ही हैं, जिसको हरि, हर और ब्रह्मा आदि भी प्रणाम करते हैं तथा स्तवन किया करते हैं अन्यथा अकृत पुण्य वह कैसे समर्थ हो सकता है।"

और भी कहा है—

> शरीर त्व शम्भो शशिमिहिरवक्षोरुहयुग,
> तवात्मान मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्।
> अत शेष शेषीत्ययमुभय साधारणतया,
> स्थित सम्बन्धो वा समरसपरानन्दपरयो॥

"शम्भु का शरीर आप ही हैं, आपके दोनो स्तन शशि और सूय हैं। हे भगवती ! मैं आपको ही अनघ नवीन आत्मा मानता हूँ। अतएव शेष और शेषी यह उभय मे साधारणता से स्थित सम्बन्ध है, जो सम रस परानन्द पर आप दोनो का है।"

इसी प्रकार—

मनस्त्व व्योम त्व मरुदसि मरुत्सारथिरसि,
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम् ।
त्वमेव स्वात्मान परिणमयितु विश्ववपुषा,
चिदानन्दाकार शिवयुवतिभावेन विभृपे ॥

—सौंदर्य लहरी ३५

"आप ही मन हैं, व्योम तथा वायु भी आप ही हैं और मरुत के सारथि भी आप हैं। आप ही जल हैं। परिणत आप मे भूमि है, अन्य नही है। आप ही स्वकीय आत्मा को विश्ववपु के द्वारा परिणमित करने के लिए ज्ञान तथा आनन्द के आकार वाला स्वरूप शिव और युवती के भाव से धारण किया करती हैं।"

उनके शाक्त मत का पक्षपाती होने का प्रमाण नीचे के दो स्तोत्रो से भी भली प्रकार सिद्ध होता है—

शब्दब्रह्ममयी चराचरमयी ज्योतिर्मयी वाङ्मयी,
नित्यानन्दमयी निरञ्जनमयी तत्वमयी चिन्मयी ।
तत्वातीतमयी परात्परमयी मायामयी श्रीमयी,
सर्वैश्वरमयी सदाशिवमयी मा पाहि मीनाम्बिके ।।

—मीनाक्षी-स्तोत्र

"मीनाक्षी माँ ! तुम शब्द-ब्रह्म से युक्त हो, चराचर में व्याप्त हो, प्रकाश स्वरूपा हो, वाणी मे व्याप्त हो, नित्य आनन्दमयी हो, निर्लेप हो, तत् और त्वम् पदो से युक्त एव चैतन्यस्वरूपा हो। तत्वो से पृथक् हो, परात्पर हो, माया और लक्ष्मी से परिपूर्ण हो, सारे ऐश्वर्यो की स्वामिनी हो, सदाशिव से युक्त हो, मुझ भक्त की रक्षा करो।"

चकार निर्गुणब्रह्मोऽपि सगुणब्रह्मविशेषण सद्भाव-समुच्चयपर सर्वत्रापि द्रष्टव्य । 'सच्चिन्मय शिव साक्षात्तस्यानन्दमयी शिवा' इति वचनेन स्त्रीरूपा चिन्तयेद्देवी पु रूपामथवेश्वरीम् । अथवा निष्कल ध्यायेत् सच्चिदानन्दविग्रहम्' इति स्मृत्या च 'त्व स्त्री त्व पुमान्' इति श्वेताश्वतरोपनिषद् उपाधिकृतनानारूपसम्भवोक्तेश्च । अतएव 'सेय देवतैक्षत' इत्यादौ 'तत्सत्य स आत्मा' इत्यन्ते च,श्रुतौ स्त्रीलिङ्गान्तदेवतादिपदानी तत्सत्यमिति नपु सकान्तस्य, स आत्मेति पुँल्लिगात्मशब्दस्य एकार्थत्वम् । अविवक्षितोपाधिमत्तया तत्व परलक्ष्यार्थस्यैकात्वात् । तस्मात् तत्व लक्ष्यार्थे सर्वेऽपि गुणा वर्णितु सम्भवन्तीति हयग्रीवेण अस्या त्रिशत्या बहव. चकारा उपात्ता । —ललितात्रिशती भाष्य

"चकार निर्गुण ब्रह्म का और सगुण ब्रह्म का बोध कराने वाला समझना चाहिए । 'शिव साक्षात् सत्, चित् और आनन्द से युक्त है' और 'देवी का स्त्री-रूप मे अथवा पुरुष-रूप में चिन्तन करे' अथवा 'सच्चिदानन्द ब्रह्म के निर्गुण रूप का ध्यान करे'—इस स्मृति-वचन मे 'तुम स्त्री हो और तुम पुरुष भी' इस श्वेताश्वतरोपनिषद् के वचन का प्रमाण उपस्थित है । इसलिए 'इस देवी ने देखा', 'वह सत्य है, वही आत्मा है' आदि मे, वेद मे स्त्रीलिंग शब्दों एव पुँल्लिंग शब्दो का एक ही अर्थ है । उपाधि न कहे जाने के कारण पर लक्ष्य-अर्थ भी एक ही है । इसलिए तत् और त्वम् पदो द्वारा सारे गुणो का वर्णन भी सम्भव है, इसलिए हयग्रीव ने इसमे बहुत से चकार बनाए हैं ।"

शङ्कर वेदान्त तथा अद्वैतवाद के आचार्य माने जाते हैं । तन्त्रो का गम्भीर अवलोकन करने वालो को भी उनमे यही ध्वनि सुनाई देती है । शैव तथा शाक्त आगमो मे विभिन्न स्थानो पर इस मत की महिमा का गान किया गया है । चतुःषष्टि भैरवागमो में भी अद्वैत तत्व का प्रतिपादन है । यह तन्त्र जीवात्मा को परमात्मा के साथ अभेद सिद्धि मानते हैं । तान्त्रिक साधना का पहला सिद्धान्त भी यही है—

देवो भूत्वा यजेद् देवम् ।

साधक को अपने उपास्य देव के साथ एकता स्थापित करनी चाहिये। शाक्त मत की प्रत्येक साधना में अद्वैतवाद की प्रधानता रहती है। उसकी यही विचार-धारा रहती है—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान् ॥

'मैं देवी हूँ, अन्य नहीं। मैं ब्रह्म ही हूँ। शोक का विषय नहीं। सत्, चित् और आनन्द गुणों से युक्त मैं नित्यमुक्त हूँ।"

इससे स्पष्ट है कि शङ्कर वेदान्त मत के परम आचार्य होते हुए भी शाक्त-मत का समर्थन करते थे और इसके उपदेष्टा थे।

शङ्कर ने 'प्रपञ्चसार' नाम के तन्त्र की रचना भी की है। इसकी टीका उनके शिष्य पद्मपादाचार्य ने लिखी है। 'सौन्दर्य लहरी' के अतिरिक्त 'ललितात्रिशतीभाष्य' उनकी एक उत्तम कृति मानी जाती है।

इससे शङ्कर को तन्त्र-प्रसार का एक स्तम्भ माना जा सकता है।

ooo

शक्ति और वेद

वेद मे शक्ति तत्व का अभाव है, ऐसा नही कहा जा सकता। वेद के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आर्य ऋषि ईश्वर के मातृस्वरूप की आराधना से परिचित थे। प्रमाणस्वरूप अनेको मन्त्र उपलब्ध होते हैं, जो इस भावना के बोधक हैं। वेद मे कहा है कि एक 'अजा' से ही प्रजाओ की सृष्टि हुई है। इस 'अजा' से यह आद्याशक्ति ही अभिप्रेत मानी गई है।

ऋग्वेद में तो एक पूरा सूक्त इसी के लिए सुरक्षित है। अम्भृण ऋषि की विदुषी कन्या वाक् को परमात्म-साक्षात्कार हुआ था और ईश्वर के साथ अभिन्नता प्राप्त करने मे वह सफल हुई थी। उनकी अनुभूतियो के साररूप मत्र वेद मे दिए हुए हैं, जिन्हे देवी-सूक्त के नाम से सम्बोधित किया जाता है। ऋग्वेद के १० वे मण्डल का १२५ वां सूक्त है—

अह रुद्रे भिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वैदेवै ।
अह मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमाश्वनोभा ।।
अह राष्ट्री सगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवाव्यदधु पुरुत्रा भूरिस्थात्रा भूर्यावेशयन्त ।।
अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवानामुत मानुषाणाम् ।
य कामये ततमुग्र कृणोमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेधाम् ।।
मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति य प्राणति य ई
शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मा त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेय
ते वदामि ॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय
सुन्वते ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप
स्पृशामि ॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिम्ना सं बभूव ॥

अर्थ—"मैं ग्यारह रुद्र और आठ वसुओं के रूप से विचरती हूँ। धाता आदि द्वादश आदित्य और विश्वेदेवा रूप में भी विचरती हूँ। मैं मित्रावरुण का भरण करती, इन्द्राग्नि और अश्विद्वय को धारण करती हूँ।

मैं ब्रह्मात्मिका दिखाई पड़ने वाले सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूँ इसलिये आराधकों को ऐश्वर्य प्राप्त कराती हूँ। मैंने परब्रह्म से साक्षात्कार किया है, इसलिये यज्ञयोग्य देवताओं में मैं प्रमुख हूँ। ऐसी मुझे, फलदाता देवता अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित करते हैं। इस प्रकार देवगण जो कुछ करते हैं, वह सब मेरे निमित्त ही होता है।

मैं स्वयं आत्मरूपा हूँ। मैं इन्द्रादि देव और मनुष्यों को भी प्रिय ब्रह्मात्मक वस्तु का उपदेश करती हूँ। मैं जिसकी रक्षा करना चाहती हूँ उसे प्रबल बनाती हूँ। मैं उसे ईश्वर, मुग और ऋषि बनाकर सुन्दर बुद्धि से सम्पन्न करती हूँ।

अन्न भक्षण करने वाला भोक्ता मेरे द्वारा ही खाता है। देखना,

सुनना, श्वांस लेना आदि सभी कार्य मेरे द्वारा ही किये जाते है। मैं इस प्रकार अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हूँ। जो मुझे नही जानते, वह उपक्षीण हो जाते हैं। हे मित्र ! यह भक्ति करने के योग्य जो कुछ, मैंने कहा है, उसे ध्यान से सुन।

त्रिपुरासुर को मारने के लिये मैं ही धनुष उठाती और स्तुति करने वालो के लिये युद्ध करती हूं। मैं स्वर्ग और आकाश को अदृश्य रूप से व्याप्त करती हूं।

शत्रुओ का जहाँ नाश हो जाता है, ऐसे स्वर्ग मे निवास करने वाले देवताओ से सम्बन्धित सोम का मैं पोषण करती, त्वष्टा, पूषा और भग देवता का भी मैं ही पोषण करती हूँ और मैं ही हविदाता यजमान को भी यज्ञ का फलरूप ऐश्वर्य प्रदान करती हूँ।

इस दीखते हुए लोक के शिररूप सत्यलोक मे निवास करने वाले विधाता को मैं हो उत्पन्न करती हूं। इस ससार की मैं ही कारणरूप हूँ, ब्रह्म-चैतन्य की निमित्त भी मैं ही हूं। समुद्र में वडवानल और विद्युत-रूप तेज भी मेरा है। मैं सब प्राणियो को प्रकट करती, स्वर्ग और ब्रह्म मे अव्यक्त विकारो को मायात्मक देह से स्पर्श करती, पृथ्वी के ऊपर पितारूप द्युलोक को प्रेरित करती और अन्तरिक्ष के जन्म के विकार रूप देवताओ में जो ब्रह्म व्याप्त है, उसके द्वारा मैं सबको छूती हू।

मैं किसी अन्य की सहायता लिए बिना सब प्राणियो को उत्पन्न करती हुई वायु के समान प्रवृत्त होती हू। द्युलोक, पृथ्वी और सम्पूर्ण विकारो से रहित ब्रह्म-चैतन्य रूप वाली मैं अपनी ही महत्ता से ऐसी शक्तिशालिनी हो गई हूँ।"

इयम ददाद्र भसमृणाच्युत दिवोदास वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शाश्वन्तमाचखादावम पणि ता ते दात्राणि तविषा
सरस्वति। ॥
इय शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणा
तविषेभिरूर्मिभि ।

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वतीमा
विवासेम धीतिभि ॥
सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजा विश्वस्य वृसयस्य
मायिन ।
उत क्षितिभ्योऽवनीविन्दो विपमेभ्यो अस्रवो
वाजिनीवति ॥
प्रणो देवी सरस्वती वाजे भिर्वाजिनीवती
धीनामवित्र्यवतु ।
यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रू ते धने हिते
इन्द्र न वृत्रतूर्ये ॥

'सरस्वती ने हविदाता वध्र्यस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया। उन्होंने अदानशील पणि का शोषन किया। हे सरस्वती तुम्हारे दान विस्तृत हैं। यह सरस्वती पर्वत के तटो को अपनी लहरो से तोडती है। हम उन्ही की सेवा करते हैं। हे सरस्वती! तुमने देव निन्दको और त्वष्टा के पुत्रो को मारा तथा मनुष्यो को भूमि देकर जल-वृष्टि की। अन्नवनी सरस्वती रक्षा करने वाली हैं, वे हमे भली प्रकार तृप्त करे। इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले सग्राम में जाता है। तुम उसकी रक्षक होओ।"

त्व देवि सरस्वत्यवा वाजेपु वाजिनी
रदापूपेव न सनिम् ।
उत स्या न सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनि
वृत्रघ्नी वृष्टि सुष्टुतिम् ॥

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेपश्चरिष्णुरर्णव
अमश्चरति रोरुवत् ।
सा नो विश्वा अतिद्विप. स्वसृरन्या ऋतावरी
अतन्नहेव सूर्य ॥

उत न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥

"हे सरस्वती ! तुम युद्ध मे रक्षा करो। पूषा के समान हमे उपभोग्य धन दो। शत्रु का नाश करने वाली रथारूढा सरस्वती हमारे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करे। इन सरस्वती का वेगवान जल शब्द करता हुआ जाता है। सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियो सहित आती हैं। सरस्वती की प्राचीन ऋषियो ने सेवा की थी, वह हमारी स्तुति के योग्य हो।"

आपप्रर्षा पार्थिवान्युरु रूजो अन्तरिक्षम्
सरस्वती निदस्पातु ॥
त्रिषधस्ता सप्तधातु. पञ्चजाता वर्धयन्ती।
वाजेवाजे हव्याभूत ॥
प्रया महिम्ना महिनासु चेकिते द्यु म्नेभिरन्या
आपसामपस्तमा।
रथइव बृहती विभवने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती॥
सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा
मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥

"जिन सरस्वती ने स्वर्ग और पृथ्वी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निन्दकों से बचावें। सप्त नदियो वाली सरस्वती सग्राम में आह्वान करने योग्य होती है। यशवती, नदियो में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं। हम हीन या पीड़ित मत करो। हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो। हमे निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हो।"

एक विद्वान् ने इन शब्दो में सरस्वती का विवेचन किया है—
"वेद का प्रतीकवाद सरस्वती के अलङ्कार में अत्यधिक स्पष्टता

के साथ अपने आप को प्रकट कर देता है, छुपाकर नहीं रख सकता। वह तो सीधे तौर पर और स्पष्ट रूप से वाणी की देवी है, एक दिव्य अन्त प्रेरणा की देवी है। "सरस्वती का सम्बन्ध न केवल अन्य नदियो के साथ है, किन्तु अन्य देवियो के साथ भी है, जो देवियो की स्पष्ट तौर से आध्यात्मिक प्रतीक है। "इला, मही या भारती और सरस्वती—ये तीनो उन प्रार्थना मन्त्रो में, जिनमे कि अग्नि के साथ देवताओ को यज्ञ में पुकारा गया है, एक स्थिर सूत्र के रूप से इकट्ठी आती हैं।"

ऋग्वेद के श्रीसूक्त में भगवती के जड और चेतन रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है—

का सोऽस्मिता हिरण्यप्रकारामार्द्रां,
ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम्।
पद्मे स्थिता पद्मवर्णां
तामिहोपह्वये श्रियम्॥

"किसी आनन्द-सम्मुग्ध तथा सुस्थ, स्निग्ध, प्रेमास्पद, प्रकाश शील जडस्वरूप और अपने लोक मे सोने के महल वाली, अपने आप तृप्त और दूसरो को प्रसन्नता प्रदान करने वाली, पद्माकर सिंहासन में विराजमान और मन्त्रो मे पूज्य रूप अर्चावतार से स्थित पद्म वर्ण वाली उस भगवती का मैं ध्यान करता हूँ।"

अथर्ववेद के चौथे कांड के ३०वें सूक्त की देवता भी वाक् है। इसमे भी ८ मन्त्र है और यह वही ऋग्वेद वाले ही मन्त्र उद्धृत है, परन्तु प्रस्तुत करने मे कुछ अन्तर है। अथर्ववेद के ऋषि को वाक् देवी की वाणी ने प्रभावित किया, तभी पूरे-का पूरा सूक्त उसी प्रकार दे दिया जैसा ऋग्वेद में है। इससे वेद की शक्ति विषयक मान्यता और दृढ़ होती है। दुर्गा की स्तुति करते हुए अथर्ववेद का ऋषि कहता है—

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान रूपिणी।
ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य साक्षिणी॥

यस्या परतर नास्ति सैपा दुर्गा प्रकीर्तिता ।
ता दुर्गा दुर्गमा देवी दुराचार विघातिनीम् ।
नमामि भवभीतोऽह ससारार्णव तारिणीम् ॥

"मन्त्रो में मातृका, शब्दो में ज्ञान, ज्ञानो में चिन्मयशीला, शून्यो में शून्य साक्षिणी रूप से और जिनमे परे और कुछ नहीं है, वही है माँ दुर्गा । उन्हीं दुर्विज्ञेय, दुर्गम, दुराचारनाशिनी, ससार से पार करने वाली भगवती दुर्गा को मैं भवभीत जन नमस्कार करता हूँ ।"

ईश्वर के मातृरूप को ऋग्वेदमे अदिति कहा गया है । वही वेदमे मातृत्व-रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं । इस अखण्ड आनन्द और चैतन्य को स्फुरित करने वाली शक्ति का रहस्यमय नाम 'अदिति' रखा गया है । उसे देवनामयी भी कहा गया है । 'अदिति' के रूप का वर्णन करते हुए ऋग्वेद (१।८९।१०)मे कहा गया है—

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र ।
विश्वे देवा अदिति पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्ज-
नित्वम् ॥

"आकाश, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवता, सभी जातियाँ अथवा जो उत्पन्न हुआ है और होगा, वह सभी अदिति के रूप हैं ।"

ऋग्वेद ८।२५।३ मे इसे सत्यनिष्ठा और महिमामयी कहा गया है और तेजस्वी तथा ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसो का बल मिटाने के लिए प्रकट करने का गौरव प्राप्त हुआ है । ८।४७।२ मे मित्र, वरुण और अर्यमा की माता कहकर उसे सुखदाता, धनदाता और मगलकारक कहा गया है । २।२७।७ में शत्रुओ से सुरक्षा के लिए अदिति से प्रार्थना की गई है । १।१३६।३ में अदिति को पृथ्वी की धारक और आकाश से युक्त कहा गया है, जिनकी मित्र, वरुण नित्य सेवा करते हैं । ८।६७। १२ में पुत्र को जीवित रखने के लिये रक्षा की प्रार्थना की गई है ।

५।४६।६ में अदिति को सर्वव्यापक स्वीकार किया गया है। ७।४०।४ मे अदिति को प्रकाशमयी का विशेषण दिया गया है। २।४०।६ में अदिति को तेजस्विनी कहा गया है और शत्रुओ से रक्षार्थ प्रार्थना की गई है। ७।६३।६ मे अदिति से दोषमुक्त करने की प्रार्थना की गई है अर्थात् वह इस शक्ति से सम्पन्न है।

यजुर्वेद (२१।५) मे अदिति के गुणो का वर्णन करते हुए कहा गया है—

महीमूषु मातर७ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तविक्षत्राम जरन्तीमुरूचो ७ सुरार्माणमदिति ँ
सुप्रणीतिम ॥

"महान् यश वाली, श्रेष्ठ कर्मों की माता और सत्यरूप यज्ञ की पालिका, बहुक्षत से रक्षा करने वाली, दीर्घ मार्ग मे गमनशील और अजर तथा कल्याणरूप अदिति को रक्षा के लिए आहूत करते हैं।"

अथर्ववेद ६।४।१-२ में अदिति को अजेय बल की रक्षक कहा गया है।

श्री अरविन्द ने अदिति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "अदिति वह अनन्त सत्ता है, जिससे देवता उत्पन्न हुए हैं और जो अपने सात नामो और स्थानो (धामानि) के साथ माता के रूप मे वर्णित की गई है। यह भी माना गया है कि वह अनन्त चेतना है, गौ है, या वह आद्या ज्योति है, जो 'सप्तगाव' मे व्यक्त होती है।

वेदो की अदिति—अनन्त अखण्ड शक्ति—देवताओ की माँ है। मूलरूप से अदिति एकमेव और स्वय प्रकाशित अनन्त सत्ता की शुद्ध चेतना है। अदिति वह ज्योति है जो समस्त वस्तुओ की माँ है। यह वह गाय है, जिसका थन समस्त विश्व का पोषण करता है। यहाँ निम्न-सत्ता में वह भू-सिद्धात के रूप मे व्यक्त हुई है। अदिति—अनन्त माँ—अपने बालकों—देवताओं—के जन्म तथा कार्य के द्वारा मानव-सत्ता में अपने को उपलब्ध है।"

दिति दैत्यो की माता है—इसका भी वेद में वर्णन आता है। अदिति और दिति की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए एक अधिकारी विद्वान् ने एक बार लिखा था—

"जिस प्रकार व्यक्ति को जन्म देने वाली माता होती है, उसी प्रकार जगत् और ब्रह्माड को उत्पन्न करने वाली माता भी है। नि सीम विश्वातीतता (Transcendence) मे से विश्व को जन्म देना विश्व-माता का काम है। परन्तु विश्व की उत्पत्ति के बारे मे बिलकुल ही अलग, फिर भी अविरोधी और एक दूसरे के पूरक दो दृष्टिबिन्दु हैं। एक के अनुसार विश्व की उत्पत्ति विश्वातीत परचेतना (Super-concsience) में से हुई है, जबकि दूसरे के अनुसार अचेतना (Inconscience) में से। पहला दृष्टिबिन्दु आत्मवादी का है और दूसरा भौतिकवादी का। दोनों सच्चे हैं। एक ही घटना को ये अस्तित्व के दो छोरो से देखते हैं।

जब ऊपर के छोर से विश्व की उत्पत्ति को देखते हैं तो विश्व की माता नि सीम अविभक्त चित्-शक्ति है। ऋग्वेद की भाषा में 'चित्ति' तथा देवों की माता 'अदिति' है। जब नीचे के छोर से देखते हैं, तब विश्व की माता विभक्त एव विभाजक अचेतना है। वेद की भाषा मे 'अचित्ति' तथा दैत्यो की माता 'दिति' है। चित्त एव अचित्त, अदिति एव दिति दोनो एक साथ ही जगत् की माताएँ हैं। पहली है नि सीम चेतना और दूसरी है उसी का दर्पण मे पडता उल्टा प्रतिबिम्ब (Mirror Image)। पुराणों के अनुसार अदिति और दिति दोनो कश्यप की पत्नियाँ हैं। कश्यप सूर्य है और सूर्य अतिमानस चेतना का प्रतीक है। अतिमानस चेतना विश्व को उत्पन्न करने वाली है—उसके भीतर अदिति और दिति अर्थात् नि सीमता और ससीमता, एकत्व और अनेकत्व, अखण्डता और खण्डता—दोनों का सम्पूर्ण समन्वय है, स वादिता है।

अदित अथवा नि सीम चेतना देवो की – आदित्यो की माता है। दिति अथवा विभक्त हुई— टुकडे हुई (दो—अवखण्डने धातु पर से) चेतना दैत्यो की माता है। देव तथा आदित्य दिव्य-तत्व है, वे सभी को अविभक्तता, सवादिता की ओर ले जाते हैं। दैत्य अदिव्य तत्व हैं, वे सभी में विभक्तता एव विसवादिता का निर्माण करते हैं।

अदिति की विरोधिनी मलिन सत्ता को दिति कहा जाता है। इसीलिए उसके पुत्रो का नाम दैत्य पडा। दिति के विरुद्ध आदिति है। दैत्य के विरुद्ध आदित्य है, असुरके विरुद्ध देव हैं। ऋग्वेद ७।१५।१२ में 'दितिश्च दाति वार्यम' दिति को इच्छित फल देने वाली कहा गया है। ४।२।११ मे भी दिति को प्रदान करने वाला कहा गया है। अथर्ववेद १५।१८।४, १६।६।७ में देवी के रूप मे दिति का वर्णन किया गया है। ७।७।१ मे दिति के पुत्रो का उल्लेख है।

कुछ अन्य अन्य देवियो का वर्णन वेद मे आता है। सूर्यदेवी के सूक्तो मे शक्ति के पत्नी-भाव का उल्लेख है। ऋग्वेद के परिशिष्ट में लक्ष्मीसूक्त आता है। ऊषादेवी के सूक्तो मे शक्ति के कुमारी-भाव का वर्णन है। श्री अरविन्द ने इन सुन्दर और सुगठित शब्दो में ऊषादेवी की व्याख्या की है—

"ऊषा स्वर्ग की पुत्री, अदिति की शक्ति और मुख है। वह सर्वदा मानवो पर दिव्य ज्योति की उन्मुक्तता बिखेरती है। वह आध्यात्मिक समृद्धि की आगमनी है। भू सत्ता पर स्वर्ग के स्वर्णिम कोष की वर्षा है। ऊषा मानव अज्ञान की रात्रि मे सर्वोच्च आलोक की दिशा का प्रतीक है। ऊषा का मूल चिन्तन और अगिरस की कथा वैदिक विचार का हृदय है। ऊषा देवमाता भी है। वह उन्हे मानव की क्षुद्रता से बिना दबाये और हमारी प्रज्ञा मे बिना आवृत्त किये ही मानवता मे जन्म देती है।"

ऋग्वेद मे अनेको सूक्त ऊषा के लिए समर्पित है। ऋग्वेदके प्रथम

मण्डल के ६२वें सूक्त में इसकी महिमा वर्णित है। यहाँ इसे आकाश की पुत्री और अद्भुत प्रकाश से युक्त कहा गया है।(५) प्रिय सत्य वाणी की ओर प्रेरित करने वाली गोतमो द्वारा स्तुत्य है, उससे पुत्र, पौत्र और घोड़ों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करने की प्रार्थना की गई है। (७) वह सौभाग्यवती है (८), वह सब लोकों को देखती है और चिन्तनशील प्राणियों की वाणी को जानने वाली है। (९) वह आकाश की सीमाओं को प्रकट करने वाली है। प्रथम मण्डल का ११३वां सूक्त भी पूरा ऊषा के लिए विहित है। वहाँ इसे कर्मक्षेत्र का द्वार खोलने वाली कहा गया है (४), सिकुड़कर सोते हुए को यह धनेश्वरी चैतन्य करती है, वह भोग, पूजा, धन, दृष्टि, आरोग्य की प्रेरणा देती हुई सब भुवनों को प्रकाश से भर देती है (५), सब भुवनों पर इसका अधिकार है (६), यह उज्ज्वल-वसना युवती सभी पार्थिव धनों की स्वामिनी है (७), यह जीवित को प्रेरणा देने वाली मृत को चैतन्यता प्रदान करती है (८), अजर-अमर यह ऊषा अपनी इच्छा से गतिमान है।

ऋग्वेद (पाँचवें मण्डल) के ७९ ८० सूक्तों की देवता भी ऊषा है। ७९ वें सूक्त में इसे श्रेष्ठ बुद्धिदाता (१) धनदाता (२) अन्धकार मिटाने वाली (३) ऐश्वर्यशालिनी (४) अन्नदाता (५) कहा गया है। ८०वें सूक्त में सर्वव्यापिनी, यज्ञों को उत्तम प्रकार से पूजनीय है (१)।

वेद में देवताओं की पत्नियों के नाम भी देवियों के रूप में आते हैं। जैसे इन्द्र की इन्द्राणी, वरुण की वरुणानी, अग्नि की अग्नायी, रुद्र की रुद्राणी, अश्विनों की अश्विनी आदि।

मरुतों की माता को 'पृश्नि' कहा गया है। ओम् को भी एक अलग सूक्त दिया गया है। 'रात्रि' का भी १०।१२७ में आह्वान किया गया है। 'पुरन्धि' समृद्धि की देवी है। इसका वेद में ९ बार नाम आया है। प्रचुरता की देवी 'विरण्णा' है। दूध और घी की आहुतियों का स्थूलीकरण इडा' में किया गया है। 'इडा गाय से सम्बन्धित है।

'राका' उदारता और समृद्धि की देवी है। 'सिनीवाली' बहुप्रसूता, परिवार की स्वामिनी, सन्तानप्रदाता है। अथर्ववेद (८।४६।३) मे इसे विष्णु पत्नी घोषित किया गया है। 'नव-चन्द्रमा' का प्रतीक 'कुहू' का भी उल्लेख आता है।

ऋग्वेद १।१३।६ में इला, सरस्वती और मही को सुख देने वाली कहा गया है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि वेदो मे भी ईश्वर के मातृरूप को स्वीकार किया गया है, देवियो की महिमा का यशोगान किया गया है, उनकी उपासना की प्रेरणा दी गई और उन्हे सुख एव सौभाग्य प्रदान करने वाली बताया गया है। अत इसमें कुछ भी सन्देह नही कि वेद मातृ-उपासना—शक्ति-उपासना—को मानते हैं।

●●●

शक्ति और उपनिषद्

आत्म-विद्या, ब्रह्म विद्या के रहस्य का उपनिषदो मे विवेचन हुआ है। उपनिषद् शब्द का अर्थ ही है—'परमात्मा की प्राप्ति का रहस्यमय ज्ञान'। भारतीय तत्वज्ञान का जितना उत्कृष्ट विवेचन उपनिषदो मे मिलता है, उतना अन्यत्र कही नही है। ससार के समस्त तत्वज्ञानियो के लिए यह ज्ञान अमृतोपम रहा है। जिसने इसका जितना ही अवगाहन किया है, उसे उतना ही आनन्द मिला है। आत्म-कल्याण का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए उपनिषदो से बढ़कर प्रकाश-स्तम्भ और कोई हो नही सकता। विदेशी दार्शनिको का भी यही अभिमत है कि उपनिषदो के समान आत्मा को ऊँचा उठाने वाला ज्ञान ससार में और कही नही है।

भारतीय अध्यात्मवाद के प्रतीक उपनिषदो ने शक्ति और उसके तत्वज्ञान को एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अनेको उपनिषदे इसी के लिए अभिहित की गई हैं। बहवृच, देवी, त्रिपुरा, त्रिपुरातापिनी, सीता, सौभाग्यलक्ष्मी, तारा, काली, कौल, सरस्वती हृदय, अरुण, अद्वैतभाव और श्री विद्यातारक—शक्ति के बोधक उपनिषद् माने जाते हैं। इनमे से कौल, त्रिपुरा और भावना उपनिषद् का भाष्य प्रसिद्ध तान्त्रिक दार्शनिक भास्कर राय ने लिखा है और त्रिपुरा व भावना पर अप्पय दीक्षित ने। इनका प्रकाशन तान्त्रिक टेक्स्ट ग्रन्थमाला, कलकत्ता द्वारा हुआ है।

भावोपनिषद् देवी के परस्वरूप का प्रतिपादक है। इसमे श्रीविद्या

की अध्यात्म प्रतिष्ठा है। शाक्त अद्वैतवाद की आधारशिला इसी उप-निषद् पर रखी गई प्रतीत होती है।

त्रिपुरातापिनी मे मूल श्रीविद्या की पञ्चदशाक्षरी का उद्धार मिलता है। इसमे देवी की स्थूल व सूक्ष्म दोनो प्रकार की पूजन-पद्धति का विवेचन है। यह नृसिंह-तापिनी से मिलता जुलता है।

'सरस्वती हृदय' मे ऋग्वेद के सरस्वती से सम्बन्धित मन्त्र हैं। उनका तान्त्रिक विनियोग भी दिया हुआ है। अरुणोपनिषद् तैत्तरीय आरण्यक से सम्बन्धित है।

देवी उपनिषद् तो सम्पूर्ण इसी विषय का विवेचन करता है। देवताओ की जिज्ञासा पर देवी ने उत्तर दिया—

'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूं। यह कार्य, कारण, रूप, प्रकृति और पुरुषात्मक विश्व मुझमे ही उत्पन्न हुआ है। मैं आनन्दरूपिणी तथा आनन्दरहित रूप वाली है। मैं विज्ञानमयी और अविज्ञानरूप हूं। मैं ज्ञानव्य ब्रह्म तथा ब्रह्म से परे भी हूं। मैं पञ्चीकृत महाभूत हूं। दिखाई पडने वाला यह सम्पूर्ण विश्व मैं ही हूं। विद्या-अविद्या वेद-अवेद अजा और अनजा मैं ही हूं। मैं नीचे भी हूं और ऊपर भी हूं, अगल-बगल मे भी मैं ही हूं। मैं रुद्रो और वसुओ के रूप में सचार करने वाली हूं। आदित्यो और विश्वेदेवो के रूप में सचार भ्रमण करती रहती हूं। मैं ही मित्रवरुण इन्द्राग्नि और अश्विद्वय की पालिका हूं। सोम, पूषा, भग और त्वष्टा को मैं ही धारण करती हूं। तीनो लोकों को आक्रान्त करने के उद्देश्य से पदक्षेप करने वाले विष्णु ब्रह्मा व प्रजापति के धारण करने वाली हूं। देवताओ के लिए हवि-वाहक और सोमाभिषव वाले यजमान के निमित्त हवियुक्त धनो को धारण करती हूं। मैं उपासको के लिए धनदायिनी, ज्ञानवती, यज्ञो में नायिका तथा सम्पूर्ण विश्व की अधीश्वरी हूं। विश्व के पितारूप आकाश को परमात्मा के ऊपर मैं ही प्रकट करती हू। मेरा स्थान आत्मरूप की धारिणी बुद्धि वृत्ति मे है। इस प्रकार जानने वाला ज्ञानी पुरुष दिव्य सम्पत्ति प्राप्त करता है।"

फिर देवताओं ने देवी की स्तुति करते हुए तथा दक्ष को सम्बोधित करते हुए कहा —

"हे दक्ष ! आपकी कन्या अदिति के प्रसूता होने पर अमृतत्व गुण वाले देवताओं की उत्पत्ति हुई। काम, योनि, कमल, वज्री, गुहा, सकल ह वर्ण एवं माया यह सब उस जगन्माता की ब्रह्मरूपिणी सूत्र विद्या है। यह विश्व को मोहित करने वाली, पाश, अंकुश, धनुष-बाण धारिणी परब्रह्म की शक्ति है, यही श्रीमहाविद्या हैं—इस प्रकार जानने वाला पुरुष शोक सन्ताप से मुक्त हो जाता है। हे जगन्माता तुम्हें नमस्कार है। तुम सभी प्रकार से हमारी रक्षा करने वाली बनो।

वही यह एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य और अष्टवसु हैं। वही यह सोमपायी विश्वदेवा हैं। वही यह यातुधान, दैत्य, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं। वही यह विष्णु और रुद्र रूप वाली तथा सत्व सब-कला काष्ठादि सहित काल स्वरूपा हैं। भोग और मोक्षदायिनी, पापनाशिनी, विश्व की अधिष्ठात्री, अन्त से अतीत, कल्याण-मङ्गल रूप वाली, दोष रहित एवं आश्रयदात्री भी वही हैं। हम इन देवी को सदा नमस्कार करते हैं।

हृदय-कमल में निवास करने वाली, अरुणोदय के समान प्रभा वाली, पाश-अंकुश धारिणी मनोहर रूप वाली वरद हस्त और अभय मुद्रा वाली त्रिनेत्र, लोहितवसना, कामना पूर्ण करने वाली देवी का मैं सदा भजन करता हूँ। हे महादेवि ! तुम महान् भय और महान् संकट को दूर करने वाली तथा करुणामयी मूर्ति हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मादि भी जिनके यथार्थ रूप को नहीं जानते, इसलिए जो अज्ञेय तथा अन्त न होने से अनन्ता कही जाती हैं जो दिखाई न पड़ने से अलक्ष्या, जन्मरहित होने से अजा, एक ही सर्वत्र व्याप्त होने से एका तथा विश्वरूप में अकेली ही सुशोभित से नैका कही जाती है। समस्त अक्षरों में मूलाक्षर रूप में रहने वाली, चिन्तनातीता, शून्यसाक्षिणी वे

सर्वश्रेष्ठ दुर्गा के नाम से प्रसिद्ध हैं। उस संसार-सागर से पार करने वाली, दुराचार को नष्ट करने वाली दुर्गा देवी को मैं भवसागर से भय-भीत हुआ नमस्कार करता हूँ।"

महानारायणोपनिषद् में देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—"देवी ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की और वही संसार की उत्पत्ति से पहले थी। वह ही कामकला और श्रृङ्गारकला के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हीं से ब्रह्मा, विष्णु व रुद्र का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं से सारे मरुद्गण, गन्धर्व, अप्सरायें और किन्नर उत्पन्न हुए, समस्त भोग-सामग्री का कारण वही हुईं। सब कुछ उन्हीं से सृजन हुआ। शक्ति से सबकुछ बना। मनुष्य तथा समस्त स्थावर-जंगम प्राणियों (अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज) की उत्पत्ति उन्हीं से हुई। उन्हीं को अपराशक्ति, शाम्भवी विद्या, कादिविद्या, हादिविद्या सादिविद्या व रहस्यरूपा कहते हैं। ये ही वह अक्षर तत्त्व हैं, जो प्रणव का प्रतिपादन करती हैं—प्रणवस्वरूपा हैं, प्रत्येक प्राणी की वाणी पर प्रतिष्ठित हैं। ये ही तीनों अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति) व तीनों प्रकार के शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) में व्याप्त हो रही हैं और वही उनको प्रकाशित कर रही हैं। ये प्रत्येक प्राणी में चेतना उत्पन्न करती हैं। उन्हीं को आत्मा कहा जाता है। उनको छोड़कर सबकुछ असत्य और अनात्म है। ये परब्रह्म का बोध कराने वाली विद्या शक्ति हैं। ये ब्रह्म का ज्ञान कराने वाली हैं। ये सत्, चित् और आनन्दस्वरूपा हैं। प्रत्येक वस्तु के बाहर और भीतर व्याप्त हो रही हैं। उनके अस्ति, भाति और प्रिय तीनों रूप सत् चित् और आनन्द के द्योतक हैं। इस प्रकार से वह महात्रिपुरसुन्दरी समस्त स्थूल वस्तुओं में प्रतिष्ठित हैं। मैं और तुम, देवता, सारा संसार व शेष सब कुछ ये देवी ही हैं। ललिता ही सत्य हैं, ये ही परब्रह्म तत्त्व हैं। पाँच रूपों (अस्ति, भाति, प्रिय, नाम, रूप) के त्यागने और अपने रूप के न त्यागने से जो सत्ता शेष रह जाती है, उसी को परम तत्त्व कहते हैं।

"वह (शक्ति) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर की परमशोभा है, वह सत्, चित, आनन्द की लहरी है। वह भीतर बाहर व्याप्त रहती हुई स्वय प्रकाशित हो रही है। वह समस्त दृश्य पदार्थों के पीछे रहने वाली वस्तु-सत्ता है। वह आत्मा है। उसके अतिरिक्त सभी कुछ असत् अनात्म है। वह नित्य, निर्विकार, अद्वितीय, परमात्मा की परम दिव्य चेतना की आदि अभिव्यक्ति है। सृष्टि के आदि में देवी ही थी और इसी पराशक्ति भगवती से ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा सम्पूर्ण स्थावर जडात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई। ससार में जो कुछ है इसी मे सन्निविष्ट है। भुवनेश्वरी, प्रत्यगिरा, सावित्री, सरस्वती, ब्रह्मानदकला आदि अनेक नाम इसी पराशक्ति के हैं।"

सरस्वती रहस्योपनिषद् में सरस्वती देवी से इस प्रकार दीन भाव से प्रार्थना की गई है।

'जिस सरस्वती का स्वरूप वेदात का सार भूत ब्रह्मतत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपो में प्रकट हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हों।' दान से सुशोभित होने वाली स्तोताओं की रक्षिका एव अन्नवती भगवती सरस्वती इन साधको को अन्न से परिपूर्ण करें।

"वेदों और उनके अग उपागों में जिन एक देव की स्तुति की जाती है तथा जो परब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हो।"

"जो वर्ण, पद, वाक्य में अर्थों सहित सर्वत्र व्याप्त है जो आदि अन्त से परे एव अनन्त रूप वाली हैं, वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हों।"

'जो सरस्वती देवताओं की प्रेरणात्मिका शक्ति, अधिदैवरूपिणी एव हमारे भीतर वाणी रूप मे प्रतिष्ठित हैं,वे भगवती मेरी रक्षिका हो।'

जो सरस्वती अन्तर्यामी रूपसे लोकत्रय का नियत्रण करने

वाली है तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित वे हमारी रक्षिका हों।

'जिन सरस्वती देवी में ब्रह्मतत्ववेत्ताजन नाम-रूप वाले सम्पूर्ण प्रपञ्च को आविष्ट करते हुए उनका ध्यान करते हैं, वे देवी मेरी रक्षिका हो।"

'जो सरस्वती देवी अन्तर्दृग् वाले जीवों के समक्ष विभिन्न रूपो मे प्रकट होती तथा जो ज्ञप्ति रूप से व्याप्त हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बने।"

सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् में देवताओं के पूछने पर भगवान आदि नारायण ने उपदेश देते हुए कहा।

देवताओ! एकाग्र मन से सुनो। स्थूल सूक्ष्म और कारण रूप अवस्थाओ से जो तुरीयावस्था, वरन् तुरीयावस्था से भी परे निर्गुण एव विराट रूप वाली हैं, जो मन्त्र रूप आसन पर प्रतिष्ठित होने वाली हैं, पीठो और उपपीठों में विराजमान देवगण मे घिरी हुई हैं, उन चार भुजा वाली लक्ष्मीजी का श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओ के द्वारा चिंतन करना चाहिए।

राधोपनिषद् में श्री राधा का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

'श्री कृष्ण ही प्रकृति से परे और अविनाशी हैं। आह्लादिनी, सन्धिनी, ज्ञानेच्छा, क्रिया इत्यादि इनकी अनेक शक्तियाँ हैं। इन सबमे 'आह्लादिनी' सबसे प्रधान है। यह उनकी सर्वाधिक अन्तरंग है, इन्ही को राधा कहते है। भगवान कृष्ण स्वय इनकी आराधना करते हैं। श्री राधाजी सदैव कृष्ण की आराधना करती हैं। राधिका को 'गन्धर्वा' भी कहा जाता है। समस्त गोपियाँ, श्री कृष्ण भगवान की महिषियाँ और लक्ष्मी का प्राविर्भाव भी राधाजी के शरीर मे ही हुआ है।

रस-सागर भगवान श्रीकृष्ण स्वयं ही क्रीडार्थ एक से दो रूपों में विभक्त हो गए हैं।

श्रीराधा सर्वेश्वर भगवान कृष्ण की भी सर्वेश्वरी हैं, उनकी समस्त विद्याओं में सनातनी हैं। ये श्री कृष्ण को प्राणों से अधिक प्रिय देवी हैं। चारों वेद भी एकान्त भाव से इनकी स्तुति करते हैं। ब्रह्मज्ञानी ऋषि इनकी गति को जानते और कहते हैं। इनकी महिमा इतनी अधिक है कि मैं चाहे अपनी समस्त आयु उसे कहता रहूँ तो भी उसका पार नहीं मिल सकता। श्री राधा जी जिस पर प्रसन्न होती है, उसे तुरन्त परमधाम की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई राधाजी की अवज्ञा करके कृष्ण भगवान की आराधना करने की इच्छा करता है तो वह सर्वाधिक मूढ है।

सीतोपनिषद् में सीता की मूल प्रकृति स्वीकार करते हुए कहा गया है —

सीताजी शक्ति रूपिणी हैं। मूल प्रकृति होने से वे ही प्रकृति कही जाती है। प्रणव की प्रकृति रूपा होने से भी उन्हें प्रकृति कहते हैं। ये साक्षात् योगमाया ही हैं। इनका सीता नाम तीन वर्णों का है। सम्पूर्ण विश्व प्रपंच के बीज भगवान विष्णु हैं। उनकी योगमाया का का रूप ईश्वर है। स' कार को सत्य अमृत, सिद्धि' चन्द्र तथा प्राप्ति का वाचक कहते हैं। दीर्घ अकारयुक्त 'त' कार विस्तार करने वाला एवं महालक्ष्मी रूप वाला कहा है। ईकार वाली अव्यक्त महामाया अपने अमृतमय, अवयवों और दिव्य भूषणों से विभूषित रूप से व्यक्त होती है। वे त्रयरूपा अपने प्रथम रूप में शब्दब्रह्म से युक्त हैं। वे प्रसन्न होकर बुद्धि रूप में बोध देने वाली हैं। वे अपने द्वितीय रूपमें जब इस भूतल पर व्यक्त हुई तब जनक की यज्ञ भूमि में हलके अग्र-भाग से प्रकट हुई। उनका तृतीय रूप ईकारमय एवं अव्यक्त हैं। यही तीन रूप पर्याप्त रूप से सीता कहे गए हैं। शौनकीय तन्त्र में कहा

है कि श्री राम के नित्य सान्निध्य के कारण सीता जी विश्व का कल्याण करने वाली हैं। वे ही सब प्राणियो की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करती हैं। वही मूल प्रकृति के रूप मे प्रसिद्ध षडैश्वर्य से युक्त भगवती हैं। प्रणवस्वरूपा होने से ब्रह्मवेत्ता उन्हे प्रकृति कहते है। वे सीताजी सर्वदेवता स्वरूप, सर्ववेद-रूपिणी, सर्वलोकमयी, सबकी आश्रयभूता, सर्वकीर्तियो से सम्पन्न, सर्व धर्मसम्पन्न, सभी पदार्थों और जीवो की आत्मा, सब देव गन्धर्व, मनुष्य आदि प्राणियो की स्वरूप हैं। वे सभी प्राणियो की देहरूपा और समस्त विश्वरूपा महालक्ष्मी हैं। वे भगवान से भिन्न और अभिन्न भी कही जाती हैं।

वे शक्ति रुपिणी होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और साक्षात् शक्ति से रुप में प्रकट होती हैं। उनकी इच्छशक्ति से युक्त स्वरूप भी तीन प्रकार का है। श्रीदेवी, भूदेवी, नीलादेव के रूप मे वे मगल-रुपिणी, प्रभावरूपिणी तथा चन्द्र, सूर्य, अग्नि रूप मे अत्यन्त तेजमयी होती हैं। वे चन्द्ररूपिणी होकर औषधियो की पुष्ट करती हैं। वे कल्पवृक्ष, लता गुल्म, पुष्प, पत्र फल तथा औषधियो-महौषधियो के स्वरूप को प्रकट करने वाली हैं। उसी चन्द्र रुप मे देवताओ को 'महस्तोम यज्ञ का फल देती हैं। अन्न द्वारा प्राणियो को और अमृत द्वारा देवताओ को वे ही तृप्त करती हैं।

वे ही सब लोको को प्रकाशित करती हैं दिवस, रात्रि निमेष, घडी, पक्ष, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर आदि के भेद से मनुष्य को शतायु प्रदान करती हुई स्वय प्रकाशित होती हैं। निमेष से परार्ध तक तथा विलम्ब और शीघ्र ता के भेद से परिपूर्ण कलाचक्र तथा जगत-चक्रादि के भेद से काल के सभी अग-प्रत्यग उन्हीं के स्वरूप हैं। इसी लिए वे प्रकाश स्वरूप और कालस्वरूपा है।"

केनोपनिषद् की कथा के अनुसार जब देवताओ को अपनी सफलता पर गर्व होने लगा कि यह उनकी अपनी शक्तियों के द्वारा

हुआ हो तो ब्रह्म ने उनके इस अहंकार को दूर करना चाहा। वे एक यक्ष के रूप में प्रकट हुए। सभी देवताओं ने अपनी शक्तियों का प्रदर्शन किया परन्तु सभी असफल रहे। इन्हें वास्तविकता से परिचित कराने के लिए रूपवती उमा प्रकट हुई और कहा कि वह परब्रह्म है। इसमें ब्रह्म का परिचय देने का श्रेय देवी को ही दिया गया है।

राम पूर्वतापनीयोपनिषद् में ब्रह्माण्ड का प्राकट्य शक्ति से स्वीकार करते हुए कहा गया है—

कारणत्वेन चिच्छक्त्या रजस्सत्वतमोगुणै ।
यथैव वटबीजस्थ प्राकृतोऽय महाद्रुम ॥

"प्राकृत ब्रह्माण्ड की चिच्छक्ति से उसी तरह उत्पत्ति होती है जैसे एक वटबीज में सूक्ष्म रूप से एक महानवृक्ष अवस्थित रहता है और उत्पन्न होकर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो जाता है।"

जाबालोपनिषद् में शक्तिका महत्व प्रदर्शन हुए कहा गया है—

आधारशक्त्यावधृत, कालाग्निरयमूर्ध्वग ।
तथैव निम्नग सोम शिवशक्तिपदास्पद ॥
विद्याशक्ति समस्ताना शक्तिरित्यभिधीयते ।

अर्थात् "आधार शक्ति से अवधारण किया हुआ—कालाग्नि यह ऊर्ध्वगामी है। इसी भाँति निम्नगामी भी है। यह सोम शिवशक्ति के स्थान में आलय रखने वाला है। समस्तों की विद्याशक्ति शक्ति नाम से कही जाती है।

मुण्डकोपनिषद् में काली का विवेचन करते हुए कहा गया है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वा.।।

अर्थात् '"काली अत्यन्त उग्र, मन के समान चचल, लालीयुक्त, धूम्र वर्णा, चिङ्गारियो से युक्त, देदीप्यमान, विश्वरुचि – यह लपलपाती हुई सात जिह्वऐ अग्नि की हैं।

माण्डूकोपनिषद् में शक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह वह तत्व है जो मन, वाणी और इन्द्रियो को दिखाई नही देता –

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

विद्युत, अग्नि आदि भी वहाँ नहीं पहुँच सकती।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारक
न विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि ।

वृहदारण्यकोपनिषद् मे 'बाल्येन तिष्ठासेत' वाक्य द्वारा मातृभाव की उपासना का उपदेश दिया गया है।

छान्दोग्योपनिषद् (६।३।२) मे ब्रह्म के लिए स्त्री वाचक दवता शब्द का प्रयोग हुआ है। यह भी कहा है कि सृष्टि रचना से पूर्व वह चिति शक्ति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहती है—

आसीदेवेदमग्र आसीत् तत्समभवत्।

(७।२४।१) मे नारदजी के पूछने पर सनत्कुमार ने कहा—

स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नोति।

"भूमा अपनी ही महिमा मे स्थित है और वस्तुत तो उसमे भी नही है अर्थात् आश्रय रहित है।"

श्वेताश्वतरोपनिषद् मे ऋषि इस प्रकार घोषणा करते हैं —

माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम्।
तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्त सर्वमिद जगत्।।

"प्रकृति को माया और महेश्वर को माया का स्वामी समझे। उसीके अगो से यह अखिल विश्व व्याप्त हो रहा है।"

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥

(६।८)

"उस परमेश्वर की स्वाभाविक पराशक्ति, ज्ञान, बल और क्रिया विभिन्न प्रकार की सुनी गई है।"

जिस परमेश्वर को अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, नक्षत्र, जल, प्रजापति और ब्रह्म कहा गया है (४।२), उसे ही स्त्री और कुमारी भी घोषित किया गया है—

त्व स्त्री त्व पुमानसि त्व कुमार उतवा कुमारी ।
त्व जीर्णो दण्डेन वचसि त्व जातो भवसि विश्वतोमुख ॥

(४।३)

" तू स्त्री है, पुरुष भी तू है, तू ही कुमार और कुमारी है, तू वृद्ध होकर लाठी के सहारे से चलता है और तू ही उत्पन्न होकर सब ओर मुख वाला हो जाता है ॥"

एक और स्थान पर कहा है—

य एको वर्ण शक्तियोगाद्वर्णान् निहितार्थो दधाति ।

(लयमें) जो एक होकर भी शक्ति के योग से सृष्टि मे अनेक हो जाता है।

तैत्तिरीयोपनिषद् मे भी यही भाव व्यक्त किए गए है "आनद रूपा चिति-शक्ति से सब भूत उत्पन्न होते है, उसी से जीते और उसी मे लीन हो जाते है।"

नृसिंह उत्तर तापनीयोपनिषद् मे शक्ति तत्त्व को विभिन्न नामो मे स्मरण किया गया है। वह नाम हैं—आत्मा, अव्यक्त, अलता, असग, अलिग, अमय, अगन्ध, अशब्द, अस्पर्श, अरूप, बुद्ध, शुद्ध, अद्वय, अबोद्धव्य, अगन्तव्य, आदि ।

कठोपनिषद् मे कहा है "(जिस तरह अग्नि सर्व व्यापक है, उसी तरह चिति शक्ति भी सारे जगत में व्याप्त है।"

●●●

शक्ति और पुराण

पुराण भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है । वे भी तंत्र से प्रभावित दिखाई देते हैं । इसका प्रमाण यह है कि उनमें तान्त्रिक सिद्धान्तों और विधि विधानों का प्रवेश हुआ है । कुछ आधुनिक विद्वानों ने इस विषय पर खोज की है । डा० हाजरा ने अपनी पुस्तक "Puranic Records on Hindu Rites and customs" में इस पर विस्तृत प्रकाश डाला है और कहा है—अष्टम शती में प्राचीनतर पुराणांशो में तान्त्रिक पूजा का लेश भी विद्यमान नहीं है । प्रथमतः पुराणों में किसी देव विशेष के मुद्रा-मांस आदि का ही वर्णन किया गया और तदनन्तर समग्र तान्त्रिक विधियों का उपन्यास स्मार्त कर्मों के संग में ही बिना किसी वैषम्य के पुराणों ने प्रस्तुत किया । दशम और एकादश शती में पुराणों में तन्त्रों ने अपनी पूर्ण प्रतिष्ठा तथा प्रामाण्य प्राप्त कर लिया । गरुड और अग्नि पुराण में उपलब्ध तान्त्रिक विधान इसके प्रमाण है ।"

देवी भागवत पुराण—

देवी भागवत को भले ही उप-पुराण माना जाता हो परन्तु शाक्तों के लिए वह किसी भी महापुराण से कम नहीं है क्योंकि इसमें शक्ति तन्त्र का विस्तृत प्रतिपादन है । इसमें जहां भी दृष्टि दौडाएँ, तन्त्र का प्रभाव ही परिलक्षित होता है । इसमें शक्ति की प्रधानता को खुले रूप में स्वीकार किया गया है । शक्ति की महिमा पर प्रकाश डालते हुए एक स्थान पर कहा है—

वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप ।
शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वदा ॥

अर्थात् हे राजन ! समस्त भूतो में सर्वरूप से शक्ति विद्यमान है। शक्ति के बिना ही प्राणी शव की तरह हो जाता है ।

ब्रह्मा ने भगवती से प्रश्न किया कि जिस ब्रह्म को वेद 'एकम्' 'अद्वितीयम्' स्वीकार करते हैं, वह ब्रह्म आप ही हैं ? यदि है तो पुरुष या स्त्री हैं । इस पर भगवती ने यू उत्तर दिया—

सदैकत्व न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च ।
तोऽसौसाहमह योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात् ॥

मेरा और ब्रह्म का सदैव से एकत्व रहा है । किसी तरह का भेद नही रहता । मैं वही हूं जो वे हैं और वे वही हैं जो मैं हूं । मतिविभ्रम से ही यह भेद दिखाई देता है ।

सृजासि जननि देवान् विष्णुरुद्राजमुख्यान् ।
तैं स्थितिलयजनन कारयस्येकरूपा ॥

(देवी भागवत)

अर्थात् हे जननि ! विष्णु रुद्र और अज प्रमुख देवो का आप सृजन किया करती हैं । उनके द्वारा एक रूप वाली आप स्थिति-लय और जन्म किया करती हैं ।

सर्वचैतन्यरूपा तामाद्या विद्य च धीमहि ।
......बुद्धि या न प्रचोदयात्

अर्थात—सबका आत्मरूप जो ईश्वर की पराशक्ति है, उसका मैं ध्यान करता हूँ ।

देवी भागवत मे जहाँ जहाँ देवीय उल्लेख आया है वहाँ-वहाँ उसस शक्ति विशिष्ठ परब्रह्म से ही अभिप्राय स्वीकार किया गया है ।

नून सर्वेषु देवेषु नाना नामधरा ह्यहम् ।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम् ॥
गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा ।
वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वैष्णवी ॥

अर्थात्—समस्त देवों में निश्चय ही मैं नाना रूप धारण करने वाली हूं । मैं शक्ति रूप से होती हूं और पराक्रम किया करती हूं । मैं ही गौरी–ब्राह्मी–रौद्री–वाराही–वैष्णवी–शिवा वरुणी कौबेरी–नारसिंही तथा वैष्णवी रूप वाली होती हूं ।

तृतीय स्कन्ध के २९वें अध्याय में नारद के उपदेश से भगवान राम ने शक्ति की आराधना की और परिणाम स्वरूप रावण से सीता, को छुड़ाने मे सफल हुए ।

एक स्थान पर कहा है कि समस्त देवता भी शक्ति की ही प्रेरणा से ही सुख दुःख का अनुभव करते हैं । मनुष्य तथा अन्य जीवों की तो बात ही क्या ?"

देवी से पूछने पर स्वयं उन्होंने एक स्थान पर कहा है —

एक मात्र ब्रह्म ही अद्वितीय है, वही नित्य और सनातन है, परन्तु जब वह विश्व-रचना मे तत्पर होता है, तब एक से अनेक हो जाता है । जैसे किसी उपाधि के कारण दीपक एक का दो दिखायी देता है, या दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखायी देने से एक का अनेकत्व प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्म या मुझमे अनेकत्व की प्रतीति होती है । यह भेद सृष्टिकाल में विश्व-सृजन के लिए ही होता है, और इसके भी दृश्य और अदृश्य रूप से दो भेद हैं । सृष्टि का अन्त होने पर मैं पुरुष, स्त्री या नपुंसक कुछ नहीं रहती । यह भेद सृष्टि कार्य के अवसर पर ही उत्पन्न होता है जिसे मैंने ही स्वकल्पना द्वारा रचा है ।"

"मैं ही बुद्धि हूं, श्री, धृति, कीर्ति, मति, श्रद्धा, मेधा, दया,

लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एव क्षमा भी मैं ही हूँ । कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा-अजरा, विद्या-अविद्या, स्पृहा, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूँ, ससार मे ऐसा कुछ भी नही जिसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रूप है । मैं ही सब देवताओ के रूप मे विभिन्न नामो से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ । जल मे जो शीतलता है वह मैं हूँ । अग्नि मे उष्णता, सूर्य मे ज्योति और चन्द्रमा मे ठडक मैं ही हूँ । ससार के सम्पूर्ण जीवो की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि मेरे अभाव मे वह नही हो सकती । मेरे बिना शिवजी दैत्यो का सहार नही कर सकते । ससार मे जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नही कहता ।

"पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होती है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नही उठा सकती । शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं । मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूँ, अग्नि को नष्ट कर सकती हूँ और वायु की गति को रोक सकती हूँ । विश्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नही होता । जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नही हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह अनन्त समय तक टिक नही सकती । जिस प्रकार घडा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी ध्वस हो जाय तो भी परमाणुओ के रूप में उसका अस्तित्व बना ही रहेगा ।"

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योकि शक्तिवाद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती, इसी पुराण का एक अश

है जिसमे भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित हैं । देवी माहात्म्य, मधुकैटभ वध, महिषासुर सैन्य वध, देवताओ के सम्मिलित तेज से देवी का आविर्भाव और उसका महिषासुर की सेना से भयंकर संग्राम महिषासुर वध, उसके प्रमुख सेनाध्यक्षो का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओ को देवी का वरदान आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमे देवी की महान महिमा प्रकट होती है। देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

"देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती हैं, तब मनुष्यो को मोक्षदायक वर देती हैं । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं ससार-बंधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अधीश्वरी हैं।"

शक्रादिकृत देवीस्तव का काफी विस्तार है । कुछ श्लोको का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं।—

"देवताओ ने कहा—इस प्राणिजगत को अपने प्रभाव मे विस्तार करने वाली, समस्त देवगणो की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप मे परिणत हुई है, एव जो समस्त सुरगणो एव महामुनियो की पूज्या हैं हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें । अनन्त भगवान ब्रह्मा एव महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने मे असमर्थ हैं, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकांक्षित हों। पुनीत कार्य करने वाले प्राणियो के गृह मे लक्ष्मीस्वरूप पाप-कर्म करने वालो के गृह मे दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क मे बुद्धि स्वरूप, सदआचरण वालो के लिए श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुलमे उत्पन्न प्राणियो की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं। हे देवी ! आप

लज्जा, क्षुधा, तृष्णा एव क्षमा भी मैं ही हूँ। कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तद्रा, जरा-अजरा, विद्या-अविद्या, स्पृहा, मेधा, शक्ति और अशक्ति भी मैं हूं, ससार मे ऐसा कुछ भी नही जिसमे मेरी सत्ता न हो, जो कुछ दिखाई देते हैं वे सब मेरे ही रूप है। मैं ही सब देवताओ के रूप मे विभिन्न नामो से स्थित हूँ और उनकी शक्ति रूप से पराक्रम करती रहती हूँ। जल मे जो शीतलता है वह मैं हू। अग्नि मे उष्णता, सूर्य में ज्योति और चन्द्रमा मे ठडक मैं ही हूँ। ससार के सम्पूर्ण जीवो की स्पन्दन क्रिया मेरी ही शक्ति से होती है, यह निश्चय है कि मेरे अभाव मे वह नही हो सकती। मेरे बिना शिवजी दैत्यो का सहार नही कर सकते। ससार मे जो व्यक्ति मुझसे रहित होता है उसे 'शक्तिहीन' ही कहा जाता है, कोई उसे 'रुद्रहीन' या 'विष्णुहीन' नही कहता।

"पृथ्वी भी जब शक्ति से सम्पन्न होती है, तभी वह स्थिर रहकर भार धारण करती है, यदि शक्ति—शून्य हो तो एक परमाणु का भार भी नही उठा सकती। शेष, कूर्म तथा दसो दिग्गज मेरी ही शक्ति को प्राप्त करके अपने-अपने काय की सिद्धि मे समर्थ होते हैं। मैं सम्पूर्ण ससार के जल को पी सकती हूं, अग्नि को नष्ट कर सकती हूं और वायु की गति को रोक सकती हूं। विश्व मे कभी किसी तत्व का अभाव नही होता। जो वस्तु अनादि है, वह कभी सर्वथा नष्ट नही हो सकती और जिस वस्तु का आदि है, वह अनन्त समय तक टिक नही सकती। जिस प्रकार घडा के फूट जाने पर भी उसकी मिट्टी का अस्तित्व बना ही रहता है, उसी प्रकार अगर यह समग्र पृथ्वी ध्वस हो जाय तो भी परमाणुओ के रूप मे उसका अस्तित्व बना ही रहेगा।"

मार्कण्डेय पुराण

मार्कण्डेय पुराण पर भी तान्त्रिकप्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योकि शक्तिवाद का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सप्तशती, इसी पुराण का एक अश

है जिसमे भगवती की कथा विस्तृत रूप से वर्णित है । देवी माहात्म्य, मधुकैटभ वध, महिषासुर सैन्य वध, देवताओ के सम्मिलित तेज से देवी का आविर्भाव और उसका महिषासुर की सेना से भयंकर संग्राम महिषासुर वध, उसके प्रमुख सेनाध्यक्षो का देवी द्वारा मारा जाना, धूम्रलोचन, चण्डमुण्ड, रक्तबीज, निशुम्भ, शुम्भ आदि का वध, देवी स्तोत्र, देवताओ की देवी का वरदान आदि विषय विस्तार से आए हैं, जिनमे देवी की महान महिमा प्रकट होती है। देवी का माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है —

"देवी ने इस विश्व को उत्पन्न किया है और वही जब प्रसन्न होती हैं, तब मनुष्यो को मोक्षदायक वर देती हैं । मोक्ष की सर्वोत्तम हेतु स्वरूपा, ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या एवं संसार-बंधन की कारण रूपा वही है, वही ईश्वर की भी अधीश्वरी हैं।"

शक्रादिकृत देवीस्तव का काफी विस्तार है । कुछ श्लोको का अनुवाद यहाँ दे रहे हैं।—

"देवताओ ने कहा—इस प्राणिजगत् को अपने प्रभाव मे विस्तार करने वाली, समस्त देवगणो की एकत्रित शक्ति से उत्पन्न होकर साकार रूप में परिणत हुई है, एवं जो समस्त सुरगणो एवं महामुनियो की पूज्या हैं हम भक्तिपूर्वक उन अम्बिका देवी को प्रणाम करते हैं, वह हम सबका कल्याण करें । अनन्त भगवान ब्रह्मा एवं महेश भी जिनकी शक्ति और प्रभाव का वर्णन करने मे असमर्थ है, वह देवी चण्डिका समस्त विश्व का पोषण करने के लिए और उसके अहित व भय के नाश के लिये आकांक्षित हो। पुनीत कार्य करने वाले प्राणियो के गृह मे लक्ष्मीस्वरूप, पाप-कर्म करने वालो के गृह मे दरिद्र स्वरूप, स्वच्छ हृदय से अध्ययन करने वाले के मस्तिष्क मे बुद्धि स्वरूप, सदआचरण वालो के लिए श्रद्धा स्वरूप और पवित्र कुलमे उत्पन्न प्राणियो की लज्जास्वरूप है, उनदेवी को नमस्कार करते हैं। हे देवी ! आप

जगत का पोषण करे। आपका चिन्त्ये स्वरूप वर्णन करने मे हम असमर्थ है। हे देवी! आपका दानवो का विनाश करने वाला अपरिमित वीर्य एव दानवो व देवगणो के प्रति रण-क्षेत्र मे आपका अनुपम आचरण हम किस प्रकार वर्णन करे। हे देवि! आप विकारहीन आद्या-प्रकृति है, अथ च सत्व, रज एव तमोगुण वाली होने पर भी आप विश्व के लिए कल्याणकारी हो। राग-द्वेष आदि से युक्त विष्णु व महेश आदि भी आपका प्रकृत तत्त्व नही जानते। हे देवि! आप अपार हैं और सभी जगत् पदार्थों की आप आश्रय-स्वरूप हैं, यह विश्व आपका ही अश स्वरूप है।"

उपरोक्त विवरण से ही स्पष्ट है कि पुराणकार किस रूप मे देवी को देखते हैं।

अग्नि पुराण—

अग्नि पुराण पर शाक्त अथवा शैव तन्त्रो का कुछ भी प्रभाव नही है केवल वैष्णव पाचरात्रो का प्रभाव है जिनके सम्बन्ध मे २५ पाञ्चरात्र सहिताओ का उल्लेख भी ३१ वे अध्याय में आया है। इसमे तान्त्रिक विधि विधानो तथा कर्मो का पर्याप्त वर्णन है। दीक्षा विधान पर पूरा प्रकाश डाला गया है। मन्त्रो का विस्तार भी काफी है। गणेश, विन्ध्य वासिनी, त्रिपुरा, बटुक तथा योगिनी और वागेश्वरी के पूजा विधान दिए हुए हैं। षट् कर्मो से सम्बन्धित मन्त्र दिए गए हैं—

> शान्तिवश्यस्तम्भनादि-विद्वेषोच्चाटने तत
> मारणान्तानि शसन्ति षट् कर्माणि मनीषिण

"शान्ति-वश्य-स्तम्भन-विद्वेषण-उच्चाटन और मारण ये छै कर्म मनीषी लोग कहते हैं।"

त्रैलोक्य मोहन मन्त्र, सग्राम विजय मन्त्र, भी दिए गये हैं।

अग्नि पुराण की अनुशीलन मे तो ऐमा लगता जैसे पुराणकार किसी तत्र ग्रथ की ही रचना करने जा रहे हो।

कालिका पुराण—

कालिका पुराण तो शक्तिवाद का स्वतत्र पुराण है। ब्रह्माण्ड पुराण के दूसरे भाग के अन्तर्गत ललिता सहस्र नाम का ३२० श्लोको का पूरा प्रकरण आता है। कूर्म पुराण मे परमेश्वरी के आठ हजार नाम आए हैं। वही ऐसा उल्लेख है कि अर्धनारीश्वर के पुरुष अश मे से शिव प्रकट हुए और स्त्री अश मे से शक्तियाँ। वाराह पुराण ७०।२४-२५ और पद्म पुराण ६।५३।४५ के अनुसार चारों युगो मे क्रम से वेद, स्मृति पुराण और तत्र का प्रचार रहा है। परिणाम स्वरूप कलियुग के प्राणियो के लिए तत्र ही कल्याणकारक माना गया है।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण—

विष्णु धर्मोत्तर में चण्डिका का वर्णन है।

निगद्यते ह्यथो चण्डी हेमाभा सा सुरूपिणी।
त्रिनेत्रा यौवनस्था च क्रुद्धा चोर्ध्वस्थितामता॥

"इसके अनन्तर वह सुरूप वाली हेम की आभा के समान आभा वाली—तीन नेत्रो से युक्ति यौवन मे स्थित, परमक्रुद्ध और ऊर्ध्व मे अवस्थित चण्डी कही जाती है।"

भद्रकाली का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

अष्टादशभुजा कार्या भद्रकाली मनोहरा।
आलीढस्वासनस्था च चतुर्सिहे रथे स्थिता॥
अक्षमाला त्रिशूल च खड्गश्चन्द्रश्च यादव।
बाणचापे च कर्तव्ये शङ्खपद्मे तथैव च॥

अर्थात्—भद्रकाली अठारह भुजाओं वाली, मनोहर—आलीढ अपने आसन पर स्थित, चार सिंहो वाले रथ में विराजमान—अक्ष माला—त्रिशूल—खड्ग—चन्द्र—बाण—चाप—शंख और पद्म को धारण करने वाली हैं।

भागवत पुराण—

भागवत (१०।२।१०-११) में भगवान ने योगमाया को व्रज में जन्म लेने की आज्ञा देते हुए कहा था—

> अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वा सर्वकामवरेश्वरीम्।
> धूपोहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम्॥
> नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि।
> दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च

अर्थात—समस्त कामना तथा वरों की ईश्वरी आपको मनुष्य धूप-उपहार और बलि के द्वारा सब काम वरप्रदा की भाँति अर्चना किया करते हैं। मनुष्य भूमण्डल में नामधेय और स्थानों को किया करते हैं। दुर्गा-भद्रकाली-विजया और वैष्णवी ये नामधेय लिया करते हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—

ब्रह्मवैवर्त पुराण (प्रकृति० २।६६।७-१०) में स्वयं भगवान कृष्ण कहते हैं—

> त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
> त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
> कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
> परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
> तेजः स्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
> सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥

सर्व बीज स्वरूपा च सवपूज्या निराश्रय।
सवज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गल मङ्गला ॥

"तुम सबकी जननी भूत प्रकृति ईश्वरी हो, सृष्टि उत्पति के समय आद्याशक्ति के रूप में रहती हो और अपनी इच्छा से त्रिगुणात्मिका बन जाती है, तुम कार्य के लिए सगुण बन जाती हो परन्तु वास्तव मे तुम निर्गुण ही हो, तुम परब्रह्मस्वरूप सत्य, नित्य और सनातनी हो, तेज स्वरूप और भक्तो पर अनुगह करने वाली हो, सव-स्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधार और परात्पर हो तुम विना आश्रय के, सर्व पूज्या और सर्व बीज स्वरूपा हो, तुम सर्वज्ञ, सब तरह से मगल-कारक और सब प्रकार के मगलो क भी मगल हो।

ब्रह्मवैवर्त पुराण मे एक और स्थान पर कृष्ण राधा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं।—

"हे राधे! जिस तरह तुम हो, उसी तरह मैं भी हूं। हम दोनो मे अभेद है। जिस तरह क्षरि मे धवलिमा अग्नि मे जलाने की शक्ति और पृथ्वी मे गन्ध विद्यमान है, उस तरह मे तुम मे हूँ। जिस तरह कुम्हार मिट्टी के बिना और सुनार बिना सोने के आभूषण नही बना सकता। उसी तरह मैं तुम्हारे बिना सृजन क्रिया में असमर्थ रहता हूँ। सृजन क्रिया का मैं बीज रूप और तुम आधार भूता हो। तुम्हारे बिना मैं केवल 'क्रमरा' पुकारा जाता हूं परन्तु तुम्हारे साथ लोग 'श्रीकृष्ण' कहते हैं। तुम भी सम्पति, विश्व की आधार रूता और मेरी सबकी सर्वशक्ति रूपा हो।"

कूर्म पुराण

कूर्म पुराण मे देवी तत्व की व्याख्या इस प्रकार की है —

एक सर्वगत सूक्ष्म कूटस्थ मचल ध्रुवम्।
योगी नस्त प्रपश्यन्ति महादेव्या परम पदम्॥

परात्परतर तत्व शाश्वत शिवमच्युतम् ।
अनन्ते प्रकृतौ लीन देव्यास्तत् परम पदम् ॥

अर्थात "वह देवी ही एक मात्र अद्वितीय सर्वगामी, सूक्ष्म, कूटस्था, अचल और नित्य स्वरूप है। योगीजन ही उसके उपाधि रहित परम पद के दर्शन करने मे समर्थ हैं और वे ही उसके परात्पर तत्व, शाश्वत, कल्याणकारी और अविनाशी स्वरूप का अनुभव कर सकते हैं।

शिव पुराण

पुल्लिङ्गमखिल धत्ते भगवान पुरशासन ।
स्त्रीलिङ्ग चाखिल धत्ते देवी देवमनोरमा ॥

(शिवपुराण वा० उ० अ० ४)

"पुरारि भगवान शिव ससार व्यापी पुलिङ्गता को धारण करते हैं और देवप्रिया शिवा समस्त स्त्रीलिगता को धारण करने वाली हैं।"

गरुड पुराण मे भी तान्त्रिक विधि विधान अध्याय ७–११, २१-२३, ३५, ३७-३८ में दिए हुए हैं।

इससे स्पष्ट है कि इन पुराणो ने शक्ति के महत्व को स्वीकार किया है और इस सिद्धान्त के व्यापक प्रसार मे सहयोग दिया है।

●●●

शक्ति और योग-वासिष्ठ

योग वासिष्ठ भारतीय दार्शनिक साहित्य में एक उच्च स्थान रखता है। इसे भारतीय मस्तिष्क की सर्वोत्तम उपज और कृति स्वीकार किया जाता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का यह सरल व श्रेष्ठ साधन है। दर्शन के अतिरिक्त इसका काव्य भी उच्च कोटि का है। इसकी श्रेष्ठता का मूल्यांकन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि अनेकों उपनिषदों में योग वासिष्ठ के श्लोक ज्यों के त्यों ले लिए गए हैं और अधिकांश में उसके भाव ग्रहण किए प्रतीत होते हैं। महोपनिषद्, याज्ञवल्क्य उपनिषद्, योग कुण्डली उपनिषद्, वराह उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद्, शाण्डिल्य उपनिषद्, अक्षि उपनिषद् अन्नपूर्णा उपनिषद् ब्रह्मसन्यासोपनिषद् और पैंगल उपनिषद् में कहीं श्लोक और कहीं पूरे अध्याय के अध्याय ले लिए गए हैं। तेजोबिन्दु, योग शिखा, अमृत बिन्दु, सौभाग्यलक्ष्मी, मैत्रायणी, त्रिपुरातापिनी और जाबाल उपनिषद् में प्राय सिद्धान्त योगवासिष्ठ से मिलते जुलते हैं। ऐसा लगता है कि इनके रचयिताओं ने इनकी निर्माण सामग्री इसी मूल स्रोत से ग्रहण की है। इसलिए भारतीय दार्शनिक साहित्य में इसका स्थान गीता और उपनिषदों से किसी भी तरह कम नहीं है वरन् अधिक ही है।

भारतीय दर्शन के इस सिरमौर ग्रन्थ ने शक्ति का सुन्दर प्रतिपादन किया है। योग वसिष्ठ के प्रसिद्ध भाष्यकार दार्शनिक श्री भीखन लाल आत्रेय ने योग वासिष्ठ में शक्ति विषयक सिद्धान्त का

विवेचन करते हुए लिखा है " 'ब्रह्म' और 'माया' अथवा 'शिव' और 'शक्ति' दो तत्व नहीं है। 'शिव'+'शक्ति' अथवा 'चिच्छक्ति' उस एक ही परम तत्व का नाम है जो जगत मे दो रूप मे प्रकट हो रहा है। एक वह रूप जो हमारा तथा ससार के समस्त पदार्थो का 'आत्मा' है। वह सदा एक रस, निर्विकार और अखण्ड रहता हुआ सब विकारो का साक्षी है। दूसरा वह रूप है जो दृश्यमान है, जिसमे नाना रूपात्मक विकार सदा ही होते रहते हैं। ससार के जितने क्षण क्षण मे रूप बदलने वाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी परम तत्व के इस रूप के रूपान्तर हैं। एक रूप का नाम शक्ति' है। दूसरे रूप का नाम शिव' है। एक रूप क्रियात्मक है, दूसरा शान्त्यात्मक। एक का दर्शन बाह्य पदार्थो मे होता है, दूसरे का हृद्गुहा मे। एक की उपासना करने से अभ्युदय की सिद्धि होती है, दूसरे के ध्यान से नि श्रेयस की, सदा से कुछ मनुष्यो की रुचि एक की ओर रही है और दूसरो की दूसरी ओर। पहली श्रेणी के मनुष्यों को हिन्दू शास्त्रो मे प्रवृत्ति मार्ग के पथिक और दूसरी श्रेणी के मनुष्यो को निवृत्तिमार्ग के पथिक कहा है। इनसे उच्च कोटि के वे सौभाग्यशाली महात्मा हैं जिनके जीवन मे दोनो रूपो की उपासना का अविरोधात्मक समन्वय है। उन लोगो के लिये एक रूप बिना दूसरा अधूरा है।"

योग वसिष्ठ ब्रह्म को सर्वशक्तिमान स्वीकार करता है।

समस्तशक्तिरखचित ब्रह्म सर्वेश्वर सदा।
ययैव शक्त्या स्फुरति प्राप्ता तामेव पश्यति ॥

(३।६७।२)

"वह सर्वेश्वर ब्रह्म समस्त शक्तियो मे युक्त है। उसमे प्रत्येक शक्ति को अपनी इच्छानुसार प्रकट करने की क्षमता है।

सर्वशक्तिपरं ब्रह्म नित्यमापूर्णमव्ययम् ।
न तदस्ति न तस्मिन्यद्विद्यते विततात्मनि ॥

(३।१००।५)

"वह सर्व शक्तिमय ब्रह्म नित्य, सर्वथा, पूर्ण और अव्यय है। ऐसी कोई भी वस्तु नही है जो उस विस्तृत स्वरूप में अवस्थित न हो।"

सर्वशक्तिर्हि भगवान्यैव तस्मै हि रोचते।
शक्ति तामेव वितता प्रकाशयति सर्वगं ॥

(३।१००।६)

"भगवान सब तरह की शक्तियो से सम्पन्न हैं और सभी स्थानो पर निवास करता है। वह जहाँ भी चाहे, शक्ति को वही प्रकट कर सकता है।"

ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति कर्तृताऽकर्तृताऽपि च ।
इत्यादिकाना शक्तीनामन्तो नास्ति शिवात्मन ॥

(६-१।३७।१६)

"ज्ञान, क्रिया, कर्तृत्व और अकर्तृत्व आदि शक्तियो का उस शिवात्मा मे कोई अन्त नही है।"

ब्रह्मण सर्वशक्तिर्हि दृश्यते दशदिग्गता ।
नाशशक्तिर्विनाशेषु शोकशक्तिश्च शोकिषु ॥

(३।१००।९)

"ब्रह्म की चेतन शक्ति सभी दसो दिशाओ मे, सब मे साधारण शक्ति, नाशो मे नाश शक्ति, शोक करने वालो में शोक शक्ति दृष्टिगोचर होती है।"

आनन्दशक्तिर्मुदिते वीर्यशक्तिस्तथा भटे ।
सर्गेषु सर्गशक्तिश्च कल्पान्ते सर्वशक्तिता ॥

(३।१००।१०)

'प्रसन्न चित्त वालो मे आनन्द शक्ति, वीर्य शक्ति, सृष्टि मे सृजन शक्ति और कल्पात मे समस्त शक्तियाँ उसीमे दिखाई देती हैं ।"

सर्वशक्तिमयो ह्यात्मा यद्यथा भावयत्यलम् ।
तत्तथा पश्यति तदा स्वसङ्कल्पविजृम्भितम् ॥

(६-१।३३।४१)

"आत्मा सब शक्तियो से सम्पन्न है, वह जहाँ जिस शक्ति की याचना करती है, वही अपनी सकल्प शक्ति द्वारा उसे प्रकट देखती है ।"

ब्रह्म की स्पन्द शक्ति से सृष्टि की रचना होती है । योग वासिष्ठ के अनुसार—

स्पन्दशक्तिस्तथेच्छेद दृश्याभास तनोति सा ।
साकारस्य नरस्येच्छा यथा वै कल्पनापुरम् ॥

(६।२।८४।६)

"जैसे शरीर धारण करने वाले व्यक्ति की इच्छा कल्पना नगर के निर्माण की क्षमता रखती है, उसी तरह भगवान की स्पन्दशक्ति रूपी इच्छा इस दृश्य जगत का निर्माण करती है ।

सा राम प्रकृति प्रोक्ता शिवेच्छा पारमेश्वरी ।
जगन्मायेति विख्याता स्पन्दशक्तिरकृत्रिमा ॥

(६-२८५।१४)

"हे राम ! शिव की स्वाभाविक स्पन्दशक्ति को प्रकृति कहते हैं, वही जगत माता आदि नामो से विख्यात है ।"

इस महाशक्ति को दूसरे नामो से भी पुकारा जाता है जैसे दुर्गा, उषा, गौरी, भवानी, काला, सरस्वती, सावित्री, गायत्री, चण्डिका, अपराजिता, विजया, जयन्ती, सिद्धा, जाय, उत्पला और शुष्का आदि।
इन सब के नाम विभिन्न तन्त्र ग्रन्थो मे भी मिलते हैं।

प्रकृति ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नही है, वह तो उसी का एक रूप है—

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्जायते चेतनाज्जड ।
नित्यात्प्रवुद्धात्पुरुषादब्रह्मण प्रकृतिस्तथा ॥
(३।९६।७१)

"जैसे चेतन मकडी से जड जाला उत्पन्न होता है, उसी तरह नित्य प्रवुद्ध पुरुष ब्रह्म से प्रकृति उत्पन्न होती है।"

सूक्ष्मा मध्या तथा स्थूला चेते सा कल्प्यते त्रिधा ।
सत्व रजतम इति एवैव प्रकृति स्मृता ।
(६।१।९।५)

"उस प्रकृति के तीन रूप हैं—सूक्ष्म-मध्यम और स्थूल। इन्हीं को सत, रज, तम कहा जाता है।"

शिव और शक्ति की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

यथैक पवनस्पन्दमेकमौष्ण्यानलौ यथा ।
चिन्मात्र स्पन्दशक्तिश्च तथैवैकात्म सर्वदा ॥
(६-२।८४।३)

"जैसे वायु और उसकी क्रियाशीलता, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति को एक माना जाता है उसी तरह से चिन्मात्र शिव और उसकी स्पन्द शक्ति एक ही हैं।"

अनन्या तस्य ता विद्धि स्पन्दशक्ति मनोमयीम् ।
(६-२ ।८४।२)

मनोमयी स्पन्द शक्ति उससे अन्य पदार्थ नहीं है ।

व्यावृत्यैव तथैवास्ते शिव इत्युच्यते तदा ।
चितिशक्ते क्रियादेव्या प्रतिस्थान यदात्मनि ॥
(६।२ ८४।२६)

"शिव-शक्ति की उस अवस्था का नाम है जब वह चिति शक्ति क्रिया देवी, क्रिया करके अपने मूल स्थान आत्मा को लौटती है और वहां पर शांत भाव से अवस्थित हो जाती है ।"

कथमास्ता वद प्राज्ञ मरिच तिक्ता विना ।
(६।२ । ८२।७)

विना तिष्ठति माधुर्ये कथयेक्षुरस. कथम् ॥
(६।२ ।८२।६)

'जैसे तिक्तता के बिना मिर्च और मधुरता के बिना गन्ने का रस नहीं रहता, उसी तरह' शक्ति के बिना शिव नहीं रहता ।"

सविन्मात्रैकधार्मित्वात्काकतालीययोगत ।
सवित्देवी शिव स्पृष्ट्वा प्रकृतित्व समुज्झति ।
(६।२ ।८५।१८)

"सवित मात्र सत्ता से जब भी प्रकृति का तादात्म्य हो जाता है और दैवयोग से पुरुप का स्पर्श हो जाता है, तब वह अपने प्रकृतित्व निवृत होकर पुरुप के साथ एक्य स्थापित कर लेती है ।'

प्रकृति पुरुप स्पृट्ष्वा तन्मयीव भवत्यलम् ।
तदन्तरेकता गत्वा नदीरूपमिवार्णवे ॥
(६-२ । ८५।१६)

"समुद्र मे नदी मिल कर जैसे अपना रूप छोड देती है और समुद्र का ही रूप धारण कर लेती है, उसी तरह प्रकृति पुरुष के साथ मिलकर पुरुष रूप हो ही जाती है।"

प्रकृति जब पुरुष से मिलती है, उसीको निर्वाण पद कहा जाता है—

चितिनिर्वाणरूप यत्प्रकृति परम पदम् ।
प्राप्य तत्तामवाप्नोति सरिदब्धाविवाधिताम् ॥
(६-२ ।८५।२६)

प्रकृति, की परमगति संवित में निर्वाण प्राप्त करना है । जब वह इस स्थिति मे आ जाती है, तब ऐसे ही होती है जैसे नदी समुद्र मे पड कर उसी का रूप धारण कर लेती है।

शक्ति जगत को अपने मे धारण करती है और विभिन्न रूपो में सर्वत्र व्याप्त है —

चित्स्पन्दोऽन्तर्जगद्धत्ते कल्पनेव पुर हृदि ।
सव वा जगदित्येव कल्पनैव यथा पुरम् ॥
पवनस्य यथा स्पन्दस्तथैवेच्छा शिवस्य सा ।
यथा स्पन्दोऽनिलस्यान्त प्रशान्तेच्छस्तथा शिव. ॥
अमूर्तो मूर्तमाकाशे शब्दाऽम्बरमानिल ।
यथा स्पन्दस्तनोत्येव शिवेच्छा कुरुते जगत् ॥
(योग व० ६ (२) ८५।४-६)

"वह चित्स्पन्दरूपी शक्ति जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कल्पना अपने भीतर कल्पित नगर को । अथवा यो कहना चाहिये कि जैसे कल्पना स्वय ही कल्पित नगर है वैसे ही वह शक्ति ही स्वय जगत है। वह शक्ति शिव की इच्छा है और वायु के स्पन्दन की तरह शिव का ही स्पन्दन है । जैसे स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र पर शान्ति रहती है उसी प्रकार महाशक्ति रूप स्पन्दन के भीतर भी केन्द्र में शान्त इच्छा वाला शिव वर्तमान है । यह शिव

की इच्छा अव्यक्त शिव में इस प्रकार जगत को प्रकट कर देती है जैसे कि अमूर्त आकाश मे वायु का स्पन्दन मूर्त शब्द को प्रकट कर देता है।"

सा हि क्रिया भगवती परिस्यन्दैक रूपिणी।
चितिशक्तिरनाद्यन्ता तथा भातात्मनात्मनि॥
देव्यास्तथा हि या काल्पा नानाभिनय नर्त्तना।
ता इमा ब्रह्मणः सर्ग जरामरणरीतय॥
क्रियासौ ग्राम नगर द्वीप मण्डल मालिक।
स्पन्दान् करोति धत्तेऽन्त कल्पितावयवात्मका॥
काली कमलिनी काली क्रिया ब्रह्माण्डकालिका।
धत्ते स्वावयवीभूता दृश्यलक्ष्मीमिमा हृदि॥
(योग व ६ (२) ८४।१ २२)

"वह भगवती क्रिया, स्पन्दन ही जिसका स्वरूप है, अनादि और अनन्त चिति शक्ति, जगत रूप से अपने आप ही अपने भीतर प्रकट हुई है। उस देवी के सामयिक अभिनय और नर्तन ही ब्रह्म की सृष्टि वृद्धि और लय के नियम हैं। यही कल्पित अवयव वाली क्रिया देवी ग्राम, नगर, द्वीप, मण्डल आदि स्पन्दनो की माला रचती है और अपने भीतर धारण करती है। यह ब्रह्माण्ड रूप से स्पदित होने वाली काली क्रिया अपने अवयव रूप इस जगत को अपने भीतर इस प्रकार धारण करती है जैसे कि कमलिनी अपने भीतर पुष्प-लक्ष्मी को।"

चिच्छान्वित ब्रह्मणो राम शरीरेभिदृश्यते।
स्पन्द शक्तिश्च वातेषु जड शक्ति स्तथोपले॥

अर्थात्—"ब्रह्म की चित्-शक्ति चैतन्य शरीर मे, स्पन्दन-शक्ति वायु मे और जड-शक्ति पत्थर आदि मे दृष्टि गोचर होती है।

इस प्रकार से योग-वासिष्ठकार ने शक्ति सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या की है जो तन्त्र सिद्धान्त के अनुकूल है।

●●●

शक्ति और महाभारत

महाभारत मे भगवती को परम पूज्या स्वीकार किया गया है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत काल मे शक्ति की उपासना प्रचलित थी। इस तथ्य स पुष्टि इसस होती है कि सग्राम के आरम्भ के पूर्व सौति ने दुर्गा की भक्ति की प्रेरणा की है। विराट पर्व मे दुर्गा का स्तोत्र उपलब्ध होता है। यहाँ इसे श्रीकृष्ण की बहिन, कस द्वारा पत्थर पर पछाडी जाने वाली और यशोदा के गर्भ से उत्पन्न बताया गया है।

भीष्म पर्व के २३ वें अध्याय मे वर्णित दुर्गा का स्तोत्र तो स्कन्द पुराण की ही तरह है। महाभारत युद्ध के समय जा भगवान कृष्ण ने कौरव और पाण्डव दोनो सेनाओ को आपने सामने देखा तो अर्जुन को प्रेरणा दी कि विजय प्राप्ति के लिए तुम दुर्गा का स्तवन करो। अर्जुन ने कहा—हे आर्ये! हे सिद्ध सेनानि! हे मन्दिर-पर्वत वासिनी देवि! मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कुमारी, भद्रकाली, कपाली, कृष्ण पिंगले, महाकाली, चण्डि, चण्डे तारणि, वरवर्णिनि, मेरा प्रणाम स्वीकार करो। हे कात्यायिनि, महाभागे, करालि, विजया, जया, मयूरपख ध्वजा धारिणी, महिषासुर-मर्दिनी, कौशिकी, नित्य पीत-वसिनी, अट्टहासकारिणी, चक्रसमान मुख वाली रणप्रिये, मेरा आपको नमस्कार है। हे उमे, शाकम्भरि, श्वेते, कृष्णे, कैटभ दैत्य-नाशिनी, हिरण्याक्षि, विरुपाक्षि, सुन्दर धूम्राक्षि, मेरा आपको प्रणाम है। हे ब्रह्मण्ये! भूतकालज्ञा, जम्बूद्वीपवासिनी, वेद जिनकी महा-

पुण्यदायिनी महिमा का गान करते हैं, आपको मेरा प्रणाम है। हे स्वामि कार्तिक की माता, दुर्गे, भगवति, वनवासिनी, मेरा आपको प्रणाम है। आपही स्वाहाकार, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, वेद माता सरस्वती और वेदान्त स्वरूपा हैं। हे महादेवी! मैंने पवित्र मनसे आपका स्तवन किया है, आपकी कृपा से युद्धक्षेत्र मे मेरी विजय हो। जयनी, मोहिनी, माया, ह्री सन्ध्या, प्रभावती सावित्री और जननी आप ही हैं। आप ही तुष्टि, पुष्टि, घृति, सावित्री, चन्द्र और सूर्य की वृद्धि करने वाली हैं। आप ऐश्वर्यवानो का एश्वर्य हैं। युद्ध मे सिद्ध और चारण आपका दर्शन करके धन्य होते हैं।"

अर्जुन के पवित्र भाव से स्तुति करने पर देवी आकाश मे प्रकट हुई और बोली 'हे पाण्डव! तुम कुछ ही समय में शत्रु पर विजय प्राप्त कर लोगे। यदि इन्द्र भी तुम्हारा विरोधी हो जाए, तब भी कोई शत्रु तुम्हे पराजित नही कर सकता।"

इस वर्णन से महाभारत काल मे प्रचलित दुर्गा उपासना पर प्रकाश पड़ता है। कृष्ण और अर्जुन इसको स्वीकार करते हैं।

——

शक्ति और वेदान्त-दर्शन

तत्र का मुख्य सिद्धान्त शक्ति की उपासना है। इसमें योगेश्वरी का ध्यान किया जाता है जबकि वेदान्त में योगेश्वर का ध्यान किया जाता है। वेदान्त ज्ञान का मार्ग है। योगेश्वर से अभिप्राय उस चिन्मय पुरुष से है जो जानने, देखने, आकर्षित करने और शासन करने की क्षमता रखता है। तत्र मे यह गुण योगेश्वरी के पाये जाते हैं जो शक्ति रूपा, सकल्प रूपा, विश्व की अधिष्ठात्री, प्रकृति देवी हैं।

तत्र का मत है—

मनस्त्व व्योम त्व मरुदसि मरुत्सारथिरसि
त्वमापस्त्व भूमिस्त्वयि परिणताया न हि परम्।
त्वमेव स्वात्मान परिणमयितु विश्व वपुषा
चिदानन्दाकारं शिव युवति भावने बिभृष॥

(सौंदर्यलहरी ३५)

इससे अभिप्रेत है कि यह समस्त व्यक्त जगत अर्थात् पचतत्वो का बना हुआ यह शरीर, इन्द्रियाँ, मन बुद्धि और अहङ्कार शिव की प्रधान अर्द्धाङ्गिनी भगवती जगदम्बा के ही रूप हैं।

इसी प्रकार का सिद्धान्त वेदान्त का भी है छान्दोग्योपनिषद ६।३।२,३ में कहा है —

सेय देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन
जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणीति॥
ताना त्रिवृत त्रिवृतमेकैका करवाणीति सेय

देवतेमास्तिस्रो देवता अनेनैव जीवेनात्मनानुप्रविश्य
नामरूपे व्याकरोत् ।

"तब उस सत रूप देवता ने सकल्प किया—"अब मैं इन तीनो देवताओ में जीव रूप मे प्रवेश कर जाऊ और नाम तथा रूप को स्पष्ट करूँ और उनमे से एक-एक को त्रिवृत्ति (तीन प्रकार का) करूँ ।" ऐसा सकल्प करके उस देवता ने इन तीनो मे प्रवेश करके नाम रूप को स्पष्ट किया ।"

तैत्तिरीयोनिषद् २।६ में भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की गई है—

सोऽकामयत । बहुस्या प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत ।
स तपस्तप्त्वा इद ७ सवमसृजत यदि किं च ।
तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशित् ।
तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् ।
निरुक्त चानिरुक्त च ।
निलयन चानिलयन च ।
विज्ञान चाविज्ञान च ।
सत्य चानृत च सत्यम भवत् ।
यदिद किं च । तत्सत्यमित्याचक्षते ।
तदप्येष श्लोको भवित ।

"परमेश्वर ने प्रकट होने की इच्छा की, उसने तप किया और तप से तेजस्वी होकर इस दृश्य जगत को रचा और उसी मे प्रविष्ट होगया । फिर वह साकार और आकार रहित हुआ । निरुक्त, अनिरुक्त तथा आश्रय रूप एव अनाश्रय रूप हुआ । वही चैतन्य स्वरूप और चेतनाहीन भी हुआ, वही सत्य स्वरूप हुआ । बुद्धिमानो का कहना है कि जो कुछ देखा, सुना या अनुभव मे आया, वही सत्य है । मिथ्या भी वही हुआ (क्योकि दिखाई न देने के कारण उसके सम्बन्ध मे शका उत्पन्न होती है ।

ऋग्वेद के नारदीय सूक्त में दर्शन का सुन्दर विवेचन किया गया है, उसकी व्याख्या सप्तशती के प्रथम अध्याय में की गई है—

यच्च किंचिद् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्ति सा त्वम् ··· ··· ॥

इसमे भगवती की ही सद् और असद् दोनो प्रकार की वस्तुओ के भीतर शक्ति के रूप मे व्याख्या की गई है।

वेदान्त मे अद्वैत वाद का सुन्दर निदर्शन है। सप्तशती मे अनेको स्थलो पर इन भावो की व्याख्या किया गया है। दसवें अध्याय मे देवी कहती है —

एकैवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।

'इस विश्व मे मैं अकेली हूँ। मेरे अतिरिक्त और कौन है ?"

वेदान्त का दूसरा सूत्र है—

जन्माद्यस्य यत ॥

सबके देखने, सुनने और अनुभव मे आने वाले इस अद्भुत विश्व का ही रचयिता जो परमात्मा इसका धारण पोषण करके अत मे सबको अपने मे ही लीन कर लेता है, वही ब्रह्म है।

सप्तशती के प्रथम अध्याय मे यही बात ब्रह्मा जी के माध्यम से कहलाई गई है—

·· त्वयैतत् सृज्यते जगत ।
त्वयैतत् पाल्यते देवि त्वयैतत् सृज्यते जगत् ॥

'हे देवी! तू ही इस विश्व का सृजन करती है, तू ही इसकी पालन करती है और अन्त मे तू ही इस अपने में लीन कर लेती है।"

अद्वैतवाद तान्त्रिक उपासना का भी प्रमुख सिद्धान्त है जहाँ उपासक का दृष्टिकोण रहता है—

देवो भूत्वा यजेद् देवम् ।

अर्थात् "देव स्वयं बन कर ही देव का यजन करे ।" शाक्तमार्ग ही अद्वैत का साधन पथ है। साधक कहता है—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोक भाक् ।
सच्चिदानन्द रूपोऽहं नित्यमुक्त स्वभाववान् ॥

अर्थात्—'मै देवी हूँ और अन्य नही हूँ। मै ही ब्रह्म हूँ और शोक को भजने वाला नही हूँ। मैं सच्चिदानन्द रूप वाला हूँ। मै नित्य मुक्त होने के स्वभाव वाला हूँ।'

तान्त्रिक महायोगी भास्कर राय ने ब्रह्म और जगत् की एकता को प्रतिपादित करते हुए कहा है—

वस्तुतस्तु जगतो ब्रह्मपरिणामकत्व स्वीकुर्वतां तान्त्रिकाणा मते जगत सत्यत्वमेव मृद्घटयोरिव ब्रह्मजगतोरत्यन्ताभेदेन ब्रह्मण. सत्यत्वेन जगतोपि सत्यतावश्यम्भावात् भेदमात्रस्य मिथ्यात्वस्वीकारेणाद्वैतश्रुतीनामखिलाना निर्वाह भेदस्य मिथ्यात्वादेव भेदघटिताधाराधेयभावसम्बन्धोऽपि मिथ्यैव ।"

—सौभाग्य भास्कर पृ० १२१

अर्थात्—"वास्तव मे इस जगत् को ब्रह्म का परिणामक मानने वाले तान्त्रिकों के मत मे यह जगत् सत्य ही है। मिट्टी और घट की तरह ब्रह्म और जगत् का अत्यन्त अभेद होने से और ब्रह्म की सत्यता से इस जगत् की भी सत्यता अवश्यम्भावी है। जो भेद है उसको मिथ्या मान लेने से समस्त अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों का निर्वाह हो जाता है। भेद के मिथ्या होने से ही भेद मे घटित आधार और आधेय भाव सम्बन्ध भी मिथ्या ही होता है।"

तन्त्र और वेदान्त मे कुछ मतभेद भी है। वेदान्त जगत को असत्य और मिथ्या घोषित करते है। तन्त्र का दृष्टिकोण दूसरा है।

तंत्र इस जगत में रहने वाले जीवों को शिव की अनुभूति मानता है। जीव को भी वह मन और शरीर में विभूषित शिव ही स्वीकार करता है। इनके अनुसार शिव यदि चेतना का अव्यक्त रूप है तो शक्ति उसका सक्रिय रूप है। अतः तंत्र का मत है कि विश्व दिव्यरूप में सत्य है और इसमें निवास करने वाला हर जीव ईश्वर की सत्य सत्ता की आकृति है। यहाँ चारों ओर सत्य ही बिखरा हुआ दृष्टिगोचर होता है। अतः इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं है। इसमें रहकर यहाँ उत्पन्न वस्तुओं का अलिप्त भाव से उपयोग करते हुए सत्य सत्ता का अनुभव करना ही शक्तिदर्शन का अभीष्ट है। इस मत में शक्तिवाद वेदान्त से भी उच्च और श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

— * —

शक्ति और सांख्य-दर्शन

सांख्य दर्शन भारतीय दर्शनों में सबसे प्राचीन माना जाता है। सांख्य सिद्धान्त का दर्जा तत्व ज्ञान की दृष्टि से बहुत ऊँचा है। प्राचीन काल से विद्वानों में यह कहावत चली आ रही है कि—

"नहि सांख्य सम ज्ञान नहि योग सम बल।"

वास्तव में सृष्टि के निर्माण में प्रकृति का विकास किस प्रकार हुआ और उसमें आत्मा का क्या स्थान है, इसका विवेचन कपिल ने जिस सूक्ष्म दृष्टि से किया है, वह सराहनीय है। सांख्य दर्शन वास्तव में एक मनोवैज्ञानिक दर्शन है। भगवद्गीता में भी सांख्य निष्ठा को बहुत महत्व दिया गया है और उसको 'निष्काम कर्मयोग' का पूरक ही माना है। इसीलिए गीताकार सांख्य और योग में भेदभाव करने वालों को अज्ञानी समझते हैं—

सांख्य योगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः।

सृष्टि निर्माण के सम्बन्ध में सांख्य की अलग धारणा है। सांख्य-शास्त्र में यह समस्त विश्व २५ तत्वों का खेल माना गया है। इनके दो मुख्य विभाग हैं—पुरुष और प्रकृति। इनमें से 'पुरुष' अथवा आत्मा तो चैतन्य स्वरूप है, वह न किसी तत्व से बनता है और न उससे कुछ बनता है। प्रकृति के आठ विभाग माने गए हैं और उनमें से सोलह विकारों (विकृति) की उत्पत्ति कही गई है। आठ प्रकृतियां ये हैं—

१ मूल प्रकृति २ महत्तत्व (बुद्धि) ३ अहंकार ४ शब्द ५ स्पर्श ६ रूप ७ रस ८ गन्ध।

शब्द से लेकर रस तक पाँच तन्मात्राएँ कही जाती हैं। सांख्य मे प्रकृति उसको कहते हैं जिससे आगे चल कर कोई अन्य तत्व उत्पन्न हो। इसलिए बुद्धि और अहकार के साथ पाँचो तन्मात्राओ को भी प्रकृति माना गया है क्योकि उनमे ही सोलह विकृतियो की उत्पत्ति होती है। सोलह विकृतियाँ इस प्रकार है—

पाँच स्थूलभूत, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, श्रोत्र त्वचा, नेत्र, रसना, घ्राण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा और ग्यारहवाँ मन कहा गया है।

यह पाँच स्थूलभूत तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ प्रत्यक्ष हैं और इनसे आगे चलकर किसी अन्य तत्व की उत्पत्ति नही होती, इसलिये इन्हे विकृति कहा गया है। यह ग्यारह जिन सूक्ष्म तन्मात्राओ से उत्पन्न होती हैं, वे अनुभवगम्य हैं। जब कोई साधक अन्तर्मुख होकर ध्यान करता है तो उसे सूक्ष्म और निर्मल शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध का ज्ञान होता है। जब इन पाँचो के भी मूल उद्गम की खोज की जाती है तो 'अहवृत्ति' का साक्षात्कार होता है। 'अहकार' से भी ऊपर उठकर विचार करने से 'महत्तत्व' अथवा 'अस्मितावृत्ति' के दर्शन होते हैं। पर इसके ऊपर जब और किसी कारण का पता नही चलता तो अनुमान द्वारा 'महत्तत्व' को उत्पन्न करने वाली शक्ति को मूल प्रकृति मान लिया जाता है जो कि अनादि है। इस प्रकार महर्षि कपिल ने जडतत्व के जो चौबीस विभाग बतलाये हैं, वे प्रत्यक्ष और अनुभवगम्य हैं, केवल तर्क द्वारा सिद्ध नही किये गए हैं। यह मूल प्रकृति ही तीन गुणो—सत्, रज और तम की न्यूनाधिकता के कारण जगत के विभिन्न तत्वो तथा नाम रूपो मे प्रकट होकर विश्व की रचना करती रहती है।

तन्त्र का मत सांख्य से भिन्न है। तन्त्र दार्शनिक विश्व को ३६ तत्वो से निर्मित स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सांख्य में पुरुष के

ऊपर पञ्च कञ्चुक अर्थात पांच आवरण हैं—नियति, काल, राग, विद्या और कला। इन पांच आवरणों में से कला के ऊपर माया, शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव हैं। इस तन्त्र मे २५ तत्वों के अतिरिक्त तन्त्र-मत मे ११ तत्व और हैं। शिव तत्व को एक अलग तत्व माना जाता है। सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध विद्या को योग विद्या-तत्व कहलाता है। माया से लेकर नीचे वाले ३२ तत्वों को आत्म-तत्व कहा जाता है। इस तरह से तात्विक दृष्टि से दोनों दर्शनों में अन्तर है।

सांख्य मे पुरुष तथा प्रकृति मे द्वैत सिद्धान्त को माना गया है परन्तु तन्त्र अद्वैत मत का समर्थक है।

विश्व की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कारिका मे लिखा है—

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम।
गुणकर्तृत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीन॥

इस तरह से पुरुष और प्रकृति के मिलने से इस चराचर विश्व की उत्पत्ति हुई।

सांख्य पुरुष और प्रकृति दोनों को अनादि मानता है—

प्रकृति पुरुष चैव विद्ध्यनादी उभावपि।

श्री शंकराचार्य ने इस श्लोक पर टिप्पणी करते हुए कहा कि ईश्वर सनातन प्रभु है, यह स्वीकार करना ठीक है कि उसकी दोनों प्रकृतियाँ—परा और अपरा भी सनातन और शाश्वत हैं। इस पर शंकराचार्य का यह मत है कि यदि प्रकृति और पुरुष को सनातन, अनादि और स्वतन्त्र स्वीकार करले तो इस ईश्वर की प्रभुता कम हो जाती है।

वास्तव में सांख्य मे जिस प्रकृति का वर्णन है वह अत्यन्त ही स्थूल है। इसे अशुद्ध प्रकृति कहते हैं। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्य की तरह जड नहीं है। वह पूर्ण चैतन्यमयी है। सौन्दर्य लहरी के प्रसिद्ध टीकाकार लक्ष्मीधर ने (३४ श्लोक मे) परावार को प्रकृति कहा है। परा कहते हैं—सत् रज और तम की साम्यावस्था को। यह तीनों गुण ज्ञान, इच्छा और क्रिया के प्रतीक माने जाते हैं। इस परा को ही शुद्ध प्रकृति

माना जाता है।

तन्त्र की प्रकृति निश्चल, परावाक् रूप प्रवणात्मक कुण्डलिनी शक्ति है। प्रपञ्चसार तन्त्र के अनुसार—

प्रकृति' निश्चला परावाग्रूपिणी परप्रणवालिका
कुण्डलिनीशक्तिः।

अर्थात् प्रकृति निश्चला होती है तथा वह परावाक् रूप वाली है और पर प्रणव स्वरूप से युक्त कुण्डलिनी शक्ति है।

अत्र मच्छब्देन स्वसवेद्यस्वरूपा
सेत्युक्ता परा प्रकृति ग्रह्यते।
(प्र० क्र० दी० पृ० ४००)

अर्थात्, यहाँ पर मन इस शब्द से अपने ही द्वारा वेदन करने के योग्य वह कही गई परा प्रकृति ग्रहण की जाती है।

प्रकृतिरिहापरोपलक्षिता परा विवक्षिता ।
(प्र० क्र० दी० पृ० ४०३

अर्थात्, यहाँ पर प्रकृति अपर से उपलक्षित परा कही गई है।

प्रपञ्चसार तन्त्र मे परा प्रकृति का चित्रण इस प्रकार किया गया है—

स्वामिन् प्रसीद विश्वेश केवय केन भाविता ।
किं मूला किं क्रिया. मर्वमस्मभ्य वक्तुमर्हसि ।१६।
इति पृष्ट पर ज्योतिरुवाच प्रमिताक्षरम्।
यूयमक्षरसम्भूता सृष्टिस्थित्यन्तहेतव ।१७।
तैरेव विकृति यातास्तेषु वो जायते लय ।
इति तस्य वच श्रुत्वा तमपृच्छत् सरोजभू. ।१८।
अक्षर नाम किं नाथ कुतो जात किमात्मकम्।
इति पृष्ठो हरिस्तेन सरोजोदरयोनिना ।१९।

मूलार्णमर्णविकृतो विकृतेर्विकृतीरपि ।
तत्प्रभिन्नानि मन्त्राणि प्रयोगाश्च पृथग्विधान् ।२०।
वैदिकास्तान्त्रिकाश्चापि सर्वानित्थमुवाच ह ।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव नित्यौ कालश्च सत्तम् ।२१।
अणोरणीयसी स्थूलात् स्थूला व्याप्तचराचरा ।
आदित्येन्द्वग्नितेजोमद यद्यत्तत्तनमयी विभु ।२२।
न श्वेतरक्तपीतादिवर्णैर्निर्वार्यं चोच्यते ।
गुणेषु न भूतेपु विशेपेण व्यवस्थिता ।२३।
अन्तरान्तर्बहिश्चैव देहिना देहपूरणी ।
स्वमवेद्यस्वरूपा सा दृश्य देशिकदर्शितं ।२४।
यथाकाशस्तसो वापि लब्धा या नोपलभ्यते ।
पुन्नपुसकयोतुल्याप्यङ्गनासु विशिष्यते ।२५।
प्रधानमिति यामाहुर्याशक्तिरिति कथ्यते ।
या युष्मानपि मा नित्यमवष्टभ्यातिवर्तते ।२६।
साह यूय तथैवान्यद् यद्वद्य तत्तु सा स्मृता ।
प्रलये व्याप्यते तस्या चराचरमिद जगत् ।२७।
सैव स्वावेत्तिपरमा तस्या नान्योस्ति वेदिता ।
सा कालात्मना सम्यक मयैव ज्ञायते सदा ।२८।
(प्रथम पटल)

"हे स्वामिन ! आप प्रसन्न होइये। हे विश्वेश ! हम कौन हैं, किसके द्वारा भावित हैं, क्या हमारा मूल है और क्या क्रिया है—यह सभी हमको आप बतलाइये। इस प्रकार से पूछी गई परम ज्योति प्रमित अक्षरो मे बोली—आप लोग अक्षर से समुत्पन्न हैं और सृजन, स्थिति तथा सहार के हेतु हैं। उनके द्वारा ही विकृति को प्राप्त हुए हैं और उनमें ही लय को प्राप्त होते हैं। उसके इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मा ने उनसे पूछा—हे नाथ ! अक्षर वाला क्या है ? वह कहाँ से उत्पन्न हुआ है और उसका क्या स्वरूप है ?। इस प्रकार कमलोद्भव के

द्वारा पूछने पर हरि ने कहा—मूलवर्ण विकृति है और विकृति की भी विकृति ये प्रभिन्न मन्त्र हैं और अनेक प्रकार के प्रयोग हैं, जो चाहे वैदिक हो अथवा तन्त्रोक्त हो। हे सत्तम! प्रकृति और पुरुष नित्य हैं तथा काल नित्य है। अणु से भी अणु और स्थूल से भी स्थूल चराचर में व्याप्त है। सूर्य-चन्द्र अग्नि तेजयुक्त हैं और तन्म ही विभु है। उसका कोई भी श्वेत रक्त आदि वर्णों के द्वारा कथन नहीं किया जा सकता है। गुणों में और भूतों में विशेष रूप से व्यवस्थित नहीं है। अन्दर-बाहर देहधारियों के देह की पूर्ति करने वाली है। आचार्यों के द्वारा वह स्वयसवेद्य स्वरूप वाली है तथा दृश्यमान है। आकाश तथा तम में भी लब्ध वह लभ्यमान नहीं होती है, पुरुष और नपुंसक में वह समान है। आगमाओं में विशेषता वाली होती है। उसको प्रधान या शक्ति कहा जाता है। जो आप सबको और प्रभु को अब प्रसन्न करके अति-वर्जित होती है। वही मैं हूं और आप हैं तथा अन्य भी है जो वेद्य हैं, वह बताई गई है, प्रलय में यह चराचर जगत उसमें व्याप्त हो जाता है।

वही अपने आपको जानती है, वह परमा है और अन्य उसका ज्ञाता नहीं है। उसको काल के स्वरूप से ही सर्वहर मेरे द्वारा जानी जाती है।

शारदा तिलक तन्त्र मे पराप्रकृति का वर्णन इस प्रकार —

नित्यानन्दवपुर्निरन्तरगलत्पञ्चाशदर्णैं क्रमाद्
व्याप्तं येन चराचरात्मकमिदं शब्दार्थरूपं जगत्।
शब्दब्रह्म यदूचिरे सुकृतिनश्चैतन्यमन्तर्गतं
तद्वोऽव्यादनिशं शशाङ्कसदनं वाचामधीशं महः ॥१॥

अर्थात्, नित्य आनन्द वपुवाली है और निरन्तर गलत् पचास वर्णों के द्वारा क्रम से जिसके द्वारा यह चराचर शब्दार्थ रूप जगत् व्याप्त हो रहा है। सुकृतीगण अन्तर्गत चैतन्य उसको शब्द ब्रह्म कहते हैं, वह वाणियोंका अधीश चन्द्रमे सदन वाला तेज आपकी निरन्तर रक्षा करें।

इस तरह सांख्य दर्शन की विचार-धारा शक्ति दर्शन के सामने फीकी पड़ती दिखाई देती है। क्योंकि सांख्य की प्रकृति स्थूल है और शक्तिवाद की सूक्ष्म है।

●●●

शक्ति और आरण्यक

आरण्यक में त्रिपुरा का वर्णन आता है जिसे श्रीविद्या भी कहते हैं। यह धर्म, अर्थ और काम की देने वाली है। वहाँ इसकी सुभगा, अम्बिका, सुन्दरी की संज्ञा भी दी गई है। सुभगा इसलिए कहा गया है कि यह श्री, यश, ऐश्वर्य, धर्म, ज्ञान और वैराग्य, इन छः दिव्य गुणों को देने वाली है।

तैत्तिरीय आरण्यक के १० वें प्रपाठक मे वेद माता की स्तुति की कई है—

आयातु वरदा देवि अक्षर ब्रह्मसम्मितम् ।

हे देवि ! ब्रह्म के समान अक्षर अर्थात् नाश रहित और वरदान देने वाली आप आवें।

भद्रकाली के स्तोत्र भी देव आरण्यक मे हैं जो इसी प्रपाठक के आरम्भ में दिए हुए हैं—

भद्र शुद्धात्मविज्ञान भद्रलोकानरूप मङ्गलं
च वा कलयति जनयतीति भद्रकाली।

भद्र अर्थात् परम विशुद्ध आत्म ज्ञान और भद्रलोक के अनुरूप मङ्गलका जो कलन करती है अर्थात् प्रजनन किया करती है वही भद्रकाला कही जाती है।

भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा

भद्रं पश्येमाक्षिभर्यजत्रा'

हे देवगण! हम कानो से भद्र अर्थात् मङ्गलमय श्रवण करें। हे यजत्र वृन्द! हम नेत्रो से भद्र ही देखें।

इस तरह से आरण्यक से शक्ति का सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

●●●

गीता में शक्ति-तत्व

गीता का शक्ति तत्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शक्ति के पर्याय प्रकृति का अनेक स्थानों पर स्पष्टीकरण किया गया है।

गीता (६।१०) मे कहा है—मैं अध्यक्ष होकर प्रकृति से सब चराचर सृष्टि उत्पन्न करवाता हूँ। हे कौंतेय ! इस कारण जगत का यह बनना बिगडना हुआ करता है। प्रकृति और पुरुष, दोनों को ही अनादि समझकर विकार और गुणो की प्रकृतिसे उपजा हुआ ज्ञान जानो।' (१३।१९)। 'क्योंकि पुरुष प्रकृति में अधिष्ठित होकर प्रकृति के गुणो का उपयोग करता है और प्रकृति के गुणो का यह सयोग पुरुष को भली-बुरी योनियों में जन्म लेने के लिए कारण होता है।' (१३।२१)। 'हे भारत ! महद् ब्रह्म अर्थात् प्रकृति मेरी ही योनि है। मैं उसमें गर्भ रखता हूँ। फिर उससे समस्त भूत उत्पन्न होने लगते हैं।' (१४।३७)। हे कौन्तेय ! पशु, पक्षी आदि सब योनियो मे जो मूर्तियाँ जन्मती हैं, उनकी योनि महत् ब्रह्म है और मैं बीजदाता पिता हूँ।' (१४।४)। 'हे महाबाहु ! प्रकृति मे उत्पन्न हुए सत्व, रज और तम रूपी गुण देह मे रहने वाले अव्यय अर्थात् निर्विकार आत्मा को देह मे बाँध लेते हैं।' (१४।५)। और स्पष्ट शब्दों मे भगवान् ने कहा है, 'पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, आकाश, (यह पाँच सूक्ष्म भूत) मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारो मे मेरी प्रकृति विभाजित है।' (७।४)। यह अपरा अर्थात् निम्न श्रेणी की (प्रकृति) है। हे महाबाहु अर्जुन ! यह जानो कि इससे भिन्न, जगत को धारण करने वाली मेरी दूसरी प्रकृति है।' (७।५)।

'समझ रखो कि इन्ही दोनो से सब प्राणी उत्पन्न होते है। सारे जगत का प्रभव अर्थात् मूल और प्रलय अर्थात् अन्त मैं ही हूं।" (७।६)।

शक्ति-मन्त्र—

गीता मे शक्ति तत्व का ऐसा सजीव व सक्रिय चित्रण व आवाह्वान है कि कायर से कायर पुरुष को भी अपनी सुप्त शक्तियो का आभास होने लगता है और वह यह सोचने के लिए वाध्य हो जाता है कि वह कठिनाइयो से घवरा कर, जीवन से निराश होकर अन्धकार में भटक रहा था, यह आशा की जीवन ज्योति पाकर तो मैं धन्य होगया। अर्जुन जैसे करोडो व्यक्ति मानसिक निर्बलता से आक्रान्त होकर जीवन को भाग्य भरोसे ही छोड देते हैं परिस्थितियाँ जैसे भी मोड खाती रहे, उस पर सन्तोष कर लेत है। उन्हें अपनी अन्तर्निहित शक्तियो पर विश्वास नही होता। वे नही जानते कि प्राणी की शक्ति पहाडो को चूर-चूर कर सकती है, समुद्रो को सोख सकती है, हवाओ के रुख मोड सकती है, राक्षसी शक्तिओ का दलन करने की क्षमता रखती है, प्राकृतिक शक्तियो पर अपना आधिपत्य स्थापित करके अपनी इच्छानुसार कार्य करा सकती है उसे सहज मे यह विश्वास नही होता कि मानव शक्ति का आगार है, उसके अग-अ ग मे शक्ति के खजाने भरे पडे हैं। उसकी नस नस से शक्ति की ध्वनि आती है परन्तु खेद है कि भोग-विलास के इस भौतिक वासनामय जीवन मे फँस कर वह अपने को क्षुद्र समझने लगता है। दुर्बलता के साधनो को अपनाना ही उसके जीवन का स्वभाव वन जाता है। चारो ओर उसे अपने शत्रु दिखाई देने लगते हैं। धन, वैभव आदि की सुरक्षा के लिए उसे भय सताने लगता है। सामाजिक वाधाएँ उसे रुलाती हैं और दिन-दिन कायर, बुजदिल और निर्बल वनाती चलती हैं। अर्जुन की भी यही स्थिति थी। उसके मन में भी निर्बलता ने स्थान बना लिया था। अब वह युद्ध से कतरा कर बहाने बनाने लगा था और नाना प्रकार के तर्क-वितर्क उपस्थित करने

लगा था। तभी भगवान ने शक्ति मन्त्र को फूंका और स्पष्ट कहा—

> क्लैब्य मा स्म गम पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
> क्षुद्र हृदयोदबल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।।
>
> (गीता २।३)

'हे अर्जुन ! कायर मत बन, यह तेरे लिए उचित नही है। हृदय की तुच्छ-सी निर्बलता को त्याग और युद्ध के लिए उठ खडा हो।'

जीवन सघष का दूसरा नाम है। पग-पग पर हमे विभिन्न प्रकार की बाधाओ का सामना करना पडता है। यदि हमने बाधाओ के समक्ष अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित कर दिए तो हमे जीवित रहने का कोई अधिकार नही है, क्योकि सघर्ष करके जीवन को विकसित करने के लिए तो हमे यह सौभग्य मिला है। यदि इसका उचित उपयोग न किया तो दुर्भाग्य मे परिवर्तित होने मे देर न लगेगी क्योकि कायर ही दु खी, दरिद्र और क्षुद्र होते है। वीर और साहसी, पुरुषार्थी का इन क्षुद्र वृत्तियो से क्या सम्बन्ध ? अत भगवान ने उपदेश दिया कि हे अर्जुन ! तुम्हें यह निर्बलता शोभा नही देती। शक्तिहीन का कही सम्मान नही होता। उठो ! अपने अस्त्रो को सम्भालो और हृदय को निर्बल करने वाली आसुरी शक्तियो का विनाश करो।

गीता का यह शक्ति मन्त्र कायरों को भी वीर सेनानी बनाने की क्षमता रखता है क्योकि वह शरीर से सम्बन्धित क्षुद्र वासनाओ तक ही सीमित नही रहने देता वरन् वस्तुस्थिति से परिचय कराता है। गीता का स्पष्ट उपदेश है कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। शरीर के स्वभावगत गुणो का विश्लेषण करते हुए कहा है कि इसकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है, यह अनित्य और नाशवान् है। इसलिए शरीर के नाश से शोक करना व्यर्थ है।

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदु खदा ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत

(गीता २।१४)

अनशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥

(गीता २।१८)

भगवान् ने कहा कि जब तुम शरीर नही हो तो उसका शोक क्यो करते हो ? तुम तो आत्मा हो जो जन्म-मरण आदि व्याधियो से रहित है। यह तो नित्य अविनाशी और अचिन्त्य है।

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ता शरीरिण ।

(गीता १।१८)

वास्तव मे यह न तो मरता हैं, न मारा ही जाता है।

उभौ तौ न विजानीतो नाय हन्ति न हन्यते ॥

यह तो सर्वथा अवध्य है—

देही नित्यमवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत ।

(गीता २।३०)

इसे शस्त्र मार नही सकते अग्नि जला नही सकती, जल भिगो अथवा गला नही सकता, वायु सुखा नहीं सकती—

नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि नैन दहति पावक.।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत ॥

(गीता २।२३)

अत' यह अटल सत्य है कि न मरने वाला, न जलने वाला, न भीगने वाला और न सूखने वाला यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर, अचल और चिरन्तन है—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।

नित्य स्वंगत. स्थरगुरचलोऽय सनातन ।।

(गीता २।२४)

जो इस आत्म ज्ञान को व्यवहारिक रूप देकर शारीरिक सुख और दु ख को समान समझ कर उसकी व्यथा से प्रभावित नही होता। वही अमृतत्व का अधिकारी होता है—

य हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुषर्षभ ।
समुद. खसुख धीर सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।

(गीता २।१५)

जिस व्यक्ति का आत्म तत्व से परिचय हो जाता है, वह एटम बम्बो के भीषण प्रहारो से भी भयभीत नही होता क्योकि वह जानता है कि नाश तो शरीर का स्वभाव है, वही जन्म लेता है, उसी की मृत्यु होती है (गीता २।२७), आत्मा न जन्म लेता है और न उसकी मृत्यु होती है। वह तो पुराने वस्त्रो के बदलने को भांति पुराने जीर्ण शरीर को छोड कर नए धारण करता रहता है।

वासासि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि ग्रहणाति नरोऽप-राणि ।
तथा शरीरऽणि विहाय जीर्णान्यन्यानि
सयाति नवा निदेही । (गीता २।२२)

अत शरीर के विनाश से भय क्यो? वह तो नए जीवन का सन्देश है।

गीता का यह शक्ति-मन्त्र पहिले से अधिक शक्तिशाली है। यह विश्वास दिलाता है कि हम इतनी महान शक्तियो के पुञ्ज हैं कि विश्व की भीषणतम शक्ति भी हमारा कुछ नहीं बिगाड सकती। उनके प्रहार हमारे बाह्य जगत को ही प्रभावित कर सकते हैं, अन्तर्जगत मे उनका प्रवेश सम्भव नही है। यह शक्ति मन्त्र हमे जगत को समस्त व्याधियों से सुरक्षित रखने की क्षमता रखता है।

शक्ति विकास के दो साधन—यज्ञ और योग

१—यज्ञ —

आत्म विकास के लिए भगवान ने दो प्रमुख साधनो का निर्देश किया है। वे हैं—यज्ञ और योग। यह दोनो शक्ति विकास के श्रेष्ट साधन हैं। यज्ञ का अर्थ है त्याग, बलिदान, परोपकार, नि स्वार्थ सेवा। यह भोगवाद का विरोधी है। यज्ञ यह जीवन भोगवाद का समर्थन नहीं करता क्योकि भोगो से शक्ति का व्यय होता है। इस शक्ति व्यय को रोकने के लिए श्रेष्ठतम कर्म-यज्ञ का सहारा लेना पडता है। वहाँ शत्रु-मित्र का कोई भेद भाव नही सब अपने ही अपने दिखाई देते हैं, यज्ञकर्ता चारों ओर अपने आत्मीयजनो के ही दर्शन करता है। तभी भगवान ने स्वय यज्ञ रूप होने की घोषणा की—

> अह क्रतुरह यज्ञ स्वधाहमहमौषधम् ।
> मन्त्रोऽहममेवाज्यमहमग्निरह हुतम् ॥ (६।१६)

अर्थ—(भगवान कहते हैं) "श्रौत कर्म मैं हू, यज्ञ मैं हूं, स्वधा मैं हूं औषधि मैं हूं, मन्त्र मैं हूं, आज्य (घृत) मैं हूं अग्नि मैं हूं और हवन रूपी क्रिया भी मैं ही हूं।"

तभी यज्ञ को ब्रह्ममय व्यक्त किया गया है —

> ब्रह्मार्पण ब्रह्म ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
> ब्रह्मैव तेन गन्तव्य ब्रह्म कर्म समाधिना ॥ (४।२४)

अर्थ—"अर्पण [स्रुवादिक] भी ब्रह्म है, हवि भी ब्रह्म है, ब्रह्मरूप अग्नि में ब्रह्मरूपकर्त्ता के द्वारा जो हवन किया गया है तथा ब्रह्मरूप कर्म मे समाविस्थ हुए उस पुरुष के द्वारा जो प्राप्त होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है।"

जब चारो ओर ब्रह्म का ही विस्तार है तब अपने को शेष विश्व से अलग मान कर स्वार्थपरता की भावना में लिप्त रहना और वैसा कर्म करना क्षुद्रता और अज्ञानता का चिह्न है। इसे भगवान ने चोर की संज्ञा दी है और अकेले खाने को पाप भक्षण रहा है—

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भाविता
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव स (३।१२)

अर्थ—यज्ञभाविता, देवगण तुम लोगों को इष्ट भोग प्रदान करेगे। उनके द्वारा दिये हुए भोगो को जो पुरुष उनको अर्पण किये बिना भोग करता है, वह निश्चय ही चोर है।"

यज्ञ शिष्टाशिन सन्तोमुच्यन्तेसर्वकिल्विषै.।
भुजते ते त्वघ पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (३।१३)

अर्थ—"यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापो से छूटते हैं और जो पापी लोग अपने ही शरीर-पोषण के लिए पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।"

यज्ञ की यह एक्य भावना मुक्ति के द्वार खोलती है क्योंकि जब तक द्वैत मे स्थिति रहती हैं, तब तक बन्धन रहता है, अद्वैत में प्रवेश करने पर स्वतन्त्रता के दर्शन होने लगते हैं। तभी भगवान ने कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽय कर्म बन्धन ।
तदर्थ कर्म कौन्तेय मुक्त सग समाचर ॥ (३।९)

अर्थ—"यज्ञ के निमित्त किये गये काम के सिवाय दूसरे काम को करने से यह मनुष्य कर्म बन्धन मे बँधता है, इसलिए हे अर्जुन ! मुक्त संग रह कर तदर्थ कर्म को ही भली भाँति आचरण कर।"

यज्ञ को इस श्रेष्ठता के कारण भगवान ने इसे ग्रहण करने की प्रेरणा की है —

यज्ञ दान तप कर्म न त्याज्य कार्य मेवतत् ।
यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ (१८।५)

अर्थ—"यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य नही हैं। वरन् वह कर्म तो करने ही योग्य हैं, करना कर्त्तव्य ही है। यज्ञ दान और तप, यह तीनों तो मनीषियो को पवित्र करने वाले हैं।"

वेद मे यज्ञ के लाभो पर विशिष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है ऋग्वेद मे कहा है —

"यज्ञ से ज्ञान बुद्धि और बल की वृद्धि होती है (१।१३।२) यज्ञ सुखो की वर्षा करने वाला है (१।१६।११)——यज्ञ से सब तरह का कल्याण होता है (५।४।७) जो यज्ञ करता है। वह धन ऐश्वर्य से, तेज से तथा यश और कीर्ति से मनुष्यो मे चमकता है और अन्त मे आत्मज्ञानी होकर अमर हो जाता है। (६।५।५५)……… हे वेद पाठ के देवता उठो देवताओ को यज्ञ का सन्देश सुनाओ। आयु, प्राण, प्रजा, पशु और कीर्ति बढाओ। यज्ञकर्त्ता को हर प्रकार से बढाओ। (१०।१६।४।२)" यजुर्वेद मे यज्ञ पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

'यज्ञ से अशुद्ध तत्वो का नाश होता है (१।१३) यज्ञ से आरोग्यता प्राप्त होती है। (१।१४।४।१५) ·· यज्ञ से दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है। (१।१५) यज्ञ से आन्तरिक शत्रुओ का नाश होता है। (१।१७) यज्ञ नेत्र रक्षक है। (२।१६) यज्ञ से असुरो का नाश होता है। (२।३०) यज्ञ सुखो का सचय करने वाला है। (३।४६,४।६) यज्ञ निश्चय से कल्याणकारी है। वह दीघ आयु उत्तम, अन्न, ऐश्वर्य समृद्धि, सुसतति व बल पराक्रम

प्रदान करता है। (३।६३) यज्ञ वीरता दायक और कायरता विनाशक है। (४।३७) यज्ञ ऋषियो के हृदय को पवित्र करने वाला है। (३।४) यज्ञ बन्धन का साधन है। (५।३०) मुक्ति का देवताओ मनुष्यो पितृजनो और अपने प्रति किए गए, जाने या अनजाने किए गए पापो से बचाने वाला है। (८।१३) "यज्ञ करने वाले के लिए वायु और नदियां मधुर रस बहाती हैं (१३।२७) "यज्ञ से आत्म बल की वृद्धि होती है। (१७।६५) " मन, आत्मा, वाणी, प्राण, ज्ञान ज्योति, श्री, वेद आयु, नेत्र, यज्ञ से सम्पन्न होते हैं (१८। २८)" यज्ञ से ब्रह्म वर्चस को प्राप्ति होती है। (१६।१६) यज्ञ से सद्बुद्धि की प्राप्ति होती है। (२०।८५) "यज्ञ से तीनो छन्दो (तीनो लोकों) जगती, त्रिष्टुप और गायत्री मे कल्याण होता है। (२।२५,५।१३।१८)"

यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय मे यज्ञ से अनन्त लाभों का प्रार्थना के रूप मे इस प्रकार वर्णन है "मेरा अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, ध्यान, प्रजा, स्वर, प्रशसा, कीर्ति, ज्ञान, सुख, प्राण, चित्त विचार, वाणी, मन, चक्षु, चातुर्य, बल-ओज, साहस स्वामित्व, मानसकोप, क्रोध, उद्वेग, सौम्यभाव उदार भाव, दीर्घ जीवन, लोक, धनधान्य, वृद्धि, समृद्धि, सत्य, श्रद्धा, तेज व्यवहार हर्ष, सुन्दर वचन, श्रेष्ठ कर्म, दान, अमर स्वरूप, आरोग्य, स्वास्थ्य, शत्रु रहित्य, निर्भयता, सयम शक्ति, धारण शक्ति, धैर्य, प्रेरणा, कल्याण, कामना, प्रसन्नता, भूत भविष्य, सुमार्ग और सुपथ समय और शक्ति उद्देश्य यज्ञ से सुसम्पन्न हों।"

"यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो निराशा जनक स्थिति को पहुँच गया हो, मरण काल भी समीप आ पहुँचा हो तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चगुल से बचा लेता है। और सौ वर्ष जीवित रहने के लिये पुन बलवान कर देता है (अथर्व वेद ३।११।२)

इससे स्पष्ट है कि गीता मे निर्देशित यज्ञ क्रिया शक्ति का महान स्रोत है, इससे भौतिक और आध्यात्मिक—दोनो प्रकार की शक्तियो का विकास होता है।

योग—

शक्ति-विकास का दूसरा साधन योग को बनाया गया है। तभी योगी बनने की प्रेरणा देते हुए भगवान ने कहा है—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक. ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

अर्थात्—योगी तपस्वियो से श्रेष्ठ है और शास्त्र के ज्ञान वालो से भी श्रेष्ठ है तथा सकाम कर्म (कर्मकाण्ड पूजा-पाठ आदि) करने वालो से भी श्रेष्ठ है, इससे हे अर्जुन तू योगी बन।

वास्तव मे भगवत्गीता को यदि योग का एक प्रमुख ग्रन्थ कहा जाय तो उसमे कुछ भी अतिशयोक्ति नही है। गीता मे 'योग' 'योगी' और 'योग युक्त' का शब्द जितना अधिक आया है, उतना किसी बडे ग्रन्थ मे भी कदाचित् ही मिलेगा। गीता के प्रत्येक अध्याय का नाम किसी प्रकार के योग मार्ग पर ही है जैसे दूसरा अध्याय साख्य योग, तीसरा कर्म योग, चौथा ज्ञान-कर्म सन्यास योग, पाँचवा कर्म सन्यास योग, छठा आत्म-सयम योग, सातवाँ ज्ञान-विज्ञान योग आदि। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे 'इति श्रीमद्भगवत्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्याया योगशास्त्रे' ये शब्द भी लिखे जाते हैं। इससे स्पष्ट जान पडता है कि गीता का मुख्य उद्देश्य मनुष्यो को ऐसा योगयुक्त जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देना ही है जिससे इहलौकिक जीवन मे सफल मनोरथ होकर परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर सकें। यह सत्य है कि गीता मे सबसे अधिक प्रधानता 'निष्काम कर्मयोग' को दी गई है और योग की सबसे श्रेष्ठ व्याख्या 'योग. कर्मसुकौशलम्' बतलाई गई है, फिर भी उसमें

पतञ्जल योगदर्शन में वर्णित अष्टाङ्ग-योग की विधि का भी सर्वथा अभाव नही है। गीता मे प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि का उल्लेख अनेक स्थानो पर किया गया है और छठे अध्याय मे तो पतञ्जल योग-दर्शन मे दी गई योग विधि का यथातथ्य वर्णन पाया जाता है।

इस प्रकार के योग का फल भी महान कहा गया है। ऐसे योगाभ्यासी को ससार के दु ख, क्लेश, चढाव उतार, विघ्न-बाधायें किसी भी समय व्यथित या व्याकुल नही कर सकती। वह प्रत्येक अवस्था मे पूर्ण शान्त, सन्तुष्ट और निश्चल रहता है। इसका वर्णन करते हुए कहा गया है—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योग मात्मन. ।१९।

यत्रोपरमते चित्त निरुद्ध योग सेवया।
यत्र चैवात्मनात्मान पश्यन्नात्मनि तुष्यति ।२०।

त विद्याद् दुख सयोगवियोग योगसञ्ज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्ण चेतसा ।२३।

अर्थात—जिस प्रकार वायु रहित स्थान में रखा हुआ दीपक चलायमान नही होता, वैसी ही अवस्था परमात्मा के ध्यान मे लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की होती है। जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था मे परमेश्वर के ध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा परमात्मा का साक्षा-त्कार होने लगता है तो वह योगी सच्चिदानन्द परमात्मा मे ही सतुष्ट होता है। जो दु ख रूप ससार के सयोग से रहित है तथा जिसका नाम योग है उसी को जानना चाहिए। वह योग बिना उकताये हुए अर्थात् तत्पर हुए चित्त से निश्चयपूर्वक करना कर्तव्य है।

गीता में जो योग प्रतिपादित किया गया है, वह अधिकाश

वेदान्तियो के सिद्धान्त की तरह शुष्क अथवा वर्तमान समय के भक्तो की तरह अपने ही उद्धार की आकांक्षा रखने वाला नही है, वरन् उसका मुख्य आधार सर्वव्यापी प्रेम है जो अपने साथ सब जीवो के उद्धार की कामना करता है। यही भाव निम्न श्लोक मे स्पष्ट व्यक्त होता है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन।
सुख वा यदि दु ख स योगी परमो मत ॥(६-३२)

अर्थात्–जो दूसरो को आत्मवत् समझकर उनके सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझता है, वही परम योगी है। यही बात गीता के इस श्लोक मे कही गई है —

सर्वभूतस्थमात्मान सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन ॥

—भगवद्गीता ६-२६

अर्थात्–"योगयुक्त पुरुष सब पदार्थों में आत्मा का निवास देखता है। इस प्रकार उसे ससार की वास्तविक एकता का ज्ञान हो जाता है और वह समदर्शी बन जाता है।"

समता का व्यवहारिक रूप और उसके आर्थिक लाभ का वर्णन करते हुए गीता ५-१८,१९ मे कहा गया है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैवश्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥
इहैव तैर्जित सर्गो येपा साम्ये स्थित मन।
निर्दोप हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता ॥

अर्थात्–"ज्ञानियो की दृष्टि मे विद्या विनय युक्त ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल समान रहते है। जिन साधको का मन साम्यावस्था मे स्थिरता को प्राप्त हो जाता है वे इसी जीवन मे मृत्यु लोक पर विजय प्राप्त कर लेते हैं क्योकि ब्रह्म निर्दोष और सम है। अत मृत्यु की प्रतीक्षा न करके वे यहीं ब्रह्मभूत हो जाते हैं।"

यही बात गीता १८।५४ मे कही गई है कि समस्त प्राणीमात्र मे समहोकर वह मेरी परम भक्ति की प्राप्ति कर लेता है—

सम. सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम् ।

यह गीता का साम्ययोग है। यही योग का वास्तविक लाभ है। ससार मे मनुष्य को जो कुछ भय, विरक्ति व दुख का अनुभव होता है, उसका एक मात्र कारण भिन्नता अथवा परायापन का बोध ही होता है। दो भिन्न पदार्थों अथवा व्यक्तियो मे ही प्रतियोगिता अथवा सघर्ष हो सकता है। पर जब प्रथकता की भावना को मिटाकर मनुष्य ससार मे सर्वत्र एक ही सत्ता, एक ही तत्व का अनुभव करने लगेगा तो न तो वह किसी से भयभीत हो सकता है, न घृणा कर सकता है, न क्रोध कर सकता है। ऐसा व्यक्ति ही पूर्ण निभय, निद्वन्द हो सच्ची शान्ति और सुख का उपभोग कर सकता है।

अपने समस्त साधनो को भगवान के अपण करने पर गीता मे विशेष बल दिया गया है। यथा—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ (९।२७)

अर्थात्– हे कौन्तेय ! तू जो कुछ काम करता है, आहार ग्रहण करता है यज्ञ करता है, दान अथवा तप करता है, वह सब मुझे ही समर्पित कर।

फिर कहा है—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मा नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मान मत्परायण. ॥ (९।३४)

अर्थात् "मुझमे मन लगा, मेरी भक्ति करो, मेरी उपासना करो और मुझे ही नमस्कार करो। इस तरह से मत्परायण होकर योगाभ्यास करने पर तुझे मेरी प्राप्ति होगी।"

यही बात २८वें श्लोक में कही गई है—

शुभाशुभफलैरेव मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै.।
सन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

अर्थात् "इस प्रकार कर्म करके कर्मों के शुभ शुभ परिणाम के बन्धन से तुझे मुक्ति मिलेगी। और इस कर्मफल के सन्यास से युक्तात्मा होकर तू मुक्त हो जायेगा और मुझसे एकात्मता प्राप्त कर लेगा।"

इस योग की विवेचना एक विद्वान ने इस प्रकार की है—

"गीता के योग का सार भगवान ने अठारहवें अध्याय के ६५वें श्लोक में कह दिया है कि 'मेरे (भगवान के) मन में अपना मन मिला दो, मेरे भक्त हो जाओ, मेरा भजन करो, मुझे प्रणाम करो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम मुझको ही प्राप्त होगे, क्योंकि तुम मेरे प्रिय हो।" यह तत्व गीता का हृदय है। जैसा हम समझ सकते हैं, यह वह योग है जो मानव प्रकृति के सब अङ्गों को एक सूत्र मे ले आता है। इसके बिना योग क्या है? ऐसा विकास किस काम का जिसमे सब अङ्गों का सामञ्जस्य न हो? सभी अंश शुद्ध, पवित्र और दिव्य न बनें? यदि कोई कहे कि यह बडा कठिन और दुगम मार्ग है तो उत्तर यही है कि इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं है यदि अधोगति से बाहर निकलना है, तो अन्त मे इसी को अगीकार करना पडेगा। भगवान कृष्ण ने स्वय कह दिया है कि 'अनेक जन्मों के पश्चात ज्ञानी पुरुष मेरे पास आता है। अभी या पीछे सभी को इसी दुर्गम मार्ग या 'क्षुरस्य धारा' (तलवार की धार) पर चलना होगा। चलते हुए चाहे पांवो से कितना ही रक्त निकले और हृदय का साहस टूटे पर इसमें सदेह नहीं कि भगवान सदा हमारे पार्श्व मे रहते हैं, एक क्षण के लिए भी अकेला नहीं छोडते।

योग की जितनी भी प्रणालियो का वर्णन गीता में किया गया है, उन सब का आशय एक ही है—शक्तिहीनता अर्थात् बन्धन का निवारण शक्ति-सम्पन्नता अर्थात् स्वतत्रता—मोक्ष की ओर बढना।

माया-प्रकृति-शक्ति

गीता (४-६) मे माया शब्द आया है जहाँ भगवान ने कहा है अपनी ही प्रकृति मे अधिष्ठित होकर मैं अपनी माया से जन्म लिया करता हूँ। भगवान शङ्कराचाय इस माया को शक्ति रूपिणी कहा है—

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति-
रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।
कार्यानुमेया सुधियैव माया
यया जगत्सर्वमिद प्रसूयते ॥

अर्थात् "परमेश्वर की अव्यक्तनाम्नी शक्ति जिसने इस सारे जगत को रचा है अनादि अविद्या, त्रिगुणात्मिका और ससार रूपी कार्य के परे है। कार्य रूपी विश्व को दृष्टि मे रख कर ही शक्ति रूपी माया की सिद्धि होती है।"

गीता (६-१४) में भगवान के कहा है कि मेरी यह गुणात्मक और दिव्य माया बडी दुस्तर है।

दैवीह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

फिर कहा है—

नाह प्रकाश सर्वस्य योगमायासमावृत. ।

"अपनी योगमाया से निहित मैं सबके प्रत्यक्ष नही होता।"

भगवान ने चेतावनी देते हुए कहा है—

न मा दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधम ।
माययापहृतज्ञाना आसुर भावमाश्रिता ॥
(गीता ७-१५)

"माया ने जिनके ज्ञान को विनष्ट कर दिया है, ऐसे मूढ और दुष्कर्मी नराधम आसुरी बुद्धि मे पडकर मेरी शरण में नही आते।"

अपनी शरण मे आने का भगवान ने माया को पार करने का उपाय गीता मे बताया है—

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते । (७ १४)

श्रुति ने कहा है कि त्रिगुणमयी माया मे स्थित यह सारा चराचर जगत ईश्वर से व्याप्त है ।

ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

(ईशोपनिषद् १)

श्वेताश्वतरोपनिषद् ४-१० मे प्रकृति को माया और माया के अधिपति को परमेश्वर कहा है—

"माया तु प्रकृति विद्यान्मायिन तु महेश्वरम् ।"

इस प्रकृति को गीता १३।१९ में अनादि कहा है और विकार व गुणो को इसी से उपजा हुआ माना है । गीता (१४-३) मे सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति और पुरुष के सयोग से ही मानी है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भ दधाम्यहम् ।
सभव सर्वभूताना ततो भवति भारत ॥

अर्थात् ' हे भारत ! मेरी महद्ब्रह्म रूपी प्रकृति सम्पूर्ण भूतो की योनि है और मैं उस योनि मे चेतन रूप बीज की स्थापना करता हूं । उस जड चेतन के सहयोग से ही समस्त भूतो की सृष्टि होती है ।''

विद्यारण्य मुनि ने इसका कारण बताते हुए कहा है—

न केवल ब्रह्मैव जगत्कारण निर्विकारत्वात् । नापि केवल शक्ति कारण स्वातन्त्र्याभावात् । तस्मादुभय मिलित्वैव जगत्कारणं भवति ।

"निर्विकार होने के कारण केवल ब्रह्म जगत का कारण नही है । केवल शक्ति को भी कारण नही कहा जा सकता है क्योकि उसमे भी स्वतन्त्रता का अभाव है । इस लिए ब्रह्म और शक्ति दोनो के सयोग से ही विश्व की उत्पत्ति होती है ।"

गीता (३-२७) में प्रकृति के गुणो—सत, रज और तम से ही समस्त कर्मो की उत्पत्ति मानी है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश ।

गीता (१३-२०) से काय और कारण(शरीर और इन्द्रियां) के कार्यों के लिए प्रकृति को ही कारण माना है—

कार्यकारणकर्तृत्वे हेतु प्रकृतिरुच्यते ।

गीता (१४) में सत्, रज और तम को भीप्र कृति के ही कारण माना है—

सत्व रजस्तम इति खुणा, प्रकृतिसम्भवा ।

यही निर्विकार आत्मा को शरीर स बाधते हैं—

निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् । (गीता १४-५)

इस पृथ्वी, आकाश अथवा देवलोक मे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो प्रकृति के इन गुणो से मुक्त हो ।

न तदस्ति प्रथिव्या वा दिवि देवेषुवा पुन ।
सत्व प्रकृयिर्जमुक्त यदेभि स्यात्त्रिभिर्गुणै ॥
(गीता १८-४०)

यह प्रकृति आठ प्रकार की है—गीता६-४ ५ के अनुसार-

भूमिरापोऽनलो वायु ख मनो बुद्धिरेव च ।
अहकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥
अपरेयमितस्त्वन्या प्रकृति विद्धि मे पराम् ।
जीवभूता महाबाहो ययद धायते जगत् ।

पांच सूक्ष्म भूत-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन, बुद्धि, अहकार यह आठ प्रकार की मेरी प्रकृति है। इसे अपरा प्रकृति कहते हैं जो निम्न श्रेणी की है । दूसरी प्रकृति है-परा जो उच्च श्रेणी की है जो जगत को को धारण करती है ।

भगवान ने कहा है जो इस रहस्य को नहीं जानता, वह अह-से मोहित होकर अपने को ही कर्त्ता मानने लगता है वह अज्ञानी है-

अहकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ।

गीता १३ २९ मे कहा हैं—

प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वश ।
य पश्यति तथात्मानमकर्तार स पश्यति ॥

अर्थात् "जिसने यह समझ लिया कि सब कर्म सब तरह से प्रकृति से ही क्रियान्वित होते हैं और आत्मा अकर्ता है, समझना चाहिए कि उसने वास्तविक तत्व को जान लिया ।"

इसी प्रकृति को शक्ति के नाम से अभिहित किया गया है । गीता का यह सिद्धान्त शक्ति-सिद्धान्त से मिलता जुलता है । गीता मे शक्ति-सिद्धान्त बड़े ही सशक्त रूप मे वर्णित किया गया से । चौथे अध्याय के श्लोक ६ से ६ मे जहाँ अवतारवाद का विवेचन किया गया है, यह सिद्धान्त और निखर कर आया है । गीता मे शक्ति के ऊँचे से ऊँचे स्वरूप का वर्णन है । उसके स्तर को क्रमश बढ़ाया गया है । शक्ति की स्वतत्र सत्ता भी बताई गई हैं । उसे ईश्वर के आधीन भी बताया गया है —

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुन पुन. ।
भूतग्राममिम कृत्स्नमवश प्रकृतेर्वशात् ॥ (गीता ६-८)

'मैं अपनी प्रकृति को अपने हाथ मे लेकर भूतो के इस समग्र समुदाय को बार-बार उत्पन्न करता हूँ ।" गीता मे शक्ति और पुरुष की अभिन्नता का भी सिद्धान्त स्वीकार किया गया है—

मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्व भूतान न चाह तेष्ववस्थित ॥ (६ ४)

"मैंने अपने अव्यक्त रूप से इस सारे विश्व को विस्तृत और व्यापक किया । सारे भूत मुझमे हैं ।"

यथाकाशस्थितो नित्यम् वायु सवत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

"सब ओर प्रकाशित होने वाली महान वायु जिस तरह सब ओर आकाश मे रहती है, उसी तरह सब भूतो को मुझ मे जान ।"

गीता के शक्तिवाद की यह महान विवेचना है जिसे तत्र और वेद मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं ।

दुर्गा सप्तशती और गीता में अनुकूलता

दुर्गा सप्तशती गीता की परवर्ती मानी जाती है। यूँ कहना चाहिए कि भगवद्गीता की आधारशिला पर ही सप्तशती की रचना हुई है। दोनो का अध्ययन विषयो मे साम्य प्रदर्शित करता है।

गीता मे ७०० श्लोक हैं। सप्तशती मे ५३५ श्लोक १०८ अर्ध श्लोक और ५७ 'उवाच' है। उनका योग ७०० होता है।

गीता महाभारत का एक अंश है। महाभारत के रचियता महर्षि व्यास हैं। अत गीता व्यास की ही रचना है। सप्तशती मार्कण्डेय पुराण का एक भाग है। पुराणो के रचियता भी व्यासजी ही माने जाते है। अत सप्तशती के लेखक भी व्यास ही सिद्ध होते है।

गीता मे ज्ञान के उपदेष्टा स्वयं भगवान कृष्ण हैं और श्रोता हैं अर्जुन। सप्तशती के उपदेशक हैं—मेधा ऋषि और श्रोता हैं—सुरथ—क्षत्रिय राजा और समाधि वैश्य। मेधा का अर्थ है—आत्म ज्ञान। शङ्कर-भाष्य गीता (१८।१०) मे कहा है—

मेध्या आत्मज्ञान लक्षणया प्रज्ञया।

सुरथ का अर्थ करते हुए कहा गया है—

सुष्ठु रम्यतेऽत्र इति सुरथ.।

यहाँ सत्य प्रवृत्ति-मार्ग के पथिक को सुरथ कहा है। दुर्गा १।४ में भी कहा है—

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भव ।
सुरथो नाम राजाभूत् समस्ते क्षितिमण्डले ॥

अर्थात् "पहले स्वारोचिष मन्वन्तर से चैत्र के वंश में उत्पन्न होने वाला सुरथ नाम का राजा इस समस्त भूमंडल पर हुआ था।"

दुर्गा सप्तशती (शान्तनवी टीका) के अनुसार—

"रमन्तेऽस्मिन इति रथ । शोभनो रथो यस्य स सुरथ ।"

अर्थात् "जिसमें देवता रमण किया करते हैं वह रथ है। अथवा शोभन जिसका रथ है वह सुरथ है।

समाधि का अभिप्राय निवृत्तिमार्ग के पथिक साधक से है।

समाधि,- समाधीयते सर्वमस्मिन् ।

अर्थात्-जिसमें सभी कुछ का समाधान किया है उसे समाधि कहा जाता है।

समाधीयतेऽस्मिन् पुरुषोपभोगाय सर्वमिति समाधि. ।

अर्थात् 'जिसमे पुरुष के उपभोग के लिए सब का समाधान किया जाता है। भली भांति ग्रहण करने को समाधान कहा जाता है।"

अर्जुन ज्ञानी था परन्तु जब मिथ्या अज्ञान ने उसे आ घेरा तब उसे ज्ञानयोग के उपदेश की आवश्यकता हुई। अविवेक से ही अज्ञान की उत्पत्ति होती है। इस महारोग की रामबाण औषधि विवेक ही हो सकती है। इसलिए भगवान ने अर्जुन को बुद्धि की शरण में जाने का

"बुद्धौ शरणमन्विच्छ" (गीता, २।४९)

मेधा ऋषि भी इसी तत्व के प्रतीक हैं। सुरथ और समाधि को जब जीवन-मार्ग में बाधा और विपत्ति आती है और चारो ओर निराशा ही निराशा दिखाई देती है तो बुद्धि की शरण में जाने के अतिरिक्त और कौनसा मार्ग हो सकता है? बाधाएं आने पर चिंता मग्न रहना, अपने भाग्य और उसके निर्माता को कोसना, जिनसे प्रत्यक्ष रूप से कष्ट हो रहा है, उन पर आरोप प्रतिरोप लगाना ही कायरता और अज्ञानता के

चिह्न हैं। इसका उपाय ही केवल बुद्धि के निर्देशन में चलना है। यही सप्तशती के दोनो पात्रो ने किया है।

अज्ञान को शास्त्रीय भाषा में असुर कहते हैं और ज्ञान को देव। मानव मन में दोनो विद्यमान रहते हैं। उसकी प्रकृति में तीन गुण हैं—सत्, रज और तम। जब रज और तम मिलकर सत् को दबा लेते हैं अर्थात् जब मनुष्य भोग ऐश्वर्यों में लिप्त होकर अपने सत् तत्व को निर्बल कर देता है, तो उसे असुरता का देवत्व पर आधिपत्य होना कहते हैं।

आसुरी बुद्धि की परिभाषा करते हुए गीता (१७।५।६) में कहा गया है—

> अशास्त्रविहित घोर तप्यन्ते ये तपो जना ।
> दम्भाहकारसयुक्ता कामरागबलान्विता. ॥
> कषयन्त शरीरस्थ भूतग्राममचेतस ।
> मा चैवान्तः शरीरस्थ तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥

अर्थात्' जो व्यक्ति दम्भ और अहकार के वशीभूत होकर काम और आसक्ति की पूर्ति में शास्त्र विरुद्ध कार्यों में लीन रहते हैं, और जो न केवल देह के पचमहाभूतो को ही बल्कि उसमें निवास करने वाले मुझको भी कष्ट दिया करते हैं, उन अविवेकी जनो को आसुरी बुद्धि का मानो।"

प्रमुख असुरो का वर्णन सप्तशती में आता है। उन्हीं का वध देवी का उद्देश्य था। ये असुर हैं—मधु, कैटभ, महिषासुर शुम्भ, निशुम्भ, धूम्रलोचन, रक्तबीज, चण्ड मुण्ड, सुग्रीव।

मधुकैटभ का आध्यात्मिक अर्थ है—राग और द्वेष, महिषासुर तामस् अहभाव है, शुम्भ का अर्थ है—अहकार और निशुम्भ का अर्थ है ममकार, धूम्रलोचन लोभ है। रक्तबीज का अभिप्राय है-विषयाभिलाष। शुम्भ और निशुम्भ के भृत्य हैं—चण्ड और मुण्ड अर्थात् काम और

क्रोध । सुग्रीव इनका काम करता है, वह परिग्रह का प्रतीक है। सप्तशती (५।११४) में कहा है—

> परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
> एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥

अर्थात् 'मेरा परिग्रह प्राप्त करने से अर्थात् मेरी प्रपत्ति में प्राप्त हो जाने पर अत्यधिक एवं असीमित वैभव की प्राप्ति कर लेगा। इसको अपनी बुद्धि से भलीभाँति विचार करके मेरी परिग्रहता को ग्रहण करो।"

गीता में भी कहा है कि जो व्यक्ति काम, क्रोध, अहङ्कार, बल, दर्प को आधार मानकर अपने और अन्य शरीरों में निवास करने वाले मुझ को द्वेष करते हैं और सन्मार्ग के पथिकों की निन्दा करते हैं। वे असुर हैं, अशान्त रहते हैं। शान्त अवस्था प्राप्त करने के लिए इस आसुरी सम्पत्ति का त्याग करना होगा। (१६।१८) काम-क्रोध और लोभ को नरक का द्वार कहा गया है जो हमारा नाश करते हैं। इसलिए इनके त्याग की प्रेरणा दी गई है—

> त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
> कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥
>
> (गीता १६।२१)

अनेक प्रकार की कल्पनाओं में भ्रमित, मोहक चंगुल में फँसे और विषय वासनाओं में आसक्त असुर अपवित्र नरकों में जाते हैं—

> अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
> प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥
>
> (गीता १६।१६)

भगवान कहते हैं कि अशुभ काम करने वाले इन द्वेषी और क्रूर अधम व्यक्तियों को सदैव पाप योनियों में पटका जाता है—

तानहं द्विषत क्रूरान्ससारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेवरयोनिषु ॥

(गीता १६।१६)

गीता (३।३६) में भी काम और क्रोध को मानव का शत्रु कहा है। ३।३८ में काम को कभी भी तृप्त न होने वाली अग्नि कहा हैं। इस पर ज्ञानको ढकने का आरोप लगाया गया है। (३।४०।४३) मे इस काम रूपी शत्रु को मार डालने की प्रेरणा दी गई है। सप्तशती में भी देवता देवी से यही प्रार्थना करते हैं।

असुर विनाश का उद्देश्य सप्तशती और गीता दोनो में है। गीता में इसके माध्यम अर्जुन बनते हैं परन्तु प्रोत्साहन मिलता हैं भग वान कृष्ण से। अर्जुन तो केवल औजार मात्र बनते हैं। दोनो के सम्मि-लित प्रयत्न का उद्देश्य है समाज मे व्यापक रूप से फैले हुए आसुरी भाव को दूर करना। सप्तशती में भी भगवती का यही उद्देश्य है परन्तु इस कार्य की वह स्वय करती हैं और रण मे असुरो को ललकार कर एक-एक करके उनका वध करती हैं।

दोनो ग्रन्थो की उपासना पद्धति मे कुछ अन्तर प्रतीत होता है। जहाँ सप्तशती में सकाम उपासना पर बल दिया गया है और कहा गया है "रूप देहि, जय देहि, यशो देहि, द्विषो देहि" वहाँ गीता मे निष्काम कर्मयोग की शिक्षा दी गई है और कहा गया है कि काम करते जाओ परन्तु फल की इच्छा मत करो।

गीता में भगवान ने अपने अवतार का उद्देश्य बताते हुए कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात् 'हे भारत! जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म प्रबल हो जाता है तब मैं स्वयं अवतार लिया करता हूं। साधुओं के संरक्षण और दुष्टों के विनाश के लिए, युग युग मे धर्म की संस्थापना के लिए मैं जन्म लिया करता हूं।

सप्तशती के अनुसार जब देवता भोगों मे लिप्त होते हैं तो उनकी शक्ति क्षीण होती है तभी उनके अधिकार छीन लिए जाते हैं, परन्तु जब वे भगवान का स्मरण करते हैं और भगवती के दर्शन करते हैं तो उनका संरक्षण होता है और असुरों का नाश होता है। दोनों का मूल उद्देश्य एक ही है।

सप्तशती मे जब देवता असुरों से पराजित होते हैं तो वह भगवती की शरण मे जाते हैं और शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चण्ड मुण्ड और सुग्रीव सात असुरों के विनाश की प्रार्थना करते हैं। सप्तशती के असुर अलङ्कारिक रूप से वर्णित किए गये हैं परन्तु गीता का स्पष्ट प्रतिपादन है—वे हैं अहंकार, ममत्व, काम, क्रोध, बल, दर्प और परिग्रह। गीता के अनुसार जो व्यक्ति इन्हें आश्रय देते हैं वह भगवान से द्वेष करते हैं और उनकी आज्ञा का उल्लंघन करते हैं। इसके विपरीत जो इन आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग करते हैं, वह परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

सप्तशती में देवताओं ने "या देवी सर्वभूतेषु" आदि स्तुति की है। इसमे भगवती के अव्यय व अविनाशी वपु का वर्णन है। इस स्तुति मे सात्विक ज्ञान की झलक मिलती है। गीता मे सात्विक ज्ञान का स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है—

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्॥

(गीता १८।२०)

अर्थात् "जिस ज्ञान से यह प्रतीत हो कि भिन्न-भिन्न प्राणियों

में एक ही अविभक्त भाव और अव्यय भाव है, वह सात्विक ज्ञान है।"

सप्तशती में देवता भगवती की इस प्रकार स्तुति करते है—

देव्या यया ततमिद जगदात्मशक्त्या.

अर्थात् जिस जगज्जननी देवी ने यह सम्पूर्ण जगत् अपनी शक्ति के द्वारा विस्तार वाला निर्मित किया है।

यस्या प्रभावमतुल भगवानननो
ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमल बल च।

अर्थात् जिस महामाया के इस असीम प्रभाव को साक्षात् अनन्त भगवान्–ब्रह्मा और शिव भी बतलाने की क्षमता नहीं रखते हैं और देवी के बल विक्रम को भी जो कि अतुल है वे नहीं कह सकते है।

'हेतु समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे ....'

"सत्व -रज-तम इन तीन गुणो वाली आप हैं और समस्त लोको के सृजन का कारण भी हैं किन्तु दोषो से आपका स्वरूप जाना नही जाता है

'स्वग प्रकाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन।

"फिर हे देवि! आपके प्रसाद से स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। इससे आप तीनो लोको मे फल प्रदान करने वाली हैं–इसमे कोई सन्देह नही है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब देवताओ में दोष उत्पन्न हो जाते हैं तब वह भगवती को भूल जाते हैं। उनकी निवृत्ति होने पर ही उसका स्मरण होता है।

इन भावो को गीता मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।
सवभूतानि सम्मोह सर्गे यान्ति परन्तप ॥ (७।२७)

अर्थात् "हे भारत ! इच्छा और द्वेष से उपजने वाले द्वन्दो के मोह से इस सृष्टि मे समस्त प्राणी भ्रम मे फस जाते है।"

सप्तशती के ११वें अध्याय के आठवें श्लोक से २३ वें श्लोक तक नारायणी स्तुति है। यहाँ देवी के विभिन्न रूपो का वर्णन है। उसे विश्व का उपसहार करने वाली (९), कल्याण दायिनी शरणागतवत्सला (१०), सृष्टि, पालन और सहार की शक्तिभूता (११) बताया गया है। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, शिवदूती, मुण्डमर्दिनी चामुण्डा, सभी रूप उसी देवी के हैं और सहस्र नेत्रो वाली (१३-२१), लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, (२२) मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, ऐश्वयरूपा सयम परायणा, और सबकी अधीश्वरी वही है (२३) वह सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी और सब प्रकारकी शक्तियो से सम्पन्न है (२४), जो साधक भगवती के इस तत्व ज्ञान को जानता है, वही उसे पाने का अधिकारी है।

गीता ७।१९ मे भी यही भाव है--

बहूना जन्मनाम ते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।
वासुदेव' सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥

अर्थात् 'अनेक जन्मो के बाद जब यह ज्ञान हो जाए कि जो कुछ है वह सब वासुदेव ही है', ज्ञानवान मुझे पा लेता है, ऐसा महात्मा दुर्लभ है।"

दोनो के भावो मे अनुकूलता है।

सप्तशती के मध्यम चरित्र के अनुसार जब महिषासुर ने देवताओ को पराजित किया और इन्द्रासन का अधिकारी हो गया तो देवता ब्रह्मा को लेकर विष्णु और शिव के पास गए। हरि-हर को देवताओ पर दया आई। उनके मुख से तेज निकला। अन्य देवताओ ने भी अपने तेज को इसमे सम्मिलित कर दिया और वह तेज-पुञ्ज देवी के रूप मे

परिणित हुआ। इस देवी ने महिषासुर का वध किया और देवी की इच्छा पूर्ण हुई। हरि-हर की शरण मे जाने से निश्चित रूप से यही परिणाम होता है।

गीता ८।१४ में भी यही भाव व्यक्त किया गया है—

अनन्यचेता सततं यो मा स्मरति नित्यश ।
तस्याह सुलभ पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन ।।

अर्थात् 'हे पार्थ ! अनन्य भाव से जो नित्य मेरा स्मरण करता है, उस नित्य युक्त योगी को मेरी प्राप्ति सुविधापूर्वक होती है।

देवी के मध्यम चरित्र के अनुसार जब निशुम्भ मारा गया तब शुम्भ ने दुर्गा से कहा कि तू तो व्यर्थ ही विजय का घमण्ड कर रही है, तू तो दूसरी स्त्रियो के बल पर युद्ध कर रही है (१०.३)। इस पर देवी ने उत्तर दिया—

एकैवाह जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा !
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्योमद्विभूतय (१०।५)

'मैं अकेली ही हूं। इस जगत मेरे अतिरिक्त और कौन है ? देखो यह मेरी ही विभूतिया मुझ मे ही विलुप्त हो रही है।'

तत समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका (१०।६)

इसके बाद ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिका देवी के शरीर मे प्रविष्ट हो गईं। उस समय केवल अम्बिका देवी ही शेष रह गई।'

फिर देवी ने कहा—

अह विभूत्या बहुभिरिहि रूपैर्यदास्थिता ।
तत्संहृत मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव । (१०।८)

'मैं अपनी विभूति से विभिन्न रूपो मे यहाँ प्रस्तुत हुई थी, उन्हे

मैंने समेट लिया। अब अकेली ही युद्ध मे स्थित हूँ। तुम भी स्थित हो जाओ।"

उपरोक्त श्लोकों मे देवी ने अद्वैत भावना को व्यक्त किया है।

नान्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप। (१०।४०)

'मेरी दिव्य विभूतियो का अन्त नही है।"

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्व श्रीमदूर्जितमेव वा
तत्तदेवावगच्छ त्व मम तेजोऽशसम्भवम् (१०।४१)

वह सभी वस्तुएँ मेरे ही तेज से उपजी हुई समझो जो वैभव, लक्ष्मी या प्रभाव से युक्त हैं।"

भगवान ने अपनी विभूतियो का वर्णन करते हुए कहा है कि मे रुद्रो में शकर यक्ष और राक्षसा मे कुबेर वसुओ मे पावक, पर्वतो मे मेरु (१०।२३) पुरोहितो मे वृहस्पति, सेनापतियो मे स्कन्द जलाशयो मे समुद्र (२४), महर्षियो मे भृगु, वाणीमे ॐकार यज्ञोमें जपयज्ञ स्थावर पदार्थों मे हिमालय, (२५), वृक्षो मे पीपल, देवर्षियो मे नारद, सिद्धो मे कपिल, (२६) घोडो में उच्चै श्रवा, गजेन्द्रो मे एरावत, मनुष्यो मे राजा (२७) आयुधो मे वज्र, गौओ में कामधेनु, सर्पों मे वासुकि (२८), नागो मे अनन्त, जलचर प्राणियो मे वरुण, पितरो मे अर्यमा और नियमन करने वालो मे यम हूँ (२९), दैत्यो में प्रहलाद ग्रसने वालो मे काल पशुओ मे सिंह, पक्षियो मे गरुड, वेग वालो मे वायु, शस्त्र धारियो मे राम, मछलियो मे मगर, नदियो मे भागीरथी (३१) विद्याओ मे आत्म विद्या, (३२) वैदिक स्तोत्रो मे वृहत्साम, छन्दो मे गायत्री, मासो मे मार्गशीर्ष, ऋतुओ मे वसन्त (३५) यादवो में वसुदेव, पाण्डवो मे धनञ्जय, मुनियो मे व्यास और कवियो मे शुक्राचार्य (३६) मैं हूँ। अन्त मे भगवान कहते हैं कि सब भूतो का जो

कुछ बीज है, मैं हूं, ऐसा कोई चर अचर भूत नही जो मुझे छोड दे (३८)।

भगवान ने सभी भूतो और प्राणियो के साथ अपना एकत्व प्रदर्शित किया है।

सप्तशती और गीता के ढग अलग-अलग हैं, अद्वैत भावना को व्यक्त करने का भावना दोनो की एक ही है।

सप्तशती के तीनो चरित्रो में ब्रह्म विद्या का चित्रण किया गया है। प्रथम अध्याय के श्लोक ५४-५८ तक महामाया भगवती (ब्रह्म विद्या) का विवेचन है। सूत सहिता मे भी पार्वती को परम विद्या और ब्रह्म विद्या प्रदान करने वाली कहा है।

"पार्वती परमा विद्या ब्रह्म विद्या प्रदायिनी'

गीता का भी विषय ब्रह्म विद्या है, इसके तो प्रत्येक अध्याय के अन्त मे 'ब्रह्म विद्याया योग शास्त्रे' लिखा है, इससे दोनो का प्रतिपाद्य विषय एक ही प्रतीत होता है।

सप्तशती के प्रथम चरित्र की कथा के अनुसार जब मधु और कैटभ नामक दैत्यो ने ब्रह्मा को ग्रसने का प्रयत्न किया तो ब्रह्मा ने परमा-शक्ति से रक्षा की प्रार्थना की इसका। अभिप्राय है कि ब्रह्मा को परमा शक्ति का ज्ञान था जो गुणत्रय से परे परम भाव की प्रतीक है।

इस भाव का, प्रतिपादन गीता १४।१४ मे इस प्रकार है—

नान्य गुणेभ्य कर्तार यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च पर वेत्ति मद्भाव सोऽधिगच्छति॥

'द्रष्टा जब यह समझ जाता है कि ('प्रकृति') गुणो के सिवाय और कोई कर्ता नही है और जब तीनो गुणो से परे तत्व को भली प्रकार जान लेता है, तो वह मुझमे मिल जाता है।

यही बात गीता ३।२७ मे कही गई है—

प्रकृते क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वश ।
अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते ॥

"प्रकृति के सत्व-रज-तम गुणों से ही सब काम होते हैं, पर अहंकार से मोहित अज्ञानी अपने को कर्ता समझता है।"

ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता है परन्तु उनमे अहंकार नही था, इसी तरह जो साधक प्रकृति का कर्ता मान कर अपने को निरहङ्कार स्थिति मे रखते हैं, उन्हे ही परम ज्ञान हो पाता हैं।

इस तरह से दुर्गा सप्तशती और गीता के विचारो मे अनुकूलता सिद्ध होती है।

❂❂❂

दुर्गा उपासना का बौद्धिक अध्ययन

परिभाषा

दुर्गा-दुर्गतिनाशिनी हैं। दुर्गेया होने के कारण दुर्गा प्रकृति को दुर्गा कहा जाता है। दुर्गा मे 'दु' अक्षर, दारिद्र, दु ख दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन आदि दैत्य के नाश का प्रतीक है 'रेफ' रोगघ्न है, गरण पापघ्न और अगर अन्याय अत्याचार अधर्म, अनेकता, आलस्यदि असुरो प्रकृतियो के नाश वाचक है।

प्राचीनता

भारत मे प्राचीन काल से दुर्गा की उपासना इसी उद्देश्य के लिए चली आ रही है। महाभारत के समम भगवान कृष्ण ने विजय श्री प्राप्त करने के लिए दुर्गा की पूजा करने की प्रेरणा की थी। महाभारतलीन कि गोपो ने अम्बिका की पूजा की थी। भगवान के अनुसार गोपियो ने 'कात्यायनी' देवी की आराधन की थी। यादवो ने दुर्गा की साधना को अपनाया था—'दुर्गा क्ररर्णपलब्धये' (भगवान)। रुक्मिणी जी ने अम्बिका की उपासना की थी।

नमस्ये त्वन्विकेऽभीक्ष्ण स्वसन्तमयुता शिनाम्'

अवतरण का उद्देश्य

दुर्गा सघ शक्ति की प्रतीक हैं क्योकि उनका आविर्भाव ही देवताओ की सगठन शक्ति से हुआ है। यम्एिड के पुराण मे इसका रोचक वरणन मिलता है जो इस प्रकार है —

"क्रोध से युक्त विष्णु भगवान शिवजी एवं ब्रह्मा जी के मुखों से एक विस्तृत तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार इन्द्र और दूसरे देवताओं के मुखों से भी तेज निकला अत्यन्त निकला हुआ समस्त तेज मिल कर एक हो गया इसके पश्चात् मिल कर एक हुए उस अत्यन्त तेज पुञ्ज को जिसकी ज्वालाएं सम्पूर्ण दिशाओं में फैल गई पर्वत के तुल्य जलते हुए देखा। फिर वह एकत्रित त्रिभुवन को अपनी आभा से प्रकाशित करने वाला तेज-पुञ्ज स्त्री रूप में परिवर्तित होने लगा। शिव जी के मुख से प्रकट हुए तेज से उसका मुख, राम के तेज से केश तथा विष्णु, के तेज से उसकी दो भुजाएं बन गई। चन्द्र के तेज से दोनों स्तन इन्द्र के तेज से मध्य प्रदेश, वरुण के तेज से जंघा, और ऊरु पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से चरणों की अंगुलियां वसुगणों के तेज से हाथों की अंगुलियाँ, कुबेर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दन्तावलि, अग्नि के तेज से त्रिनेत्र, दोनों सन्ध्याओं के तेज से भृकुटि पवन के तेज से दो कान बन गये एवं अन्य दूसरे देवताओं विश्वकर्मा आदि के तेज से भी उसके अंग सम्पूर्ण होकर उस मङ्गलकारी देवी ने जन्म लिया फिर सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने युद्धास्त्र प्रदान किये। उसके पश्चात् शिव जी ने अपने शूल से शूल उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया विष्णु भगवान् ने अपने चक्र से चक्र उत्पन्न करके दिया, वरुण ने उन्हें शंख, हुताशन ने शक्ति एवं पवन ने उन्हें धनुष व बाण प्रदान किये।

सहस्राक्ष अमरेश्वर इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथी का घण्टा खोलकर दिया। यमराज ने काल-दण्ड से एक दण्ड उत्पन्न करके उन्हें प्रदान किया। वरुण ने पाश, दक्ष, प्रजापति ने अक्षमाला एवं ब्रह्मा जी ने उन्हें कमण्डल, प्रदान किया, दिनकर ने उन कल्याणी देवी के समस्त रोम-रोम को अपनी किरणें प्रदान की। काल ने उन्हें स्वच्छ ढाल तलवार और ढाल दी।

क्षीरोद समुद्र ने भी पूर्ण उज्ज्वल मोनियो का हार, दो स्वस्थ वस्त्र सुन्दर चूडामाणी, दिव्य कुण्डल और कगन प्रदान किये। अर्द्धचन्द्र ने भी सुन्दर पायल, दोनो बाहुओ मे बाजूबन्द, कन्ठ के लिए सुन्दर आभूषण एव समस्त अ गुलियो मे अनुपम अ गूठियाँ दी। विश्वकर्मा जो ने अनुपम परशु और अकाट्य कवच उन्हे प्रदान किया। समुद्र ने खिले हुए कमल पुष्पो की शोभायमान मालाऐ कण्ठ एव सिर पर धारण करने के लिए दी। हिमालय ने देवी को सवारी के लिए सिंह और विभिन्न रत्न प्रदान किये। पृथ्वी के आधार अनन्त नागेश ने देवी जी को महामणि युक्त नागहार प्रदान किया। अन्य दूसरे देवताओ ने भी उन्हे विभिन्न प्रकार के अस्त्र एव आभूषण प्रदान किये।

दुर्गा प्रेरित करती हैं कि जब भी आसुरी तत्व सर उठाए और उनके विनाश की आवश्यकता पडे तो इसका केवल मात्र उपाय यही है कि देव तत्व आपस में सगठित हो जाएँ। इस एकत्रित शक्ति पुन्ज से ही उन्हें परास्त करना सभाव होगा। यह शक्ति ही विश्व कल्याण का हेतु हो सकती हैं।

दुर्गा के अवतारण का उद्देश्य समाज की अव्यवस्थित करने वाली आसुरी शक्तिओ का दमन है। भगवान कृष्ण ने गीता मे प्रतिज्ञा की है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, तब तब वे धर्म को विनाश से बचाने और उसकी सस्थापना के लिए मनुष्य रूप मे अवतार धारण करते है। दुर्गा भी मार्कण्डेय मे पुराण मे ऐसी ही प्रतिज्ञा करती है। दुर्गा चरित्र से विदित होता है कि उन्हो ने अपनी प्रतिज्ञा को निभाया है और अनचार, अन्याय, अत्याचार की प्रतीक आसुरी शक्तियो का विनाश किया है।

विभिन्न नाम

दुर्गा सप्तशती मे दुर्गा के १०८ नामो का इस प्रकार वर्णन आता है।

१ ॐ सती, २, साध्वी, ३, भवगीता, ४, भवानी, ५, भव-मोचनी, ६, आर्या, ७, दुर्गा, ८, जया, ९, आद्या, १०, त्रिनेत्रा, ११, शूलधारिणी, १२, पिनाक धारिणी, १३, चित्रा, १४ चण्डघण्टा १५ महातपा, १६ मन १७ बुद्धि, १८ अहंकारा, १९ चित्तरूपा, २० चिता, २१ चिति, २२ सर्व मन्त्रमयी, २३ सता २४ सत्यानन्द स्वरूपिणी, २५ अनन्ता, २६ भाविनी, २७ भाव्या, २८ भव्या, २९ अभव्या, ३० सदागति, ३१ शाम्भवी, ३२ देवमाता ३३ चिन्ता, ३४ रत्नप्रिया, ३५ सर्व विद्या, ३६- दक्षकन्या ३७ दक्षयज्ञ विनाशिनी, ३८, अपर्णा, ३९, अनेकवर्णा, ४० पाटला ४१ पाटलावती ४२, पट्टाम्बरपरीधाना, ४३ कलञ्जीररञ्जिनी ४४ अमेयविक्रमा, ४५ क्रूरा, ४६ सुन्दरी, ४७ सुरसुन्दरी ४८- मातङ्गी, ५० मतङ्ग-मुनिपूजिता, ५१ ब्राह्मी, ५२ माहेश्वरी, ५३ ऐन्द्री, ५४ कौमारी, ५५ वैष्णवी, ५६ चामुण्डा ५७ वाराही, ५८ लक्ष्मी, ५९ पुरुषा-कृति,, ६० विमला, ६१ उत्कर्षिणी, ६२ ज्ञाना, ६३ क्रिया, ६४ नित्या, ६५ बुद्धिदा, ६६ बहुला, ६७ बहुला प्रेमा, ६८ सर्व वाहन वाहना, ६९ निशुम्भशुम्भहननी, ७० महिषासुरमर्दिनी ७१, मधुकैटभ-हन्त्री, ७२ चण्डमुण्ड विनाशिनी, ७३ सर्वासुर विनाशा, ७४ सर्वदानवघातिनी, ७५ सर्वशास्त्रमयी, ७६, सत्या, ७७ सर्वास्त्र-धारिणी ७८ अनेकशस्त्रहस्ता, ७९ अनेकास्त्रधारिणी, ८० कुमारी ८१ एक कन्या, ८२ कैशोरी, ८३, युवती, ८४ यति ८५, अप्रौढा ८६, प्रौढा, ८७ वृद्धमाता, ८८, बलप्रदा, ८९ महोदरी ९० मुक्तकेशी, ९१ घोररूपा, ९२ महाबला, ९३ अग्निज्वाला, ९४ रौद्रमुखी, ९५ कालरात्रि ९६ तपस्विनी, ९७ नारायणी, ९८- भद्रकाली ९९ विष्णुमाया, १०० जलोदरी, १०१ शिवदूती, १०२ कराली १०३ अनन्ता, १०४ परमेश्वरी १०५, कात्यायनी १०६ सावित्री, १०७ प्रत्यक्षा, १०८ ब्रह्मवादिनी ।

अपने शरीर से प्राण को धारण करके 'शाकों' को उत्पन्न करके लोकों का पालन करूंगी। इसलिए 'शाकम्भरी' कहलाऊँगी। दुर्गम दैत्य का वध करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा। भीमरूप ग्रहण करके हिमाचल के राक्षसों का वध करूँगी। इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी। अरुणासुर को मारने के लिए भ्रमर रूप धारण करूँगी इसलिए 'भ्रामरी' नाम होगा।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति में उमा, काली, कराली, कपिला, कौशिकी, चण्डी कात्यायनी, भद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये हैं। कालीदास ने पार्वती का, तीन नामों-भवानी, गौरी और चण्डी से सबोधित किया है। महाभारत में विन्ध्यवासिनी का नाम आया है। कुमार सम्भव में वे तपस्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं। अपर्णा, उमा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं। याज्ञवल्क्य ने अम्बिका का विनायक की माता स्वीकार किया है। भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है जहाँ पर शङ्कर के साथ सम्बन्धित है।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य साधुजनों की रक्षा और पापियों का नाश करना है। अत, देवी के युद्धशील रूप का नाम दुर्गा है। वही मूल-शक्ति है, जो विभिन्न रूप धारण करती है। युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्रोध में वह काली रूप धारण करती है, रहस्य में वह भवानी है और पुरुष में विष्णु उसी का रूप है। तैत्तरीय आरण्यक म सरस्वती से सम्बन्धित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा आदि नाम आये ह। मुण्डकोपनिषद् में सात जिह्वाओं वाली अग्नि का नामकरण काली-कराली के रूप में किया गया ह। यह नाम दुर्गा के चरित्रगत लक्षण हैं।

महिमा

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है —

दुर्गा के ३२ नामो का और भी वर्णन आता है, जो इस प्रकार हैं'—

१ दुर्गा दुर्गतिशमनी, ३ दुर्गापद्वि निवारिणी, ४ दुर्गमच्छेदिनी, ५ दुर्गसाधिनी, ६ दुर्गनाशिनी, ७ दुर्गतोद्धारिणी, ८ दुर्गनिहन्त्री, ९. दुर्गमापहा, १०, दुर्गमज्ञानदा, ११, दुर्गदैत्यलोकदवानला, १२ दुर्गमा, १३. दुगमालोका, १४ दुगम त्मस्वरूपिणी, १५ दुर्गमार्ग-प्रदा, १६ दुगमविद्या, १७ दुर्गमाश्रिता, १८ दुर्गम ज्ञान सस्थाना, १९ दुर्गमज्ञानभासिनी २० दुगमोहा, २१ दुगमगा, २२ दुर्गमा-थस्वरूपिणी, २३ दुर्गमासुराहन्त्री, २४ दुर्गमायुधधारिणी, २५ दुर्गमाङ्गी, २६ दुर्गमता, २७ दुर्गम्या, २८ दुर्गमेश्वरी, २९ दुर्गभीमा, ३० दुगभामा, ३१ दुर्गभ, ३२, दुर्दारिणी।

मार्कण्डेय पुराण मे दुर्गा के कुछ नाम इस प्रकार आये हैं,—

पावती जी के देहकोश से उत्पन्न होने के कारण वह शिवा-कौशिको' नाम से प्रसिद्ध हुई। देवी ने शिवजी का दौत्यकर्म मे स्वय नियुक्त किया, इम लिए उन्हे 'शिवदूती' कहा गया। नारायणि, माहे-श्वरी और कौमारी नाम भी आये है। मेत्रा, सरस्वती, भूति, बाभवी, तामसि आदि नाम से भी उन्हे सम्बोधित किया गया है। कात्यायनि नाम तो प्रसिद्ध है ही भद्रकाली औरचण्डिके रूप मे उनसे भय से रक्षा की प्रार्थना की गई है। देवी ने स्वय कहा है कि जब दैत्यो को भक्षण करते हुए मेरी दन्त-मुक्तावली कुसुम के समान लाल रग की हो जायेगी ता सर्वत्र 'रक्त-दन्तिका' प्रसिद्ध हूंगी। 'शताक्षी' नाम का भी स्वय स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि जव सौ वर्ष तक वर्षा न होने के कारण सूखा पडने लगेगी और मैं विना मनुष्य योनि के जन्म लूंगी तो उस समय मेरे सौ नेत्र होंगे जिनसे मुनियो को देखूंगी और मुनिगण मुझे 'शताक्षी' कह कर कीर्तन करेंगे।

कुछ और नामो के सम्बन्ध मे देवी कहती है —

अपने शरीर से प्राण को धारण करके 'शाकों' को उत्पन्न करके लोकों का पालन करूँगी। इसलिए 'शाकम्भरी' कहलाऊँगी। दुर्गम दैत्य का वध करने के कारण 'दुर्गा' नाम होगा। भीमरूप ग्रहण करके हिमाचल के राक्षसों का वध करूँगी। इसलिए 'भीमा' कहलाऊँगी। अरुणासुर को मारने के लिए भ्रमर रूप धारण करूँगी, इसलिए 'भ्रामरी' नाम होगा।

अर्जुन ने जो दुर्गा पूजन किया था, उस स्तुति मे उमा, काली, कराली, कपिला, कौशिकी, चण्डी कात्यायनी, भद्रकाली और महाकाली नाम प्रयुक्त किये गये है। कालीदास ने पार्वती को, तीन नामों—भवानी, गौरी और चण्डी से सबोधित किया है। महाभारत मे विन्ध्य-वासिनी का नाम आया है। कुमार सम्भव मे वे तपस्या और कल्याण की प्रतिमा दिखाई देती हैं। अपर्णा, उमा और पार्वती विशिष्ट गुणों को प्रदर्शित करते हैं। याज्ञवल्क्य ने अम्बिका को विनायक की माता स्वीकार किया है। भवानी नाम कुमार सम्भव में आया है जहाँ पर शङ्कर के साथ सम्बन्धित है।

दुर्गा नामकरण का उद्देश्य साधुजनों की रक्षा और पापियों का नाश करना है। अत, देवी के युद्धकालीन रूप का नाम दुर्गा है। वही मूल-शक्ति है, जो विभिन्न रूप धारण करती है। युद्ध के समय वह दुर्गा बनती है, क्रोध मे वह काली रूप धारण करती है, गृहस्थ मे वह भवानी है और पुरुष मे विष्णु उसी का रूप है। तैत्तरीय आरण्यक मे सरस्वती से सम्बधित है, जहाँ विद्या, महादेवी, सन्ध्या, वरदा आदि नाम आये हैं। मुण्डकोपनिषद् मे सात जिह्वाओं वाली अग्नि का नामकरण काली-कराली के रूप मे किया गया ह। यह नाम दुर्गा के चरित्रगत लक्षण हैं।

महिमा

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गा की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है —

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पाताऽत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावश नीत कस्त्वा स्तोतुमिहेश्वर ॥
विष्णु शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽनस्त्वां क. स्तोतु शक्तिमान भवेत् ? ॥

'विश्व की सृष्टि, रक्षा और नाश करने वाले नारायण हरि को भी जो निद्रा के अधीन लाने की क्षमता रखती है, त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु और शिव जिनकी इच्छा से शरीर धारण करते हैं, उन महान महिमा वाली की स्तुति कौन कर सकता है ?'

इसी प्रकार से ८१वे अध्याय में फिर कहा में,—

ज्ञानिनामपि चेतासि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥
तया विसृज्यते विश्व जगदेतच्चराचरम् ।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणा भवति मुक्तये ।
ससारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

अर्थात्–वह भगवती देवी ज्ञानियो के चित्तो को भी बलपूर्वक आकर्षित करके महामाया, मोह समुत्पन्न कर देती है। उसी के हाथ यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विश्व विसृष्ट होता है अर्थात् विश्व का सृजन होता है । वह देवी प्रसन्न हो जाती है तो मनुष्यो को वरदान देने वाली होती है और मुक्ति प्रदान कर देती है । वह परमाविद्या और मुक्ति की हेतु है। वह सनातनी है वह सब ईश्वरो की भी स्वामिनी ससार के बन्ध की हेतु भी है ।

भागवत मे दुर्गा पूजा का स्पष्ट आदेश है--

'दुर्गा विनायक व्यासम्'

अर्थात् "दुर्गा तथा गणेश और व्यास का भी नाम है ।"

स्वरूप

दुर्गा का स्वरूप शास्त्रो में इस प्रकार वर्णित है --

देवताओं के पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि मैं ब्रह्म हूं। मुझ से ही प्रकृति पुरुषात्मक विश्व की सृष्टि होती है। स्कन्द पुराण मे देवी को जगत का अधिष्ठाता स्वीकार किया गया है। भावोपनिषद् मे वह ब्रह्मरूपिणी कही गई है। अन्य उपनिषदों—त्रिपुर, तापनीय, सुन्दरी मे भी यही भाव व्यक्त किए गए हैं। देवी भागवत मे सगुण और निर्गुण दोनों रूप दिखाए गए हैं। कूर्म पुराण मे वह अनन्त, अच्युत, निर्विकार और निर्गुण ब्रह्म स्वीकार की गई है।

दुर्गा तत्व का विश्लेषण इस प्रकार किया है —

यथेद भ्राम्यते विश्व योगिभिर्या विचिन्त्यते।
यद्भासा भासते विश्व सैका दुर्गा जगन्मयी ॥

अर्थात् "जिसके द्वारा यह ससार चक्र चलता रहता है, योगिजन जिसका सदैव चिन्तन करते हैं, जिसके प्रकाश से यह समस्त जगत प्रकाशित हो रहा है, वही जगत्व्यापी दुर्गा तत्व है।"

नारद पाञ्चरात्र मे दुर्गा तत्व की व्याख्या करते हुए कहा गया है—

जानात्येका परा कान्त सैव दुर्गा तदात्मिका।
या परा परमा शक्तिर्महाविष्णुस्वरूपिणी ॥
यस्या विज्ञानमात्रेण पराणा परमात्मन।
मुहूर्त्ताद्देवदेवस्य प्राप्तिर्भवति नान्यथा ॥
एकेय प्रेमसर्वस्वस्वभावा श्री कुलेश्वरी।
अनया सुलभो ज्ञेय आदिदेवोऽखिलेश्वर ॥
अस्या आवरिका शक्तिमहामायाऽखिलेश्वरी।
यया मुग्ध जगत्सर्व सर्व देहाभिमानिन ॥

एक ही पराशक्ति कान्त भगवान कृष्ण से परिचित है क्योंकि यह उसी का रूप है। यही परा परमशक्ति ही दुर्गा है। यह महाविराट का रूप है। इसके ज्ञानमार्ग से परमात्मा की उपलब्धि होती है यह एक सी प्रेम

सर्वत्र के स्वभाव वाली श्री कुलेश्वरी है। इसके माध्यम से आदि देव अखिलेश्वर की प्राप्ति सुलभ हो जाती है। महामाया अखिलेश्वरी इसकी आधारिका शक्ति है। इस ने सर्व जगत और उसके समस्त देहाभिमानियो को मुग्ध कर रखा है।"

सप्तशती महिमा

दुर्गा की अपूर्व महिमा का वर्णन मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत ७३ से ८५ अध्याय मे किया है। इसमे ७०० श्लोक हैं। इसलिए इसका 'दुर्गा सप्तशती' नाम पडा। यह कितने ही स्थानो मे थोडे बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस कथा को मनघडन्त कहकर बौद्धिक वर्ग मे इसकी उपेक्षा कर दी जाती। परन्तु यदि हम इसका गम्भीरता पूर्वक अनुशीलन करें और इसके पात्रो का प्रतीकात्मक अध्ययन करे तो प्रतीत होगा कि यह हर व्यक्ति के जीवन की अपनी कहानी है। हर व्यक्ति के जीवन में कभी ऐसे क्षण आते हैं जब चारो ओर से निराशाओ और विपत्तियो के बादल उमड रहे होते हैं परन्तु कुछ भी सूझ नही पडता। उस समय यह कथा एक अच्छे निर्देशक और पथ प्रदर्शक का काम करती है। इसीलिए कहा गया है कि दुर्गा दुःख व विपत्ति नाशिनी है। लाखो भक्त इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दुर्गा की आराधना करते हैं। हम कथा का वर्णन करके उसके बौद्धिक स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

सप्तशती कथा

कथा कुछ नाटकीय ढग से कही गई है। इसके लिए किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओ ने षडयन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोड कर वन मे चला जाना पडा। पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोशागार, नगर हाथी, घोडो मे लगा रहा और वह उनके विषय मे चिन्ता करता हुआ दुखी रहने लगा। वही उसकी भेट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदि ने समस्त धन अप-

हरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वनवासियों के साथ रहकर जीवन निर्वाह कर रहा था। अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा नहीं था और वह घर वालों के हानि-लाभ सुख दु:ख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उसी अरण्य में आश्रम बना कर रहने वाले मेधा ऋषि से अपनी दुदशा और मनोव्यथा के विषय मे प्रश्न किया। ऋषि ने उनको मोह जनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथ ही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे।

इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और ब्रह्मा जी को मारने के लिए दौडे। ब्रह्मा उनका सामना करने में असमर्थ थे, अत उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की। इससे सतुष्ट होकर देवी प्रकट हुई और उसने विष्णु को जगाकर मधु और कैटभ के कुकृत्य का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु उन असुरों से पाँच हजार वर्ष तक युद्ध करते रहे पर उनका विनाश न कर सके। तब महामाया ने उनको मोहित करके कहलवाया कि "हे विष्णु हम तुम्हारे साथ युद्ध करके सन्तुष्ट हुए हैं, हमसे कोई वर मागो।" विष्णु ने कहा 'तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं मागता हूँ।' वचन बद्ध होने से उन्हे वर देना पडा और तब विष्णु ने चक्र से उनका मस्तक काट लिया।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो महिष नाम के असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हरा कर देवलोक पर अधिकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देव-गण ब्रह्मा जी को साथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण मे गये और महिषासुर के अत्याचारों की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे बड़े

क्रोधित हुए और उनके मुखो से निकले हुए तेज से देवी का आविर्भाव हुआ। वह देवी जब युद्ध के लिए प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा-शब्द से तीनो लोक कापने लगे। उसे सुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौडा और दोनो पक्षो मे घोर सग्राम होने लगा। आरम्भ मे महिषासुर के चिक्षुर, चामर, उदग्र, महाहनु, असिलोमा, वाष्कल और विडालक्ष सेनापतियो से सामना हुआ और एक एक करके वे सब मारे गये। फिर दुर्धक और दुर्मुख आदि महिषासुर के पराक्रमी सहयोगी रणभूमि मे उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियो को इस तरह नष्ट होता देख कर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्-भुत साधनो से भयङ्कर सग्राम करने लगा। वह कभी महिष, कभी सिंह और कभी हाथी का रूप धारण करके लडता था। कभी भूमि पर और कभी आकाश में जाकर शस्त्र वर्षा करता था। उसके भयङ्कर सग्राम से तीनो लोक क्षुब्ध हो गये। तब देवी अपने सिंह से उतर कर महिषासुर के ऊपर कूद पडी और उसे पैर से दबा कर तलवार से उसका मस्तक काट डाला। उसका वध होते ही सर्वत्र हर्ष की लहर दौड गई और समस्त देवता देवी की जय-जयकार करने लगे। इस अव-सर पर देवगणो ने देवी की जो स्तुति की, वह बडी अर्थपूर्ण है। इसमे कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का समस्त विश्व मे विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु महेश भी उसके रहस्य को ज्ञात नही कर सकते। वही जगत् का कारण, अव्याकृता प्रकृति, देवताओ, पितरो की स्वाहा और स्वधा तथा मोक्षाभिलाषियो को मोक्ष प्रदान करने वाली परा-विद्या है। देवी ही तीनो वेदो की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली, समस्त शास्त्रो का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती, व सकट से उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय में निवास करने वाली

लक्ष्मी और शिव के सिर पर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी बार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने देवताओं को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षा के लिए असुरो से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेज कर अपना प्रणय सदेश कहलवाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि "जो मुझे युद्ध मे जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा।" इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन को एक बडी सेना के साथ देवी को पकड कर ले आने का आदेश दिया। इस आसुरी सेना के साथ देवी का विकट सग्राम हुआ और अन्त मे सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मुण्ड नामक महावीर असुर लडने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे काली का, नाम चामुण्डा पड गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि मे आया। इसमे यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती थी उतनेही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाश असम्भव प्रतीत होता था। तब देवी ने काली से कहा कि जब मैं रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो तुम उसके रक्त को पी जाना, एक भी बूँद को पृथ्वी पर मत आने देना। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महा असुर का वध किया जा सका।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वय शुम्भ और निशुम्भ सपूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहले निशुम्भ का देवी के साथ घोर सग्राम हुआ और वह मारा गया। फिर शुम्भ सामने आया और उसने देवी की सहायक सप्तमातृका शक्तियो ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री की ओर सकेत करके कहा "तुम

दूसरो का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूँठमूँठ अभिमान करती हो। इस पर देवी ने माताओं को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि "ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ है जो मेरी इच्छा से प्रकट होती रहती हैं। अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।' इस के पश्चात् असुर सेना से देवी का सब से बड़ा संग्राम हुआ और शुंभ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरो का पूर्णतया वध कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओ ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की, उसमे उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओ ने कहा—

महामाया ही विपत्ति मे पड़े जनो का कष्ट दूर करती है। वही जगत् की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विचार और समस्त देवी शक्तियाँ उन्ही के रूप है। जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार उनकी इच्छा से होती है।"

स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने देवताओ को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि" पृथ्वी पर जब-जब असुरो का उत्पात बढेगा मैं विभिन्न रूपो में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।"

'देवी सप्तशती' का यह उपाख्यान 'मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश है और नवरात्रियो के अवसर पर लाखो भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथा के रूप में निस्सन्देह यह रचना बडी प्रभावशाली और रोचक है। इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षाप्रद है।

कथा का आधिभौतिक अर्थ—

आधिभौतिक रूप मे तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि संसार में दैवी शक्तियों के साथ आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा संघर्ष

सदैव होता है। असुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमण-कारी और धूर्त होते हैं और इस कारण प्राय आरम्भ मे देव शक्तियो को दबा लेते हैं, उनको पीडित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने से देव-गण सावधान होते हैं, अपनी शक्तयो को एकत्रित और सगठित करते हैं तब वे असुरो के लिए अजेय बन जाते है। असुरो का सगठन, अहङ्कार स्वार्थपरता दूसरो के उत्पीडन की भावना पर आधारित होता है जबकि देवताओ (सज्जनो) के सगठन मे त्याग, तपस्या, परोपकार, विश्व-कल्याण जैसी उच्च भावनाएँ भी निहित रहती हैं। इसलिए सघर्ष मे असुरगण चाहे जैसी माया, छल-बल से काम ले, अन्त मे उन्हे परास्त होना ही पडता है।

कथा का आधिदैविक अर्थ—

आधिदैविक दृष्टि से 'देवी सप्तशती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास के आरम्भिक परिवर्तनो से है। जैसा हमे मालुम है हमारी जानी हुई चराचर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवो की उत्पति और वृद्धि हो सकी है। पर सृष्टि के आरम्भ मे जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब बहुत समय तक तम का आवरण इसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने मे बाधक होती है, उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता ऋषियो ने 'असुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण तत्व या गति तत्व या गति-तत्व भी देव-भाव का सूचक है, क्योंकि उसी मे प्राणी-जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्य-शील नही होती तब तक कि तम के आवरण युक्त अवस्था को वृत्र अथवा महिषासुर का आधिपत्य कहा जाता है। उस समय तक सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर तेज सर्वत्र व्याप्त होकर सृष्टि सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते हैं तो वही वृत्र या महिष का

वध हो जाता है। यह कार्य देव भाव की शक्ति का सग्रह होने से ही होता है, इसलिये उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि विकास और रचना के परिवर्तन करोडो वर्षो मे होते हैं। अतएव 'देवासुर सग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदो में स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारो ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा मे लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान ने देवासुर सग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्राण से है सूर्य मे जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नही है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य मण्डल के भीतर वे प्रवेश नही कर पाते। केन्द्र पर देवताओ का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नही पहुँच पाये। इसीलिये 'शतपथ ब्राह्मण' मे इन्द्र के देवासुर सग्राम को बनावटी कहा है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न
तेऽमित्रोमघवन् कश्चनास्ति,
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहु-
र्नाद्य शत्रु ननु पुरायुयुत्सु ॥

अर्थात्—'हे इन्द्र! तुम कभी लडे नही, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धो का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा शत्रु है और न पहले तुमसे लडने वाला कोई था।"

वेदो में इन्द्र और वृत्र के युद्धो का विशद वर्णन है। वृत्र के मारने से इन्द्र 'असपत्न' (बिना शत्रु के) हो गया। वही भाषा मार्कण्डेय पुराण में महिषासुर के लिये प्रयुक्त की गई है—'इन्द्रोऽभून्महिषासुर' (७५-२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वय इन्द्र बन बैठा। पुन इन्द्र (सूर्य मण्डल का अधिष्ठातृ देवता)

देव भाव की वृद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है, वही वृत्र या महिष है। सृष्टि काल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य भाव आने के लिये समय लगा होगा। सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा। अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए तब वही महिष वध हुआ।"

कथा के आध्यात्मिक अर्थ—

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर होने वाली सद् और असद् वृत्तियों के संघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिये अनुचित ढंगों का अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी यह धारणा होती है कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, वही सार है, क्योंकि देहत्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो? इस प्रकार के निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थ परता के भावों को भड़काते हैं जिससे वह अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है जिससे मनुष्य के अन्तर के सद्विचार क्षीण हो जाते हैं और वह समाज या संसार के लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रु का रूप धारण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थान्धता के विचारों का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्वृत्तियों को दबा कर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित कर देता है। इस दूषित अहंभाव से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है। उसके लिए समस्त देव

शक्तियों—श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को जाग्रत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पड़ता है। तब वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारों की सेना का संहार करती है। अन्त में दूषित अहंभाव विभिन्न रूपों में उसके सामने आता है पर सद्विचारों की पैनी तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आचार्य बद्री नाथ शुक्ल ने कथा का आध्यात्मिक स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है—

'समस्त कार्य प्रपञ्च के परम कारण में लय होने का नाम है जगत् का एकार्णवीभाव। विष्णु शब्द का अर्थ है व्यापक चैतन्य। शेष शब्द का अर्थ है विनश्वर श्रेणी का होते हुए भी एवं महाविनाश की सामग्री का सन्निपात होने पर भी बच जाने वाला पदार्थ, वह है जगत् का बीजभूत कर्म तथा ज्ञान जनित जीव का संस्कार। उस जगद्बीज संस्कार-रूप शेषशय्या पर व्यापक चैतन्य रूप विष्णु का निष्क्रिय अर्थात् जगत् के व्यापार से हीन ही अवस्थित रहने का नाम है विष्णु की निद्रा। व्यापक चैतन्याकाश ही विष्णु-कर्ण है। चैतन्य का त्रिगुणात्मक अविद्या रूप आवरण ही विष्णु-कर्ण का मल है। इस मल से उद्भूत होने वाला अहम्बोध और बहुभवन की इच्छा ही मधु, कैटभ नाम के असुर हैं। इनके द्वारा मन को समारोन्मुख बनाने का उपक्रम ही ब्रह्मा को मारने के लिये मधु, कैटभ का उद्यत होना है। इस संकट की स्थिति में मन रूप ब्रह्मा चिन्मयी महामाया को यदि पुकार करता है तो वे प्रसन्न हो चैतन्यात्मक विष्णु को आवरण रूप निद्रा को भंग कर देती है। फिर अनावृत चैतन्य रूप प्रबुद्ध विष्णु अहंबोध तथा बहुभवनाभिलाष-रूप मधु, कैटभ का वध करते हैं और तब मन का मार्ग निष्कण्टक हो जाता है। वह समारोन्मुखता को त्याग अध्यात्म के उन्मुख हो अपनी सफल यात्रा में समर्थ होता है।''

देवी-चरित्र की बौद्धिक व्याख्या—

इसकी व्याख्या और ढग से भी की जा सकती है । मधु और कैटभ राग और द्वेष के प्रतीक हैं । यह निन्द्रित अवस्था मे पडे विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न होते हैं । जीव को ही विष्णु समझना चाहिए और जिस शेष पर वह सोए हैं, वह उस जीव के शुभाशुभ कर्म हैं । जब जीव को विवेक नही होता तो वह जगत और उसकी वस्तुओ मे आसक्त हो जाता है । इसी मोह निद्रा को विष्णु का शयन और निद्रा की सज्ञा दी है । मधु और कैटभ ब्रह्मा को मारने के लिए दौडते हैं । ब्रह्मा मन का द्योतक है । राग और द्वेष मन को दूषित करने का प्रयत्न करते हैं । ब्रह्मा भगवती की शरण जाते है तो वह विष्णु को निद्रा से उठाते है और विष्णु दैत्यो से युद्ध करते हैं और उन्हे परास्त करते हैं । देवी बुद्धि का रूप है । मन यदि बुद्धि का सहारा ले तो जीव को मोह-निद्रा से जगा सकता है । तब जीवन अकल्याणकारी आसुरी शक्तियो से सघर्ष करके उनका दमन कर सकता है । बुद्धि मे विवेक जाग्रत होता है । विवेक के सामने राग द्वेष रूपी असुर ठहर नही सकते । हर जीव पर मधु-कैटभ का आक्रमण होता है । कथा कहती है कि हमे इनका सामना करने के लिये दुर्गा—बुद्धि का सहारा लेना होगा अन्यथा उनसे प्रभावित होकर हम इन्ही का रूप हो जाएँगे और फिर दैत्य सज्ञा से उठकर देवत्व का विकास एक विकट समस्या हो जायगी । अत मधु-कैटभ के वध के लिए दुर्गा की आवश्यम्भावी है ।

सप्तशती के ५ से १० अध्याय तक शुम्भ और निशुम्भ से देवी के सघर्ष और परिणाम स्वरूप इन असुरो के वध का वर्णन है । इस प्रतीकात्मक कथा का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

शुम्भ अहकार का और निशुम्भ अभिमान का द्योतक है । सासारिक वैभव और सम्मान से अहकार की उत्पत्ति होती है । जब अहकार का साम्राज्य होता है तो बुद्धि पर अन्धकार छा जाता है ।

वह वास्तविकता को भूल जाता है, शारीरिक शक्तियो को ही सर्वस्व मानने लगता है। निरन्तर नाश होना ही जिसका स्वभाव है, जिस तामसिक बुद्धि के आश्रित अहकार का पोषण होता है, उसी के सहयोग से ममत्वाभिमान का विकास होता है। तभी यह दोनो भाई कहे गये हैं। आत्म परायण बुद्धि की प्रतीक देवी है। उसके क्षेत्र मे शुम्भ और निशुम्भ रूपी अहकार और ममकार का पनपना सम्भव नही है। यह दोनो आध्यात्मिक रोग बुद्धि को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। वह कीटाणु रूपी अपनी सेना भेजते है। देवी उनका विनाश करती है। तब धूम्रलोचन को आदेश मिलता है कि वह देवी को परास्त करके पकड लावे। यह धूम्रलोचन लोभ है। विवेक रूप लोचन पर यह धुएँ का-सा काम करता है इसलिए इसकी सज्ञा धूम्रलोचन है। लोभ हर प्रकार के अनैतिक उपायो से भौतिक जीवन मे विकाश का प्रयत्न करता है। अत यह सात्विक बुद्धि पर घात-प्रतिघात करता है। विरले वीर ही इसके अचूक निशाने से बच पाते हैं। यह मानव को कुपथगामी बनाता है। जो इसके आधिपत्य मे आ जाता है, उसका जीवन, सुख और शान्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु जिसके पास विवेक की शक्ति है, उसका धूम्रलोचन कुछ नही बिगाड सकता। इस धूम्रलोचन का आक्रमण हर मानव पर होता है और अधिकाश इसके चगुल मे फँसे हुए है। आत्मकल्याण के पथ का अधिकारी वही हो सकता है जो इसके आक्रमण को निष्फल करके अपने बुद्धि तत्व को पवित्र रखता है।

धूम्रलोचन के वध से शान्ति नही मिलती। अभी अन्य सेनापतियो से भी जूझना पडेगा। चण्ड और मुण्ड भी शक्तिशाली शत्रु हैं। इनका आशय काम और क्रोध से है। जिस तरह से एक डायन बच्चो का खून पीती है, उसी तरह से यह काम हमारे जीवन-रस का प्यासा रहता है और हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक शक्तियो को खोखला बना देता है। जहाँ अहङ्कार है,वहाँ क्रोध का होना स्वाभाविक है। क्रोध से नसें तमतमाती हैं। यह शक्ति के ह्रास का चिन्ह है। क्रोध

मे अन्धा होकर मानव सभी प्रकार के अनुचित कार्य कर बैठता है। यह प्रबल मानसिक शत्रु माने जाते हैं। इनकी पराजय के बिना आत्म-विकास मे बाधा पडती है। इनको नियन्त्रण मे रखना आवश्यक है। जब यह देवी से युद्ध करते हैं तो वह अपनी चमकती तलवार से इनके सर काट लेती है। आत्मपरायण बुद्धि तीक्ष्ण तलवार का रूप है जो अपने राज्य मे घुसे आसुरी तत्वो का सर काटती रहती है।

चण्ड मुण्ड के बाद देवी का युद्ध रक्त-बीज के साथ हुआ। इसमे देवी को बडी सावधानी बरतनी पडी क्योंकि रक्त बीज का यह गुण था कि उसकी जितनी बूँदे पृथ्वी पर गिरेगी, तत्क्षण उतने ही राक्षस उत्पन्न हो जाएँगे। इसलिए यह अत्यन्त दुर्जेय शत्रु था। इस कार्य के लिये देवी ने काली की सहायता ली। देवी के शस्त्र प्रहार करने पर जो रक्त धारा बहे उसे उसी समय पी जाने का कार्य काली को दिया गया ताकि एक बूँद रक्त भूमि पर न गिरे।

रक्त बीज से अभिप्राय विषय लोलुपता से है। विषयो का जितना उपयोग किया जाता है तभी ही उनके प्रति लिप्सा बढती ही रहती है। यही एक बूंद गिरने से एक राक्षस की उत्पत्ति का अर्थ है। रक्त-बीज का वध एक गभीर समस्या है क्योकि शरीर का अस्तित्व ही इसी के सहारे स्थिर रह पाता है। इन्द्रियाँ भगवान ने उपभोग के लिए बनाई हैं, इनके उपयोग को बद नही किया जा सकता। फिर तो जीवन सकट मे आ जाएगा और आत्म कल्याण की सभी योजनाए ध्वस्त हो जाएगी। इसके लिए तो ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे विषयो का उपभोग भी होता रहे और लोलुपता न बढे। इस सिद्धान्त को अध्यात्म में भोगमें त्याग की सज्ञा दी गई है। भोग करना तो चाहिए परन्तु त्याग भावना मे। भोग के प्रति आसक्ति बुद्धि है। भोग तो आवश्यक है इसके लिए काली तत्व का विकास करना होगा। काली विषय मे असौन्दर्य, हीनत्व और अप्रियत्वके प्रतीक हैं। वह विषयासक्ति को पीती रहती है। इसी योजना से नित्य व्यवहार मे भोग वाले रक्त बीज का वध भी सभव है।

रक्तबीज का वध होने पर निशुम्भ सामने आता है। निशुम्भ ममता की मूर्ति हैं। यदि ममता को वृक्ष माने तो 'मैं" को उसका अ कुर और 'मेरे' को उसका तना मानना होगा। धन सम्पत्ति पत्ते, पुत्रादि पल्लव, पुण्य पाप फूल, सुख दु ख फल, इच्छाएँ-भ्रमर, चित्त-भूमि है। ममता के वशीभूत होकर अनुचित कार्यों क करने को प्रेरणा मिलती है। ममता से आसक्ति बढती है और आसक्ति पापो की जड है। पाप पतन की राहे बनाते हैं। अत, पतन की राहो से बचने के लिए आवश्यक है कि ममत्व स बचे। इससे दूर रहना ही निशुम्भ वध है।

निशुम्भ का भी वध होने पर अन्त मे शुम्भ स्वय युद्ध-स्थल पर उतरता है और विविध रूपो म उपस्थित होकर देवी पर आक्रमण करता है परन्तु आत्मपरायण बुद्धि पर अहकार का क्या प्रभाव पड सकता है ? क्योंकि उसका आलम्बन विकृति है। शुम्भ शरीर भावना पर खडा है, वही उसका वाहन है, दुर्गु ण और दुर्विचार उसके अस्त्र-शस्त्र है। देवी का—आत्म परायण बुद्धि का आलम्बन—वाहन सिंह है—पशुपति है, पशुओ का राजा है—परमात्मा है। उसके अस्त्र-शस्त्र—सद्-गुण और सद्विचार है। यह देवासुर सग्राम हर युग मे, हर काल मे और हर मानव क मन में होता रहता है। असुर शक्तिशाली शत्रु हैं परन्तु अन्त मे देवत्व की ही विजय होती है। शर्त यह है कि बुद्धि मे आत्म-परायणता लाई जाए। यही देवी सप्तशती की कथा का साराश है

भ्रान्तियो का निवारण—

दुर्गा के अनेक विशेषण हैं। उनमे एक दिगम्बरा भी है। ईश्वर सर्वव्यापक है, अत सभी दिशाओ मे उनका निवास है। यह दिशाएँ उनके वस्त्र कहे जाते हैं। दुर्गा मे भी अभिमान का अभाव है जो सप्तशती की कथा से स्पष्ट है। अहङ्कार रूपी शुम्भ ने जब सर उठाया, उन्होने उसका सर काट दिया। अत' दुर्गा मे शक्ति तत्व होने मे क्या सन्देह हो सकता है ? जड और चेतन सभी मे इसका निवास है। कोई दिशा ऐसी

नही है जिधर इनका प्रभाव न हो। दिशाओ को वस्त्रो के अलङ्कारिक रूप में वर्णन करने के कारण दुर्गा को दिगम्बर कहा जाता है।

दुर्गा के सम्बन्ध मे अनेको भ्रान्तियां फैली हुई हैं। उनमे एक यह भी है कि वह युद्ध-क्षेत्र मे मद्य का पान करती थी। ऐसा मार्कण्डेय पुराण मे उल्लेख है। यहां मद्य से अभिप्राय अहङ्कार से है। अभिमान-शून्य होकर ही उन्होने असुरो से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। योग वशिष्ठ की कथा मे एक शक्तिशाली दैत्य का वर्णन हैं जो देवताओ के लिए अजेय होगया था उसकी यह विशेषता थी युद्ध करते समय उसे यह भान ही नही होता था, कि वह लड रहा है। ब्रह्मा ने देवताओ को को परामर्श दिया कि उसे यह अनुभव करा दो कि वह देवताओ से लड रहा है और उन्हें मार-काट रहा है तो उसके मन मे अभिमान जाग्रत होगा इसी से उसकी शक्ति का ह्रास होना शुरु होगा और देवताओ की विजय के चिन्ह दिखाई देने लगेंगे। देवताओ ने इसी उपाय को अपना कर असुरो को परास्त किया। अभिमान से शक्ति क्षीण होती है और इसका जितना अभाव होता है, उतना ही शक्ति का विकास होता है। शुम्भ रूपी अहङ्कार ने सर उठाया परन्तु वह युद्ध क्षेत्र में दुर्गा के समक्ष धराशायी होगए। दुर्गा के मद्यपान का अर्थ उनकी अभिमान-शून्यता ही है।

दुर्गा का निवास श्मशान कहा जाता है। जब शिव वहाँ रहते हैं तो उनकी पत्नी का वहाँ निवास स्वाभाविक है। यहाँ श्मशान से अभिप्राय प्रलयकाल से है, जब सारे ब्रह्माण्ड की यही दशा होती है, जहाँ चारो ओर जीवोके रुण्ड-मुण्ड ही दृष्टिगोचर होते हैं। प्रलय काल मे केवल शिव और पार्वती (दुर्गा) ही रह जाते हैं। ब्रह्माण्ड की इस स्थिति मे उनकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए ही उन्हे श्मशान वासी और रुण्ड-मुण्ड धारी कहा गया है।

उनके हाथो मे त्रिशूल त्रितापो को दूर करने की सूचना देता है।

दुर्गा कथा से अद्वैत तत्व का बोध होता है क्योंकि जब शुम्भ कहता है कि तुम तो अन्य देवियों के सहयोग से युद्ध कर रही हो तो देखते ही देखते दुर्गा के शरीर में सभी ब्रह्माणी, इन्द्राणी, वैष्णवी आदि देवियाँ समा गई। तब दुर्गा ने कहा—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।

"इस जगत में, मैं अकेली हूँ। मेरे अतिरिक्त और कोई दूसरा नहीं है।"

दुर्गा के चरित्र से यह प्रेरणा मिलती है कि पापी के पाप से घृणा करनी चाहिए न कि उसके व्यक्तित्व से। जब महिषासुर का वध हो चुका तो देवताओं ने कहा कि इसे तो आप वैसे भी भस्म कर सकती थी। इस पर शस्त्र क्यों चलाया? इसका उत्तर उन्हीं के शब्दों में यों है कि यदि यह बिना युद्ध करते मरते तो नरक में जाते। अब यह वीर गति को प्राप्त करके स्वर्ग जाएँगे। आपका उद्देश्य तो यह था कि इसके नाश से विश्व का कल्याण हो और साथ ही साथ इनका भी कल्याण हो।

शक्ति की प्रतिमा—

दुर्गा की उपासना में शक्ति की प्रधानता है। देवताओं की शक्ति से उनका जन्म हुआ है। महिषासुर का वध करके शक्ति का ही उन्होंने प्रदर्शन किया। वह शक्ति की प्रतिमा हैं। शक्ति उपार्जन के लिए ही दुर्गा की आराधना की जाती है। बल की तो वह प्रतीक मानी जाती हैं।

दुर्गा की नस-नस में शक्ति के खजाने हैं, उसका अङ्ग-अङ्ग शक्ति से फड़कता है। उसके रक्त में शक्ति उछलती है, उसके मुख पर शक्ति चमकती है, उसके शरीर पर शक्ति का लेप है। उसके प्राणों में शक्ति के बीजों के भण्डार हैं। उसका सारा संसार ही शक्तिमय है। उसकी रचना शक्ति से हुई। इसलिये उसका शक्ति-पुञ्ज बनना स्वाभाविक ही था। वह अपने शक्ति के सूक्ष्म भण्डारों में से जितना भी बाँटती रहती है, वह उतना ही बढ़ता रहता है।

दुर्गा की अलङ्कारिक रचना हमारे ऋषियों ने बुद्धिकौशल का श्रेष्ठ नमूना है, उनकी कल्पना शक्ति की महान कलाकृति है, जीवन के उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति करने के लिये साधन का संकेत किया है, भव रोग की रामबाण दवा का अविर्भाव कर दिया है, लौकिक या पारलौकिक अभिवृद्धि के शास्त्रों का निचोड़ एक प्रतिमा में गठित कर दिया है।

समार में जहां भी प्रगति के चिन्ह दिखाई देते हैं, वहां दुर्गा की छाप समझनी चाहिये क्योंकि दुर्गा अर्थात् शक्ति के प्रकाश हुये विना एक पग भी चलना असम्भव जान पड़ता है। आधुनिक विज्ञान के विकसित होने का श्रेय दुर्गा की बुद्धि शक्ति को ही है। यही कारण है कि भारत मे कोई ऐसा स्थान न होगा जहां दुर्गा की पूजा उपासना न होती हो। भक्तों का विश्वास है कि वह सिद्धि दाता है और उनकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है। विश्वास के आधार पर जब कभी उनकी इच्छा पूरी हो जाती है तो उनका विश्वास अडिग हो जाता है। इस माग का अवलम्बन केवल भ्रम मात्र है। दुर्गा तो शक्ति की प्रतिमा है। वह अपने सुख सौभाग्य के लिये शक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा मात्र देती है। उसकी पूजा करते हुए अपने अन्दर शक्ति के सञ्चार की भावना करनी चाहिये। जिस क्षेत्र में हम सिद्धि चाहते हैं, उसमे अपनी शक्तियों को बढाने का प्रयत्न करना चाहिये, उसके उपायों पर विचार करना चाहिये, उन विचारों को कार्यान्वित करने के आधारों को अपनाना चाहिये, उसमें एकाग्रता पूर्वक दिन रात एक करके तप परिश्रम करना चाहिए। तभी दुर्गा भवानी प्रसन्न होकर वरदान देती हैं। यह वरदान ही साधक की सफलता का कारण बनता है। दुर्गा की इस प्रकार से की गई उपासना ही मानव का उचित मार्गदर्शन करती है।

आठ भुजाएँ—आठ शक्तियों की प्रतीक

आठ भुजाएँ आठ महत्वपूर्ण शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती है।

इन शक्तियो के विकास के अभाव में मनुष्य की सांसारिक व पारलौकिक प्रगति रुकी रहती है । इसलिए जिसे अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति करनी हो, उसे दुर्गा के चित्र मे प्रदर्शित आठ भुजाओ के प्रतीक आठ बलो की वृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिये । यदि क्रियात्मक कदम न उठाकर हम सभी कुछ दुर्गा से मांगते रहेगे तो हमें निराशा ही होगी । वह आठ शक्तियो इस प्रकार हैं —

(१) स्वास्थ्य

हर क्षेत्र मे प्रगति का यही आधार है । इसको प्राप्त किये बिना उन्नति असम्भव है । स्वस्थ मनुष्य मे ही स्वस्थ मस्तिष्क होता है । अच्छे मस्तिष्क से ही कल्याणकारी योजनाओ का जन्म होता है, विचार व विवेक शक्ति का उदय होता है । सुख व शान्ति का उद्गम यही है । अस्वस्थ व्यक्ति तो परिवार व समाज पर एक बोझ होता है । स्वस्थ व्यक्ति हजारो के दु खो को दूर करने की क्षमता रखता है । परिवार का पालन-पोषण, धनोपार्जन, सामाजिक कार्यों मे योगदान तभी दिया जा सकता है जब मनुष्य शारीरिक व मानसिक दोनो दृष्टियो से स्वस्थ हो । स्वस्थता प्राप्त करने के लिए उसके मूल सिद्धान्तों पर ध्यान देकर उन्हे क्रियात्मक रूप से अपने जीवन मे व्यवहार मे लाना होगा । उनकी जानकारी तो हर व्यक्ति को है परन्तु बहुत कम लोग उन्हे अपना पाते है । रात्रि को जल्दी सोना और प्रात काल जल्दी उठना, शरीर को रगड-रगड कर स्नान करना तेल की मालिश करना, सूर्य स्नान, सूर्य नमस्कार आसन प्राणायाम, दण्ड बैठक, घूमना, दौडना आदि व्यायाम, जल्दी पचने वाले सात्विक आहार को ही ग्रहण करना, उसे इतना चबाना कि उसकी सारी लार ही बन जाये, विटामिन-युक्त फलो का सेवन, बीडी-सिगरेट, शराब, मास आदि व्यसनो का त्याग, अश्लील फिल्मो और साहित्य से बचना, वीर्य रक्षा, ईमानदारी से धनोपार्जन करना, मानसिक सन्तुलन बनाये रखना, चटारेपन, कृत्रिमता और आडम्बर से दूर रहना-

ये कुछ ऐसे सूत्र हैं, जिन्हें व्यवहार में लाने से ही एक स्वस्थ मनुष्य का ढाँचा बनता है। तभी दुर्गा की एक भुजा का अनुग्रह प्राप्त होता है।

२—विद्या

इसके दो पक्ष हैं। एक शिक्षा, दूसरी विद्या। शिक्षा में सभी प्रकार की सांसारिक जानकारी जैसे—भूगोल, खगोल, साहित्य चिकित्सा गणित, इतिहास, कला, सङ्गीत, शिल्प, विज्ञान राजनीति, न्याय, भाषा आदि आते हैं। विद्या का अर्थ जीवन निर्माण है। सत्य, प्रेम, दया, न्याय, सेवा, परमार्थ, कर्तव्य परायणता, ईमानदारी, संयम, पुण्य, त्याग आदि शुभ-वृत्तियां विद्या के अन्तर्गत आती हैं। शिक्षा सांसारिक जीवन के उत्कर्ष में सहायक होती है। विद्या आत्मिक उत्थान का सम्बल है। ज्ञान-वर्द्धन, जीविकोपार्जन के लिए उत्तम शिक्षा आवश्यक है, परन्तु विद्या की प्राप्ति के बिना मनुष्य में मनुष्यता के अनुरूप गुणों को ग्रहण करना असम्भव है। विद्या साधक के जीवन निर्माण की आधार शिला है। इस पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए तभी दुर्गा अपना दूसरा हाथ उठा कर प्रसन्न मुख से आशीर्वाद देती हैं।

३—धन

परिवार के सञ्चालन शिक्षा प्राप्ति, सामाजिक कार्यों में योगदान देने के लिये धन आवश्यक है। इसके बिना संसार का कोई भी कार्य भली प्रकार सम्पादन नहीं होता। परन्तु, परिश्रम और ईमानदारी से धन कमाना ही समाज में व्यवस्था बनाये रखने का आदर्श साधन है। इसलिए लोभवश होकर बेईमानी, ठगी, जन्त्र कतरी, धोखे, फरेबा, चालाकी, मिलावट आदि के माध्यम से धन कमाना कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे समाज में खिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जिस समाज में ऐसी प्रवृत्तियां उत्पन्न हो जाती हैं, वहाँ धन की वर्षा होते हुए भी दुःख, कलह, लड़ाई, झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष, चोरी, लूट, हत्या आदि के काण्ड सर्वत्र देखे जाते हैं। जो समाज धन को अपने शरीर की रक्षा का

साधन न मानकर सर्वस्व मानकर चलता है और उसके उपार्जन मे विचार, विवेक और सद्बुद्धि का उपयोग नही करता, वह समाज दिन दिन गिरता ही जाएगा। इसलिए दुर्गा का आदेश है कि धन को ईमानदारी से कमाओ। बेईमानी के एक अन्न के दाने को भी अपने घर मे प्रवेश मत होने दो। जो व्यक्ति एसे साधन अपन ते हैं, उनके घर का अन्न खाना छोड दो। सात्विक साधनो से धन कमाओ और उसका उत्तम कार्यो मे प्रयोग करना सीखो।

४—व्यवस्था

प्रत्येक कार्य की सफलता मे व्यवस्था का होना आवश्यक है। बडे-बडे कार्य अव्यवस्था के कारण असफल होते देखे गये है। सीमित साधनो से छोटे कार्य भी बडे हो जाते है। एक उत्तम व्यवस्थापक मे पाच गुणो का समावेश होना चाहिए। (अ) इसमे दूसरो पर प्रभाव डालने की क्षमता होनी चाहिए। (ब) उपयोगी व्यक्तियो को थपथपाते रहना और निरन्तर उनका सहयोग प्राप्त करते रहना। (स) समस्त कार्यो को योजना बद्ध करना। (य) कार्य प्रणाली मे नियमितता को उच्च स्थान देना। (ह) मार्ग की रुकावटो को दूर करते रहना। मीठा बोलना और अच्छा व्यवहार करना, दूसरो को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इसलिए लौकिक व पारलौकिक सभी कार्यो मे व्यवस्था की शक्ति का विकास व उपभोग करना चाहिए।

५—सगठन

शास्त्रो ने "सघ शक्ति कलीयुगे" के सूत्र का उद्घोष किया है। सृष्टि की रचना इसी शक्ति पर आधारित है। शरीर का सञ्चालन इसी के सहारे चल रहा है। परिवार की सुख, शान्ति इसी पर अवलम्बित रहती है। समाज का विकास इसी पर निर्भर करता है। राष्ट्र की एकता का सम्बल यही है। यह समस्त प्रकार की शक्तियो के विकास का मूलाधार है। इसी लिये धार्मिक सामाजिक और राष्ट्रीय सङ्गठन बनाने चाहिये तभी दुर्गा की प्रसन्नता प्राप्त होगी।

६—यश

त्याग, सेवा, परमार्थ, निःस्वार्थता से समाज कल्याण की योजनाओं मे योग देना ही यश प्राप्त करने का उपाय है। यह शरीर तो अस्थाई है, परन्तु आदर्श कार्यों की स्मृति समाज के हृदय पर युगो तक बनी रहती है। इसलिये दुर्गा अपने उपासक को सावधान करती है कि उसे कोई ऐसा कार्य नही करना चाहिये जिससे अपयश के कलङ्क का टीका उसके माथे पर लग जाए जो धोए न धुले।

७—शौर्य

शौर्य का अर्थ है साहस, बहादुरी निर्भीकता। कायर व डरपोक होना निर्बलता के चिन्ह हैं। ऐसे व्यक्ति हर समय भाग्य का रोना रोते रहते हैं। थोडी सी कठिनाई व विपत्ति आने पर उनका दम निकलने लगता है। साहसी व्यक्ति निरन्तर आगे बढते रहते है। विपत्तियो के पहाड उनके कन्धो पर रख दिये जाते हैं, परन्तु वह हँसते-हँसते उन्हे इधर-उधर फेंकते हुए इठलाते हुए आगे बढते जाते हैं साहस पहाडो को चीरता है, समुद्रो को पार करता है। आकाश की गहराइयो को नापता है। साहस के बिना सफलता असम्भव है।

८—सत्य

सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है। सत्य को अपनाना ईश्वर की समस्त शक्तियो का आह्वान है। सत्य मे विचलित होना ईश्वर का खुला विरोध है। सत्य का पक्ष लेना ईश्वर का सहयोग प्राप्त करना है। सत्य विचार व सत्य व्यवहार शक्ति के खजानो के खुले द्वार हैं। जिनके शरीर पर यह आवरण चढे हैं, वह निश्चय रूप से शक्तिवान हैं। लौकिक व पारलौकिक सिद्धियाँ बिना बुलाये उनके पास आती हैं। यह समाज की सभी शक्तियों का सिरमौर है। दुर्गा की प्रेरणा है कि मेरे उपासक की नस-नस मे इस शक्ति की ध्वनि सुनाई देती हो उसके रक्त के प्रवाह मे इसी का जाप होता हो, उसकी मास पेशियो मे यही शब्द खुदा हो, उसके मस्तिष्क के ज्ञान तन्तु इसी से निर्मित हों, उसके पग पग मे इसी की छाप पृथ्वी पर पडती हो।

जो साधक उपरोक्त आठ शक्तियो को विकसित करने का प्रयत्न करता है, दुर्गा की आठ भुजाये एक साथ उठ कर प्रसन्न मुद्रा मे उसे सफलता का आशीर्वाद देती हैं ।

अधिकार

दुर्गा ने एक महान सांस्कृतिक यज्ञ का सम्पादन किया है । दुर्गा विश्व माता है" । वे किसी जाति विशेष तक सीमित नही हैं । उनकी पूजा पर कोई प्रतिबन्ध नही है । सभी जातियो और वर्गो को इसका अधिकार है । हरिवश पुराण के अनुसार जगली जातियां भी दुर्गा-पासना करती थी महाभारत मे भी विभिन्न जातियो द्वारा दुर्गा पूजा का वर्णन है, हेमाद्रि मे भी ऐसा ही उल्लेख है । दुर्गा के द्वार सब के लिए खुले हुए हैं तभी तो व्यापक रूप मे फैलने मे सफल हुई । उनके व्यापक विस्तार के सारे राष्ट्र को एक सूत्र मे बाध दिया । अन्य अनेको विषयो मे मतभेद हो सकते हैं परन्तु इस सम्बन्ध मे सारा राष्ट्र एक मत था । दुर्गा महानतम की यह सहायक सफलता कही जा सकती है ।

०००

दुर्गा-पूजन विधि

मंत्र—

इसका मन्त्रोद्धार इस तरह से है—

मायाद्रिकर्णबिन्दुढ्यो भूयोऽसो सर्गवान भवेत् ।
पञ्चान्तक प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासन ।
तारादि हृदयान्ताऽय मन्त्रो वस्वक्षरात्मक ।।

माया (ह्रीं) + अद्रि (द) + कर्ण (उ) + बिन्दु (अनुस्वार) = दुं, पुन यह वर्ण विसर्ग युक्त (द) पञ्चान्तक (ग), प्रतिष्ठा (आ), मारुत (य), भौतिक (ए) = दुर्गायै और इनके आदि मे तार (ॐ) तथा अन्त मे हृदय (नम.) अर्थात् 'ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नम" यह आठ अक्षरों वाला दुर्गा का मत्र है ।

पद्धति—

ॐ शृणु पार्वति ! वक्ष्यामि पद्धति गद्यरूपिणीम् ।
यस्या श्रवणमात्रेण कोटियज्ञफल लभेत् ।।

ॐ ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय बद्धपद्मासन स्वशिरस्थसहस्राधोमुखकमलकर्णिकान्तर्गत निजगुरु श्वेतवर्ण श्वेतालंकारलकृत द्विभुज स्वशक्त्या श्वेताम्बरभूषितया वामेऽङ्के सहित ध्यात्वा मान सैरुपचारै सम्पूज्य दण्डवत् प्रणमेत् ।

अखण्डमण्डलाकर व्याप्त येन चराचरम् ।
तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ।।

इति ध्यात्वा तदाज्ञा गृहीत्वा बहिरागत्य मलमूत्रादि सन्त्यज्य वर्णोक्त शौचमादाय नद्यादौ गत्वा स्वकूर्च द्वादशाङ्गुलम् ॐ क्लीं कामदेवाय सर्वजनमनोहराय नम ।। इति दन्तान् विशोध्य चाक्रिकबीजेन गण्डूषषट्क विधाय प्रणवेन मुख त्रि प्रोक्ष्य । ॐ ह्रीं मणिधरि वज्रिणि शिखापरिसरे रक्ष २ हू फट् स्वाहेति शिखा बद्ध्वा तत्त्वत्रयेणाचम्य मूलेन प्राणायाम विधाय मलापकर्षण स्नान कुर्यात् । ततो मूलेन मृदमानीय जल प्रोक्षयेत् । मन्त्रमृदा सूर्यमण्डल विचिन्त्य ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधि कुरु ।।

इति तीर्थान्यावाह्य ।। जले यन्त्र विभाव्य सनीलकण्ठां दुर्गामावाहयेत् । तत्र षडङ्ग विधाय देवीं सशिवां ध्यात्वा मूल यथाशक्ति जप्त्वा उन्मज्जेत् ।। तत्र कुम्भमुद्रा बद्ध्वा स्वमूर्ध्नि देवदेव्यौ जलेन स्नापयित्वा ।।

ॐ ह्रां ह्रीं स मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय एष तेऽर्घो नम इति सूर्ययार्घत्रय दत्त्वा वास परिधाय तत्त्वत्रयेणाचम्य त्रि प्राणायाम विधाय पूर्वसन्ध्या कृत्वा षडङ्ग कृत्वा चुलुकेन जलमादाय तत्त्वमुद्रायाच्छाद्य । ह य व र ल इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरस्तद्गलितोदकबिन्दुभि सप्तधा स्वशिरस्यभ्युक्ष्य । मध्यहस्ते शेषमुदक धृत्वा इडयान्तर्नीत्वा देहान्त.पाप प्रक्षाल्य पिङ्गलया विरेच्य । पुर कल्पितवज्रशिलाया वामे फडिति निक्षिपेत् । इत्यघमर्षण विधाय पूर्ववदाचम्य जले यन्त्र ध्यात्वा मूल यथाशक्ति जप्त्वा । मूलविद्यान्ते सायुधे सवाहने सपरिच्छदे श्रीनीलकण्ठसहिते मातदुर्गे तृप्यताम् इत्यष्टवार सन्तर्प्य । नीलकण्ठ त्रि सन्तर्प्य ।

एकैकाञ्जलिना परिवारदेवता सन्तर्प्य ।। देवदेवी हृदि ध्यात्वा जले चतुरस्र विधाय । तत्रेशानादिक्रमेण गुरुपंक्ति सन्तर्प्य देवी गायत्री जपेत् ।। ॐ ह्री दु·दुर्गायै विद्महे अष्टाक्षरायै धीमहि तन्नो चण्डि प्रचोदयात् । इति यथाशक्ति प्रजप्य गायत्र्यानया देवदेव्योरर्घत्रय दत्त्वा । जप समर्प्य यागमण्डपमागच्छेत् । इति विधि· ।

ततो गृहमागत्य पादौ प्रक्षाल्य द्वारदेवी, । ॐ गां गु गणेशाय नम पूर्व । ॐ क्षा क्षी ह्रीं वटुकाय नम दक्षिणे । ॐ क्षा क्षे क्षेत्रपालय नम पश्चिमे। ओ या यू योगिनीभ्यो नम उत्तरे गंगायै नमो देहल्याम् । य यमुनायै नम अध ।। स सरस्वत्यै नम मध्ये इति सम्पूज्य । गृहान्त प्रविश्य । यथोपचितमासन शोधयेत् ॐ आ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषि सुतल छन्द, कूर्मो देवता आसनशोधने विनियोग ॐ पृ पृथिव्यै नम ।

महि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्व विष्णुना धृता ।
त्व च धारय मा देवि ! पवित्र कुरु चासनम् ।
ॐ आ शक्तये नम मूलप्रकृत्यै नम । अ अनन्ताय नम ।
पद्माय नम पद्मनाभय नम, । तत्रोपविश्य तालत्रय कुर्यात् ।
अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि सस्थिता ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ।।

इति तालत्रय दत्त्वा वामपार्ष्णिघातत्रयेण विघ्नानुत्सार्य
नाराचमुद्रा प्रदश्य गुरु प्रणमेत् ।
अखण्डमण्डलाकार व्याप्त येन चराचरम् ।
तत्पद दर्शित येन तस्मै श्रीगुरवे नम ।।

ॐ स्वगुरुभ्यो नम । परमगुरुभ्यो नम परापरगुरुभ्यो नम । परमेष्ठिगुरुभ्यो नम । इति गन्धाक्षतैरभ्यर्च्य न्यासपूर्व सङ्कल्प कुर्यात् ।

अस्य श्रीदुर्गामन्त्रस्य महेश्वर ऋषि, अनुष्टुपछन्द श्रीदुर्गा देवता दु बीज ह्री शक्ति ओ कीलक नम इति दिग्बन्ध धर्मार्थ-काममोक्षार्थे दुर्गापूजाया विनियोग, ।

न्यास

अथान्तरमातृका न्यास मन्त्रस्य ब्रह्मऋषि -
गायत्रीछन्द, मातृकासरसरस्वतीदेवता हलो बीजानि -
स्वरा शक्तय क्ष कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोग ।
इति जल भूमौ निक्षिप्य प्राणायाम कुर्यात् । तथा च इत्या ॥

अ इ उ ऋ ए ऐ ओ औ अ अ एभि स्वरै पूरयेत् ।
पुन कु चु टु तु पु इति पचवर्गकेन कु भयेत् ॥
पुन य र ल व श ष स ह एभिरष्टवर्णे रेचयेत् ।
इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादि न्यास कुर्यात् । तथा च ॥

ॐ अ ब्रह्मणोऋषये नम आशिरसि ।
ॐ इ गायत्री छन्दसे नम ई मुखे ॥
ॐ उँ सरस्वती देवतायै नम ऊ हृदये ॥
ॐ ए हलभ्यो बीजेभ्यो नम ऐ गुह्ये ।
ॐ ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम औ पादयो ॥
ॐ अ क्ष कीलकाय नम अ सर्वाङ्गे ।
इति ऋष्यादि न्यास, , ॐ अ क ख ग घ ङ आँ अगुष्ठाभ्या नम ॥

ओ इ च छ ज झ ञ ई तर्जनीभ्या नम ।
ओ उ ट ठ ड ढ ण मध्याभ्या नम ॥
ओ ए त थ द ध न ऐ अनामिकाभ्या ।
ओ ओ प फ ब भ म औं लनिष्ठकाभ्या नम ॥

ओ अ य र ल व श प स ह क्ष अ करतल कर पृष्ठाभ्या नम ।

इति करन्यास एव हृदयादि,, ओ अ क ५ आ हृदयाय नम. ॥

ओ इ च ५ ई शिरसे स्वाहा ।
ओ उ ट ५ ऊ शिखायैवषट् ॥
ओ ए त ५ ऐं कवचाय हुं ॥
ओ ओ प ५ औ नेत्रत्रयायवौषट् ॥

ओ अं यँ रँ लँ वँ शँ पँ सँ हँ लँ क्षँ अ अस्त्रायफट् ॥ इति हृदयादि न्यास ॥ तत कण्ठस्थ षोडप दल पद्मे (ओ अ नम एव क्रमेण सर्वत्र) ओ आ इँ ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ लृँ लॄँ एँ ऐ ओ औ अ अ इति षोडषस्वरान्न्यसेत ॥ पुन हृदिस्थ द्वादशदले ओ कँ नम. एव ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ नम। इतिद्वादश वर्णान् विन्यसेत् ॥ तथा नाभौ दशदले-ओ ड नम इति एव ढ ण त थ द घ न प फ नम इति दशवर्णा न्न्सेत् तद्धोलिगे षड्दिले-ओ व नम एव ओ भ म य र ल इति षड्वर्णानत्॥ आधारे चतुर्दले—ओ व नम एव श प स इति चतुर्वर्णान्न्य- सेत् ॥ पुन. ललाटे द्विदले ओ ह नम. ओ क्ष नम । द्वौवर्णौ न्यसेत् ॥ इति न्यास कृत्वा ध्यायेत् ॥ आधारेत् । लिगनाभौ प्रकटित तालुमूलेललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदश दले द्वादशार्द्धचतुष्के ॥ वासन्तेवाल-मध्ये डफकर सहिते कठदेशेस्वराणां हसतत्वार्थ युक्त सकल दलगत वर्णरूप नमामि ॥ इत्यतर्मातृका न्यास ॥

अथ वहिर्मातृका न्यास ॥

जयार्थं सर्वदेवाना विन्यासे च लिपेर्विना ।
कृतेतद्विफल विद्यात्तदादौनु लिपिन्सेत् ॥

ओ अस्यश्री बहिर्मातृकान्यास मत्रस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द मातृका सरस्वती देवीदेवता हलोबीजानि स्वरा शक्तय क्ष कीलक अखिलाप्तये न्यासे विनियोग । प्राणायाम कुर्याद् ॥ तथा च इडया अ इ उ ऋ लृ ए ओ अ अ एभि स्वरै पूरयेत् ॥

पुन. कु चु टु तु पु एभि पचवर्गान् कुम्भयेत् ॥
पुन अष्टभि । य र ल व श ष स ह ग्रादिना रेचयेत् ।
इति प्राणायाम कृत्वा ऋष्यादिन्यास कुर्यात् ॥
तथा च ओ अ ब्रह्मणे ऋषये नम आ शिरसि ॥
ओ इ गायत्री छन्दसे नम ई मुखे ॥
ओ उ सरस्वती देवतायै नम ऊ हृदि ॥
ओ ए हल्भ्यो बीजेभ्यो नम. ऐ गुह्ये ॥
ओ स्वरेभ्यो शक्तिभ्यो नम औ पादयो . ॥
ओ अ क्ष कीलकाय नम अ सर्वांगे ॥
इति ऋष्यादि न्यास ॥

ओ अ क ५ आ अगुष्ठाभ्या नम हृदयाय ।
ओ इ च ५ ई तर्जनीभ्या शिरसे स्वाहा ॥
ओ उ ट ५ ऊ मध्यमाभ्या शिखायैवषट् ॥
ओ ए त ५ ऐ अनामिका कवचायहुं ॥
ओ प ५ औ कनिष्ठकाभ्या नेत्रत्रयाय वौषट् ॥
ओ अ य र ल व श ष स ह लं क्ष अ. करतल कार पृष्ठाभ्या अस्त्रायफट् ॥

मृगवाल वर विद्यामक्ष सूत्र दधात् करै ॥
माला-विद्या लमद्ध स्ता वहन् ध्येय शिवो गिर ॥
तत — बहिर्मातृकान्यास कुर्यात् ॥ अ नम. शिरसि ॥
ओ आ नम. मुखे । ओ इ नम. दक्षिण नेत्रे ॥

ओं ई नम वामनेत्रे । ओं उ नम दक्षिण कर्णे ॥
ओं नम वामकर्णे । ओं ऋ नम दक्षिणनासा पुटे ॥
ओं ॠ नम वाम नासा पुटे । ओं लृ नम दक्षिण कपोले ॥
ओं लृ नम वामकपोले ओं ए नम । ओं ऐ नम अधरोष्ठे ॥
ओं वम ऊर्ध्वदन्त पक्तौ । ओं नम अधोदत पक्तौ ॥
ओं अ नम मूर्द्धि न । ओं ओ नम मुखवृत्ते ॥
ओं क नम दक्षिण बाहुमूले । ओं ख नम द० कूर्परे ॥
ओं ओं ग नम द० मणिवधे । ओं घ नम, द० हस्तागुलिमूले।
ओं ङ नम द० हस्तागुल्यग्रे ओं च नम वाम बाहु मूले ।
ओं छ नम वा० कूपरे । ओं ज नम वा० मणिवधे ॥
ओं झ नम वा० हस्तागुलिभूले ।
ओं ञ नम वाम हस्तागुल्यग्रे । ओं ट नम दक्षिणपाद मूले ।
ओं ठ नम, द० जानुनि । ओं ड नम द० गुल्फे ॥
ओं ण नम द० पादागुल्यग्रे ॥
ओं त नम वाम पाद मूले । ओं थ नम, वाम जानुनि ॥
ओं द नम, वाम गुल्फे । ओं ध नम वा० पादागुलिमूले ॥
ओं न वा० पादागुल्यग्रे । ओं प नम दक्षिण पार्श्वे ॥
ओं फ नम वाम पार्श्वे । ओं व नम पृष्ठे ॥
ओं भ नम नाभौ । ओं म नम उदरे ॥
ओं य त्वगात्मने नम हृदि । ओं र असृगात्मने नम दक्षांसे ।
ओं ल मांसात्मनेनम ककुदि । ओं व मेदात्मने नम वामांसे
ओं श अस्थ्यात्मने नम, हृदयादि दक्ष हस्तांतम् ॥
ओं ष मज्जात्मनेनम हृदयादि वाम हस्तांतम् ॥
ओं सशुक्रात्मनेनम हृदयादि वाम पादान्तम् ॥
ओं त आत्जने नम, हृदयादि वाम पादान्मम् ॥
ओं ल परामात्मने नम जठरे ॥

ओ क्ष प्राणात्मने नम मुखे, इति विनयस्य !!

अथ पृष्ठिन्याम क्रम

तत्र तु विसर्गान्त्रित प्रणवपुटितो वा माया लक्ष्मी
वीजपुटितो वा वाग्भवाद्योवा न्यस्तव्य ध्यानम् !!
पञ्चाशदर्णैर विताङ्ग भागा धृतेन्दु खण्डा कुमुदावदातम् !!
वराभये पुस्तकमक्षसूत्र भजेगिर सदधती त्रिनेत्राम् ।१।

तत्र वाग्भवाद्यो यथा ऐ अ नम ललाटे ।
ऐ आ नम मुखवृत्ते ऐ इ नम दक्ष नेत्रे !

ऐ ई नम. वाम नेत्रे !! ऐ उँ नम। दक्ष कर्णे !!
ऐ ऊ नम वाम कर्णे । ऐं ऋ नम-दक्ष नासाग्रा !!
ऐ ॠ नम वाम नासाग्रा !!

ऐ लृ नम दक्ष गडे !! ऐ लॄ नम वाम गडे !!
ऐ ए नम ऊर्ध्वोष्ठे !! ऐ ऐ नम अधरोष्टे !!

ऐ ओ नम ऊर्ध्वदन्तपक्तो !!
ऐ औ नम अधोदन्त पक्तौ !!

ऐ अ नम मूर्द्धिन !! ऐ अ नम मुखे !!
ऐं क नम द० बा० मूले !! ऐं ख नम द० कूर्परे !!
ऐं ग नम द० मणिवन्धे !! ऐ घ नम द० हस्तागुलि मूले !!
ऐं ङ नम द० हस्ता गुल्यग्रे !! ऐ च नम वाम बाहु मूले !!
ऐं झ नम वाम कूपरे !! ऐं ज नम वाम मणिबन्धे !!
ऐ ऐ छ नम वाम कूर्परे !! ऐ ज नम वाम मणिवन्धे !!

ऐ झँ नम बाम हस्ता गुलि मूले !!
ऐं ञ नम वाम हस्तांगुल्यग्रे !!
ऐं ट नम दक्षिणपाद मूले !! ऐ ठ नम दक्षिण जानुनि !!
ऐ ड नम दक्षिण गुल्फे !! ऐ ढ नम द० पा० गुलि मूले !!

ऐं ण नमः द० पा० गुल्फाग्रे ।। ऐं त नमः वाम पाद मूले ।।
ऐं थ वाम जानुनि । ऐं द नमः वाम गुल्फे ।
ऐं थँ नमः वाम पा० गु० मूले । ऐं न वाम पादागुल्यग्रे ।
ऐं प नमः दक्षिण पार्श्वे । ऐं फ नमः वाम पार्श्वे ।
ऐं ब नमः पृष्ठे । ऐं भ नमः नाभौ ।
ऐं म नमः उदरे । ऐं य त्वगात्मने नमः हृदि ।
ऐं र असृगात्मने नमः दक्षा से ।
ऐं ल मासात्मने नमः ककुदि ।
ऐं व मेदात्मने नमः वामासे ।
ऐं श अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्ष भुजान्तम् ।
ऐं ष मज्जात्मने नमः हृदयादि वाम भुजान्तम् ।
ऐं स शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
ऐं ह आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।
ऐं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम् ।
ऐं ल परमात्मने नमः हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति सृष्टिक्रम न्यासः ।

अथ स्थिति न्यास । ऋषिश्छन्द पूर्ववत् ।

ध्यानम् । सिंदूर कान्ति मसिताभरणा त्रिनेत्रा विद्याक्षसूत्र मृगपोतवरन्दधानां । पार्श्वस्थिता भगवतीमपि काञ्चनाभां ध्याये कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम् ।

ओ ट ट ड नमः ललाटे ।
ओ ठ ठ ड नमः मुख वृत्ते ।
ओ ट ठ ड नमः दक्ष नेत्रे ।
ओ ट ठ ड नमः वाम नेत्रे ।

ओ ट ठ ड नम. दक्षिण कर्णे ।
ओ ट ठ ड नम वाम कर्णे ।
ओ ट ठ ड नम दक्षनासाया ।
ओ ट ठ ड वाम नासाया नम ।
ओ ट ठ ड नम दक्षिणगन्डे ।
ओ ट ठ ड नम वाम गण्डे ।
अ ट ठ ड नम ऊर्ध्वोष्ठे ।
ओ ट ठ ड नम अधरोष्ठे ।
ओ ट ठ ड नम ऊर्ध्व दन्त पक्तौ ।
ओ ट ठ ड नम अधो दन्त पक्तौ ।
ओ ट ठ ड नम शिरसि ।
ओ ट ठ ड नम मुखे ।
ओ ट ठ ड नम जिह्वाग्रे ।
ओ ट ठ ड कण्ठ देशे ।
ओ ट ठ ड नम दक्ष बाहु मूले ।
ओ ट ठ ड नम दक्ष कूर्परे ।
ओ ट ठ ड नम दक्षिण मणिबन्धे ।
ओ ट ठ ड नम दक्षिण हस्तेगुल्य मूले ।
ओ ट ठ ड नम दक्षिण हस्तेगुल्यग्रे ।
ओ ट ठ ड नम बाहु मूले ।
ओ ट ठ ढ नम कूपरे ।
ओ ट ठ ड नम, वाम मणि वन्धे ।
ओ ट ठ ड नम वाम हस्ता गुल्यग्रे ।
ओ ट ठ ड नम दक्ष पाद मूले ।
ओ ट ठ ड नम. दक्ष जानुनि ।

ओं ट ठ ड नम दक्ष गुल्फे ।
ओं ट ठ ड नम दक्ष पादांगुलि मूले ।
ओं ट ठ ड नम पादांगुल्यग्रे ।
ओं ट ठ ड नम वाम पाद मूले ।
ओं ट ठ ड नम वाम जानुनि ।
ओं ट ठ ड नम वाम गुल्फे ।
ओं ट ठ ड नम वाम पादांगुलि मूले ।
ओं ट ठ ड नम बाम पा० गुल्यग्रे ।
ओं ट ठ ड नम दक्ष पार्श्वे ।
ओं ट ठ ड नम पृष्ठे ।
ओं ट ठ ड नम हृदये ।
ओं ट ठ ड नम, दक्षांसे ।
ओं ट ठ ड नम, ककुदि ।
ओं ट ठ ड नम, वामांसे ।
ओं ट ठ ड नम, हृदयादि दक्षहस्तानम् ।
ओं ट ठ ड नम हृदयादि वाम हस्तामम् ।
ओं ट ठ ड नम ॐ हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
ओं ट ठ ड नम हृदयादि बाम पादान्तम् ।
ओं ट ठ ड नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

इति स्थिति क्रम

अथ संहार क्रम न्यासः ।

ध्यानम् । अक्षस्रज हरिणपोतमुदग्रटंक विद्याकरैं-
रविरतधती त्रिनेत्रा ।
अर्द्धेन्दुमौलिभरणामरविन्दवासा वर्णेश्वरी च
प्रणुम स्तनभारखिन्नाम् ।

पूर्वोक्त स्थानेषु विलोम मातृकान्यसेत् ।
ओं क्ष नम. ललाटे ।
ओं ह् नम· मुखवृत्ते । स नम दक्ष नेत्रे ।
ओं ष नम वाम नेत्रे ।
ओं श नम दक्ष कर्णे ।
ओं व नम वाम कर्णे ।
ओं ल नम दक्ष नासाया ।
ओं र नम वाम नासाया ।
ओं य नम. दक्ष गडे ।
ओं म नम वाम गडे ।
ओं भ नम ऊर्ध्वोष्ठे ।
ओं ब नम अधरोष्ठे ।
ओं फ नम ऊर्ध्व दन्त पक्तौ ।
ओं प नम। अधो दन्त पक्तौ ।
ओं न नम· मूर्द्धिन ।
ओं ध नम मुखवृत्ते ।
ओं द नम दक्ष बाहु मूले ।
ओं य नम दक्ष कूर्परे ।
ओं त नम दक्ष मणिबन्धे ।
ओं ण नम· दक्ष हस्तागुलि मूले ।
ओं ढ नम दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।
ओं ड नम वाम बाहु मूले ।
ओं ठ नम। वाम कूर्परे ।
ओं ट नम. वाम मणिवन्धे ।
ओं ञ नम वाम हस्तागुलि मूले ।
ओं झ नम वाम हस्तागुल्यग्रे ।
ओं ज नम दक्ष पाद मूले ।

ओ छ नम दक्ष जानुनि ।
ओ च नम दक्ष गुल्फे ।
ओ ङ नम. दक्ष पादागुलि मूले ।
ओ घ नम दक्ष पादागुल्यग्रे ।
ओ ग नम. वाम पाद मूले ।
ओ ख नम वाम जानुनि ।
ओ क नम वाम गुल्फे ।
ओ अ नम बाम पादागुलि मूले ।
ओ अ नम वाम पादागुल्यग्रे ।,
ओ औं नम दक्षिण पार्श्वे ।
ॐ ओ नम वाम पार्श्वे ।
ॐ ऐ नम पृष्ठे ।
ॐ ए नम नाभो ।
ॐ लृ नम, उदरे ।
ॐ लृ त्वगात्मने नम हृदि ।
ॐ ॠ असृगात्मने नम दक्षासे ।
ॐ ऋ मासात्मने नम' ककुदि ।
ॐ ऊ मेदात्मने नम वामासे ।
ॐ उ अस्थ्यात्मने नम हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।
ॐ ई मज्जात्मने नम हृदयादि वाम हस्तान्तम् ॥
ॐ इ शुक्रात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
ॐ आ आत्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
ॐ अ परमात्मने नम हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति संहार क्रम न्यास कृत्वा ॥

अथ शक्ति कला न्यासः ।

अस्य श्री शक्तिकला मातृका न्यासस्य प्रजापति ऋषि गायत्री छन्द' श्री मातृका शारदा देवता हलोबीजानिस्वरा शक्तय समशतो पाठाङ्ग त्वेन मातृका न्यसे विनियोग ।

ओ प्रजापति ऋषये नम शिरसि,
ओ गायत्री छन्दसे नम' मुखे ।
ओ श्री मातृका शारदा देवतायै नम हृदि,
ओ हल्भ्योबीजेभ्यो नम गुह्ये ।
ओ स्वरेभ्योशक्तिभ्यो नम पादयो ।
ओ विनियोगाय नम सर्वांगे ।

।। कर न्यास ।।

ओ अ ओ आ अगुष्ठाभ्या नम (हृदयाय नम)
ओ इ ओ ई तर्जनोभ्या नम (शिरसे स्वाहा)
ओ उ ओ ऊ मध्यमाभ्या नम, (शिखायैवषट्)
ओ ए ओ ऐं अनामिकाभ्या नम (कवचायहुं)
ओ ओ ओ औ कनिष्ठका नम (नेत्र त्रयाय वौषट्)
ओ अ ओ अ करतल करपृष्ठाभ्या नम (अस्त्रायफट्)

।। अथ हृदयादि न्यासः ।।

ॐ ह्सा अङ्गुष्ठाभ्या नम, । हृदयाय नम ।
ॐ ह्सी तर्जनोभ्या नम, । शिरसे स्वाहा ।
ॐ ह्सू मध्यमाभ्या नम । शिखायै वषट् ।
ॐ ह्सैं अनामिकाभ्या नम, । कवचाय हुम् ।
ॐ ह्सौ कनिष्ठकाभ्या नम, । त्रयायवौपट् ।
ॐ ह्स करतल कर पृष्ठाभ्या नम, । अस्त्रायफट् ।।

षोढान्यास प्रकारः

तत्र प्रथम शुद्ध मातृका न्यास

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ नमो हृदि।

ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ नमो दक्ष भुजे।

ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमो वाम भुजे।

ण त थ द ध न प फ ब भ नमो दक्ष पादे।

म य र ल व श ष स ह ल क्ष नमो वाम पादे।

इति शुद्ध मातृका न्यास प्रथम ।

अथ द्वितीय न्यासः

श्री अ श्री अ श्री अ नमो ललाटे।

श्री आ श्री आ श्री आ नमो मुख वृत्ते ।

श्री इ श्री इ श्री इ नमो दक्ष नेत्रे।

श्री ई श्री ई श्री ई नमो वाम नेत्रे ।

श्री उ श्री उ श्री उ नमो दक्ष कर्णे।

श्री ऊ श्री ऊ श्री ऊ नमो वाम कर्णे ।

श्री ऋ श्री ऋ श्री ऋ दक्ष नासायां।

श्री ॠ श्री ॠ श्री ॠ नमो वाम नासायां ।।

श्री ऌ श्री ऌ श्री ऌ नमो दक्ष कपोले।

श्री ॡ श्री ॡ श्री ॡ नमो वाम कपोले।

श्री ए श्री ए श्री ए नमो उर्ध्वोष्ठे।

श्री ऐ श्री ऐ श्री ऐ नमो अधरोष्ठे ।

श्री ओ श्री ओ श्री ओ नमो ऊर्ध्व दन्त पक्तौ।

श्री औ श्री औ श्री औ नमो अध दन्त पन्क्तौ।

श्री अं श्री अं श्री अं नमो मूर्द्धनि ।

श्री अः श्री अः श्री अः नमः मुखे।

श्री क श्री क श्री क नमो दक्षिण बाहु मूले ।
श्री ख श्री खं श्री ख नमो दक्षिण कर्पूरे ।
श्री ग श्री ग श्री ग नमो दक्षिण मणि बन्धे ।
श्री घ श्री घ श्री घ नमो दक्षिण हस्तागुलि मूले ।
श्री ङ श्री ङ श्री ङ नमो दक्षिण हस्तागुल्यग्रे ।
श्री च श्री च श्री च नमो वाम बाहु मूले ।
श्री छ श्री छ श्री छ नमो वाम कूर्परे ।
श्री ज श्री ज श्री ज नमो वाम मणि बन्धे ।
श्री झ श्री झ श्री झ नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
श्री ञ श्री ञ श्री ञ नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
श्री ट श्री ट श्री ट नमो दक्षिण पाद मूले ।
श्री ठ श्री ठ श्री ठ नमो दक्ष जानुनि ।
श्री ड श्री ड श्री ड नमो दक्ष गुल्फे ।
श्री ढ श्री ढ श्री ढ नमो दक्ष पादाङ्गुलि मूले ।
श्री ण श्री ण श्री ण नमो दक्ष पादाङ्गुल्यग्रे ।
श्री त श्री त श्री तं नमो वाम पाद मूले ।
श्री थ श्री थ श्री थ नमो वाम जानुनि ।
श्री द श्री द श्री द नमो वाम गु फे
श्री ध श्री ध श्री ध नमो वाम पादागुलि मूले ।
श्री न श्री न श्री न नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
श्री प श्री प श्री प नमो दक्ष पार्श्वे ।
श्री फ श्री फ श्री फ नमो वाम पार्श्वे ।
श्री व श्री व श्री व नमो पृष्ठे ।
श्री भ श्री भ श्री भ नमो नाभौ ।
श्री म श्री म श्री म नमो उदरे ।
श्री य श्री य श्री य त्वगात्मने नम. हृदि ।
श्री र श्री र श्री र असृगात्मने नम दक्षांसे ।

श्री ल श्री ल श्री ल मासात्मने नम. ककुदि ।
श्री ब श्री ब श्री ब मेदात्मने नम वामासे ।
श्री श श्री श श्री श अस्थ्यात्मने नम हृदयादि दक्ष हस्तान्तम्।
श्री ष श्री ष श्री ष मज्जात्मने नम. हृदयादि वाम हस्तान्तम्।
श्री स श्री स श्री स शुक्रात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ।
श्री ह श्री ह श्री ह आत्मने नम हृदयादि वाम पादातम् ।
श्री ल श्री ल श्री ल परमात्मने नम जठरे ।
श्री क्ष श्री क्ष श्री क्ष प्राणात्मने नम हृदयादि मस्तकातम् ।

॥ इति द्वितीय न्यास ॥

॥ अथ तृतीय न्यासः ॥

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ललाटे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मुख वृत्ते ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष नेत्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम नेत्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष कर्णे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कर्णे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष नासायाम् ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम नासायाम् ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष कपोले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कपोले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ऊर्ध्वोष्ठे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो अधरोष्ठे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो ऊर्ध्व दन्त पक्तौ ।
क्ली श्री क्लीं श्री क्ली श्री अधो दन्त पक्तौ ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मूर्द्धिन ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो मुखे ।

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्षिण बाहु मूले ।
क्लीं श्री क्ली श्री क्ली श्रीं नमो दक्ष कूर्परे ।।
क्ली श्रीं क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष मणि बन्धे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष हस्तागुलि मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष हस्तागुल्यग्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम बाहु मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम कूर्परे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम मणि बन्धे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम हस्तागुलि मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम हस्तागुल्यग्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्षिण पाद मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो दक्ष जानुनि ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री दक्ष गुल्फे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पादागुलि मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पादागुल्यग्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पाद मूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम जानूनि
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम गुल्फे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पादागुलिमूले ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पादागुल्यग्रे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम दक्ष पार्श्वे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो वाम पार्श्वे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो पृष्ठे
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो नाभौ ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री नमो उदरे ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री त्वगात्मने नम हृदि

क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री असृगात्मने नम दक्षासे ।
क्लीं श्री क्ली श्री क्ली श्री मासात्मने नम ककुदि ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री मेदात्मने नम वामासे ॥
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री अस्थ्यात्मने नम, हृदयादि दक्ष हस्तान्तम् ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री मज्जात्मने नम हृदयादि वाम हस्तान्तम् ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री शुक्रात्मने नम हृदयादि दक्ष पादान्तम् ॥
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री आत्मने नम हृदयादि वाम पादान्तम् ।
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री परमात्मने नम. जठरे ॥
क्ली श्री क्ली श्री क्ली श्री हृदयादि मस्तकान्तम् ।

॥ इति तृतीय न्यास· ॥

अथ चतुर्थ न्यास

ह्री श्री ह्री श्री ह्री श्री नम ललाटे ।
सृष्टि न्यास के अनुसार स्थानो पर पचम न्यास तथा मुद्रा भी वही ।

पंचमः

ए ह्री क्ली चामुन्डाये विच्चे ह्रा ह्रा ऋ ॠ ऌ नम ललाटे ।
सृष्टि न्यास के अनुसार तथा मुद्रा भी वही

षष्ठ अनुलोमः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायैं विच्चे नम ललाटे।
उन्ही स्थान तथा मुद्रा से

विलोम न्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायैं विच्चे नम हृदयादि मस्तकान्तम्।
पूर्व लिखे हुए सहार न्यास के अनुसार होगा मुद्रा सहित।

तत्वन्यासः

ऐं ह्रीं क्लीं आत्म तत्वाय नम पादादि नाभिपर्यन्तम्।
चामुण्डायैं विद्यातत्वाय नम नाभ्यादि हृदय पर्यन्तम्।
विच्चे शिव तत्वाय नम हृदयादि शिर पर्यन्तम्।

अक्षर न्यास

ऐं नम ब्रह्मरध्रे। ह्रीं नम भ्रुवोर्मध्ये।
क्लीं नम ललाटे चा नम हृदि। मुन्नमोकुक्षौ।
डा नम नाभौ। यैं नम लिंगे। विंनमो गुह्ये।
च्चेनमोवक्रे। इति
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायैं विच्चे॥

ततो नवधा सप्तधा पञ्चधा वा मूल मुच्चरन् व्यत्य हस्ताभ्या व्यापक न्यास विधाय।

ततो यथोक्त विधिना बिन्दु त्रिकोण षट् कोण अष्ट दल-चतुर्विशति दल भूपरयुत यत्रनिर्माय पीठे धृत्वा।

पीठ न्यास कुर्यात्।
ओ आधार शक्त्यै नम।
ओ प्रकृत्यै नमः।
ओ कूर्माय नम।

ओ सुधा वुधये नम ।
ओ मणिद्वीपाय नम ।
ओ चिन्तामणि गृहाय नम ।
ओ श्मशानाय नम ।
ओ पारिजाताय नम. ।
ओ तन्मूले । ओ रत्नवेदिकायै नम
ओ मणिपीठाय नम. । एतावद्धदि न्यसेत् । चतुर्दिक्ष ॥
ओ नाना मुनिभ्यो नम ।
ओ नाना देवेभ्यो नम ।
ओ शवेभ्यो नम ।
ओ शनमुण्डे भ्योनमः
ओ वहुमासास्थि मोदमान शवेभ्यो नम ।
ओ धर्म्माय नम. दक्षासे ।
ओ ज्ञानाय नम' वामासे ।
ओ वैराग्याय नम वामोरौ ।
ओ ऐश्वर्याय नम दक्षोरौ ।
ओ अज्ञानाय नमो वाम पार्श्वे ।
ओ अवैराग्याय नम नाभौ ।
ओ अनैश्वर्याय नम दक्षिणपार्श्वे । ततो हृदि ॥
ओ आनन्द कन्दाय नम.
ओ सविन्नालय नम
ओ सर्वं तत्वात्मक पद्माय नम
ओ प्रकृतिमय पत्रेभ्यो नम ।
ओ विकार मय केसरेभ्यो नम
ओ पञ्चाशद्वीजाढ्य कर्णिकायै नम
ओ अष्टादश कलात्मने सूर्य मण्डलाय नम

ओ षोडश कलात्मने सोममण्डलाय नम ।
ओ मन्दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नम ।
ओ स सत्वायनमः ।
ओ र रजसे नम' ।
ओ तम् तमसे नम ।
ओ आ आत्मने नम ।
ओ अ अन्तरात्मने नम. ।
ओ प परमात्मने नम ।
ओ ह्री ज्ञानात्मने नम । अष्टदिक्षु ।
ओइ इच्छायै नम
ओ ज्ञा ज्ञानायै नम ।
ओ क्रि क्रियायै नम. ।
ओ का कामिन्यै नम ।
ओ का कामदायिन्यै नम ।
ओ र रत्यै नम। ।
ओ र रति प्रियायै नम ।
ओ आ आनन्दायै नम । मध्ये ।
ओ म मनोन्मन्यै नम। ।
ओ ऐं परायै नम' ।
ओ प परायण्ये नम. ।
ओ ह्सौ. ब्रह्मा विष्णु रुद्र महाप्रेत पद्मासनाय नमः ।
इति पीठ न्यास कत्वा तत्र दुर्गां ध्यायेत् ।
ऊ शख चक्र गदा बाणान् चाप परिघ शूलके ।
भुशुण्डी च शिर. खड्ग दधती दश वक्त्रकाम ॥१॥
तामसों श्यामला नौमि महाकाली दशाघ्रिकाम् ।
मालाश्च परशु बाणान् गदा कुलिशमेवच ॥२॥

पद्म धनु कुण्डिका च दड शक्तिमसि तथा ।
खेट कजलज घण्टा सुरापात्र च शूलकम् ॥३॥
पाश सुदर्शन चैव दधती लोहित प्रभाम् ।
पद्मे स्थिता महालक्ष्मी भजे महिष मर्दिनीम् ॥४॥
घटा शूल हल शख मुसलारिधनु शरान् ।
दधतीमुज्वला नौमि देवी गौरी समुद्भवाम् ॥५॥
इति ध्यात्वा मानसै रूप चारैरभ्यर्च्य प्रणमेत् ।

ध्यान—सिहस्था शशिशेखर। मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजै शख चक्र-
धनु शराश्च दधती नेत्रैस्त्रिभि शोभिता। आमुक्ताङ्गद-
हारकङ्कणरणत्काञ्चीक्वणन्नूपुरा दुर्गा दुर्गति हारिणी
भवतु वो रत्नोल्लसत्कुण्डला ।

अथ देव्या. कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषि, अनुष्टुप्छन्द, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्' दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बा-प्रीत्यर्थे सप्तशती पाठाङ्गत्वेन जपे विनियोग

ओ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच—ओ यद्गुह्य परम लोके सर्वरक्षाकर नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यात तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

ब्रह्मोवाच—अस्ति गुह्यतम विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवच पुण्य तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥
प्रथम शैलपुत्री च द्वितीय ब्रह्मचारिणी ।
तृतीय चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥
पञ्चम स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तम कालरात्रीति महागौरीति चाष्टकम् ॥४॥
नवम सिद्धिदात्री च नवदुर्गा प्रकीर्तिता ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥५॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ता शरण गता ॥६॥

न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि ।७।
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः ।८।
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ।९।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ।
लक्ष्मी पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया ।१०।
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना ।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ।११।
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिता ।१२।
दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शंखं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ।१३।
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ।१४।
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ।।१५।।
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे ।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।१६।
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ।१७।
दक्षिणेऽवतु वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी ।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ।१८।
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।१९।

एव दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।
जया मे चाग्रत पातु विजया पातु पृष्ठत ॥२०॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ॥२१॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी ।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ॥२२॥
शङ्खिनी चक्षुषोमध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ॥२३॥
नासिकाया सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।
अधरे चामृतकला जिह्वाया च सरस्वती ॥२४॥
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।
घण्टिका चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ॥२५॥
कामाक्षी चिबुक रक्षेद् वाच मे सर्वमङ्गला ।
ग्रीवाया भद्रकाली च पृष्ठवशे धनुर्धरी ॥ २६ ॥
नीलग्रीवा बहि कण्ठे नलिका नलकूबरी ।
स्कन्धयो खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी ॥२७॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चागुलीषु च ।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ॥२८॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मन शोकविनाशिनी ।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी ॥२९॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्य गुह्येश्वरी तथा ।
पूतना कामिका मेढ्र गुदे महिषवाहिनी ॥३०॥
कट्या भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी ।३१।
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी ।
पादागुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी ।३२।

नखान् दष्ट्राकराली च केशाश्चैवोर्ध्वकेशिनी ।
रोमकूपेषु कौवेरी त्वच वागीश्वरी तथा ।३३।
रक्तमज्जावसामासान्यस्थिमेदासि पावती ।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्त च मुकुटेश्वरी ।३४।
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ।।३५।।
शुक्र ब्रह्माणि मे रक्षेच्छाया छत्रेश्वरी तथा ।
अहकार मनो बुद्धि रक्षेन्मे धर्मधारिणी ।।३६।।
प्राणापानौ तथा व्यानमुदान च समानकम् ।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणकल्याण शोभना ।।३७।।
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी ।
सत्व रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा ।३८।
आयू रक्षतु वाराही धर्म रक्षतु वैष्णवी ।
यश कीर्ति च लक्ष्मी च धन विद्या च चक्रिणी ।३९।
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ।४०।
पन्थान सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा ।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वत. स्थिता ।४१।
रक्षाहीन तु यत्स्थान वर्जित कवचेन तु ।
तत्सर्व रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ।।४२।।
पदमेक न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मन ।
कवचेनावृतो नित्य यत्र यत्रैव गच्छति ।४३।
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजय सार्वकामिका ।
य य चिन्तयते काम त त प्राप्नोति निश्चितम् ।
परमैश्वमतुल प्राप्स्यते भूतले पुमान् ।४४।
निर्भयो जायते मर्त्यं सग्रामेष्वपराजित ।

त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्य कवचेनावृतः पुमान् ।४५।।
इद तु देव्याः कवच देवानामपि दुर्लभम् ।
य पठेत्प्रयतो नित्य त्रिसन्ध्य श्रद्धयान्वित ।४६।
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजित ।
जीवेद् वर्षशत साग्रमपमृत्युविवर्जित ।४७।
दश्यन्ति व्याधय, सर्वे लूताविस्फोटकादय. ।
स्थावर जङ्गम चैव कृत्रिम चापि यद्विषम् ।४८।
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ।
भूचरा खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिका ।४९।
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबला ।५०।
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसा ।
ब्रह्मराक्षसवेताला कूष्माण्डा भैरवादय ।५१।
दश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि सस्थिते ।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकर परम् ।५२।
दश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि सस्थिते ।
यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ।
जपेत्सप्तशती चण्डी कृत्वा तु कवच पुरा ।५३।
यावद्भमण्डल धत्ते सशैलवनकाननम् ।
तावत्तिष्ठति मेदिन्या सन्तति पुत्रपौत्रिकी ।।५४।।
देहान्ते परम स्थान यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
प्राप्नोति पुरुषो नित्य महामायाप्रसादत ।५५।
लभते परम रूप शिवेन सह मोदते ।। ॐ ।।५६।।

देवी सूक्तम

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नम. ।
नम. प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता स्मताम् ।१।

रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनम ।
ज्योत्स्नायै चेन्दु रूपिण्यै सुखार्य सतत नम ।२।
कल्याण्यै प्रणता वृदध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नम ।
नैऋर्त्यै भूभृता लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ।३।
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्य त्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सतत नम ।।४।।
अति सौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नम ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नम ।५।
या देवा सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।।६।।
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।७।
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।८।
या देवी सर्वभूतेषु निद्रा रूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।९।
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१०।
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।११।
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१२।
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम, ।१३।
या देवी सर्वभुतेषु क्षान्तिरूपेण सस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ।१४।

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१५।
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१६।
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१७।
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१८।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।१९।
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२०।
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२१।
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२२।
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२३।
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२४।
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२५।
या देवी सर्वभूतेषु भ्रातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ।२६।
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ।२७।

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण ।

दिनेषु सेविता । करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥२९॥ या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाच सुरैर्नमस्य ते । य च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति न सर्वापदो भक्ति विनम्रमूर्तिभिः ॥३०॥

॥ इति देवीसूक्त ॥

आठ लाख मन्त्र जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है । जप के बाद त्रिमधु युक्त तिल अथवा दूध मिले अन्न से आठ हजार आहुतियों का हवन करना चाहिए । इसमें दशांश हवन का नियम नहीं है ।

●●●

त्रिशक्ति-रहस्य

स्पष्टीकरण

'शक्ति' की पूजा अक्षर (निराकार) रूप मे नही; की जा सकती इसलिए उसके प्रत्यक्ष स्वरूप की कल्पना उत्पत्ति, स्थिति और लय के आधार पर करनी पड़ती है, इन तीनो शक्तियो का नाम क्रम से सरस्वती, लक्ष्मी और काली रख दिया गया है, वस्तुत' ये तीन भिन्न-भिन्न देवियाँ नही हैं, वरन एक ही निराकार देवी की पूजा के लिए तीन स्वरूप हैं । इन शक्तियो के अनुरूप देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी इसी प्रकार तीन अलग-अलग देव नही हैं, वरन् एक ही निराकार परमात्मा के तीन रूप कल्पित किये गये हैं, नवरात्रि के उत्सव में जगत की इन तीन शक्तियो महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती की पूजा ही की जाती है ।

महा सरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी का अत्रयोक्त त्रिखया शक्ति कहते है । इनका मूल नियम [श्वेताश्वतरोपनिद् (४।५) के मन्त्र में हैं ।

अजमेका लोहितशुक्लकृष्णा
वह्वी प्रजा सृजमाना सरूपा ।
अजो ह्येको जपुमाणोऽनुशेते
जहात्येना भुक्तभोगामजोऽन्य. ।

अर्थात् अपने समान रूप वाली, असख्य प्राणियो को रचने

वाली, लाल, श्वेत, काली, एव अजन्मा प्रकृति को ही एक अजन्मा अज्ञानी प्राणी मोहयुक्त होकर भोगता है, परन्तु दूसरा ज्ञानी पुरुष इस भोगी हुई प्रकृति का त्याग कर देता है।

श्वेत वर्ण प्रतीक महासरस्वती, काले वर्ण का महाकाली और रक्त वर्ण का महालक्ष्मी है। महासरस्वती सत्व गुण प्रधान है, महाकाली तमो गुण प्रधान है, महालक्ष्मी रजोगुण प्रधान है। यूँ भी कह सकते हैं कि महासरस्वती काल है। महाकाली-प्रलय काल है और महालक्ष्मी सृष्टि काल है। यह परम प्रकृति की तीन विकृतिया है जिनके न्याय-शास्त्र के अनुसार आध्यात्मिक नाम-ज्ञान शक्ति, इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति हैं। साख्य योग के अनुसार यह सत् रज और तम है। पारमार्थिक वेदान्तोक्त नाम—चित् आनन्द और सत् हैं तान्त्रिक ऐं क्लीं ह्रीं (श्री) है।

ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिमृणा व्यष्टीना महासरस्वतीमहाकाली महालक्ष्मीरित प्रवृत्तिनिमित्तवलक्षण्येन नामरुपान्तरणि सच्चिदान्दात्मकपरब्रह्मधर्मत्वादेव शक्तेरपि त्रिरूपत्वम् ।

महासरस्वति चिते महालक्ष्मि सदात्मिको ।
महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्वज्ञनसिद्धये ।
अनुसदध्महे चण्डि वय त्वा हृदयाम्बुजे ॥
महालक्ष्मीर्ब्रह्मत्व महाकाली रुद्रात्व
महासरस्वती विष्णुत्व प्रपेदे ।

(सप्तशती की गुप्तवती टीका)

अर्थात् "ज्ञान-इच्छा और क्रियाओ की तीन प्रकृति हैं महा सरस्वती, महाकालो, महालक्ष्मी। प्रवृत्ति और निवृत्ति की विलक्षणता से नाम और रूपो में अन्तर होते है।

सच्चिदानन्द स्वरुप परब्रह्म के धम होने से ही शक्ति के भी तीन रुप है। महासरस्वती चित्रूपा है—महालक्ष्मी सत्रूपा है और

महाकाली आनन्द रूपिणी है। आपके तत्व का ज्ञान की सिद्धि के लिये ही है। हे चण्ड ? हम हृदय कमल मे आपका अनुसन्धान करते हैं।

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णु सत्त्वाधिको भवेत्।
तमोगुणाधिको रुद्र सर्व कारण रूपधृक्॥
स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरि, स्मृत।
रुद्रस्तु कारणे देहस्तुरीयस्त्वहमेव हि॥
(दे० भा० १२-७-७२-७३)

अर्थात्—ब्रह्मा रजोगुण की अधिकता वाले हैं—विष्णु में सत्व गुण की अधिकता है और रुद्र तमोगुण की अधिकता से युक्त हैं और सर्व कारण के रूप को धारण करने वाले हैं। ब्रह्मा स्थूल देह वाले हैं—हरि लिंग देह से युक्त है और रुद्र कारण देह वाले हैं, तुरीय देह तो मैं ही ?।

याऽस्य प्रथमा रेखा त्या गार्हपत्यश्चाकारो रज स्वात्मा क्रियाशक्तिऋग्वेद प्रात सवन महेश्वरो देवतेति।६।
याऽस्य द्वितीया रेखा सा दक्षिणाग्निरुकार सत्वमन्तरात्मा केच्छाशक्तिर्यजुर्वेदः माध्यदिन सवन सदाशिवो देवतेति।।७
याऽस्य तृतीया रेखा साऽऽहवनीयो मकार स्तम' परमात्मा ज्ञानशक्ति सामवेदस्तृतीयसवन महादेवो देवतेति।८।
(कालाग्नि रुद्रोपनिषद्)

अर्थात्—"तीन रेखाओ मे से प्रथम रेखा तो गार्हपत्य, अग्नि-रूप 'अ' कार रूप, रजोगुण रूप, भूलोक रूप, स्वात्मक रूप, क्रिया शक्ति रूप, ऋग्वेद रूप, प्रात सवन रूप, और महेश्वर देव के रूप की है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि रूप, 'उ'कार रूप, स्वत्व रूप, अन्तरिक्ष रूप, इच्छा शक्ति रूप, यजुर्वेद रूप, माध्यदिन सवन रूप, और सदा-शिव के रूप की है। तीसरी रेखा आहवनीय रूप, तमरूप, द्योलोकरूप

परमात्मा रूप, ज्ञान शक्ति रूप, सामवेद रूप, तृतीय सवन रूप और महादेव रूप की है।

> शक्ति स्वभाविको तस्य विद्या विश्वविलक्षणा।
> एकानेकस्वरूपेण भाति भानोरिव प्रभा॥
> अनन्ता शक्तयस्तस्य इच्छाज्ञानक्रियादय।
> इच्छाशक्तिमहेशस्य नित्या कार्यनियामिका॥
> ज्ञानशक्तिस्तु तत्कार्यं कारण करण तथा।
> प्रयोजन च तत्तवेन बुद्धिरूपाध्यवस्यति॥
> यथेप्सित क्रियाशक्तिर्यथाध्यवसित जगत्।
> कल्पयत्यखिल कार्य क्षणात् सकलरूपिणी॥
>
> (शिवपुराण, वायुसहिता, उत्तरखण्ड, अ० ७ अ० ८)

अर्थात्—उसकी शक्ति तो स्वाभाविकी है और विद्या विश्व विलक्षणा है। वह एक ही अनेक स्वरूप से सूर्य की प्रभा की भांति प्रतीत होती है। उसकी इच्छा-ज्ञान क्रिया आदि अनन्त शक्तियाँ हैं। महेश की इच्छा शक्ति कार्य की नियामिका और नित्य है। ज्ञान शक्ति उसका कार्य है तथा कारण है। तत्व से प्रयोजन बुद्धि रूपा होकर अध्यवसित होता है। क्रिया शक्ति ईप्सित के अनुरूप है और जगत यथाध्यवसित होता है। एक ध्यान मात्र मे सकल्प रूप वाली सम्पूर्ण कार्य को सम्पदि कर देती है।"

शास्त्रकारो का मत है कि परमात्मा अपनी योग माया के सहयोग से सृष्टि की यर्थादा इच्छा के लिए युग युग में अवतार ग्रहण किया करते हैं। जब पुरप रूप में अवतीर्ण होते हैं तो ब्रह्मा विष्णु महेश कहे जाते हैं। उनकी तीन शक्तियो के नाम महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली हो जाते हैं। यह परमात्मा की चितिशक्ति के रूप है। जिस प्रकार यह तीन देवता प्रकृति के ३ गुणो के प्रतीक हैं, उसी तरह यह तीन शक्तियाँ भी त्रिगुणा हैं। सत्व प्रधान वैष्णव रूप को महालक्ष्मी

रजप्रधान वाली शक्ति को महासरस्वती और तम प्रधान रौद्र-रूप वाली को महाकाली कहते हैं।

सार यह कि परमात्मा निरञ्जन, निराकार निर्गुण, निष्क्रिम और निर्लिप्त हैं। वह अपनी माया शक्तिसे सृष्टि, पालन और संहार करता है। कार्य भेद से उसी के तीन नाम ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो जाते हैं। जिन शक्तियो के सहयोग से यह महान कार्य सम्पन्न हो पाते हैं, उनका नाम करण महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली किया गया।

यौगिक रूप

त्रिशक्ति—महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती पिण्ड मे तीन बन्धन ग्रन्थियो-रुद्र-ग्रन्थि, विष्णु,-ग्रन्थि और ब्रह्म-ग्रन्थि की प्रतीक हैं।

साधक की जब विज्ञानमय कोश मे स्थिति होती है तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो उसके भीतर तीन कठोर, गठीली चमकदार हलचल करती हुई, हलकी गाँठे है। इनमे से एक गांठ मूत्राशयके समीप, दूसरी आमाशय के ऊर्ध्व भाग मे और तीसरी मस्तिष्क के मध्य केन्द्र मे विदित होती है। इन गाठो मे से मूत्राशय वाली ग्रन्थि को रुद्र-ग्रन्थि, आमाशय वाली को विष्णु ग्रन्थि और शिर वाली को ब्रह्म-ग्रन्थि कहते हैं।

इन तीन महाग्रन्थियो की दो-दो सहायक ग्रन्थियाँ भी हैं जो मेरुदण्ड स्थित सुषुम्ना नाडी के मध्य मे रहने वाली ब्रह्मा-नाडी के भीतर रहती है। इन्हे ही चक्र भी कहते हैं। रुद्र ग्रन्थि की शाखा ग्रन्थियाँ मूलाधार चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र कहलाती हैं। विष्णु ग्रन्थि की दो शाखाये मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र है। मस्तिष्क मे निवास करने वाली ब्रह्म ग्रंथि के सहायक ग्रन्थि चक्रो को विशुद्ध-चक्र और आज्ञा चक्र कहा जाता है। हठ योग की विधि से इन षट् चक्रो का वेधन किया जाता है।

रुद्र-ग्रन्थि का आकार बेर के समान ऊपर को नुकीला नीचे को भारी, पेंदे में गड्ढा लिए होता है। इसका वर्ण कालापन मिला हुआ लाल होता है। इस ग्रन्थि के दो भाग हैं, दक्षिण भाग को रुद्र और वाम भाग को काली कहते हैं। दक्षिण भाग के अन्तरग गह्वर मे प्रवेश करके जब उसकी झाँकी की जाती है तो ऊर्ध्व भाग में श्वेत रङ्ग की छोटी-सी नाडी हलकासा श्वेत रस प्रवाहित करती है, एक तन्तु तिरछा पीत वर्ण की ज्योति-सा चमकता है। मध्य भाग में एक काले वर्ण की नाडी साँप की तरह मूलाधार से लिपटी हुई है। प्राण वायु का जब उस भाग से सम्पर्क होता है तो डिम-डिम जैसी ध्वनि उसमे से निकलती है। रुद्र ग्रन्थि की आन्तरिक स्थिति की झाँकी करके ऋषियो ने रुद्र का सुन्दर चित्र अङ्कित किया है। मस्तक पर गङ्गा की धारा, जटा मे चन्द्रमा, गलेमें सप, डमरु की डिम डिम ध्वनि, ऊर्ध्व भाग मे नुकीलापन त्रिशूल के रुप मे अङ्कित करके भगवान शकर का एक ध्यान करने लायक सुन्दर चित्र बना दिया। उस चित्र में अलङ्कारिक रूप से रुद्र ग्रन्थि की वास्तविकतायें ही भरी गई हैं। उस ग्रन्थि का वाम भाग जिस स्थिति में है, उसकी वायु शृङ्खलायें, कोण, स्फुलिंग, तरगें, नाडिया जिस स्थिति में है, उसी के अनुरूप काली का सुन्दर चित्र सूक्ष्मदर्शी आध्यात्मिक चित्रकारो ने अङ्कित कर दिया है।

विष्णु ग्रन्थि किस वर्ण की, किस गुण की, किस आकार की, किस आन्तरिक स्थिति की, किस ध्वनि की, किस आकृति की है, यह सब हमें विष्णु के चित्र से सहज ही प्रतीत होता है। नील वर्ण, गोल आकार, शङ्ख ध्वनि, कौस्तुभ मणि, वनमाला यह चित्र उस मध्य-ग्रन्थि का सहज प्रतिबिम्ब है।

ब्रह्मग्रन्थि मध्य मस्तिष्क में है। इससे ऊपर सहस्र शतदल कमल है, यह ग्रन्थि ऊपर से चतुष्कोण और नीचे से फैली हुई है। इसका नीचे का एक तन्तु ब्रह्म रन्ध्र से जुडा हुआ है। इसी को सहस्र मुख वाले

शेष नाग की शय्या पर लेटे हुए भगवान के नाभि कमल से उत्पन्न चार मुख वाला ब्रह्मा चित्रित किया गया है। वाम भाग में यही ग्रन्थि चतुर्भुजी सरस्वती है। वीणा झङ्कार से ओंकार ध्वनि का यहाँ निरन्तर गुञ्जार होता है।

यह तीनों ग्रन्थियां जब तक सुप्त अवस्था में रहती हैं, बँधी हुई रहती हैं, तब तक जीव साधारण दीन-हीन दशा में पड़ा रहता है, अशक्ति, प्रमाद और अज्ञान उसे नाना प्रकार से दुःख देते हैं। पर जब इनका खुलना प्रारम्भ होता है तो उनका वैभव बिखर पड़ता है। मुँह बन्द कली में न रूप है, न सौन्दर्य, न गन्ध है, न आकर्षण पर जब वह कली खिल पड़ती है और पुष्प के रूप में प्रकट होती है तो एक सुन्दर दृश्य उपस्थित हो जाता है। जब तक खजाने का ताला लगा हुआ है, थैली का मुँह बन्द है तब तक दरिद्रता दूर नहीं हो सकती, पर जैसे ही रत्न-राशि का भण्डार खुल जाता है वैसे ही अतुलित वैभव का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है।

अब इन तीनों का अलग-अलग विवेचन किया जाता है।

महासरस्वती

सरस्वती का आशय भौतिक बुद्धि, संवेदना और ज्ञान से है। अतः सरस्वती की पूजा आधिभौतिक बुद्धि, विवेक का उदय, विचार शक्ति तथा ज्ञान (आत्म प्रकाश) के लिए है।

महासरस्वती का स्वरूप और ध्वनि इस प्रकार है—

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशु तुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिनयनामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

अर्थात्—'जो अपने हस्तकमल मे घण्टा, शूल, हल, शङ्ख, मूसल, चक्र, धनुष और वाण धारण करती है, और देह से उत्पन्न, त्रिनेत्रा, मेघा स्थित चन्द्रमा के समान जिनकी मनोहर कान्ति है, त्रिजगत की आधार भूता, शुम्भादि दैत्यो का मदन करने वाली, उस महासरस्वती को हम नमस्कार करते हैं।

महासरस्वती की उत्पत्ति की कथा मार्कण्डेय पुराण मे इस प्रकार वर्णित है —

प्राचीन काल मे जब शुम्भ और निशुम्भ ने इन्द्र का आसन व समस्त अधिकार छीन लिए तो देवताओ ने अपने अधिकारो की प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना की। उन्हे पार्वती के दर्शन हुए जिसके शरीर में 'शिव' का आविर्भाव हुआ। सरस्वती देवी का पार्वती के शरीर कोष से प्रकट होने के कारण 'कौशिकी' नाम हुआ। कौशिकी के रूप लावण्य को देख कर शुम्भ और निशुम्भ के दूतो—चण्ड और मुण्ड ने उन्हें सूचित किया कि इस परम सुन्दरी कन्या का प्राप्त करना दानवपति के लिए महान गौरव की बात होगी। प्रणय प्रस्ताव लेकर सुग्रीव नामक दूत गया। देवी ने अपनी प्रतिज्ञा सुनाई कि जो युद्ध क्षेत्र में मुझ पर विजय प्राप्त कर के मेरे दर्प को दूर करेगा, वही मेरा पति होने का अधिकारी है। शुम्भ निशुम्भ को क्रोध आया और सेना पति धूम्र लोचन को युद्ध के लिए भेजा। वह देवी से मारा गया। चण्ड और मुण्ड भी परलोक पहुँचा दिए गए। तब शुम्भ निशुम्भ अपनी सारी सेना सहित आए और देवी को चारो दिशाओ से घेर लिया। तभी देवी ने घण्टा नाद किया, देवता और उनकी शक्तिया उपस्थित हो गई। उस समय देवी के शरीर से चण्डिका का प्राकट्य हुआ। दोनो ओर से युद्ध आरम्भ हो गया। जब देवी की शक्तियो के भीषण प्रहारो से दैत्यो की सेना कटने लगी तो रक्त बीज मैदान में आया। उसकी विशेषता यह थी कि उसकी जितनी बूँदें रक्त की भूमि पर गिरती थीं, उतने ही दैत्यो की

उत्पत्ति हो जाती थी और वह भी युद्ध करने लगते थे। रक्त बीज के आक्रमणों से देव सेना मे भय छा गया। तव चण्डिका ने उसकी इस प्रकार व्यवस्था की कि काली को आदेश दिया कि उसके रक्तकी एक बूँद भी भूमि पर न गिरने पाए। उसका सारा रक्त वह पीती जाए। इस योजना मे देव-पक्ष मे शक्ति आई और रक्त बीज मारा गया। महा-सरस्वती का यह रूप दैत्य विनाशक है। ज्ञान और विद्या को उज्ज्वल वर्ण होना ही है।

अज्ञान और अविवेक रूपी अन्धकार को नष्ट करना ही उसका मात्र उद्देश्य होना है। उसी का प्रतीक यह महासरस्वती हैं।

सरस्वती रहस्योपनिषद् मे महासरस्वती की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया.—

ऋषयो ह वै भगवन्तमाश्वलायन सपूज्यपप्रच्छु-
केनोपायेन तज्ज्ञान तत्पदार्थविभासकम्।
यदुपासनया तत्व जानासि भगवन् वद॥
सरस्वतीदशश्लोक्या सऋचा वीजमिश्रया।
स्तुत्वा जप्त्वा परा सिद्धमलभ मुनिपु गवा॥

अर्थात् "एक समय की बात है—भगवान् आश्वलायन के निकट ऋषिगण गये और उनकी विधिवत् पूजा कर प्रश्न किया—भगवन्! जिस ज्ञान के द्वारा 'तत्' पदात्मक परमेश्वर का स्पष्ट बोध होता है, उस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हो? आपको जिस देवता की उपासना द्वारा तत्वज्ञान की प्राप्ति हुई है, इसके सम्बन्ध में बताने की कृपा करें।"

भगवान् आश्वलायन ने कहा—'ऋषियो! मैंने वीज मन्त्र सहित दस ऋषियो वाली सरस्वती दशश्लोकी के द्वारा उपासना करते हुए परासिद्धि को प्राप्त किया है।

दस श्लोकी सरस्वती का विवरण इस प्रकार है—

प्रथम श्लोक

या वेदान्तार्थतत्वैकस्वरूपा परमेश्वरी ।
नामरूपात्मना व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "जिस सरस्वती का स्वरूप वेदान्त का सारभूत ब्रह्मतत्व ही है और जो विभिन्न नाम रूपो में प्रकट हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका हो ।"

द्वितीय श्लोक

या सगोपागवेदेषु चतुष्वकेव गीयते ।
अद्वैता ब्रह्मण शक्ति सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "वेदो और उनके अङ्ग उपाङ्गो में जिन एकदेव की स्तुति की जाती है तथा जो परमब्रह्म की अद्वैत शक्ति है, वे भगवती सरस्वती हमारी रक्षिका हो ।"

तृतीय श्लोक

या वर्णपदवाक्यार्थस्वरूपेणाव वर्तते ।
अनादिनिधनाऽनन्ता सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "जो वर्ण, पद, वाक्य मे अर्थो सहित सर्वत्र व्याप्त है, जो आदि अन्त से परे एव अनन्त रूप वाली है वे देवी सरस्वती मेरी रक्षा करने वाली हो ।

चतुर्थ श्लोक

अध्यात्ममधिदैव च देवाना सम्यगीश्वर ।
प्रत्यगास्ते वदती या सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "जो सरस्वती देवताओ की प्रेरणात्मिका शक्ति, अधि-दैवरूपिणी एव हमारे भीतर वाणी रूप मे प्रतिष्ठित हैं, वे भगवती मेरी रक्षिका हो ।'

पंचम श्लोक

अन्तर्याम्यात्मना विश्व त्रैलोक्य या नियच्छति ।
रुद्रादित्यादिरूपस्था सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "जो सरस्वती अन्तर्यामी रूप से लोकत्रय का नियन्त्रण करने वाली हैं तथा जो रुद्र-आदित्य आदि अनेक देवताओं के रूप में अवस्थित हैं, वे हमारी रक्षिका हों ।"

षष्ट श्लोक

या प्रत्यग्दृष्टिभिर्जीवैर्व्यज्यमानाऽनुभूयते ।
व्यापिनी ज्ञप्तिरूपैका सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् 'जो सरस्वती देवी अन्तदृग वाले जीवो के समक्ष विभिन्न रूपों मे प्रकट होती तथा जो ज्ञप्ति रूप से व्याप्त हैं, वे सरस्वती मेरी रक्षिका बनें ।"

सप्तम श्लोक

नामजात्यादिभिर्भेदैरष्टधा या विकल्पिता ।
निर्विकल्पात्मना-व्यक्ता सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "जो देवी सरस्वती नाम-रूप के द्वारा अष्टधा बनी हुई तथा निर्विकल्प रूप में भी प्रकट हैं, वे भगवती मेरी रक्षा करने वाली हों ।

अष्टम श्लोक

व्यक्ताव्यक्तगिर सर्वे वेदाद्या व्याहरन्ति याम ।
सर्वकामदुघा धेनु. सा मा पातु सरस्वती ।।

अर्थात् "व्यक्त अव्यक्त शब्दात्मक वेदादि शास्त्र जिसके स्वरूप का गुणगान करते हैं, जिसके वृहद् रूप का प्रतिपादन करते हैं, वे सर्वकाम दुघा धेनु रूपा सरस्वती हमारा पालन करे ।"

नवम श्लोक

या विदित्वाऽखिल बन्ध निर्मथ्या खिलवर्त्मना ।
योगीयाति पर स्थान सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् "जिन सरस्वती को ब्रह्म विद्या रूप से जान लेने पर योगीराज सभी बन्धनो को काट डालते है, जिससे पूर्ण मार्ग द्वारा उन्हे परमपद की प्राप्ति होती है, वे देवी मेरी रक्षा करने वाली हो ।"

दशम श्लोक

नामरूपात्मक सर्वं यस्यामावेश्यता पुन ।
ध्यायन्ति ब्रह्मरूपैका सा मा पातु सरस्वती ॥

अर्थात् 'हे सरस्वते ! तुम देवियों मे, नदियो मे और माताओ मे भी सर्व श्रेष्ठ हो । हम धन के अभाव से निन्दा को प्राप्त हुए के समान हो रहे हैं - तुम हमें धन रूप में समृद्धि दो ।"

इन दश श्लोको की सरस्वती-उपासना मे दसवाँ श्लोक अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उसमे सब का सार आ गया है, यही सरस्वती तत्व है। इसमे सरस्वती की विभिन्न सज्ञाओ का दिग्दर्शन कराया गया है । वे सज्ञाए है—अम्बितमा, नदीतमा और देवीतमा ।

अम्बितमा में शब्द 'अम्बा' का अर्थ माता है । अम्बितमाका अर्थ है—मातृतमा । उसका भाव यह है कि अखिल ब्रह्माण्ड में जितनी मातृ शक्तिया काम करती हैं, तुम उन सब का नेतृत्व करती हो उन सबमे बडी हो । ज्ञान का महत्व सब से अधिक है ही । जो ज्ञान का मूल स्रोत है, उससे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? अज्ञानान्धकार को दूर करने से श्रेष्ठ और कल्याणकारी कार्य और कौनसा हो सकता है ? जिसे तुम्हारे ऊपर दुग्ध के पयपान करने का सौभाग्य प्राप्त हो वह अपने जीवन को धन्य मानता है, ऐसी हैं हमारी 'अम्बा' सरस्वती ।

'नदितमे' का अर्थ है—समस्त नदियों में श्रेष्ठ हों । 'नद, धातु का अर्थ है—वन्व करना । शब्द के मूल मे गति, क्रिया शीतल रहती है । नदी उसे कहते हैं जो पर्वतादि से निकल कर शब्द करती हुई किसी बडे नद या समुद्र में जा मिलती है । नदी को तो समुद्र मे मिलना ही है, अत जो उसका आश्रय ग्रहण करेगा । वह भी समुद्र ही निश्चय हो जाएगा । नदी का विशेषण—शब्द-गति है । अत जो शब्द ब्रह्म का आश्रय ग्रहण करता है, उसका अन्तिम लय स्थल ईश्वर ही है । यह सरस्वती के आध्यात्मिक भाव से भी लक्षित होता है । बाह्म दृष्टि से तो हम इसके दर्शन प्रयाग मे करते हैं जहाँ गगा, यमुना मिलती हैं । इन तीनो के मिलन को सङ्गम कहा जाता है । योग की भाषा मे यह सगम मूलाधार मे इडा पिङ्गला के साथ सुषुम्णा का होने पर होता है । इस त्रिवेणी मे जो स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त करता, है वह नि सन्देह मोक्ष को प्राप्त करता है । नदीतये का आध्यात्मिक भाव यही है ।

'देवितमे' में 'दिव' धातु का अर्थ है दीप्ति, प्रकाश और ज्योति, अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट करके ज्ञान की ज्योति और प्रकाश देने वाली जितनी भी शक्तियाँ विश्व में विद्यमान हैं, उन सब से तुम श्रेष्ठ हो ।

तभी तो वेद—(ज्ञान) की उत्पत्ति सरस्वती से बताई गई है ।

आत्मन आकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति,
वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोकारो भवति, ओकारद्
व्याहृतिर्भवति, व्याहृतितो गायत्री भवति, गायत्र्या
सावित्री भवति, सावित्र्या सरस्वती भवति
सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोका:

(गायत्री हृदय)

"आत्मा रूपी ब्रह्म से आकाश उत्पन्न होता है । आकाश से

वायु होती है, वायु से अग्नि और अग्नि से ओंकार होता है। ओंकार से व्याहृतियाँ होती हैं। व्याहृतियों से गायत्री, गायत्री, से सावित्री, सावित्री से सरस्वती और सरस्वती से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। वेदों से समस्त लोकों का आविर्भाव होता है।"

सरस्वती की श्रेष्ठता का रहस्य तो उसके अर्थ मे निहित है। सरस्वति शब्द—'सृ' धातु के आगे असुर् प्रत्यय लगाने से 'सरस्' पद सिद्ध होता है। सृ धातु का अर्थ है गति, प्रसारण, विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकार करता है और कहता है—"Ether at rest is darkness ether in motion is light" गति से ही प्रकाश बना रहता है। जहाँ गति का अवरोध होता है, वही अन्धकार और सङ्कोच आ जाता है, वही ज्ञान और विद्या धन का अभाव हो जाता है। धन की प्रचुरता के लिए आवश्यक है कि गति निरतर बनी रहे। सरस्वती से धन सम्पत्ति मांगने का अभिप्राय यही है कि हमारी गति मे कोई बाधा उपस्थित न हो। गति बनी रही तो आधिभौतिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की सम्पतियो का बाहुल्य भी बना रहेगा। गति के अभाव मे अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देगा।

सरिता के जल मे गति रहती है, तभी वह पवित्र व स्वच्छ रह पाता है, गति रुकने पर तो वह सडने लगता है। अत जो प्राणियो के हृदय को 'सरस'- जल की तरह पवित्र व स्वच्छ बनाती है। वह सरस्वती है। सरस्वती पवित्रता की प्रतीक है।

सरस्वती का वर्ण श्वेत है। श्वेत वर्ण मोक्ष का, सात्विकता का प्रतीक है ज्ञान और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। श्वेत वर्ण मे स्वाभाविकता है। इस पर सभी रग सुविधापूर्वक चढ़ाए जा सकते हैं, उतारने पर वही शेष रह जाता है। श्वेत रग ईश्वर की सज्ञा है। यही प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। श्वेत वर्ण अद्वैत के लिए प्रेरित

करता है। श्वेत रंग की उत्पत्ति तब हो पाती है, जब सारे रंग क्रियाशील रहते हैं। जब वह मूर्छित रूप में एक स्थान पर पड़े रहते हैं, तो वह अपने-अपने वास्तविक रूप मे ही दिखाई देते हैं। वे एकता से ही श्वेत बनते हैं। जगत का भेद अस्वाभाविक है। अभेद स्वाभाविक है। द्वैत मे अज्ञानता है। अद्वैत मे ज्ञान और प्रकाश है। यही सरस्वती के श्वेत वर्ण की प्रेरणा और अभिप्राय है।

महासरस्वती पूजन विधि

सरस्वती रहस्योयनिषद् मे सरस्वती की दशश्लोकी उपासना का वर्णन है। भगवान आश्वलायन से ऋषियो ने पूछा तो उन्होंने भगवती सरस्वती की उपासना विधि का वर्णन किया। महर्षि आश्वलायन ने कहा"

इस श्री सरस्वती दशश्लोकी महामन्त्र का ऋषि मैं ही हूं। इसका छन्द अनुष्टुप, देवता वागीश्वरी और बीज यद्वाग है। शक्ति 'देवी वाच कीलक 'प्रणो देवी' है। इसका विनियोग श्री वागीश्वरी देवता के प्रीत्यथ है। अगन्यास श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा, वाग्देवता और महासरस्वती इन नाम मन्त्रो से किया जाता है।

जप से पहिले इस श्लोक के उच्चारण से प्रणाम किया जाता है।

नीहारहारघनसारसुधाकराभा
कल्याणदा कनकचम्पकदामभूपाम्।
उत्तुंगपीनकुचकुम्भमनोहरांगी
वाणी नमामि मनसा वचसा विभूत्यै॥

"कल्याण प्रदायिनी हिम, कपूर मुक्ता अथवा चन्द्रप्रभा के समान शुभ्र कान्तिवती, सुवर्ण के समान, पीले चम्पक पुष्पो की माला से अलङ्कृत, उन्नत सुपुष्ट वक्ष सहित सुन्दर अङ्गवाली वागेश्वरी को

मन और वाणी द्वारा विभूति की सिद्धि के निमित्त नमस्कार करता हूँ।

'ओं प्रणो देवी' मन्त्र के ऋषि भरद्वाज, छन्द गायत्री और देवता सरस्वती है। ओं तन बीज, शक्ति भी है ही, साथ ही कीलक भी है। अर्थात् कार्य की सिद्धि के निमित्त उसका विनियोग और मन्त्र के द्वारा अङ्गन्यास किया जाता है।

प्रथम मंत्र

ओं प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनी वती ।
धी नाम विव्यवतु ।

जो दानादि गुण से युक्त हैं जो अन्नदात्री है, जो अपने शरणा-गत उपासकों की रक्षा करने वाली हैं, वे सरस्वती देवी हमारे लिये तृप्ति प्रदान करें।

'आ नो दिवा' इस मन्त्र के ऋषि अत्रि, छन्द त्रिष्टुप् और देवता सरस्वती है। ह्रीं बीज, शक्ति और कीलक है। इच्छित कार्य की सिद्धि के लिए इसका विनियोग तथा इसी मन्त्र द्वारा न्यास किया जाता है।

द्वितीत मन्त्र

ह्रीं आनो दिवो बृहत पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तुयज्ञम् ।
हव देवी जुजुषाणा घृताची शग्मा नो वाचमुशती शृणोतु ॥

जगन्माता ब्रह्मरूपिणी, चिद्रूपा सर्वव्यापिनी हैं और हमारे लिए अलभ्या है। मा की अव्यक्त अवस्थाएँ भी हमारे लिये अनभिगम्य हैं। मा हमारे ऊपर कृपा करके अपनी अव्यक्त सूक्ष्मावस्था से हमारे यज्ञ (पूजा) की सिद्धि के लिये आविर्भूत होवें। वही यज्ञ की प्रवर्तिका है। हमारी इस स्तुति को वे सादर ग्रहण करें।

'पावकान' इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री, देवता सरस्वती है। बीज, शक्ति और कीलक 'ऐं' है। इसका विनियोग

कामना सिद्धि के निमित्त है तथा इसी मन्त्र द्वारा अंगन्यास करने का विधान है।

तृतीय मन्त्र

श्री पावकान सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञवष्टु धिया वसु ।

सरस्वती देवी हमारी यज्ञ-कामना करें प्रचुर अन्न और धन के लिये। वे अन्न-यज्ञ की अधिष्ठात्री हैं। उनकी कृपा से हम कर्म करके धन प्राप्त करें।

'चोदयत्री०' इस मन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री देवता सरस्वती हैं। बीज,शक्ति और कीलक 'क्लू' तथा कार्य पूर्ति के लिए इसका विनियोग एवं मन्त्र द्वारा ही अंगन्यास किया जाता है ।

चतुर्थ मन्त्र

क्लू चोदायित्री सूनृताना चेन्ती सुमती नाम् ।
यज्ञ दवे सरस्वती।

जो हमें सूनृत वाक्यों का प्रयोग करने प्रवृत्ति देती हैं, तथा जो सुमति और चेतना प्रदान करती है, वही सरस्वती हैं हम। सरस्वती का करेंगे और सरस्वती ही यज्ञ करावेंगी।

'महोअर्ण' इस मंत्र के ऋषि मधुच्छान्दा, छन्द गायत्री, और देवता सरस्वती हैं। बीज, शक्ति और कीलक 'सौ' है। इसमें मन्त्र के द्वारा ही न्यास किया जाता है।

पंचम मंत्र

सौ महो अर्णा सरस्वती प्रचेतयति केतुना ।
धियो विश्वा विराजति ॥

जो सरस्वती उस महार्णव रूप समस्त विश्व का सञ्चालन करती है, जो विश्व की ज्ञान शक्ति स्वरूप है, वे हम पर कृपा करें।

चत्वारि वाक्० ऋषि उचथ्य-पुत्र दीर्घतमा, छन्द त्रिष्टुप, देवता सरस्वती, बीज, शक्ति, कीलक 'ऐं'। मन्त्र द्वारा अङ्गन्यास किया जाता है।

षष्ट मन्त्र

ऐं चत्वारि वाक परिमिता पदानि तानि
विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता
नेङ्गयन्ति तुरीय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥

वाक् की जो चार अवस्थायें परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी है, इनमें से तीन अवस्थायें गुहानिहित (अप्रत्यक्ष) ही जान सकते है जो मनीषी है, योगी है वे दिव्य दृष्टि द्वारा उन अवस्थाओं को प्रत्यक्ष करते हैं। मनुष्य जिस वाक् का प्रयोग करते हैं वह चतुर्थ (वैखरी) अवस्था है।"

'गुहात्रयन्ति० ऋषि भार्गव, छन्द त्रिष्टुप, देवता सरस्वती है। बीज, शक्ति कीलक 'क्लीं' है। मन्त्र द्वारा ही न्यास होता है।

सप्तम मन्त्र

कल यद्वाग्वदन्त्य विचेतनानि
राष्ट्री देवाना निषसाद मन्द्रा।
चतस्त्र लर्ज्जं दुदुरे पयांसि
क्व स्विदस्या. परम जगाम ॥

"वाक् विश्वव्यापिनी है। और उसके द्वारा समस्त भूत व्याप्त है। जो अल्प चैतन्य है, वे भी वाक् (बोली) का व्यवहार करते हैं। देवताओं की भी वही सञ्चालिका है। मा, तुम्हारी परमावस्था को हम

कब जान सकेंगे और कब तुम्हारे पयोधरों से शक्ति चतुष्टय रूपी दूध को प्राप्त कर सकेंगे।

'देवी वाच, ऋषि भार्गव, छन्द त्रिष्टुप् देवता सरस्वती। बीज, शक्ति कीलक 'सो, है। मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये।

अष्टम मन्त्र

सो देवी वाचमजनयन्त देवा-
स्ताविश्वरूपा पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेप मूर्ज दुहाना
धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥

"देवगण जिस मध्यमा वाक् सब प्राणियों के अन्दर उत्पन्न करते हैं, जो क्रमश वैखरी अवस्था में परिणति होती है, वह सरस्वती देवी हमें तृप्त करे। मनुष्य जिस प्रकार गौ को दुह कर कृतार्थ हो जाते है, उसी प्रकार हे माता हम तुम्हें दुहकर कृतार्थ हो।

'उत त्व० ऋषि बृहस्पति, छन्द त्रिष्टुप्, देवता सरस्वती। बीज शक्ति और कीलक 'स'। मन्त्र द्वारा ही न्यास करना चाहिये।

स उतत्व पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्व शृण्वन्न शृणोत्येनाम्
उतो त्वस्मै तन्वा विसस्रे जायेव पत्यव उशती सुवासा ॥

"माता! तुम्हारी कृपा से ही सब बातें करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही विचार करते हैं, तुम्हारी कृपा से ही तुम्हे असत् सिद्ध करते है, परन्तु कोई तुम्हें जान नही सकता। तुम्हे देखते हुए भी देख नही पाता। जिस पर तुम्हारी कृपा होती है वही तुम को देख पाता है।'

'अम्बित मे' ऋषि गृत्समद, छन्द अनुष्टुप् देवता, सरस्वती, बीज, शक्ति कीलक एँ। मन्त्र द्वारा न्यास करे।

दशम मन्त्र

ऐंमम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।

अप्रशता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ।।

"मातृगणों में श्रेष्ठ, नदियों में श्रेष्ठ, दवियों में श्रेष्ठ महा सरस्वती। हम अप्रशस्त के समान अर्थात् धनाभाव में असमृद्धवान् ही रहे हैं। अतएव हे माता। हमें प्रशस्ति अर्थात् धन सम्पति—महानता प्रदान करो।"

महालक्ष्मी

लक्ष्मी का आशय केवल धन-धान्य की वृद्धि ही नहीं है वरन् हर प्रकार की उन्नति, सम्मान, बड़प्पन, आनन्द, ऐश्वर्य का समावेश लक्ष्मी के स्वरूप में ही हो जाता है। अप्पय दीक्षित ने तो अन्तिम मुक्ति को भी 'मोक्ष साम्राज्य लक्ष्मी' कहा है। इसलिए लक्ष्मी पूजा का अर्थ है जगत की स्थिति की केन्द्र रूपी देवी-शक्ति की पूजा।

शास्त्रों का विश्वास है कि शक्ति ही सब कुछ है, वे ही महान् शक्तिशालिनी हैं, इनके बिना ब्रह्म भी कुछ कार्य नहीं कर सकते, निष्क्रिय रहते हैं। इस महान् शक्ति की संज्ञा 'महालक्ष्मी' है। देवी-माहात्म्य में महालक्ष्मी से ही समस्त देवी-देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन उपलब्ध होता है। क्रम इस प्रकार से है—महालक्ष्मी से सरस्वती, लक्ष्मी और महाकाली। सरस्वती से गौरी और विष्णु, लक्ष्मी से लिक्ष्मी और हिरण्यगर्भ, महाकाली से सरस्वती और रुद्र आदि।

महालक्ष्मी का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

ओ अक्षस्रक्परशु गदेषुकुलिश पद्म धनुष्कुण्डिका
दण्ड शक्तिमसि च चर्म जलज घण्टा सुराभाजनम्।
शूल पाशसुदर्शने च दधती हस्तै प्रस [illegible]
[illegible] सैरिभमर्दिनीमिह [illegible]लक्ष्मी [illegible]

[illegible] कमल के [illegible] स्थित [illegible] सुर

मर्दिनी महालक्ष्मी का ध्यान करता हूँ जो स्वहस्त में अक्षमाला, परशु, गदा, वाण, वज्र, कमल, धनुष, कुण्डिका, दड, शक्ति, खड्ग, चर्म, ढाल, शङ्ख, घटा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शन चक्र धारण करती हैं।"

महालक्ष्मी की उत्पत्ति शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित की गई है —

देव और दानवो में सौ वर्ष तक युद्ध होने पर देवता पराजित हुए। दानवों का नेता महिषासुर इन्द्र बना। देवताओं का प्रतिनिधि-मडल ब्रह्माजी के नेतृत्व मे भगवान् विष्णु और शिव के पास गया। इनके शरीर से एक तेजपुञ्ज निकला जिसने नारी का शरीर धारण कर लिया। सभी देवताओ ने अपने अस्त्र शस्त्र इसे समर्पित किए। देवी का महिषासुर से युद्ध हुआ और वह अन्त में मारा गया। इस देवी को महालक्ष्मी नाम दिया गया।

महालक्ष्मी की महिमा शास्त्रो में इस प्रकार वर्णित है—

मत्प्राप्ति प्रति जन्तूना ससारे पततामथ।
लक्ष्मी पुरुषकारत्वे निर्दिष्टा परमर्षिभि ।
ममापि च मत त्वेतन्नान्यथा लक्षण भवेत ॥

(पांचरात्रागम)

"भगवान् कहते हैं कि ससार में जो प्राणी मेरा कृपा पात्र बनना चाहते है, महर्षियो ने सिद्ध किया है कि उनके लिए लक्ष्मी (शक्ति) ही पुरुषकारभूता है। मेरा भी ऐसा ही मत है।"

अह मत्प्राप्त्युपायो वै साक्षाल्लक्ष्मीपति स्वयम्।
लक्ष्मी पुरुषकारेण वल्लभा प्राप्ति योगिनी।
एतस्याश्च विशेषोऽय निगमान्तेषु शब्द्यते ॥

(पांचरात्रागम)

"मैं स्वयम् लक्ष्मीपति ही सत्य हूँ। मेरी पत्नी पुरुषाकार देवी है। मैं उपाय हूँ वह पुरुषाकार है।"

सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी ।
मन्त्रमूर्ते सदा देवि महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥
आद्यन्तरहिते देवि आदिशक्ते महेश्वरि ।
योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि नमोऽस्तुते ॥

अर्थात् 'हे देवि ! आप सिद्धि और बुद्धि दोनो के प्रदान करने वाली हैं तथा सांसारिक सुखो के उपभोग और आवागमन रहित परमार्थ मोक्ष उन दोनो को देने वाली हैं। हे देवि ! आप मन्त्र की मूर्ति वाली हैं। हे महालक्ष्मे ! आपके लिए नमस्कार है। हे देवि ! आप आदि और अन्त इन दोनो से रहित हैं। आप आदि शक्ति और महेश्वरी हैं। योग से समुत्पन्न योग को जन्म देने वाली हैं। हे महालक्ष्मे ! आपको मेरा नमस्कार है।"

या श्री स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मी
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥

अर्थात् "जो श्री अर्थात् महालक्ष्मी स्वयं पुण्यात्माओं के यहाँ अलक्ष्मी बन कर रहती हैं, पापियो के हृदय में बुद्धि रूप में, सत्पुरुषों के हृदय में श्रद्धा, और कुलीनो के हृदय मे लज्जा (पुण्यापुण्य विवेक) रूप से रहती है, उसे मैं प्रणाम् करता हूँ। हे देवी ! तू विश्व का पालन कर।"

लक्ष्मी तन्त्र (अ-१२) में महालक्ष्मी के पाँच कार्यों का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है—

शक्तिर्नारायणस्याहं नित्या देवी सदोदिता ।
तस्या मे पञ्च कर्माणि नित्यानि त्रिदशेश्वर ॥
तिरोभावस्तथा सृष्टिस्स्थितिस्संहृतिरेव च ।

अनुग्रह इति प्रोक्त मदीय कर्मपञ्चकम ॥

अर्थात् "हे त्रिदशेश्वर ! मैं नारायण की शक्ति हूं। मैं नित्या और सदा ही उदित रहती हूं। उससे मेरे नित्य पांच कर्म होते हैं। तिरो-भाव—सृजन—स्थिति—संहार और अनुग्रह —ये ही मेरे पांच कर्म कहे गये हैं।

इसी तन्त्र के (अ ३-१) में उनके वास्तविक स्वरूप का स्पष्टी-करण किया गया है—

नित्यनिर्दोपनिस्सीमकल्याणगुणशालिनी ।
अहं नारायणी नाम सासत्ता वष्णवी परा ॥

यहां महालक्ष्मी स्वयम् कहती हैं कि मैं नित्य, निर्दोष, असीम, कल्याण गुणशालिनी नारायणी नाम की परा सत्ता हूं।

इस तन्त्र के (अ २।११-१२) मे महालक्ष्मी को विष्णु की अहंता नाम की शक्ति कहा गया है—

तस्य या परमा शक्तिर्ज्योत्स्नेव हिमदीविते ।
सर्वावस्था गता देवी स्वात्मभूतानपायिनी ।
अहन्ता ब्रह्मणस्तस्य साहमस्मि सनातनी ॥

यहां महालक्ष्मी इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहती हैं कि उस परब्रह्म की जो चन्द्र की चांदनी के समान समस्त अवस्थाओं में साथ रहने वाली देवी स्वात्मभूता अनपायिनी अहंता नाम की पराशक्ति है, वह सनातनी शक्ति मैं ही हूं।

लक्ष्म्या सहहृपीकेशो देव्या कारुण्यरूपया ।
रक्षकस्सर्वसिद्धान्ते वेदान्तेपु च गीयते ।

अर्थात् 'भगवान् हृषीकेश करुणा के स्वरूप वाली देवी लक्ष्मी के साथ ही रक्षक होते हैं—ऐसा यह सबका सिद्धान्त है और वेदान्त में भी यही गाया जाता है।

अणिमादिक सिद्धीश्च पाताल गुटिकाञ्जना. ।
चतुष्क दिव्य वेताल प्राप्नुयात् कमलार्चनात् ।।

अर्थात् "केवल लक्ष्मी जी की आराधना से ही अणिमादि सिद्धि, पाताल सिद्धि, गुटिका सिद्धि, वेताल सिद्धि और अंजनादि सिद्धि उपलब्ध होती हैं ।

ठीक भी है ज्ञान, प्रेम, वैराग्य, भक्ति उसी की शक्तियाँ हैं। दैवी सम्पत्ति, पट् सम्पत्ति, अर्थ सम्पत्ति सब उन्ही के चमत्कार हैं । लेखन, वक्तृत्व, प्रजापालन और राजशक्ति की नीव में वे ही निहित हैं, वीरता, उदारता, प्रेम, वात्सल्य, साधुता, चतुरता, त्याग, संयम, तप, ब्रह्मतेज मे वही विद्यमान हैं, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु जल की शक्तियाँ उसी मे उद्भूत होती हैं । श्रद्धा, भक्ति, दया, क्षमा, शान्ति, कान्ति उसी के विशेषण हैं। राधा, सीता, सती, दुर्गा, गायत्री, सरस्वती, सावित्री, वाणी आदि उसी के नाम हैं ।

महालक्ष्मी का ध्यान रक्त वर्ण से किया जाता है । रक्त वर्ण रजोगुण का सूचक है । इसीलिए साधारणत महालक्ष्मी को वैभव और सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी के नाम से सम्बोधित किया जाता है । लक्ष्मी का वाहन उलूक है जो शौर्य का प्रतीक माना जाता है । कहा भी है 'उद्योगिन पुरुष सिंहमुपैति लक्ष्मीं' अर्थात् परिश्रमी व्यक्ति को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, आलसी को नही । इसलिए महालक्ष्मी अपने उपासकों को कर्मयोगी और व्यवहार कुशल देखना चाहती हैं ।

महालक्ष्मी कमल के आसन पर स्थित रहती हैं । कमल की विशेषता यह है कि वह कीचड में उत्पन्न होता है, उसके चारो ओर कीचड और गन्दा पानी रहता है परन्तु फिर भी वह निर्मल और पवित्र बना रहता है । चारो ओर के गंदले वातावरण में रह कर भी हम गंदले न हो, गृहस्थ और जगत् में रह कर हम उसमे आसक्त और लिप्त न हो, यही कमलासना महालक्ष्मी की प्रेरणा है ।

महालक्ष्मी पूजन विधि

'सौभाग्यलक्ष्मयुपनिषद्' मे श्री सूक्त की ऋचाओ द्वारा उपासना का इस प्रकार निर्देश दिया गया है—

उन पन्द्रह ऋचाओ के ऋषि इन्दिरा, आनन्द, कदम और चिक्लीत हैं। प्रथम मन्त्र की ऋषि इन्द्रा, शेष मत्रो के ऋषि पुत्र हैं। प्रथम तीन ऋचाओ का छन्द अनुष्टप् चौथी का वृहती, पाँचवीं-छटवी का त्रिष्टुप्, सातवी से चौदहवी तक का अनुष्टप् और प्रस्तार पक्ति हैं। देवता श्री और अग्नि, बीज 'हिरण्यवर्णाम्' शक्ति 'का सोस्मि' है। हिरण्यमयी, चन्द्रा, रजतस्रजा, हिरण्यस्रजा हिरण्या, हिरण्यवर्णा इन नामो को चतुर्थी विभक्तिमे रख कर ओंकार से आरम्भ कर अन्त मे नम उच्चारण करता हुआ न्यास करे।

फिर श्री सूक्त के मत्रो से अङ्ग न्यास करे। मत्र इस प्रकार हैं—

ओ हिरण्यवर्णां सुवर्णरजतस्त्रजाम्।
चन्द्रा हिरण्मयी लक्ष्मी जातवेदो मआवह।१।

ओ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्या हिरण्यं विन्देय गामश्व पुरुपानहम्।२।

ओ अश्वपूर्वां रथमध्या हस्तिनादप्रमोदनीम्।
श्रिय देवी मुपह्वये श्री र्मादेवो जुषताम्।३।

ओ कासोस्मिता हिरण्यप्रकारा
मार्द्रा ज्वलन्ती तृप्ता तर्पयन्तीम्॥
पद्मे स्थिता पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम।४।

ओ चन्द्रा प्रभासा यशसा ज्वलन्ती
श्रिय लोके देव जुष्टा मुदाराम्॥

ता पद्मनेमि शरणमहं प्रपद्ये
अलक्ष्मी मे नश्यता त्वा वृणोमि ।५।
ॐ आदित्यवर्णे तपसोधिजातो
वनस्पति स्तववृक्षोथ विल्व ॥
तस्य फलानि तपसा नुदतु
मायातरा याश्च वाह्या अलक्ष्मी ।६।
ओ उपैतु मा देवसख कीर्तिश्च मणिना सह ॥
प्रादु र्भू तोस्मि राष्ट्रे स्मि कीर्तिवृद्धि ददाते मे ।७।
ओ क्षुत्पिपासामला ज्येष्ठा मलक्ष्मी नाशयाम्यहम ॥
अभूतिमसमृद्धि च सर्वां निर्णुद मे गृहात ।८।
गन्धद्वारा दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ॥
ईश्वरी सर्वभूताना तामिहोपह्वये श्रियम् ।९।
मनस काममाकूति वाच सत्यमशीमहि ॥
पशुना रूपमन्नस्य मयि श्री. श्रयताम्रश ।१०।
ओ कर्दमेन प्रजाभूता मयी सम्भ्रमकदम ॥
श्रिय वासय मे कुले मातर पद्ममालिनीम् ।११।
ओ आपः जन्तु स्निग्धानि चिल्कीत वश मे गृहे ॥
नीचदेवी मातर श्रिय वासय मे कुले ।१२।
आर्द्रां पुष्करिणी पुष्टि पिङ्गला पद्ममालिनीम् ।
चद्रा हिरण्यमयी लक्ष्मी जातवेदो मआवह ।१३।
ॐ आर्द्रां पुष्करिणी पुष्टि सुवार्णां हेममलिनीम् ।
मूर्या हिरण्मयी लक्ष्मी जातवेदो मआवह ।१४।
ॐ ताम्म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ॥
यस्या हिरण्य प्रभूत गावो दास्यो ।
ऽश्वान् विंदेयपुरुषानहम् ।१५।

श्रो य शुचि· प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ॥
श्रिय पञ्चदर्शीच च श्रीकाम सतत जपेत् ।१६।

इसके पश्चात् निम्न मत्र से ध्यान करे—

श्रमलकमलसस्था तद्रज· पुञ्जवर्णा
करकमल घृधतेष्वा भोतियुग्माम्बुजा च ।
मणिकटक विचित्रालकृताकल्पजाले
सकल भुवनमाता सतत श्री श्रियै न ॥

"श्ररुण वर्ण के कमलदल पर विराजमान, कमल-पराग की राशि के समान पीले रग वाली, वर-मुद्रा, श्रभय-मुद्रा श्रौर दो हाथो मे कमल-पुष्प-धारिणी, मणिमय कङ्कणों से श्रलकृत, सब लोको की माता श्रीमहालक्ष्मी हमे निरन्तर श्री से सम्पन्न बनावें ।

इसके बाद 'सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् मे विधि का निर्देश इस प्रकार है—

तत्पीठम् । कर्णिकाया ससाध्य श्रीबीजम् ।
वस्वादित्यकलापद्मेषु श्रीसूक्तगतार्धार्धर्चा तद्त्रर्हियं: शुचिरिति मातृकया च श्रिय यन्त्राङ्गदशश च विलिख्य श्रियमावाहयेत् ।५।
श्रङ्ग प्रथमाऽऽवृति । पद्मादिभिर्द्वितीया । लोकेशैस्तृतीया। तदायुधैस्तुरीयाऽऽवृतिर्भवति । श्रीसूक्तैरावाहनादि । षोऽश सहस्रजप ।६।
सौभाग्यरमैकाक्षर्या भृगुनृचद्गायत्रीश्रिय ऋष्यादय ।
शमिति बीजशक्ति. श्रामित्यादि षऽङ्गम् ।७।
ययादमयो द्विपद्मा भयवरदकरा तप्तकार्तस्वरा भा
शुभाश्राश्रामेभयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्भिरासिच्यमाना ।
रत्नौघाबद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवानलेपनाढ्या

पद्माक्षो पद्मनाभोरसि कृतवसति पद्मगा श्री श्रियै न ।

"पीठ कर्णिका के भीतर साध्य कार्य श्रीबीज लिखे फिर अष्ट-दल, द्वादशदल और षोडशदल वाले पद्मो पर भूवृतो के मध्य में श्रीसूक्त की आधी-आधी ऋचा लिखे । फिर त्रिभूवृत्त मे फलश्रुतिरूप ऋचा लिख कर षोडशार के बीच मे और ऊपर 'अ' से 'स' कार तक मातृका वर्णों का लेखन करे । सबसे ऊपर त्रिभूवृत्त मे वषड् सम्पन्न स्वरिता बीज के सहित श्रीबीज का लेखन करे । इस प्रकार दश अगो वाला श्रीचक्र बनावे । अंग मन्त्रो के द्वारा प्रथम आवरण पूजा की जाती है । पद्म निधियो के द्वारा दूसरी बार आवरण पूजा की जाती है । लोकपालो के द्वारा तृतीय आवरण-पूजा होती है । वज्रादि आयुधो के द्वारा चतुर्थ आवरण पूजा का क्रम है । श्रीसूक्त की ऋचाओ से आवाहनादि कार्य किये जाते हैं । इतना करने के पश्चात् पुरश्चरण के लिये सोलह हजार मन्त्र-जप का विधान है ।"

'एकाक्षर सौभाग्यलक्ष्मी मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द नीचृद् गायत्री और देवता श्री है । बीज 'श्री' और अगन्यास 'श्रा' इत्यादि के द्वारा होता है ।"

"जिन श्रीदेवी ने अपने दो हाथो मे कमल तथा दो मे वर मुद्रा और अभय मुद्रा ग्रहण की हुई हैं, जिनके देह की कान्ति स्वर्ण के समान है, जो शुभ मेघ के समान आभा वाले दो हाथियो की सूँडो मे धारण किये कलशो के जल से अभिषिक्त हो रही हैं, जिन के सिर पर लाल वर्ण के रत्नो का मुकुट सुशोभित है, जिनके अग राग लिपे हुए हैं, जो स्वच्छ वस्त्र वाली हैं, कमल के समान नेत्र वाली, पद्मनाभ निवासिनी, कमलासना, श्रीदेवी हमारे निमित्त परम ऐश्वर्य प्रदान करावे ।"५-८।

तत्पीठम् । अष्टपत्र वृत्तत्रय द्वादशराशिखण्ड चतुरश्र रमापीठ भवति । कर्णिकाया ससाध्य श्रीबीजम् । विभतिरुन्नति

कान्ति सृष्टि कीर्ति सन्ततिर्व्यरिष्टरुत्कृष्टि ऋद्धिरिति प्रणवादिनमोऽन्तैश्चतुर्थ्यन्तैर्नवशक्ति यजेत् ।९।

अङ्गं प्रथमाऽऽवृति । वासुदेवादिर्द्वितीया । बालक्यादिस्तृतीय । इन्द्रादिभिश्चतुर्थी भवति । द्वादशलक्षजप ।१०। श्रीलक्ष्मीर्वरदा विष्णुपत्नि वसुप्रदा हिरण्यरूपा स्वर्णमालिनी रजतस्रजा स्वर्णप्रभा स्वर्ण प्रकारा पद्मवसिनी पद्महस्ता पद्मप्रिया मुक्तालङ्कारा चन्द्रा सूर्या बिल्वप्रिया ईश्वरी भुक्तिर्मुक्तिर्विभूतिऋद्धि समृद्धि कृष्टि पुष्टिर्नन्दा धनेश्वरी श्रद्धा भोगिनी भोगदा धात्री विधात्रीत्यादिप्रणवादिनमोऽन्ताश्चतुर्थ्यन्ता मत्र । एकाक्षरवदङ्गादिपीठम् । लक्षजप । दशाश तर्पणम् । शताश हवनम् । सहस्राश द्विजतृप्ति ।११। निष्कामानामेव श्रीविद्यासिद्धि |नम न कदाऽपि सकामानामिति ।१२।

"तीन वृतो से युक्त रमाबीज यन्त्र अङ्कित करे । अष्टदल कर्णिका मे साध्य रहित श्रीबीज लिखे । प्रारम्भ से ओंकार और अन्त मे नम के योग सहित प्रत्येक नाम के साथ चतुर्थी विभक्ति के प्रयोग द्वारा नौ शक्तियों की पूजा करे। विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीति, सन्नति, व्युष्टि, सत्कृष्टि एव ऋद्धि यही नौ शक्तिया हैं । अग-न्यास द्वारा प्रथम आवरण की पूजा करें । वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का क्रमश पूजन करें। इस प्रकार द्वितीय आवरण पूजा होती है । फिर बालकी आदि की पूजा द्वारा तृतीय आवरण को पूजे । फिर इन्द्रादि देवो और उनके आयुधों के द्वारा चतुर्थ आवरण की पूजा करे। पुरश्चरण के निमित्त द्वादश लक्ष मन्त्र जप का विधान है ।"

त्र्यक्षरी विद्या के पूजन में आदि में ओंकार और अन्त मे नम लगा कर प्रत्येक नाम का चतुर्थी विभक्ति सहित प्रयोग होना है । श्रीलक्ष्मी वरदा, विष्णुप्रिया, हिरण्यरूपा, वसुप्रदा, रजतस्रजा, स्वर्णमालिनी,

स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्रकाश, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, बिल्वप्रिया, चन्द्रसूर्या, मुक्तालङ्कार, ईश्वरी भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, कृष्टि, पुष्टि, धनदा, धनेश्वरी, श्रद्धा, सावित्री, भोगिनी, भोगदा, धात्री, विधात्री, प्रभृति नामों के द्वारा शक्ति-पूजन करे। एकाक्षर मन्त्र के समान ही पीठ-पूजा की जाती है पुरश्चरण के निमित्त एक लक्ष मन्त्र-जप करना चाहिये। जप का दसवां भाग तर्पण, तर्पण का दसवां भाग हवन और हवन का दसवां भाग ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। इस श्रीविद्या की प्राप्ति उन्हीं को होती है जो कामना रहित भाव से उपासना करते हैं। कामना सहित उपासना करने वालों को इसकी सिद्धि नहीं होती।' ।६-१२।

लक्ष्मी का दूसरा मन्त्र है—'ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं" इसकी विधि एकाक्षर मन्त्र की तरह है। केवल ध्यान में अन्तर है। इस मन्त्र का ध्यान इस प्रकार है—

माणिक्यप्रतिप्रभा- हिमनिभैस्तुङ्गैश्चर्भिर्गजै
र्हस्तग्राहितरत्नकुम्भसलिलैर्णसिच्यमाना मुदा।
हस्ताब्जैर्वरदानमम्बुजयुगा भीतीर्दधाना हरे
कांताकांक्षितपारिजातलतिका वंदे सरोजासनाम् ॥

इसका पुरश्चरण १२ लाख जप का है। दशांश हवन करना होता है जो लाल कमलों से सम्पन्न होता है।

निबन्ध ग्रंथ के अनुसार लक्ष्मी का दशाक्षर मन्त्र है—

"नमः कमलवासिन्यै स्वाहा"

इसकी पूजन-विधि में पहिले पीठ न्यास और फिर ऋष्यादि न्यास करे।

शिरसि दक्षऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः।
हृदि श्रियै देवतायै नमः।

करान्ङ्गन्यास—

ओं देव्यं नमोऽङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ओं पद्मिन्यै नमस्तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ओं विष्णुपत्न्यै नमो मध्यमाभ्यां वषट् ।

ओं वरदां नमोऽनामिकाभ्यां हुं ।

ओं कमलरूपायै नमः कनिष्ठाभ्यां फट् ।

इसके बाद निम्न ध्यान करे—

आसीना सरसीरुहे स्मितमुखी हस्ताम्बुजैर्बिभ्रती,
दानं पद्मयुगाभये च वपुषा सौदामिनीसन्निभा ।
मुक्ताहारविराजमानपृथुलोत्तुङ्गस्तनोद्भासिनी
पायाद्वः कमला कटाक्षविभवैरानन्दयन्ती हरिम् ॥

फिर मानसोपचारों द्वारा पूजन और शङ्ख स्थापन होना है । फिर पीठ पूजा करके निम्न प्रकार पूजा करे—

अणिमादिक सिद्धीश्च पाताल गुटिकाञ्जना
चातुष्क दिव्य वेताल प्राप्नुयात् कमलार्चनात्
कमला च भवेद्देवी कमला सर्व देवता ।
कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्व कारणम् ॥
यस्या पूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजनं भवेत ।
कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यवस्थिता ।
परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा ॥
कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजफल लभेत् ।
हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शत्रु महोत्कटम् ।
व्याधय, सर्वारिष्टानि फलायन्ते न संशय ।

आवाहनं

महालक्ष्मि समागच्छ पद्मनाभ पदादिह ।

पूजामि मा गृहाण त्वा त्व देवि सभृता ॥

(स्थिर प्रतिमा मे आवाहन तथा विसर्जन नही होना है)

आसनं

आलयस्तेहिकथित कमल कमलालये ।
कमलेकमलेह्यस्मिन् स्थिति मत्कृपयाकुरु ॥

पाद्यं

गगादि सलिलाधार तीर्थ मत्राभिमत्रिनम् ।
दूरयात्राश्रमहर पाद्य मे प्रतिगृह्यता ॥

अर्घ्यम्

तीर्थोदकैर्महापुण्यै कल्पित पापहारकं ।
गृहाणार्घ्यं महालक्ष्मि भक्तानामुपकारिणि ॥

आचमनं

कर्पूरागुरु समिश्र शीतल जलमुत्तम ।
लोकमातर्गृहाणेद दत्तमाचमन मया ॥

स्नान

स्नानायते महालक्ष्मि कर्पूरागुरुवासित ।
आहृत सर्व तीर्थेभ्य सलिल प्रतिगृह्यता ॥

पंचामृत स्नानम्

पयो दधि घृत देवि मधु शर्करया युतम् ।
पञ्चामृत मया दत्त स्नानार्थं प्रतिगृह्यनाम् ।

शुद्धोदक स्नानम्

ज्ञानमूर्ते भद्रकालि दिव्यमूर्ते सुरेश्वरि ।
शुद्धस्नान गृहाणेद नारायणि नमोस्तुते ।

वस्त्रम्

तन्तुसन्तानसयुक्त कलाकौशल कल्पित ।
सर्वांगाभरण श्रेष्ठ वसन परिधीयता ॥
(अधोवस्त्रम्, कचुक उपवस्त्रञ्च समर्पयामि)

चन्दनम्

मलयाचलसम्पन्न नानापन्नगरक्षित ।
शीतल बहुलामोद चन्दन प्रतिगृह्यता ॥

अक्षतान्

अक्षताश्चसुर श्रेष्ठे कु कमाक्तान् सुशोभनान् ।
मया निवेदितान् भक्त्या गृहाणपरमेश्वरि ॥

सौभाग्य द्रव्यम्

तालपत्र मयानीत हरिद्रा कु कमाञ्जन ।
सिन्दूरालक्तक दास्ये सौभाग्य द्रव्यमीश्वरि ।

अलङ्कारान्

रत्नकङ्कणकेयूरकाञ्चीकुण्डलनूपुर ।
मुक्ताहारं किरीटञ्च गृहाणाभरणानि मे ॥

पुष्पाणि

मिलित्परिमलामोद मत्तालि कुलसकुल ।
गृहाण नन्दनोत्पन्न पद्मे कुसुम सञ्चय ॥

धूपं

गन्धसभारसन्नद्ध नाना द्रुमरसोद्भव ।
सुरासुरनरानन्द धूप देवि गृहाण मे ॥

दूर्वा

विष्ण्वादि सर्व देवाना प्रिया सर्व सुशोभना ।
क्षीर सागर सम्भूते दूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥

दीपं

मार्त्तण्ड मण्डला खण्ड चन्द्र बिम्बाग्नि तेजसा ।
निदान देवि दीपोऽय कल्पितस्तवभक्तित' ॥

नैवेद्यं

देवतालयपाताल भूतलाधारधान्यज ।
षोडशाकार सभार नैवेद्य प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इद फल मया देवि स्थापित पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेञ्जन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूत वदनाभोजभूषण ।
नानागुण समायुक्त ताम्बूल देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीज विभावसो ।
अनन्त पुण्यफलदमत शान्ति प्रयच्छ मे ॥

महानीराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकामा तिमिरस्य निवारण ।
आर्तिक्य कल्पित भक्त या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता. स्मताम् ॥

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोद्भवैर्युतम् ।
पुष्पाजलि मया दत्त गृहाण हरिवल्लभे ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीश्लाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुच्चै श्री. पद्मधारिणी
नमस्ते स.' देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिस्त्वत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्त्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूतेषु लक्ष्मी रूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे। चारों दिशाओं, मध्य में और चारों कोणों में इन मन्त्रों से पूजन करना चाहिये--

'ओ' देव्यै नमो हृदयाय नम । ओ पद्मिन्यै नम शिरसे

धूपं

गन्धमभारसन्नद्ध नाना द्रुमरसोद्भव ।
सुरासुरनरानन्द धूप देवि गृहाण मे ॥

दूर्वा

विष्णवादि सर्व देवाना प्रिया सर्व सुशोभना ।
क्षीर सागर सम्भूते दूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥

दीपं

मार्त्तण्ड मण्डला खण्ड चन्द्र बिम्बाग्नि तेजसा ।
निदान देवि दीपोऽय कल्पितस्तवभक्तित' ॥

नैवेद्यं

देवतालयपाताल भूतलाधारधान्यज ।
षोडशाकार सभार नैवेद्य प्रतिगृह्यताम् ॥

फलं

इद फल मया देवि स्थापित पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेञ्जन्मनि ॥

ताम्बूलं

पातालतलसम्भूतं वदनाभोजभूषण ।
नानागुण समायुक्त ताम्बूल देवि गृह्यताम् ॥

दक्षिणां

हिरण्यगर्भगर्भस्य हेमबीज विभावसो ।
अनन्त पुण्यफलदमत शान्ति प्रयच्छ मे ॥

महानीराजनं

चक्षुर्द सर्वलोकाना तिमिरस्य निवारण ।
आर्तिक्य कल्पित भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥

नमस्कारं

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सतत नमः ।
नम प्रकृत्यै भद्रायै नियता प्रणता. स्मताम् ॥

प्रदक्षिणा

यानि कानि च पापानि जन्मान्तर कृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

पुष्पांजलि

नाना सुगन्धि पुष्पैश्च देशकालोद्भवैर्युतम् ।
पुष्पाजलि मया दत्त गृहाण हरिवल्लभे ॥

प्रार्थना

कमला चपला लक्ष्मीश्लाभूतिर्हरिप्रिया
पद्मा पद्मालया सपदुच्चै श्री. पद्मधारिणी
नमस्ते स ' देवाना वरदासि हरिप्रिये
या गतिस्त्वत्व प्रपन्नाना सामे भूयात्त्वदर्चनात्
या देवी सर्व भूतेषु लक्ष्मी रूपेण सस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नम ॥

फिर आवरण-पूजन करे । चारों दिशाओ, मध्य मे और चारों कोणों में इन मन्त्रो से पूजन करना चाहिये—

'ओ' देव्यै नमो हृदयाय नम । ओ पद्मिन्यै नम. शिरसे

स्वाहा । ओ महाल्क्ष्मै नम शिखायै वषट्। ओ वरदायै नम॰ कवचाय हुँ । ओ कमलारूपायै नमोऽस्त्राय फट्।

इसका पुरश्चरण दस लाख मन्त्र जप का है । पद्मो मे घी, शहद और शक्कर मिला कर १० हजार आहुतियो का हवन करना चाहिये ।

४– महालक्ष्मी का द्वादशाक्षर मन्त्र है—"ओ ऐं ह्री श्री क्ली हसौ जगत्प्रसूत्यै नम॰ ।"

पीठ-न्यास तक पूर्व विधि है । ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है—

शिरसि ब्रह्मणे ऋषये नम
मुखे गायत्री छन्दसे नम
हृदि महालक्ष्म्यै देवतायै नम।

ंच बीजो का न्यास—

अगुष्ठे ॐ एं नम.
तर्जन्या ओ ह्री नम
मध्यमाया ओ श्री नम
अनामिका या ओ क्ली नम
कनिष्ठाया ओ हसौ॰ नम
करतले ओ जगतप्रसूत्यै नम

मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके फिर मन्त्रन्यासादि न्यास करना चाहिये—

मस्तके ओ नम॰, मुखे ह्री नम, हृदये श्रीं नमः, गुह्ये क्ली नम, पदे हसौ नम, त्वाक्मासरक्तमेदास्थिमज्जाशुक्रा॰दिसप्तधातुषु जगत्प्रसूत्यै नम ।

कराङ्गन्यास

एं ज्ञानाय अगुष्ठाम्या नम । ह्रीं ऐश्वर्याय तर्जनीभ्या

स्वाहा । श्रीशक्तये मध्यमाभ्या वषट् । क्ली बलाय अनामिकाभ्या हु । हसौ वीर्याय कनिष्ठाभ्या वौषट् । जगत्प्रसूत्यै नमस्तेजसे करतलपृष्ठाभ्या फट् ।

हृदयादि पञ्चाङ्गन्यास करके निम्न ध्यान करे—

बालार्कद्युतिमिन्दुखण्डविलसत्कोटीरहारोज्ज्वला
रत्नाकल्पविभूपिता कुचनता शाले करैर्मञ्जरीम् ।
पद्म कौस्तुभरत्नमप्यविरत सविभ्रती सस्मिता
फुल्लाभोज विलोचनत्रययुताध्यायेत् परामम्बिका

ध्यान के बाद की पूजन पद्धति पूर्वोक्त है। फिर आवरण-पूजा इस प्रकार है—

ओ शङ्करनन्दनाम नम (दक्षिण भाग मे)
ओ पुरुषवल्वने नम (वाम भाग मे)
ऐं ज्ञानाय नम
ह्लीं ऐश्वर्याय नम.
श्री शक्तये नम.
क्ली बलाय नम
हसौ वीर्याय नम
ओ जगत्प्रसूत्यै नम.
ओ तेजसे नम.

इसका पुरश्चरण १२ लाख है। दशांश हवन श्रीफल या पद्म द्वारा और २० हजार तर्पण करना चाहिए।

५—महालक्ष्मी का आदि मन्त्र है— ओ श्री ह्लीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्री ह्लीं ओ महालक्ष्मी नम"

ऋष्यादि न्यास तक की विधि पूर्वोक्त है। कराङ्गन्यास इस प्रकार है—

श्री ह्री श्री कमले श्री ह्री श्री अगुष्ठाभ्या नमः। श्री ह्री श्री कमतालये श्रीं ह्रीं श्री तर्जनीभ्या स्वाहा। श्री ह्री श्री प्रसीद श्री ह्री श्री मध्यमाभ्या वषट् श्री ह्री श्री प्रसीद श्री ह्रीं अनामिका भ्या हु। श्री ह्री महालक्ष्मि श्री ह्री श्री कनिष्ठाभ्या वौषट्। श्री ह्री श्री नम महालक्ष्मि श्री ह्री श्री अस्त्राय फट्।

हृदयादि षडङ्गन्यास के बाद ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूरारुणकान्तिमब्जवसतिं सौन्दर्यवारा निधिं,
कोटीराङ्गदहारकुण्डलकटीसूत्रादिभिभूषिताम्।
हस्तब्जैर्वसुपात्रमब्जयुगलादर्शौ वहन्ती परा
मावीता परिचारिकाभिरनिशध्यायेत् प्रिया शार्ङ्गिण

आवरण पूजा से पहिले की विधि पूर्वोक्त हैं। आवरण पूजन इस प्रकार करे—

अग्न्यादि कोणो, मध्य और चारो दिशाओ मे इस प्रकार अङ्ग पूजन करना चाहिए—

श्री ह्री श्री कमले श्री ह्री श्री हृदयाय नम । श्री ह्री श्री कमलायये श्री ह्री श्री शिरसे स्वाह। श्री ह्री श्री प्रसीद श्री ह्री श्री शिखायै वषट्। श्री ह्री श्री प्रसीद श्री कवचाय हुं।श्रीं ह्री श्री महालक्ष्मि श्री ह्री श्री नेत्रत्रायाय वौषट्। श्री ह्री श्री महालक्ष्मि श्री ह्री श्रीं अस्त्राय फट्।

इसका पुरश्चरण एक लाख जप का है। बिल्वफल में घी, शक्कर, और शहद मिलाकर हवन करना चाहिये।

लक्ष्मी-कवच

लक्ष्मीर्मे चाग्रतः पातु कमला पातु पृष्ठतः
नारायणी शीर्षदे शेसर्वाङ्गे श्री स्वरूपिणी

लक्ष्मी मेरे अग्रभाग की, कमला मेरे पृष्ठ भाग की, नारायणी मेरे शिर की और श्रीस्वरूपा भगवती मेरे सर्वांग की रक्षा करे ।१।

रामपत्नी प्रत्य गे तुसदावतु रमेश्वरी ।
विशालाक्षी योगमाया कौमारी चक्रिणी तथा ॥
जयदात्री धनदात्री पाशाक्षमालिनी शुभा ।
हरिप्रिया हरिरामा जयंकरी महोदरी ॥
कृष्णपरायणा देवी श्रीकृष्णमनोमोहिनी ।
जयंकरी महारौद्री सिद्धिदात्री शुभंकरी ॥
सुखदा मोक्षदा देवी चित्रकूटनिवासिनी ।
भयं हरेत्सदा पायाद् भवबन्धाद्विमोचयेत् ॥

"भगवान् राम की धर्मपत्नी, विशाल नयन वाली योगमाया कुमारी और चक्रधारिणी लक्ष्मी मेरे सर्वांग की रक्षा करें । वही विजय प्राप्त कराने वाली, धन देने वाली, पाशाक्ष मालिनी, कल्याणी, हरिप्रिया, महारौद्री, सिद्धिदात्री, शुभदायिनी, सुखदायिनी, मोक्षदायिनी, चित्रकूट-वासिनी लक्ष्मी मेरे भय को दूर करती हुई सदा रक्षा करे और संसार सागर की पाश को काट डालें ।२।

कवचन्तु महापुण्यं यः पठेत् भक्तिसंयुतः ।
त्रिसन्ध्यमेकसन्ध्यम्वा [मुच्यते सर्वसंकटात् ॥

तीनों समय अथवा एक समय ही जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस महापुण्यमय कवच का पाठ करते हैं, वे सभी सङ्कटों से मुक्त होते हैं ।३

पठनं कवचस्यास्य पुत्रधनविवर्द्धनम् ।
भीतिविनाशनञ्चैव त्रिषु लोकेषु कीर्त्तितम् ॥

इस कवच का पाठ करने से पुत्र और धन आदि की वृद्धि होती है तथा भय दूर हो जाता है । तीनों लोकों मे इस कवच की महिमा गाई जाती है ।४।

भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनाकुङ्कुमेन तु ।
धारणाद् गलदेशे च सर्वसिद्धिर्भविष्यति ॥

रोचन और कुंकुम से इसे भोजपत्र पर लिख कर कण्ठ में धारण करे तो सर्व सिद्धियों की प्राप्ति होती है ।५।

अपुत्रा लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ।
मोक्षार्थी मोक्षमाप्नोति कवचस्य प्रसादत ॥

इस कवच के प्रभाव से पुत्रहीन को पुत्र, धनहीन को धन और मोक्ष की कामना करने वाले को मोक्ष की प्राप्ति होती है ।६।

गर्भिणी लभते पुत्रं वन्ध्या च गर्भिणी भवेत ।
धारयेद्यदि कण्ठे च अथवा वामबाहुके ॥

कण्ठ अथवा बाँए हाथ में इस कवच को गर्भिणी स्त्री धारण करे तो श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है और वन्ध्या स्त्री पुत्रवती होती है ।७।

य पठेन्नियतो भक्तया स एव विष्णुवद्भवेत ।
मृत्युव्याधिभयं तस्य नास्ति किञ्चिन्महीतले ॥

भक्तिपूर्वक इस कवच का पाठ करने वाले मनुष्य विष्णु के समान, समर्थ होते हैं, मृत्यु और रोग आदि उनको व्याप्त नहीं होते ।८।

पठेद्वा पाठयेद्वापि श्रृणुयाच्छ्रावयेदपि ।
सर्वपापविमुक्तस्तु लभते परमां गतिम् ॥

इस कवच को पढने, पढाने और सुनने वाले मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर परमगति लाभ करते हैं ।९।

विपदि सकटे घोरे तथा च गहने वने ।
राजद्वारे च नौकायां तथा च रणमध्यत. ॥
पठनाद्धारणादस्य जयमाप्नोति निश्चितम् ॥

विपत्ति काल में, घोर सकट के समय, भीषण जगल में, राजद्वार

या नौकारोहण में, युद्धक्षेत्र मे अथवा अन्य कही भी इस कवच को धारण करने वाले मनुष्य निश्चय ही विजयी होते हैं ।१०।

अपुत्रा च तथा वन्ध्या त्रिपक्ष शृणुयादपि ।
सुपुत्र लभेत सा तु दीर्घायुष्क यशस्विनम ॥

वन्ध्या या पुत्रहीना नारी डेढ मास तक यदि इस कवच को श्रवण करे तो वह महातेजस्वी और दीर्घायुष्य पुत्र प्राप्त करती है ।११।

शृणुयाद्य शुद्धबुद्धया द्वौ मासौ विप्रवक्त्त ।
सर्व्वान्कामानवाप्नोति सर्व्वबन्धाद्विमुच्यते ॥

पवित्र मन से दो मास पर्यन्त जो मनुष्य विद्वान ब्राह्मण से इस कवच को सुनता है, उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं और वह सभी प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो जाता है ।१२।

मृतवत्सा जीववत्सा त्रिमास शृणुयाद्यदि ।
रोगी रोगाद्विमुच्येत पठनान्माससमध्यत. ॥

जिस नारी के मरा हुआ बालक होता हो अथवा जिसके हो हो कर मर जाँय, वह तीन महीने तक इस कवच को श्रवण करे अथवा जो रोगी पुरुष इसका पाठ करे वह सभी रोगो से छूट जाते हैं ।१३।

लिखित्वा भूर्जपत्रे च ह्यथवा ताडपत्रके ।
स्थापयेन्नियत्त गेहे नाग्निचौरभय क्वचित् ॥

भोजपत्र या ताडपत्र पर इस कवच को लिख कर जो अपने घर स्थापित करे, उसके लिए अग्नि या चोर आदि का भय नही रहता ।१४।

शृणुयाद्धारयेद्वापि पठेद्वा पाठयेदपि ।
य पुमान्सतत तस्मिन्प्रसन्ना सर्व्वे देवत ।

नित्यप्रति जो इस कवच को सुनता, पढता, दूसरे को पढाता अथवा इसे धारण करता है, उस पर देवता प्रसन्न रहते हैं ।१५।

वहुना किमिहोक्तेन सर्व्वजीवेश्वरेश्वरी ।
आद्या शक्ति. सदा लक्ष्मीर्भक्तानु गृहकारिणी ।
धारके पाठके चैव निश्चला निवसेद् ध्रुवम् ।।

इस कवच का पाठ करने और धारण करने वाले पुरुषो पर, भक्तो पर अनुग्रह करने वाली आद्या शक्ति लक्ष्मी कृपा करती और उनके घर मे निवास करती हैं ।१६।

महाकाली

महाकाली का आशय है दैवी स्वरूपान्तर शक्ति जो कि अनेक को एक लय में कर देती है ।

महाकाली का स्वरूप और ध्यान इस प्रकार है—

खड्ग चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छुल भुशुण्डी शिरः
शङ्ख सदधती करैस्त्रिनयना सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशका सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमला हन्तु मधु कैटभम् ।।

अर्थात् "अपने दस हाथो में खंग, चक्र, गदा धनुष, बाण, परिघि, शूल, भुशुण्डि, कपाल और शख की धारण करने वाली, समस्त अगों में दिव्य आभूषणो से सुसज्जित, नीलमणि के समान शरीर कान्ति वाली, दस मुख और दस पैर वाली महाकाली का मैं ध्यान करता हूँ, जिसका स्तवन भगवान् विष्णु के सो जाने पर मधु और कैटभ को मारने के लिए ब्रह्माजी ने किया था ।

शास्त्रों मे महाकाली की उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित की गई है—

प्रलय काल में भगवान् विष्णु योग-निद्रा में लीन थे कि उनके

कानो से मधु और कैटभ नाम के दो राक्षस उत्पन्न हुए जो ब्रह्मा को मारने के लिए दौडे। ब्रह्मा ने भगवान् की योग-निद्रा भंग करने के लिए भगवान् के नेत्र कमल स्थित योग निद्रा का स्तवन किया। भगवान् विष्णु के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु और हृदय से बाहर निकल कर भगवती उपस्थित हो गई। भगवान् की योग निद्रा भी समाप्त हुई। ब्रह्मा को बचाने के लिए भगवान् राक्षसो से युद्ध करने लगे। यह युद्ध पाँच हजार वर्ष तक चलता रहा परन्तु राक्षस न मारे गए। अन्त में भगवती ने उन राक्षसो की बुद्धि मे मोह उत्पन्न किया, जिससे अभिमान का उदय हुआ और वे भगवान् से वर माँगने की शेखी बघारने लगे। भगवान् ने अवसर का लाभ उठाया और अपने हाथो उनके मारे जाने का वरदान माँगा जो दे दिया गया। भगवान् ने चक्र से उनका सर काट डाला। इस प्रकार ब्रह्मा की रक्षा के लिए भगवती ने काली का रूप धारण किया।

देवी का कालिका नाम क्यों पडा? इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा गया है कि पार्वती के शरीर-कोष मे से एक शिवा निकली जिसके कारण देवी कृष्ण वर्ण हो गई और कालिका नाम पडा।

तस्या विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत् सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमालयकृताश्रया॥

काली के आविर्भाव के उद्देश्य का प्रतिपादन करते हुए मार्कण्डेय पुराण मे कहा गया है कि देवी नित्य हैं परन्तु देवताओ की कार्य-सिद्धि के लिए विशेष रूप ग्रहण करके इस लोक मे अवतीर्ण होती हैं।

देवाना कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते॥

(सप्तशती १।६६)

इनका आद्याशक्ति महामाया के नाम से गुण-गान किया जाता

है। दश महाविद्याओं में सबसे पहला नाम काली का ही आता है। शिव की तरह काली की मूर्तियों के भी आठ भेद हैं परन्तु 'दक्षिणा' अधिक प्रसिद्ध है।

काली का रूप अत्यन्त भयङ्कर है। उसके हाथों में खड्ग और नृमुण्ड हैं। रक्त धारा का प्रवाह, श्मशान में निवास, जलती चिता, शवासना—यह सभी काली के भयङ्कर रूप को प्रदर्शित करते हैं। उसकी बाह्याकृति में ध्वंस और प्रलय के दर्शन होते हैं। यह उनके 'श्मशानालय-वासिनी, शवाशना, शवरूप आदि नामों से ही विदित होता है। मुण्डको-पनिषद् (१।२।४) में भी लिखा है—

काली कराली च मनोजवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्व.॥

अर्थात् "काली अत्यन्त उग्र मन के समान चंचल, लाली युक्त, धूम्र वर्ण, चिंगारियों से युक्त, देदीप्यमान विश्वरुचि—यह लपलपाती सात जिह्वाएँ अग्नि की हैं।

काली का तत्वज्ञान जानने के लिए यह रूप आवश्यक है क्योंकि काली का सम्बन्ध काल से है। काली वह है जो काल पर प्रतिष्ठित है। काल उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की क्षमता नहीं रखता बल्कि उसका सहारा ग्रहण करता है। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करते हुए कहता है—

कालो हि जगदाधार।
"वह काल जगत का आधार है"

काल का दूसरा नाम रुद्र अथवा सदाशिव है। रुद्र उग्रता के प्रतीक और ध्वंस के देवता हैं।

भगवान शङ्कर का निवास स्थान श्मशान है। वे गले में मुण्ड-माला धारण करते हैं। मृत्यु के काल-पाश— महासर्प उनके कण्ठ में भुजाओं में, यज्ञोपवीत में लिपटे हुए हैं। तीक्ष्ण त्रिशूल उनका शस्त्र है। जब वे तीसरा नेत्र खोलते है तब चारो ओर आग बरसती है। कुपित होकर वे तीसरे नेत्र से जिसे भी देखते है वह जल-बल कर भस्म हो जाता है। कामदेव की मृग मरीचिका को एक बार उनने पलक मारते-मारते जलाकर भस्म कर दिया था। उनके वीरभद्र, भैरव एव नन्दीगण कितने विकराल हैं इसकी कल्पना करने मात्र से रोमांच हो उठते हैं। जब प्रलय की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है तब वे ताण्डव नृत्य करने खडे हो जाते हैं। उनके चरणो की थिरकन जैसे-जैसे गतिशील होती चलती है, वैसे ही जराजर्ण कूडा करकट प्रभूत दावानल मे जल-जल कर अनन्त अन्तरिक्ष मे विलय होता चला जाता है। पाप-पुरुष उनके चरणो मे आ गिरता है। शिव-ताण्डव-नृत्य के चित्रो मे एक उकडू उल्टे मु ह पडा हुआ भयभीत जीव दिखाई पडता है। उस की पीठ पर नटराज के चरणों की थिरकन गतिशील होती है। यह पाप-पुरुष मानव अन्त करण मे निवास करने वाले पशु ही हैं, इसी की समय-समय पर असुर शब्द से भर्त्सना की जाती रहती है। ताण्डव नृत्य का प्रयोजन इस पाप पुरुष को परास्त करना, उसकी माया मरीचिका को निरस्त करना ही है।

रुद्र का आभूषण सर्प सहारक शक्ति है। वह काल का प्रतीक है। काल किसी को नहीं छोडता। इस जगत मे उत्पन्न हर वस्तु उसके गले के नीचे उतर जाती है। सर्प क्रोध का भी प्रतीक है। कबीर ने क्रोध को भी काल की सज्ञा दी है।

रुद्र को वेदो में अग्नि का प्रतीक माना गया है। अग्नि का कार्य भस्म करना है और जलाना है। इसलिए भस्म को शिव का चिन्ह माना गया है। मूर्तियों और चित्रो मे वह भस्म विभूषित दिखाए गए हैं।

और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है। महाकाल की छाती पर खड़े होकर महाकाली का अट्टहास करना इसी तथ्य का अलंकारिक चित्रण है।

शिव के हाथो मे त्रिशूल अवश्य है, वे उसका अनिवार्य परिस्थितियो मे प्रयोग भी करते है पर हृदय मे उनके सृजन की असीम करुणा ही भरी रहती है। सृजन की देवी काली उनकी हृदयेश्वरी है। उसे वे सदा अपने हृदय मे स्थान दिये रहते हैं आवश्कतानुसार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो उठती है। ध्वस के अवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उठती है। आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, आरी, सुई आदि तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रो की भी जरुरत पडती है, पर उसमेभी अधिक सामिग्री मरहमपट्टी की जुटानी पडती है। आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसे जाय ? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं अतएव वे रुई, गौज, मरहम पट्टी दवायें आदि भी बडी मात्रा में पास रख लेते है। ध्वस प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी। भगवान् को ध्वस करना पडता है पर मूल मे अभिनव सृजन की आकांक्षा ही रहती है। क्रूर कर्म में भी अनन्त करुणा ही छिपी रहती है। महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है। अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुर्निर्माण मे मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है। बाप द्वारा प्रताडना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौडता है और तब वही उसे अपने अञ्चल में छिपाती, छाती से लगाती, पुचकारती और दुलारती है। मातृ-शक्ति करुणा की स्रोत है। अस्पतालो मे नर्सका काम महिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नही, छोटे बालको

भस्म नाश और संहार का चिन्ह है क्योंकि जलने के बाद का यह अन्तिम रूप है। रुद्र को श्मशान प्रिय है, वे प्रलय का साकार रूप हैं। इसलिए शास्त्रों ने काल की परिभाषा करते हुए कहा है—

कलनात्सर्वभूतानाम् ।

जो सर्वभूतों का नाश करता है, वह काल कहलाता है। यह काल ही नहीं महाकाल कहलाता है। काली तत्व का विवेचन करते हुए बताया गया है कि वह काल तत्व पर प्रतिष्ठित रहती है।

महाकाली को पुराणों में इस प्रकार चित्रित किया गया है कि महाकाल भूमि पर लेटे हुए हैं और वे उनकी छाती पर खड़ी अट्टहास कर रही हैं। यों पति की छाती पर पत्नी का खड़ा होना अटपटा-सा लगता है। पर पहेलियों में यह अटपटापन जहाँ कौतूहल वर्धक एवं मनोरंजक होता है वहाँ ज्ञान वर्धक भी। कबीर की उल्टाबाँसी और खुसरो की 'मुकरनी, पहेलियों के रूप में सामने आती हैं और अपना रहस्य जानने के लिए बुद्धिमत्ता को चुनौती देती हैं। भूमि पर लेटे हुए शिव की छाती पर काली का खड़े होकर अट्टहास करना, घटना के रूप में घटित हुआ था या नहीं इस झंझट में पड़ने की अपेक्षा हमें उसमें सन्निहित मर्म और तथ्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

ध्वंस एक आपत्ति धर्म है—सृजन सनातन प्रक्रिया। इसलिए ध्वंस को रुकना पड़ता है, थक कर लेट जाना और सो जाना पड़ता है। तब सृजन को दुहरा काम करना पड़ता है। एक तो स्वाभाविक सृष्टि संचालन की रचनात्मक प्रक्रिया का संचालन—दूसरे ध्वंस के कारण हुई विशेष क्षति की विशेष पूर्ति का आयोजन। इस दुहरी उपयोगिता के कारण ध्वंस के देवता महाकाल की अपेक्षा स्वभावतः सृजन की देवी महाकाली का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। शिव जब पड़े होते हैं। तब शक्ति खड़ी है। शिव पीछे पड़ जाते हैं शक्ति आगे आती हैं। शिव सोये होते हैं और शक्ति जागृत रहती है। शिव का महत्व घट जाता है

और शक्ति की गतिशीलता पूजी जाती है। महाकाल की छाती पर खडे होकर महाकाली का अट्टहास करना इसी तथ्य का अलकारिक चित्रण है।

शिव के हाथो मे त्रिशूल अवश्य है, वे उसका अनिवार्य परिस्थितियो मे प्रयोग भी करते है पर हृदय मे उनके सृजन की असीम कारुण ही भरी रहती है। सृजन की दवी काली उनकी हृदयेश्वरी है। उसे वे सदा अपने हृदय मे स्थान दिये रहते हैं आवश्कतानुसार वह मूर्तिमान गतिशील और प्रखर हो उठती है। ध्वस के अवसर पर तो उसकी आवश्यकता और भी अधिक हो उटती है। आपरेशन के समय डाक्टर को चाकू केची, आरी, सुई आदि तीक्ष्ण धार वाले शस्त्रो की भी जरुरत पडती है, पर उसमेभी अधिक सामिग्री मरहमपट्टी की जुटानी पडती है। आपरेशन के समय किये गये घाव को भरा कैसे जाय ? इसकी आवश्यकता भी डाक्टर समझते हैं अतएव वे रुई, गोज, मरहम पट्टी दवायें आदि भी बडी मात्रा में पास रख लेते है। ध्वस प्रक्रिया आपरेशन है तो निर्माण मरहम पट्टी। भगवान् को ध्वस करना पडता है पर मूल मे अभिनव सृजन की आकांक्षा ही रहती है। क्रूर कर्म में भी अन त करुणा ही छिपी रहती है। महाकाल की आन्तरिक इच्छा सृजनात्मक ही है, यही उनकी हृदयगत आकांक्षा है। अस्तु शक्ति को शिव के हृदय स्थान पर इस प्रकार अवस्थित दिखाया गया है मानो वह हृदय से ही निकल कर मूर्तिमान हो रही हो।

इस चित्रण का एक और भी उद्देश्य है कि विनाश के उपरान्त होने वाले पुर्ननिर्माण मे मातृ शक्ति का ही प्रमुख हाथ रहता है। बाप द्वारा प्रताडना दिये जाने पर बच्चा मा के पास ही दौडता है और तब वही उसे अपने अञ्चल में छिपाती, छाती से लगाती, पुचकारती और दुलारती है। मातृ-शक्ति करुणा की स्रोत है। अस्पतालो में नर्सका काम महिलायें जैसा अच्छी तरह कर सकती हैं उतना पुरुष नही, छोटे बालको

की शिक्षा देने वाले बाल मन्दिर—शिशु सदनो में महिलाओं द्वारा जैसी अच्छी तरह शिक्षण दिया जा सकता है, उतना पुरुषो द्वारा नही। कारण कि उनके अन्दर स्वभावत. जिस करुणा, दया, ममता, सेवा, सौजन्य एव सहृदयताका बाहुल्य रहता है, उतना पुरुषमे नही पाया जाता पुरुष प्रकृतित कठोर है और नारी कोमल है। दोनो का सम्मिश्रण होने से एक सतुलित स्थिति बनती है अन्यथा एकाकी रहने वाले पुरुष सेना जैसे कठोर कार्यों के लिये ही उपयुक्त सिद्ध हो सकते हैं।

यदि वर्तमान अवाछनीय परिस्थितियों की जिम्मेदारी नर-नारी मे से किसकी कितनी है इसका विश्लेषण किया जाय तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि ६० प्रतिशत उद्धतता पुरुषो द्वारा बरती गई है, क्रूर कर्मों और दुर्भावनाओं के अभिवर्धन में उन्ही का प्रमुख हाथ हैं। अपराधी, दुष्ट, दुरात्मा और दडभोक्ता व्यक्तियो मे पुरुषो की ही सख्या ६० प्रतिशत होती है। वर्तमान उद्धतता की जिम्मेदारी प्रधानतया पुरुषो की होने के कारण दड भाग की उन्ही के हिस्से मे आयेगा। भावी विनाश मे प्रताडना उन्ही के हिस्से मे अधिक आने वाली है। नारी क्रूर कर्मों से बची रहती है उनमें उसका योगदान नगण्य होता है इसलिये वह अपनी आध्यात्मिक गरिमा के कारण पुरुष का अपेक्षा कही अधिक पवित्र, उज्ज्वल, सौम्य, रहने के कारण दुर्दैव की कोपभाजन नहीं बनती। शिव की छाती पर शक्ति के खडे होने का तात्पर्य यह भी है कि आत्मिक श्रेष्ठता की कसौटी पर कसे जाने पर नारी की गरिमा ही अधिक भारी बैठती है। वही ऊपर रहती है। पुरुष इस दृष्टि से जब कि गिरा हुआ सिद्ध होता है तब नारी अपनी श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हुई गर्वोन्नत प्रसन्न वदन खडी होती है।

भावी नव निर्माण मे, इमारतो, सडकों, कल कारखानो सेना अथवा शास्त्रो का अभिवर्धन प्रधान नहीं, वरन् भावनात्मक निर्माण की प्रधानता रहेगी। इस क्षेत्र में नारी का ज्ञान, अनुभव तथा अधिकार

असंदिग्ध है । इस लिये स्वभावत जो जिसका अधिकारी है वही इस उत्तरदायित्व को वहन करेगा । भावी पुनरुत्थान मे प्रधान भूमिका नर की नही नारी की होगी । विनाश की भूमिका का सरजाम जटाने मे पुरुश आगे रहेगा, क्रूर कर्मों मे उसी की बुद्धि आगे चलती है। सामान्य जीवन आनन्द की हत्या उसी ने की है । विश्व-शान्ति पर आक्रमण उसी ने किया हैं । अब अपनी दुष्टता की पूर्णाहुति मे भी अपनी कला क दो-दो हाथ दिखावे तो उसमे कोई आश्चर्य की बात नही । लेकिन भावनात्मक नवनिर्माण की, इसके तुरन्त बाद ही जिस पुनरुत्थान की आवश्यकता पडेगी उसे वह पूरा न कर सकेगा । यह कार्य नारीको करना है । इसी तथ्य को प्रतिपादित करती हुई महाकाल के थक जाने पर उसकी छाती पर महाकाली का हासविलास होना चित्रित किया गया है

पुरुष मे अन्य विशेषताये कितनी ही क्यो न हो, भावनात्मक क्षेत्र मे, आध्यात्मिक क्षेत्र मे—नारी से वह बहुत पीछे है । यही कारण है कि साधना क्षेत्र मे नारी ने जब भी प्रवेश किया है । वह पुरुष की तुलना मे सौ गुनी तीव्र गति से आग बढी है । उसे इस दिशा मे अधिक शीघ्र और अधिक महत्वपूर्ण सफलतायें मिलती है। माता को कन्याय अधिक प्रिय होती हैं, उन्हे वे दुलार भी अधिक करती हैं और अनुग्रह भी । अध्यात्म की अधिष्ठात्री महाशक्ति का अवतरण अनुग्रह यदि नारी साधको पर अधिक सरलता से, अधिक मात्रा मे होता है तो यह उचित ही है । भावी नव निर्माण में जिस स्तर की क्षमता, योग्यता, पूंजी एव तत्परता की आवश्यकता होगी वह स्वभावत नारीमे ही प्रचुर तापूर्वक मिलेगी । इसलिये मर्माहत पुरुष को कमक कराह के साथ विश्राम करने देकर नारी ही आगे बढ़ेगी और वही पुनरुत्थान की परिस्थितियो का सृजन करेगी । समय-समय पर ऐसा होता भी आया है । पुरुष अध्यात्मवादियो की सफलताओ मे प्रधान भूमिका नारी की रही है । वह सहयोग, ख्याति प्राप्त भले ही न कर सकी हो, पर तथ्य की दृष्टि से यही सुनिश्चित हैं कि आत्म बल के उपार्जन मे किसी भी पुरुष का अद्भुत, आसाधारण सहयोग किन्ही नारियो का ही रहा है।

राम की महिमा का श्रेय सीता और कौशिल्या को कम नही है। कौशिल्या के प्रशिक्षण तथा सीता के सहयोग को यदि हटा दिया जाय तो राम का वर्चस्व फिर कहाँ रह जायगा ? सीता के बिना राम का चरित्र ही क्या रह जाता है। उनकी सारी गतिविधियो के पीछे सीता ही आच्छादित है। कृष्ण की बाँसुरी में राधा ही रहती थी। देवकी और यशोदा का वात्सल्य, कुन्तीका प्रोत्साहन और आशीर्वाद, द्रौपदीकी श्रद्धा, गोपियो का स्नेह इन सब तत्त्वो ने मिल कर कृष्ण के कृष्णत्व की पूर्ति की थी। इन उपलब्धियो के अभाव में बेचारे कृष्ण कुछ कर पाते या नही इसमे सन्देह ही रहता।

बुद्ध का आध्यात्मिक प्रशिक्षण उनकी मौसी द्वारा सम्पन्न हुआ था। तपस्या के बाद लौटे तो उनकी पत्नी यशोधरा भी अनुगामिनी होकर आई। अम्बपाली के आत्म-समर्पण के उपरान्त तो भगवान् का प्रयोजन हजार गुनी गति से तीव्र हुआ। प्रतिभाशाली व्यक्ति जहाँ आते हैं वहाँ किसी भी दिशा में अभिवृद्धि होती है पाण्डवों की महान् भूमिका में द्रौपदी का 'रोल' अत्यन्त प्रभावी है। एक नारी द्वारा पाँच नर-रत्नो को प्रचुर बल प्रदान किया गया, यह नारी-शक्ति भाण्डागार का चिन्ह है। मदालसा ने अपने सभी पुत्रों को अभीष्ट शिक्षा से सुसम्पन्न किया था। एक नारी असख्य मानव प्राणियो को नर से नारायण बनाने मे समर्थ हो सकती है। उसकी भावनात्मक सृष्टि इतनी परिपूर्ण है कि कृष्ण का सामयिक अस्तित्व न होने पर भी मीरा ने उन्हे पति रूप मे साथ रहने और नाचने के लिए मूर्तिमान कर लिया था।

प्राचीन काल के तपस्वी तत्त्वदर्शी एव महामनीषी ऋषियो मे से प्रत्येक सपत्नीक था। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सभी देवताओ की पत्नियां, सरस्वती लक्ष्मी काली उनके वर्चस्व को स्थिर रखनेमें आधार-स्तम्भ की तरह हैं। नारी के रमणी रूप की ही भर्त्सना की गई है अन्यथा उसकी समग्र सत्ता, गङ्गा की तरह पवित्र, और अग्नि की तरह

प्रखर है । पिछले दिनों भारतीय राजनैतिक क्रांति का नेतृत्व करने में ऐनी बेसेन्ट की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । लक्ष्मीबाई सरोजिनी नायडू आदि कितनी ही महिलायें इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम कर चुकी है । इस क्रान्ति युग की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने मे जिन महामानवो ने गुप्त किन्तु अद्भुत पुरुषार्थ किया है उनमे रामकृष्ण परमहंस और योगी अरविन्द मूर्धन्य है । दोनो को नारी का शक्ति-सान्निध्य प्राप्त था । परमहंस के साथ महा योगिनी—भैरवी तथा पत्नी शारदामणि और अरविन्द के साथ माताजी का जो अनुपम सहयोग हुआ उसी के बल-बूते पर वे लोग अपनी महान् भूमिका सम्पादित कर सके । ऐसे असंख्य उदाहरण भारत व विदेशोमे विद्यमान हैं जिनसे स्पष्ट है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में, भावनात्मक उपलब्धियो मे नारी का वर्चस्व प्रधान है और इसी के सहयोग से नर का इस दिशा मे महान सफलता मिली है । शिव की छाती पर शक्ति का खड़े होना इसी तथ्य का उद्घाटन करता है कि अन्य क्षेत्रो में न सही कम से कम आत्मबल की दृष्टि मे तो नारी की गरिमा असंदिग्ध है ही ।

भावी नव निर्माण निकट है । उसकी भूमिका मे नारी का योगदान प्रधान रहेगा । अगले ही दिनो कितनी ही तेजवान् नारियाँ अपनी महान् महिमा के साथ वर्तमान केंचुल को उतार कर सार्वजिनक क्षेत्र मे प्रवेश करगी और उनके द्वारा नव निर्माण अभियान का सफल संचालन सम्भव होगा । भावी संसार मे, नये युग मे, हर क्षेत्र का नेतृत्व नारी करेगी । पुरुष ने सहस्राब्दियो तक विश्व नेतृत्व अपने हाथ मे रख कर अपनी अयोग्यता प्रमाणित कर दी । उसकी क्षमता विकासोन्मुख नही विनाशोन्मुख ही सिद्ध हुई । अब वह नेतृत्व उसके हाथ मे छिन कर नारी के हाथ जा रहा है । हमें उसमे बाधक नहीं सहायक बनना चाहिए । खिन्न नहीं प्रसन्न होना चाहिए । विरोध नही स्वागत करना चाहिये । भावी परिस्थितियो के अनुकूल हमे ढलना चाहिये । इसी का

सकेत उस चित्रण मे सन्निहित है जिसमे महाकाल की छाती पर महाकाली को प्रतिष्ठापना प्रदर्शित की गई है।

काली का श्याम वर्ण क्यो ? श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक है। ध्वस के सभी चिन्ह उसमे दिखाई देते हैं। मृत्यु का रङ्ग भी काला दिखाया जाता है। मृत्यु के देवता यमराज का शरीर भी श्याम वर्ण से चित्रित किया जाता है। काले रग की यह विशेषता है कि उस पर कोई भी दूसरा रग नही चढ सकता और जब काला रग किसी वस्तु पर चढ जाता है तो वह उतरता भी नही। इसमें सभी तरह के रग समा जाते हैं और यह सभी पर अपना प्रभुत्व रखता है। प्रलय की स्थिति मे सारा जगत उसमें समा जाता है परन्तु उसमे कोई परिवर्तन नही होता।

ऋग्वेद १।१६४।४७ मे सूर्य को कृष्ण कहा गया है। ऋग्वेद १।३५।२ मे पृथ्वी को भी कृष्ण कहा है। वेदो मे आकर्षण शक्ति से मुक्त वस्तु को भी कृष्ण कहा गया है। ससार मे सबसे अधिक आकर्षक शक्ति सूर्य मे होती है। इस लिए उसे कृष्ण कहा गया है।

जिन ग्रहो को सूय सञ्चलित करते हैं, उनको भी कृष्ण कहा गया है, क्योकि उनमें भी आकर्षण शक्ति होती है। यदि उनने यह शक्ति न होती तो वह नियमबद्ध रूप से सूर्य के चारो ओर न घूमते रहते। सूर्य उन्हें अपनी ओर खीच लेता और भस्म कर देता। इसीलिए पृथ्वी को भी कृष्ण कहा गया है।

बाह्य जगत मे पृथ्वी सूर्य और उनके ग्रहादि विश्व की महान् शक्तियो के द्योतक हैं। अत काली का यह कृष्ण वर्ण शक्ति प्रतिष्ठा को चित्रित करता है। कहते हैं—सृष्टि मे पहले चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार था। यह स्थिति भी काली की ही है।

यह काली का रहस्यात्मक चित्रण है।

काली पूजन विधि

तत्र कालीतन्त्रे। कामत्रय वह्निसस्थ रतिविन्दुविभूषितम।

क्रूर्म युग्म तथा लज्जायुगल तदनन्तरम् ।।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्
अन्ते वह्नि वधू दद्याद्विद्याराज्ञी प्रकीर्तिता ।।
मन्वर्य माहृया मले । ककारोज्जवलरूपत्वात्केवल मोक्ष-
दायिनी । ज्वलनार्थ समायोगात्सर्व तेजोमयी शुभा ।।
मायात्रयेण देवेशि सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
बिन्दुना निष्कलत्वाच्च कैवल्यफल दायिनी ।।
बाजत्रया शाम्भवी सा केवल ज्ञानचित्कला ।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्द राशिप्रबोधिनी ।।
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी ।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारणी ।
स्वाहया जगता माता सर्व पाप प्रणाशिनी ।।

काली तन्त्र के अनुसार काली का मन्त्र यह है—"क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।" यह सब मन्त्रों मे श्रेष्ठ मन्त्र है। इसके वर्णों का अभिप्राय इस प्रकार है—जल रूपी ककार मुक्ति का देने वाला है, अग्नि रूपी रेफ सर्वतेजो-मयी है। क्रीं क्रीं क्रीं —यह सृजन, स्थिरता और प्रलय के द्योतक हैं। बिन्दु निष्कल ब्रह्म रूप है, अतः यह कैवल्य प्रदान करता है। हूं हूं—शब्द ज्ञान प्रदान करते हैं। ह्रीं ह्रीं यह दोनो बीज सृजन, स्थिरता और प्रलय का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब दक्षिण कालिके को सम्बोधन किया जाता है तो इसमे देवी की समीपता अभि-प्रेत है। स्वाहा से विश्व के मातृ रूप का बोध होता है। यह सर्व पापो को हरने वाला है।

दक्षिण कालिका के अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—क्रीं एकाक्षर मन्त्र है। यह महामन्त्र सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला है। ह्रीं दूसरा एकाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र से उपासना करने पर उपासक सब

शास्त्रो का ज्ञाता हो जाता है इन दोनो एकाक्षर मन्त्रों का पुरश्चरण एक लाख मन्त्र जप का है और दशाश हवन का विधान है । कुल चूडामणि तन्त्र के अनुसार दिन मे एक लाख मन्त्र और रात में एक लाख मन्त्र जप का विधान हैं। रात्रिजप मे दक्षिण कालिका की सिद्धि होती है।

काली तन्त्र में काली के अन्य मन्त्र भी लिखे है—

ओ ह्री ह्री हू हू क्रीं क्री दक्षिणे कालिके क्री क्री हू हू ह्री ह्री ।

इसका एक लाख का पुरश्चरण होता है और दशाश हवन । विश्वसार तन्त्र के अनुसार उपरोक्त मन्त्र मे 'स्वाहा' मिलाने पर यह २३ अक्षर का मन्त्र हो जाता है । इस २३ अक्षर वाले मन्त्र मे से जब प्रणव को अलग कर दिया जाता है तो यह २२ अक्षर का बन जाता है, यथा—

ह्री ह्री हूं हूं क्री क्री दक्षिण कालिके क्री क्री क्री हूं हूं ह्री ह्री स्वाहा ।

'प्रणव' और स्वाहा हटा देने पर २० अक्षर का मन्त्र बन जाता है ।

'ओ ह्री क्री मे स्वाहा' यह मन्त्रों का राजा विख्यात है। इसका नाम काली हृदय है ।

विश्वसार तन्त्र में कुछ और मन्त्रो का निर्देश है—

'क्री ह्री ह्रीं' यह महाकाली का महामन्त्र है जिसको स्वयं महाकाली ने कहा है ।

क्री क्री क्री स्वाहा ।
क्री क्री क्रीं फट् स्वाहा ।
ऐ नम क्री ऐं नम क्री कलिकायै स्वाहा ।
क्रीं क्री क्री ह्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ह्री दक्षिण कालिके फट् ।

क्री क्री हू हू ह्री ह्री दक्षिण कालिके क्री क्री हू हू ह्री ह्रीं स्वाह ।

क्री क्रीं क्री हू हू ह्री ह्री स्वाह ।

क्री दक्षिण कालिके स्वाह ।

क्री हूँ हूँ ह्री क्री हूँ हूँ ह्री स्वाहा ।

क्री क्री हूँ हूँ ह्री ह्री क्री क्री हूँ हूँ ह्री ह्री स्वाहा ।

क्री क्री क्री ह्री ह्री हूँ हूँ क्री क्री क्री ह्री ह्री हूँ हूँ स्वाहा ।

नम ऐं क्री क्री कलिकायै स्वाह ।

नम आं आं क्री क्री फट् स्वाहा कलिके हू ।

क्री क्री क्री स्वाहा ।

क्रीं क्री क्री फट् स्वाहा ।

क्री क्री क्री क्री क्री स्वाहा ।

ऐ नम क्रीं क्री कलिकायै स्वाहा ।

क्री ह्री ह्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ह्री दक्षिणे कालिके फट्

क्री क्री हूँ हूँ ह्री ह्री दक्षिणे कलिके क्री क्री हूँ हूँ
ह्री ह्री स्वाहा ।

क्री स्वाहा ।

क्री हूँ ह्री स्वाहा ।

क्री क्री क्री हू हू ह्री ह्री स्वाहा ।

क्री दक्षिणे कालिके स्वाहा ।

क्री हू ह्री क्री हूँ ह्री स्वाहा ।

क्री क्री हूँ हूँ ह्रीं ह्री क्री क्री हूँ हूँ ह्री ह्रीं ह्री स्वाहा ।

क्री क्री क्री हूँ हू ह्री क्री क्री क्री क्री हूँ हूँ ह्री ह्री स्वाहा ।

मायातन्त्र मे यह मन्त्र लिखा है —

नम ऐं क्रीं क्रीं कलिकायै स्वाहा ।

तन्त्रान्तर मे यह मन्त्र है —

नम आँ क्रॉं आं क्रों फट् स्वाहा कालि कालिकें हूं ।

न्यास

ऋष्यादि न्यास—

शिरसि महाकाल् भैरव ऋषये नम (दांये अंगूठे से)
मुखे उष्णिक् छन्दसे नम (मध्यमा अनामिका मे)
हृदये श्री दक्षिणकालिकादेवताय (नम त० म० अनामिका कनिष्ठा से) ।
गुह्ये क्रं बीजाय नम (तत्वमुद्रा से)
सर्वाङ्गे र कीलकाय नम (करतलद्वय से)

करन्यास—

क्रां अंगुष्ठाभ्यां नम , क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा,
क्रूं मध्यमाभ्यां वषट् , क्रैं अनामिकाभ्यां हुँ ।
क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट् , क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

षडङ्गन्यास-

क्रां हृदयाय नम. (अनामिका मध्यमा तर्जनी मे)
क्रीं शिरसे स्वाहा ,, , ,, ,,
क्रूं शिखायै वषट् (मूठी बांधकर अंगूठे से)
क्रैं कवचाय हुँ (दोनो करतलो मे)
क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् (तर्जनी मध्यमा, अनामिका से)।
क्रः अस्त्राय फट् (दक्ष तर्जनी मध्यमा मे बांयी हथेलीमे फट्-कार कर) ।

व्यापक न्यास

इस मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए ३, ५, ७ बार शिर से पैर तक और फिर पैर से शिर तक करे।

अंतर्मातृका न्यास

धूम्राभ विशुद्ध चक्र के १६ दलों में १६ स्वरों के आदि में 'ओं' और अन्त में नमः मिलाकर हर दल में न्यास करना चाहिये। यथा 'ओं अं नमः' आदि मूँगे की तरह लाल रङ्ग के अनाहत चक्र के १२ दलों में 'क' से लेकर 'ठ' तक के १२ व्यञ्जनों को इसी तरह एक व्यञ्जन का एक एक दल में न्यास करना चाहिए। नील जीमूत वर्ण के मणिपूर चक्र के १० दलों में 'ड' से 'फ' तक के १० अक्षरों का पहले की तरह न्यास करना चाहिए। विद्युत् की तरह रंग वाले स्वाधिष्ठान चक्र के ६ दलों में 'ब' से 'ल' तक ६ वर्णों का पहले की तरह न्यास करे। सोने की तरह लाल रंग के मूलाधार चक्र का पहले की तरह न्यास करे। चंद्रमा की तरह रंग वाले आज्ञाचक्र के दोनों दलों में 'ह' और 'क्ष' वर्णों का पहले की तरह न्यास करना चाहिए।

बहिर्मातृका न्यास

सृष्टि, स्थिति और संहार इसके तीन भेद हैं। यामल में लिखा है कि गृहस्थों के लिए स्थिरता, ब्रह्मचारियों के लिए स्थित्यन्ता और यती व वाणप्रस्थों के लिए संहारान्ता है।

सृष्टि मातृका न्यास

मानसिक रूप से पुष्पों द्वारा तत्वमुद्रा और नीचे लिखी मातृका मुद्राओं से न्यास करना चाहिए।

ओं अं नमः - ललाट- अनामा।
ओं आं नमः,- मुखमण्डल-मध्यमा।

ओ इ नम,. ओ ई नम - दोनो नेत्र - तजनी - मध्यमा-अनामा। - वृद्धा, ओ उ नम ओ ऊ नम - दोनो कर्ण - अ गुष्ठ, ओ ऋ नम , ओ ॠ नम , - दोनो नासापुट - कनिष्ठागुष्ठ, ओ लृ नम , ओ लृ नम - दोनो गाल - दोनो मध्यागुलिया, ओ ए नम , ओ ऐ नम, । दोनो होठ मध्यमा अनामा से ओ ओ नम , ओ औं नम - दोनो दन्तपत्तियाँ, ओ अ नम , ओ अ नम - जिह्वा और तालुमूल - (ब्रह्मरन्ध्र) ओ क नम - दक्षिण बाहूमूल, ओ र नम - कूर्पर (कुहनी), ओ ग नम - मणिवध (कलाई) ओ घ नम. - अ गुलि - मूल, ओ ङ नम - अ गुलि अग्र - मध्यमा । इसी प्रकार मध्यमा से ओ च नम , ओ छ नम , ओ ज नम , ओ झ नम , ओ ञ नम - वामबाहूमूल, कूर्पर, मणिबन्ध, अ गुलिमूल और अ गुल्यग्र मे, ओ ट नम , ओ ठ नम , ओ ड नम , ओ ढ नम , ओ ण नम - दक्षिण पादमूल, जानु, गुल्फ और अ गुलियो के मूल और अग्रभाग मे, ओ न नम. - वामपाद मूले, जानु, गुल्फ और - अगुलियो अग्रभाग मे, दक्षपार्श्व मे ओ प नम वामपार्श्व मे ओ फ नम । ओ ब नम - पृष्ठ मे - मध्यमा अनामा और कनिष्ठा तीनो से, ओ भ नम - नभि तर्जनी छोड चारो अगुलिया से, ओ म नम - पेट पांचो अगुलियो हस्ततल से ओ यं नम - हृदय ओ र नम - दक्षबाहुमूल, ओ ल नम - ककुत - स्थल, ओ व नम - वाम बाहुमूल, ओ श नम - हृदय से लेकर दाहिने हाथ तक, ओ प नम - हृदय से वाम कर पर्यन्त, ओ स नम । हृदय से दक्ष पाद पर्यन्त ओ ह नम - हृदय से वाम पादपर्यन्त, ओ ल नम - हृदय से नाभिपर्यन्त, ओ क्ष नम, - हृदय से मुख - पर्यन्त ।

२- स्थिति मातृका न्यास–

पहले की तरह ऋष्यादि कराङ्गन्यास कर स्थिति-मातृका सरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

सिन्दूर कान्ति ममिताभरण त्रिनेत्रा ।
विद्याक्षसूत्रमृगपोतवर दधानाम् ॥
पार्श्वस्थिता भगवतीमपि काञ्चनाङ्गी ।
ध्यायेत् कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम् ॥

'इ' से 'क्ष' तक और फिर 'अ' से 'ठ' तक न्यास करे।

३, संहार-मातृका न्यास–

पूर्व वर्णित ऋष्यादि कराङ्गन्यास करके संहार मातृका सरस्वती का इस तरह ध्यान करना चाहिए—

अक्षस्रज हरिणपोतमुदग्रटक ।
विद्या करैरविरत दधती त्रिनेत्राम् ॥
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दुवासा ।
वर्णेश्वरी प्रणमतस्तनभारनम्राम् ॥

'क्ष' से न्यास शुरू करके 'अ' तक विलोम क्रम से जब न्यास किया जाता है तो वह संहार मातृका न्यास कहलाता है ।

कला-मातृका न्यास–

ॐ अस्य श्री कलामातृकान्यासस्य प्रजापतिऋ॑षि गायत्री छन्द श्री शारदा देवता जपाङ्गत्वे (पूजाङ्गत्वे) विनियोग
शिरसि प्रजापतिऋषये नम. ।
मुखे गायत्री छन्दसे नम' ।
हृदि श्री शारदा देवतायै नम ।
अ ओ आ अंगुष्ठाभ्या नम ऋ औ ॠ अनामिकाभ्या नम ।

इ ओ ई तर्जनीभ्या नम लृ ओ लृ कनिष्ठाभ्या नम
उ ओ ऊ मध्यमाभ्या नम॰ अ ओ अ करतलपृष्ठाभ्या नम.

इसी तरह षडङ्ग न्यास कर ध्यान करना चाहिए। यथा—

हस्तै पद्म रथाङ्ग गुणमय हरिण पुस्तक वर्ण माला टङ्क
शुभ्र कपाल दरममृतलसद्धेमकुम्भ वहन्तीम् ॥
मुक्ता विद्युत्पयोदस्फटिकनवजवावन्धुरै. पञ्चवक्त्रैस्यक्षैर्व-
क्षोजनम्रा सकलशशिनिभा शारदा ता नमामि ॥

ओ अ निवृत्यै नम ।
ओ आ प्रतिष्ठायै नम ।
ओ इ विद्यायै नम. ।
ओ ई शान्त्यै नम ।
ओ उ इन्धिकायै नम ।
ओ ऊ दीपिकायै नम ।
ओं ऋ रेचिकायै नम ।
ओ ॠ मोचिकायै नम. ।
ओ लृ परायै नम ।
ओ लृ सूक्ष्मायै नम ।
ओ ए सूक्ष्मामृतायै नम ।
ओ ऐ ज्ञानमृतायै नम ।
ओ ओ आप्यायिन्यै नम ।
ओ औ व्यापिन्यै नम ।
ओ अ व्योमरूपायै नम ।
ओ अनन्तायै नम॰ ।
ओ क सृष्ट्यै नम. ।
ओं ख ऋद्धयै नम ।
ओ ग स्मृत्यै नम. ।

ओं घ मेधायै नमः ।
ओं ङ कान्त्यै नमः ।
ओं च लक्ष्म्यै नमः ।
ओं छ द्युत्यै नमः ।
ओं ज स्थिरायै नमः ।
ओं झ स्थित्यै नमः ।
ओं ञ सिद्ध्यै नमः ।
ओं ट जरायै नमः ।
ओं ठ पालिन्यै नमः ।
ओं ड शान्त्यै नमः ।
ओं ढ ऐश्वर्यै नमः ।
ओं ण रत्यै नमः ।
ओं त कामिकायै नमः ।
ओं थ वरदायै नमः ।
ओं द ह्लादिन्यै नमः ।
ओं ध प्रीत्यै नमः ।
ओं न दीर्घायै नमः ।
ओं प तीक्ष्णायै नमः ।
ओं फ रौद्र्यै नमः ।
ओं ब भयायै नमः ।
ओं भ निद्रायै नमः ।
ओं म तन्द्रायै नमः ।
ओं य क्षुधायै नमः ।
ओं र क्रोधिन्यै नमः ।
ओं ल क्रियायै नमः ।
ओं व उत्कार्यै नमः ।

ओ श मृत्यवे नम ।
ओ ष पीताय नम ।
ओ स श्वेताय नम ।
ओ ह अरुणाय नम ।
ओ ल असिताय नम. ।
ओ क्ष अनन्ताय नम ।

श्रीकण्ठादिमातृकान्यास—

ओ अस्य श्री कण्ठादिमातृकान्तासस्य दक्षिणामूर्ति-
ऋषि गायत्री छन्द, श्रीअर्धनारीश्वरो देवता हलो-
बीजानि स्वरा शक्तय अव्यक्तय कीलकानि पूजाङ्गत्वे
(जपाङ्गत्वे) विनियोग ।
दक्षिणा मूर्ति ऋषये नम शिरसि ।
गायत्री छन्द से नम, मुखे ।
अर्धनारीश्वरदेवताय नम, हृदये ।
हलो बीजेभ्यो नम गुह्यो ।
स्वरेभ्य शक्तिभ्यो नम, पादयो ।
अव्यक्तेभ्य कीलकेभ्यो नम सर्वाङ्गे ।
अ क ख ग घ ङ आ ह्सा अगुष्ठाभ्या नम ।
इ च छ ज झ ञ ई ह्सी तर्जनीभ्या नम ।
उ ट ठ ड ढ ण ओ ह्म मध्यमाभ्या नम ।
ए त थ द ध न ऐ ह्सै अनामिकाभ्या नम. ।
ओ प फ ब भ म ह्सौं कनिष्ठाभ्या नम ।
अ य र ल व अ ह्स करतलपृष्ठाभ्या नम ।

इसी तरह हृदयादि ६ अगो मे न्यास कर ध्यान करना चाहिए—

बन्धूककाञ्चननिभ रुचिराक्षमाला

पाशांकुशौ च वरदं निजबाहुदण्डे ।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयाम ॥

अब नीचे लिखे मन्त्रो से श्रीकण्ठादि न्यास करे। हर मन्त्र के आरम्भ मे हसौ ' और अन्त में नम जोडना चाहिए। यथा—

हसौ, अ कण्ठेशपूर्णोदरीभ्या नम । आ श्री अनन्तेशविरजाभ्या नम । इ सूक्ष्मेश शालीभ्या।

ई त्रिमूर्तीशलोलाक्षोभ्या। उ अमरेशवर्तुलाक्षीभ्या ।
ऊ अर्घीशदीघघोणाभ्या। ऋ भारभूतीशदीर्घमुखीभ्या।

ॠ अतिथिशगोमुखीभ्या। लृ स्थाणवीशदीघजिह्वाभ्या,
लॄ हरेशकुण्डोदरीभ्या। ए झिण्टीशऊध्वकेशीभ्या ऐ
भौतिकेशविकृतमुखीभ्या। ओ सद्योजातेश ज्वालामुखीभ्य
औ अनुग्रहेशउल्कामुखीभ्या। अं अक्रूडेश श्री मुखीभ्या।
अः महासेनेश विद्यामुखीभ्या। क क्रोशमहाकालीभ्या।

ख चण्डेश सरस्वतीभ्या।
ग पञ्चान्तकेश गौरीभ्या।
घ शिवेश त्रैलोक्य विद्याभ्या।
ङ एक रुद्रेश मन्त्रशक्तिभ्या।
च कूमेश अष्ट शक्तिभ्या।
छ एक नेत्रेशभूत मातृभ्या।
ज चतुराननेशलम्बोदरीभ्या ।
झ अजेशद्राविणीभ्या।
ञ सर्वेशनागरीभ्या।
ट सोमेखेचरीभ्या।
ठ लाङ्गलीशमञ्जरीभ्या।

ड दरु केश कपिलीभ्या।

ढ अर्धनारीशवोरिणीभ्या।

ण उमा कान्तेश का कोदरीभ्या ।

त आषाढीश पूतनाभ्या।

थ दण्डीश भद्रकालीभ्या।

द अत्रीशयोगिनीभ्या।

ध मीनेश शखिनीभ्या।

न मेषेश तर्जनीभ्या ।

प लोहितेश कालिरात्रिभ्या।

फ शिखीश कुब्जिकाभ्या ।

ब छगलण्ड कपर्दिनोभ्या ।

भ महाकालेश जयाभ्या ।

य वाणीश सुमुखीश्वरीभ्या।

र भुजगेशरेवतीभ्या ।

ल पिनाकीश माधवीभ्या।

व खड्गीश वारुणीभ्या।

श वकेश वायवीभ्या।

ष श्वेतेशर क्षोविधरिणीभ्या।

स भृग्वीशसह जाभ्या।

ह नकुलीश लक्ष्मीभ्या।

ल शिवे शव्यापिनीभ्या ।

क्ष सम्वर्तकेश महामाभ्या नम ।

वर्ण न्यास

निम्न न्यास नत्र मुद्रा से यथोक्त स्थानों में करें—

ओ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ नम. हृदय

ओं ए ऐ ओ औं अं अः क ख ग घ नमः — दक्ष भुजा
ओं ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ नमः — वाम भुजा
ओं ण त थ द ध न प फ ब भ नमः — दक्ष जङ्घा
ओं म य र ल व श ष स ह क्ष नमः — वाम जङ्घा

षोढा न्यास

१ ओं से पुटित मातृका और मातृका-पुटित प्रण मातृका
२ लक्ष्मी बीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित लक्ष्मीबीज
३ कामबीज-पुटित मातृका और मातृका-पुटित कामबीज।
४ माया बीज पुटित मातृका और मातृका-पुटित मायाबीज
५ काली बीज द्वय (क्रीं क्रीं) पुटित 'ऋ ॠ ऌ ॡ और ऋ ॠ ऌ ॡ' पुटित कालीबीजद्वय।
६ मूल-पुटित मातृका और मातृका-पुटित मूलबीज (क्रीं)

इनसे अनुलोम और विलोम क्रम से तत्व मुद्रा मातृका न्यास के सब स्थानों में न्यास कर लेने पर मूल से १०८ बार व्यापक न्यास करना चाहिए।

तत्व न्यास

मूल मन्त्र 'क्रीं' होने पर उसके ३ भाग करने चाहिए—क, र, ईं। विद्याराज्ञी होने पर आरम्भ के ७ बीजों का पहला भाग (क्रीं क्रीं हूं ह्रीं ह्रीं) मध्य खण्ड के ६ अक्षरों (दक्षिण कालिके) का और तीसरे खण्ड (क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा) नौ वर्णों का करना चाहिए। इन विभागों से सिर से नाभि तक, नाभि से हृदय तक और हृदय से सिर तक न्यास करना चाहिए।

बीज न्यास

क्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्र में।

क्री नम भ्रू युगल मे।
क्री नम ललाट मे।
हूँ नम गुह्य मे।
हू नम. नाभि मे।
हूँ नमः मुख मे।
ह्री नम. सर्वाङ्ग मे।

विद्यान्यास

सिर—क्री नम,
मूलाधार—क्री नम,
हृदय—क्री नम.,
तीनो नेत्र—क्री नम,
दोनो कान—क्री नम,
मुख—क्रीं नभ
दोनो भुजा—क्री नम,
पीठ—क्री नम,
दोनो जानु—क्री नम,
और नाभि—क्री नम,

लघुषोढा न्यास

मस्तक—ओ नम,
मूलाधार—स्त्री नम,
लिग—ए नम,
नाभि—क्रीं नम.,
हृदय—एँ नम,
कण्ठ—क्रो नम.

भ्रूमध्य—ह्सौ नम ,
दाहिनी वाहु—श्रो नम ,
वाम वाहु—श्री नम ,
दक्ष पाद—ह्री नम ,
वाम पाद—क्री नम ,
पीठ—क्री नम ,

पीठ न्यास

ह्रदय मे तत्व मुद्रा से—श्रो ह्री श्राधार शक्तये नम ।
प प्रकृत्यै नम ,
क कूर्माय नम ,
श शेषाय नम ,
त प्रथिव्यै नम ,
श्रो सुधाम्बुध्ये नम·,
श्रो मणिद्वी पाय नम·,
श्रो चिन्ता मणिगृहाय नम,,
श्रो श्मशानाय नम ,
श्रो पारिजाताय नम,,
श्रो रत्नवेदिकायै नम ,
श्रो नाना मुनिभ्यो नम ,
श्रो नाना देवेभ्यो नम·,
श्रो धर्माय नम - दायाँ कन्धा,
श्रो ज्ञानाय नम - वाया कन्धा,
श्रो वैराग्याय नम - दाहिनी कमर.
श्रो ऐश्वर्याय नम, - वाँई कमर,
श्रो श्रवर्माय नम - सुख.

ओ अज्ञानाय नम' —बाँया भाग,
ओ अवैराग्याय नम – नाभि,
ओ अनैश्वर्याय नम – दाहिना भाग।
इसके बाद षोडश दल के कमल की कर्णिका मे –
ओ आनन्दकन्दाय नम ।
ओ अनन्ताय नम.।
ओ पद्माय नम ।
ओ अर्कमण्डलाय द्वादश कलात्मने नम ।
ओ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम ।
ओ म वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम ।
ओ त तमसे नम ।
ओ आ आत्मने नम ।
ओ अन्तरात्मने नम.।
ओ प परमात्मने नम ।
ओ ह्री ज्ञानात्मने नम ।
इसके बाद अष्टदलो पर पूव से – इ इच्छाशक्त्यै नम.,
ज्ञा ज्ञानशक्त्यै नम,
क क्रियाशक्त्यै नम,
क कामिन्यै नम,
का कामदायै नम,
र रत्यै नम.,
र रतिप्रियायै नम,
आ आनन्दायै नम ।
कर्णिका पर – म मनोन्मन्यै नम ।
इसके वाद ऐं परायै नम ।

हस्रौं अपरायै नम ।
सदाशिव – महाप्रेतपद्मासनाय नमः ।

पूजा मन्त्र

आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोण तद्बहिर्लिखेत् ।
ततो वै विलिखेन्मत्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥
ततो वृत्त समालिख्य लिखेदष्टदल तत
वृत्त विलिख्य विधिवत् लिखेद्भूपूरमेककम् ।
मध्ये तु बैन्दव चक्र बीज मामा विभूषितम् ॥

"प्रथम विन्दु, फिर निज बीज क्री फिर भुवनेश्वरी बीज 'ह्री' लिखे और इसके बाहर त्रिकोण और उसके भी बाहर तीन त्रिकोण बना कर फिर अष्टदल पद्म और फिर वृत्त बनावे। उसके बाहर चतुद्वार बनावे। यही काली पूजा का यन्त्र कहा गया है' ।

जप

लक्षमेक जपेद्विद्या हविष्याशी दिवा शुचि. ।
ततस्तु तद्दशाशेन होमयेद्धविपा प्रिये ॥

पूजन के अन्त में मूल मत्र का एक लाख बार जाप करे और जप के दशाश घृत की आहुति दे।

ध्यान

करालवदना घोरा मुक्तकेशी चतुर्भुजाम् ।
कालिका दक्षिणा दिव्या मुण्डमालाविभूपिताम् ।
सद्यश्छिन्नशिर खड्गवामाधोर्द्ध्वकराम्बुजाम् ।
अभय वरदञ्चैव दक्षिणाधोर्द्ध्वपाणिकाम् ॥
महामेघप्रभा श्यामा तथा चैव दिगम्बरीम् ।

कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम् ॥
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम् ।
घोरदंष्ट्राकरालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥
शवानां करसंघातैः कृतकाञ्ची हसन्मुखीम् ।
सृक्कच्छगटागलद्रक्तधाराविस्फूरिताननाम् ।
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तालम्बिकचोच्चयाम् ।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम् ।
महाकालेन च समं विपरीतरतातुराम् ॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम् ।
एवं संचिन्तयेत् कालीं सर्व्वकामसमृद्धिदाम् ॥

"भगवती काली देवी करालवदना, घोरा, मुक्तकेशी, चार भुजा-वाली एवं मुंडोंकी माला से सुशोभित हैं। उनके बाएं अंग के दोनों हाथों मे तत्काल छेदित मृतक का शीश और खड्ग हैं तथा दाएं अंग के दोनों हाथो मे अभय और वरमुद्रा स्थित हैं कण्ठ में मुण्डो की माला से युक्त वह देवी महामेघ के समान श्याम वर्ण, दिगम्बरा काली टपकते हुए रुधिर से चर्चित, घोर दंष्ट्रा, पीन पयोधरा, दोनो कानो से लटके दो मृतक-मुण्ड अलंकार रूप से सुशोभित, कटि में मृतक-हाथो की कोधनी वाली, हास्यमुखी हैं। उनके ओष्ठ द्वय से रुधिर धारा टपकने के कारण कम्पित मुख वाली घोर शब्द वाली, महरौद्री एवं श्मशान में निवास करने वाली हैं। तरुण अरुण के समान उनके तीनो नेत्र, बड़े-बड़े दांत और लम्बे-लम्बे बाल हैं। वह मृतक तुल्य सदाशिव के हृदय पर स्थित है। घोर रव वाली गीदडी उनके चारो ओर घूमती हैं। महाकालके साथ

विपरीत व्यापार मे निमग्न वह देवी प्रसन्नमुखी एव सकल कार्यो के करने वाली है। ऐसा चिन्तन करे'

काली कवच

काली पूजा श्रुता नाथ भावाश्च विविध प्रभो।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि कवच पूर्व्वसूचितम् ॥
त्वमेव शरण नाथ त्राहि मा दु खसङ्कटात्।
त्वमेव स्रष्टा पाता च सहर्ता च त्वमेव हि ॥

भैरवी बोली- "प्रभो! काली-पूजन और उसके विविध भाव तो मैने सुने, अब उनके कवच को सुनना चाहती हूं। आप उसका वर्णन कर मेरे दु ख दूर कीजिए। हे नाथ! तुम ही मेरे आश्रय हो। तुम ही रक्षा और सहार करते हो"।१।

रहस्य शृणु वक्ष्यामि भैरवि प्राणवल्लभे।
श्रीजगन्मगल नाम कवच मत्रविग्रहम्।
पठित्व धरयित्वा चत्रैलोक्य मोसयेत् क्षणात् ।२।

भैरव बोले- "हे प्रिये! मैं तुम्हारे प्रति श्री जगन्मगल नामक कवच को कहता हूं। इसका पाठ करने अथवा इसे धारण करने से साधक तीनो लोको को शीघ्र ही मोहित कर सकता है" ।२।

नारायणऽपि यद्धृत्वा नारी भूत्वामहेश्वरम्।
योगेश क्षोभमनयद्यद्धत्वा च रघूद्वह।
वरदप्तान् जघानैव रावणादिनिशाचरान् ॥

"भगवान् नारायण ने इसे धारण किया और नारी रूपसे योगेश्वर शकर को मोहित कर लिया तथा श्रीराम ने जब इसे धारण किया तो इसकी शक्ति से रावण आदि घोर राक्षसो को नष्ट कर डाला" ।३।

यस्य प्रसादादीशोऽह त्रैलोक्यविजयी प्रभु।

धनाधिप कुबेरोऽपि सुरेशोऽभूच्छ चीपति ।
एव सकला देवा सर्वसिद्धीश्वरा, प्रिये ।४।

"मैं भी इसी से त्रैलोक्य विजयी हुआ हूँ। इसी की कृपा से कुवेर धन के अधिपति हुए और शचिपति देवेन्द्र तथा सभी देवताओ ने इसी कवच के प्रसाद से सर्व सिद्धियो को प्राप्त किया" ।४।

श्रीजगन्मङ्गलास्यास्य कवचस्य ऋषि शिव ।
छन्दोऽष्टुब्देवता च कालिका दक्षिणेरिता ।
जगता मोहने दुष्टानिग्रहे भुक्तिमुक्तिषु ।
योषिदाकर्षणे चैव विनियोग प्रकीर्तित, ।५।

"इस कवच के ऋषि शिव, छन्द अनुष्टुप्, देवता दक्षिण कलिका, मोहन, दुष्ट-निग्रह, भुक्ति मुक्ति तथा योपिदाकर्षण मे इसका विनियोग है" ।५।

शिरो मे कालिका पातु क्रीङ्कारैकाक्षरी परा ।
क्री क्री क्री मे ललाटञ्च कालिका खड्ग धारिणी ।।
ह ह पातु नेत्रयुग्म ह्री ह्री पातु श्रुती मम ।
दक्षिणा कालिका पातु घ्राणयुग्म महेश्वरी ।।
क्री क्री क्री रसना पातु ह ह पातु कपोलकम् ।
वदना सकल पातु ह्री ह्री स्वरूपिणी ।६।

"कालिका और क्रीकारा मेरे शिर की, क्री क्री और खड्ग धारिणी कालिका मेरे ललाट की, हु हु दोनो नेत्र की, ह्री ह्री कानो की, दक्षिण कालिका दोनो घ्राण की क्री क्री क्री रसना की, हु हु कपोल की और ह्री ह्री स्वाहा स्वरूपिणी मेरे सम्पूर्ण वदन की रक्षा करें" ।३।

द्वाविंशत्यक्षरी स्कन्धौ महाविद्या सुखप्रदा ।
खड्गमुण्डधरा काली सर्वाङ्गमभितोऽवतु ।।

क्रीहु ह्री त्र्यक्षरी पातु चामुण्डा हृदय मम ।
ऐ हु ओऐं स्तद्वन्द्वन ह्री फट् स्वाहा ककुत्स्थलम् ॥
अष्टाक्षरी महाविद्या भुजौ पातु सकृत्तका ।
क्रीक्रीहु हृ ह्रीह्री करौ पातु षडक्षरी मम ।७।

"बाईस अक्षरी विद्या रूपिणी महा विद्या दोनो कधो की, खड्ग मुण्ड धारण करने वाली काली सर्वांग की, हु ह्री चामुण्डा हृदय की, ऐ हृ ओ ऐ दोनो स्तन की, ह्री फट् स्वाहा कन्धो की' अष्टाक्षरी महाविद्या दोनो भुजाओ की तथा क्री आदि षडक्षरी विद्या मेरे दोनो हाथो की रक्षा करे' ।७।

क्री नाभि मध्यदेशञ्च दक्षिणा कालिकाऽवतु ।
क्री स्वाहा पातु पृष्ठन्तु कालिका सा दशाक्षरी ॥
ह्री क्री दक्षिणे कलिके हुँ ह्री पातु कटीद्वयम् ।
काली दशाक्षरी विद्या स्वाहा पातूरुयुग्मकाभ् ॥
ओ ह्रां क्री मे स्वाहा पातु कालिका जानुनी मम ।८।
कालो हृन्नाम विद्य य चतुवर्ग फलप्रदा ।८।

"क्री नाभि देश की, दक्षिण कालिका मध्य देश की, क्री स्वाहा और दशाक्षरी मत्र पीठ की, ह्री क्री दक्षिण कलिके हु ह्री कटि की, दशाक्षरी विद्या ऊरु की तथा ओ ह्री की स्वाहा मेरे जानु प्रदेश की रक्षा करें। यह विद्या चारो वर्गों को फल देने वाली है।" ।८।

क्री ह्री ह्री पातु गुल्फ दक्षिणे कालिकेऽवतु ।
क्री ह्री ह्री स्वाहा पद पातु चतुर्दशाक्षरी मम ॥

"क्री ह्री ह्री गुल्फ की, क्री ह ह्री स्वाहा पाँव की एव चतुर्दशाक्षरी विद्या मेरी रक्षा करे, ।९।

खड्गमुण्डधरा काली वरदा भय वारिणी ।
विद्याभि सकलाभि सा सर्वाङ्गमभितोऽवतु ॥

"खड्ग मुण्ड धारण करने वाली, वरदायिनी, भय हारिणी भगवती काली अपनी सम्पूर्ण विद्याओं सहित मेरे सर्व शरीर की रक्षा करें"।१०।

काली कपालिनी कुल्वा कुरुकुल्ला विरोधिनी।
विप्रचित्ता तथोग्रोग्रप्रभा दीप्ता घनत्विष ॥
नीला घना वालिका च माता मुद्रामिता च माम् ॥
एता सर्व्वा खड्गधरा मुण्डमालाविभूषिता. ॥
रक्षन्तु मा दिक्षु देवी ब्राह्मी नारायणी तथा।
माहेश्वरी च चामुण्डा कौमारी चापराजिता ॥
वाराही नारसिंही च सर्व्वाश्चामितभूषणा।
रक्षन्तु स्वायुधैर्दिक्षु मा विदिक्षु तथा तथा।११।

"काली, कपालिनी, विप्रचित्ता, उग्रप्रभावाली, नीला, घना, वालिका, माता, खड्ग धारिणी, मुण्डमाला विभूषिनी यह सब रूप वाली देवी, ब्राह्मी, नारायणी, माहेश्वरी, चामुण्डा, कुमारी, अपराजिता, वाराही, नारसिंही यह सब अमित आभूषणों के धारण करने वाली भगवती मेरे दिक्, विदिक् की सर्वत्र रक्षा करें" ।११।

इत्येव कथित दिव्य कवच परमाद्भुतम्।
श्रीजगन्मगल नाम महामन्त्रौघविग्रहम् ॥
त्रैलोक्याकर्षण ब्रह्मन्कवच मन्मुखोदितम्।
गुरुपूजा विधायाथ गृह्णीयात् कवच तत।
कवच त्रि सकृद्वापि यावज्जीवञ्च वा पुन।१२।

"यह जगन्मल महा मन्त्र वाला कवच अद्भुत और परम दिव्य कहा गया है। इसके द्वारा तीनों भुवन आकर्षित हो सकते हैं। गुरु-पूजा के पश्चात् कवच को ग्रहण करे। इस कवच का एक बार, तीन बार अथवा जीवन पर्यंत पाठ करे" ।१२।

एतच्छतार्द्धमावृत्य त्रैलोक्य विजयी भवेत् ।
त्रैलोक्य क्षोभयत्येव कवचस्य प्रसादत ।
महाकविर्भवेन्मासात् सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।१३।

"इसके पचास बार पाठ करने से तीन लोक वश मे हो सकते हैं । इसके प्रसाद से त्रिभुवन क्षोभित हो सकता है और इसी कवचके पाठ प्रताप से साधक एक महीने में ही सर्व सिद्धियो का अधीश्वर होने में समर्थ होता है" ।१३।

पुष्पाञ्जलीन् कालिकायै मूले नैव पठेत् सकृत् ।
शतवर्षसहस्राणा पूजाया फलमाप्नुयात् ।१४।

"मंत्र जप के द्वारा काली को पुष्पांजलि भेंट करे और यदि केवल एक बार इस कवच का पाठ करे तो सौ हजार वर्षों पूजा के समान ही साधक को फल की प्राप्ति होती है" ।१४।

भूर्ज्जे विलिखितञ्चैव स्वर्णस्य धारयेद्यदि ।
शिखाया दक्षिणे बाहौ कण्ठे वा धारयेद्यदि ।
त्रैलोक्य मोहयेत् क्रोधात् त्रैलोक्य चूर्णयेत्क्षणात् ।
बह्वपत्या जीववत्सा भवत्येव न सशय ।१५।

"इस कवच को भोज पत्र या सोने के पत्र पर लिख कर शीश पर, दाहिनी भुजा पर या कण्ठ मे धारण करे तो तीनो भुवनो को मोहित कर ले अथवा क्रोधावेश मे उसे चूर्ण करने मे भी समर्थ हो सकता है । स्त्री यदि इस कवच का पाठ करे तो वह सन्तानवती तथा जीवित वत्सा हो सकती हैं, इसमें सशय नहीं हैं" ।१५।

०००

दस महाविद्याएँ

विद्या की परिभाषा

श्रुति मे कहा है—

'सा विद्या या विमुच्येय'

'विद्या उसे कहते हैं जिससे मोक्ष की उपलब्धि हो।"

'अमृत तु विद्या'

"विद्या अमृत है।"

'विद्या शक्ति समस्ताना शक्तिरित्यभिधीयते।'

"विद्या समस्तो की शक्ति होती है अतएव उसे शक्ति—इस नाम से कहा जाता है।"

विद्यते देशकालानवच्छिन्नत्वेन वर्तते या सा विद्या।

"देश और काल के अविच्छिन्न होने से जो सदा और सर्वत्र विद्यमान रहती है उसे ही विद्या कहते हैं। देश-काल उसका बाधक नही है।

आचार्य शान्तनु के अनुसार—

वेदान्तोद्‌भावनीय परब्रह्मतत्वावगतिरूप साक्षात्कार-लक्षण विद्या।

"वेदान्त के द्वारा उद्भव न करने योग्य परब्रह्म तत्व का ज्ञान रूप जो साक्षात्कार के लक्षण वाली है, वही विद्या है।"

पराशक्ति स्वय ब्रह्म का प्रकाश है। इसे ही महाविद्या कहते हैं–देवी भागवत (१२।७।३२) मे कहा है--

चेतनस्य न दृश्यत्व दृश्यत्वे जडमेव तत्।
स्वप्रकाशश्च चैतन्य न परेण प्रकाशितम् ॥

अर्थात् "चैतन्य का कभी नेत्रो मे प्रत्यक्ष नही होता है और दृश्य है वह जड ही होता है, चैतन्य कभी नही होता। चैतन्य स्वय ही प्रकाश होने वाला है, परके द्वारा कभी प्रकाशित नही होता है।"

सतोगुण जब रजोगुण और तमोगुण को दबा कर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है तो दैवी सम्पत्ति का विकास होता है। इसी ज्ञान को विद्या कहते हैं। इस विद्या के गुण हैं--सत्य, प्रेम, न्याय, अहिंसा, अभय, बुद्धि, तप, उदारता, इन्द्रिय निग्रह, श्रद्धा, मैत्री, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, लज्जा, धृति, स्मृति, बोध शक्ति, स्त्री मात्र में भगवती के दर्शन करना आदि।

विद्या का तात्पर्य इस प्रकार है—

'विद् सत्तायाम् धातु से विद् ज्ञान—विद्यते, ज्ञायेत्' व्युत्पत्ति से और 'विद्लृ लाभे' धातु से अर्थ है वह परमा शक्तिविद्या सच्चिदानन्द-रूपा है।

ब्रह्म और विद्या का घनिष्ठ सम्बन्ध है जैसे अग्नि और उसके जलाने की शक्ति अथवा उसकी गर्मी से होता है। तभी अक्षमालिकोपनिषद् में कहा है—

'यत् सूत्र तद् ब्रह्म'
'जो सूत्र है वह ब्रह्म है।'

'यत् सुषिर सा विद्या'

'जो सुषिर है वही विद्या है ।'

सा विद्या परम मुक्तेहेतुभू ता सनातनी ।

ससारबन्ध हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥

(उपनिषद्)

"वह विद्या ही परमाराध्या शक्ति और भक्ति का साधन है, पर अज्ञानियो के लिये ससार बन्धन का हेतु भी बन जाती है' ।

परा यया दक्षरमधिगम्यते ।

(मुण्डको १-१-५)

"जिसके द्वारा अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान होता है, उसे परा-विद्या कहते हैं ।'

सर्वज्ञताख्य शक्ति परिमिततनुरल्पवेद्यमात्रपरा ।

ज्ञान मुदयादयन्ती विद्येति निगद्यते बुधरादयै ॥

(तत्व सन्दोह)

"इसकी सर्वज्ञता शक्ति परिमित होकर अल्प ज्ञान रखती हुई ज्ञान का उत्पादन करती है, उसे वृद्ध सुधी-जन विद्या कहते हैं ।"

ओ सव चैतन्य रूपा तामाद्या विद्या च ।

धीमहि । बुद्धि योग प्रचोदयात् ।

(देवी भागवत्)

'जो आदि अन्त रहित सर्व चैतन्य स्वरूप, ब्रह्मविद्या रूपी आदि शक्ति है, उसका हम ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे'

विद्याशक्ति, समस्ताना शक्ति रित्यभि धीयते ।

गुणत्रयाश्रया विद्या सा विद्या च तदाश्रया ॥

(बृहज्जाबालोपनिषद्)

"सर्वत्र विद्या को ही शक्ति कहा गया है, वह विद्या तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार की है। समस्त प्राणी इन्ही तीनो रूपो के आश्रित रहते हैं।'

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नत्वेन या विद्यते सा विद्या ॥

''जिसकी स्थिति प्रत्येक स्थान प्रत्येक काल मे हो उसीको विद्या कहते हैं।'

निगम—आगम दोनो शास्त्रो मे सृष्टि का प्रतिपादन है। अत दोनो को 'विद्या' नाम से अभिहित किया जाता है। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पशु-पक्षी, कीट पतग, धातु, रस, विष वनस्पति, औषधि, मनुष्य ये सभी पदार्थ विद्या के अन्तर्गत आते है। इन्हे क्षुद्र विद्याएं कहा जाता है। सम्पूर्ण विश्व विद्या तो महाविद्या है। मनीषियो ने इसके दस भाग किए हैं। इन्ही मे विश्व के स्वरूप, उत्पत्ति, विकास आदि सभी समस्याओ का समाधान किया गया है।

कुछ तान्त्रिक विद्वान् दश महाविद्याओ को साधना की भिन्न-भिन्न अवस्था स्वीकार करते हैं। वे लक्ष्मी से कमला तक जीव की दस अवस्थाएं मानते हैं। इन्हे भोग-वासना की एक प्रतिमा मानना चाहिए। इनका चयन क्रमश इस प्रकार किया गया है कि साधक धीरे-धीरे एक-एक विकार ग्रन्थि को काटता हुआ ऊपर उठ जाता है और अन्त में काली-तत्त्व तक जा पहुँचता है, जिसे साधना का चमत्कार अथवा शेषावस्था कहा जाता है। इस स्थिति मे पहुँचने पर भौतिक बन्धन सब ढीले पड जाते हैं। जीवका जीवत्व समाप्त हो जाता है और वह ईश्वरत्व मे प्रवेश करता है। अत दस महाविद्याओ की उपासना जीव को क्षुद्र भूमि मे उठाकर साधना की उच्चतम् स्थिति तक पहुँचाना है। तभी

विद्या को परम् पद, परम् तत्व व अमृत-तत्व की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि विद्या से ही जीवन-मुक्ति प्राप्त होती है। बिना विद्या के मनुष्य पशु कोटि मे आते हैं। वे जीवित मृत कहे जाते हैं। विद्या ही जीवन है, स्फूर्ति है, शक्ति है, सब कुछ है।

देवी को महाविद्या के गौरवान्वित नाम से सम्बोधित करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए सप्तशती मे कहा गया है—

विद्या समस्तास्तव देवि! भेदा
स्त्रिय. समस्ता सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
काते स्तुति स्तव्यपरापरोक्ति

अर्थात् 'हे देवि! सारी विद्याएँ तुम्हारे ही भेद हैं और जगत् में जो समस्त स्त्रिया हैं वे भी आपके ही विभिन्न स्वरूप हैं। हे अम्ब! आप एक मे ही यह सम्पूर्ण विश्व पूरित कर रक्खा है। आपकी क्या स्तुति की जावे? आप तो उक्तियो द्वारा जो स्वरूप दिया जाता है उससे परतरा हैं।

विद्या के तीन भेद हैं—आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक। इनका क्षेत्र इनके नामों से ही स्पष्ट है। विद्या के दो रूप हैं—परा और अपरा। इनका स्पष्टीकरण 'रुद्रहृदयोपनिषद्' में इस प्रकार दिया गया है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च॥
सामवेदस्तथाऽथर्ववेद शिक्षा मुनीश्वर।
कल्पो व्याकरणं चैव निरुक्त छन्द एव च॥
ज्योतिष च तथाऽनात्मविषया अपि बुद्धय.।
अथैषा परमा विद्या यय़ाऽऽत्मा परमाक्षरम्॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्र रूपवर्जितम् ।
अचक्षु श्रोत्रमत्यर्थ तदपाणिपद तथा ॥
नित्य विभु सर्वगत सुसूक्ष्म च तदव्ययम् ।
तदभूतयोनि पश्यन्ति धीरा नात्मानमात्मनि ॥

"परा और अपरा नाम की दो विद्याये हैं, वे साधक के लिये ज्ञातव्य हैं। ऋक, यजु, साम, अथर्व, यह चारो वेद, शिक्षा, कल्प, छन्द, निरुक्त, व्याकरण और ज्योतिष—यह अपरा है। इसमे आत्म-विषय के अतिरिक्त अन्य सब प्रकार का बौद्धिक ज्ञान भरा हुआ है। परन्तु जिसके द्वारा आत्म-ज्ञान होता है वह परा विद्या है। वही परम अविनाशी आत्मतत्व है। वह दिखाई नही पडता, न ग्रहण किया जा सकता है। उसका नाम, रूप, व गोत्रादि कुछ नही है। उसके न नेत्र हैं, हाथ पाँव भी नही है। वह विषयो से परे, नित्य, विभु, सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने से सर्वगत और निर्विकार है। वह सब भूतो का आश्रय स्थान है। ज्ञानी पुरुष उस परमात्मा का अपने ही आत्मा में दर्शन करते हैं"।

दस महाविद्याओं के नाम इस प्रकार हैं—

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ॥
मातङ्गी सिद्धविद्या च कथिता बगलामुखी ।
एता दश महाविद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥

१. काली २. तारा ३ षोडशी (त्रिपुर सुन्दरी ४ भुवनेश्वरी (राज-राजेश्वरी, श्रीविद्या, ललिता) ५ भैरवी (त्रिपुरभैरवी) ६ छिन्नमस्ता, धूमावती (अलक्ष्मी) ८ मातङ्गी ९ बगलामुखी १० कमला (लक्ष्मी)।

इनमे काली के शिव हैं महाकाल, तारा के अक्षोभ्य, षोडशी के पञ्चवक्त्र, भुवनेश्वरी के त्र्यम्बक, भैरवी के दक्षिणामूर्ति, छिन्नमस्ता के

कबन्ध, मातंगी के मतंग, बगलामुखी के एक मुख महारुद्र, कमला के सदाशिव श्रीविष्णु । धूमावती विधवा हैं ।

इन दस महाविद्याओं का दस अवतारों से भी सम्बन्ध स्थापित किया गया है—

कृष्णमूर्ति काली अरु तारा राममूर्ति जान,
छिन्ना नरसिंहमूर्ति वेदन बखानी है ।
वामन भुवनेशी औ बगलाकी कूर्म रूप,
मत्स्यमूर्ति जान धूमा शास्त्रन मे गानी है ॥
जामदग्न्य सुन्दरी औ भैरवी हली को जान,
बौद्ध-रूप लच्छिमी प्रसिद्ध बात मानी है ।
दुर्गा शान्तिरूप हो सो दश अवतार भए,
ताप त्रय दूर करें आदि महारानी है ॥

काली की कृष्ण मूर्ति है और तारा की राम मूर्ति जाननी चाहिए । छिन्न नरसिंह मूर्ति वेदों ने बतलाई है । भुवनेशी वामन और बगला का कूर्म रूप होता है । धूमा मत्स्य मूर्ति होती है जो शास्त्रों में गाई गई है । सुन्दरी जमदग्न्य और भैरवी हली का स्वरूप है । लक्ष्मी बौद्धरूपा है जो परम प्रसिद्ध है । दुर्गा शान्ति सस्वरूपा है । इस तरह ये दसों अवतार हैं जो तीनों तापों को भगाते हैं और ये आदि महारानी हैं ।

दस संख्या का महत्व

दस संख्या की महत्ता निगम-अनुगम श्रुतियों में इस प्रकार वर्णित की गई है—

दशाक्षरा वै विराट् (शत १।१।१)

'दस अक्षर वाला विराट् है ।'

यज्ञो वै दश होता (तै ब्रा २।२।१।६)

'यज्ञ वह होता है जिसमे दस हवन करने वाले हुआ करते हैं।'

विराट् वै यज्ञ (शत १।१।१)

'विराट ही यज्ञ होता है।'

यज्ञ उ वै प्रजापति (कौ ब्रा १०।१)

'यज्ञ ही प्रजापति है।'

प्रतिष्ठा दश मह (कौ ब्रा २७।२)

'जिसमे दस की प्रतिष्ठा है।'

प्रजापतिर्वै दश होता (तै ब्रा २।२।१।३)

'प्रजापति दस होता वाला होता है।'

अन्तो वा एश यज्ञस्य यद्दशमहः तै ब्रा २।२।६।१)

'अथवा यज्ञ का अन्त जिस दस वाला माना गया है।'

शास्त्र का कहना है कि दशाक्षर पूर्ण विराट् से सृष्टि की रचना नही होती। न्यून विराट् से यह कार्य सम्पन्न होता है। कहा भी है— 'न्यूनाद्धा इमा. प्रजा प्रजायन्ते।' केवल पुरुष और पुरुष मिलकर सृष्टि नही कर सकते और नही स्त्री और स्त्री यह कार्य कर सकते हैं। भोग्य—स्त्री और भोग्या—पुरुष के सयोग से ही सृष्टि होती है। स्त्री सौम्या है, पुरुष आग्नेय है। अत पुरुष प्रबल है, स्त्री उससे न्यून है। इस न्यून सम्बन्ध से ही, पुरुष स्त्री के सयोग से ही उत्पत्ति होती है। इस शास्त्रीय भाषा मे यह कहा जाता है कि दशाक्षर पूर्ण से प्रजोत्पत्ति नही होती, ९ अक्षर में न्यून विराट् से ही यह निर्माण कार्य होता है। विराट् सूक्ष्म हैं। उसमें से एक अक्षर कम कर दिया जाए तो उसके विराट्पने मे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। शास्त्र भी इसका अनुमोदन करता है—

न वै एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्याम्।

९ का अङ्क भी महत्वपूर्ण है। रामायण मे परशुराम की

श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए कहा गया है कि — "नवगुण परम पुनीत तुम्हारे "ब्राह्मणो के, ब्रह्मपरायण व्यक्तियो के, परम पुनीत नो गुण होते हैं। यह नो गुण यह हैं — (१) सत्य (२) अहिंसा (३) चोरी न करना (४) इन्द्रिय निग्रह (५) अधिक सञ्चय का लोभ न करना (३) पवित्रता (७) कष्ट सहिष्णुता (८) विद्या (९) ईश्वर और धर्म पर आस्था। इन्ही नो परम पुनीत गुणो को थोडे हेर-फेर के साथ धर्म के दश लक्षणो में गिनाया है। योग शास्त्र में इन्हे पाच यम और पाच नियम के नाम से कहा गया है। उन्हे मनुष्य का — इन्सानियत का चिन्ह भी कह सकते हैं।

इस भूलोक मे नो सिद्धियां हैं जिन्हे प्राप्त करने से आनन्द की वृद्धि होती है। जिसके पास यह नो सिद्धियां जितनी अधिक सख्या मे होगी या जितनी अधिक मात्रा मे सिद्धि होगी वह उतना ही सुखी रह सकेगा। नो सिद्धियां इस प्रकार हैं— (१) विवेक, (२)पवित्रता (३) शान्ति (४) साहस (५) स्थिरता (६) कर्तव्य निष्ठा (७ स्वास्थ्य (८) समृद्धि (९) सहयोग।

९ का अङ्क इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसकी महिमा कहते-कहते थक जाना पडता है। नीचे कुछ विवरण देखिये।

(१) रम्यो राम इमि जगत मे, नही द्वैत विस्तार।
    जैसे घटत न अङ्क नव, नव के लिखत पहार॥

नो का पहडा चाहे जितनी बार पढा जाय पर उनके जोड का परिणाम ९ ही होता है (जैसे ९×२=१८, १+८=९, ९×३=२७ २+७=७) इसी प्रकार चाहे जितनी बार नो का पहाडा गिना जाय, उन अक्षरो का योग ९ ही होगा। जैसे नो के पहाडे की सब सख्याओ मे नोका अक्षर मिला हुआ है, उसी प्रकार ससार की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर छिपा हुआ है।

(२) जगते रहु छत्तीस (३६) ह्वै, राम चरन छै तीन (६३)।
तुलसी देखि विचार हिय, है यह मतो प्रवीन।

छत्तीस की संख्या मे तीन और छै के अङ्को का मुख एक दूसरे से विपरीत दिशा मे है, इसी प्रकार सांसारिक माया बन्धनो से हमे विमुख रहना चाहिए और भगवान के चरणो की ओर इस प्रकार अभिमुख रहना चाहिये, जैसे ६३ की संख्या मे यह दोनो अक्षर आमने-सामने मुख किये रहते है। इन उपदेश देने वाली दो संख्याओ —३६ का तथा ६३ के अङ्को का भी जोड नौ होता है।

(३) अक्षौहिणी सेना की की संख्या मे नौ का ही प्रतिफल है। अक्षौहिणी की संख्या २१८७०० होती है इनका योग देखिये।

२+१+८+७=१८, १+८=९

(४) युगो की संख्याओ का परिणाम ९ होता है। देखिये कलियुग का वर्ष ४३२००, ४+३+२=९, द्वापर वर्ष ८६४०००।
८+६+४=१८, मे १+८=९ त्रेता वर्ष १२९६००० में
१+२+९+६=१८ मे १+८=९, सतयुग वर्ष १७२८०००, १+७+२+८=१८ मे १+८=९।

(५) चारो युगो के वर्षो का योग (दिव्य युग) ४३२००००।
४+३+२=९।

(६) मन्वन्तर (७१ दिव्य युग) ३०६७२०००० ३+६+७+२ =१८ मे १+८=९।

(७) कल्प (१४ मन्वन्तर) वर्ष ४२९४०८०००० , ४+२+९+४+८=२७मे २+७=९।

(८) स्वरो मे ९ गुरु है। आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

(९) चारो वेदो की मंत्र संख्या १९४०८ है १+९+४+०+८=२२ = २+२ [illegible] =९।

(१०) श्रीरामचन्द्रजी का जन्म नवमी को—"नवमी तिथि हरि मास पुनीता"।

(११) रामयण की रचना नवमी को।

(१२) तुलसीकृत रामायण मे छन्द संख्या ९९९० है, ९+९+९=२७ मे २+७=९।

(१३) विप्र के गुण ९ ऋजु (सरलता) तपस्या, सन्तोष, क्षमा, अतृष्णा, जितेन्द्रियता, सत्य, अहिंसा, स्वाध्याय।

(१४) पुराण १८, १+८=९।

(१५) नक्षत्र २७, २+७=९।

(१६) माला में बीज १०८, १+८=९।

(१७ पूज्यो के लिये लिखी जाने वाली श्री संख्या—१०८ मे १+८=९।

(१८) राग ६, रागिनी ३०=दोनों का योग ३६, ३+६=९

(१९) गिनती के अङ्क १ से ९ तक=९।

(२०) शक्ति पूजा की नव रात्रि, पृथ्वी के नौ खण्ड, नौ, ग्रह, शरीर के नौ छेद, नौ रत्न, नौ रस, नवधा भक्ति, नौ नाडी, नौ द्रव्य, नौ दुर्गा।

इस प्रकार नौ का अङ्क अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होने से इसे 'ब्रह्म अङ्क' कहा गया है।

सामवेदीय छान्दोग्य सूत्र मे नौ देवताओं का वर्णन आया है, ये नौ देवता यह हैं—(१) ओ कार, (२) अग्नि, (३) अनन्त, (४) चन्द्र, (५) पितृ (६) प्रजापति (७) वायु, (८) सूर्य (९) सर्व देवता। यह नौ देवता असल में नौ शक्तियो के नाम हैं, जो विकसित मनुष्यो में निवास किया करती हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है—

१- ओ कार—ब्रह्म, परमात्मा, सर्वव्यापी, न्यायकारी सत्ता को सर्वत्र व्यापक देखकर बुरे कामों से बचना ।

२- अग्नि—तेज, वीरता, पराक्रम, पुरुषार्थ ।

३- अनन्त—धैर्य प्रतीक्षा, आशा, दृढता ।

४- चन्द्र—शीतलता, शान्ति, मधुरता, प्रसन्नता, प्रफुल्लता ।

५- पितृ—स्नेह, आत्मभाव, उपकार, वात्सल्य, क्षमा ।

६- प्रजापति—कुटुम्ब पालन, समाज की सुरक्षा ।

७- वायु—स्वच्छता, सफाई ।

८- सूर्य—प्रतिभा, शक्ति, बल, दमन ।

सर्व देवता—सङ्गठन, सहयोग, एकता, समाजसेवा सब लोगों के लिए आदर-भाव, समदर्शन ।

इस तरह से दस और नो दोनों अङ्क महत्वपूर्ण हैं । दस विराट् का प्रतीक है परन्तु एक अङ्क कम होने से भी कोई अन्तर नहीं पडता । विद्या, ज्ञान, ज्योति और अमृतत्व का मूर्त रूप है । विद्या दस प्रकार की हैं । उनके रहस्य का विवेचन यहाँ किया जाता है—

१— काली

काली का ध्यान इस प्रकार से किया जाता है—

ॐ ध्यायेत्काली महामाया त्रिनेत्रा बहुरूपिणी ।
चतुर्भुजा ललज्जिह्वा पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥
नीलोत्पलदलप्रख्या शत्रुसङ्घविदारिणीम् ।
नरमुण्ड तथा खड्ग कमल वरद तथा ॥
बिभ्राणा रक्तवदना दंष्ट्राली घोररूपिणीम् ।
अट्टाट्टहासनिरत सर्वदा च दिगम्बराम् ॥

शवासनस्थिता देवी मुण्डमालाविभूषिताम् ।

'जो महामाया, त्रिनेत्रा, बहुरूपिणी, चतुर्भुज, लपलपाती जिह्वा वली, पूर्ण चन्द्र की तरह शोभायुक्त, नील कमल की पखुड़ियों की तरह सुन्दर, शत्रु समूह की नाशकर्ता हैं जो नरमुण्ड, खड्ग, कमल और वरमुद्रा धारण करती हैं। रक्त मुखमण्डल, दंष्ट्राओं की पंक्ति से संयुक्त और घोर रूपवाली, अट्टहास करने में संलग्न दिगम्बरा, शवासन पर स्थित, मुण्डों की माला से विभूषित है, उन काली देवी का ध्यान करे।'

भक्त कहता है—

ओ-काली कालहरा देवी कङ्कालबीजरूपिणीम ।
कालरूपा कलातीता कालिका दक्षिणा भजे ॥

'मैं दक्षिण कालिका का भजन करता हूं जो काल की नाशकर्त्ता काली है। जो कङ्काल बीज रूपिणी, कालरूपा और कलाओं से परे है।'

काली की स्तुति करते हुए साधक कहता है—

धरित्री कीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं,
त्वमेका कल्याणी गिरिशरमणी कालि सकलम् ।
स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं,
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥

'हे काली! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश, यह सब कुछ तुम ही हो। तुम्हीं कल्याणी, गिरिश रमणी हो, हे मातेश्वरी! तुम्हारी और स्तुति क्या करूं? मैं गति रहित हूं, आप मुझ पर प्रसन्न रहे ताकि मुझे और जन्म न लेना पड़े।'

काली के स्वरूप और उसकी साधना की उत्कृष्टता पर प्रकाश डालते हुए शास्त्र का वचन है—

ओ अचिन्त्यामिताकारशक्तिस्वरूपा प्रतिव्यक्त्यधिष्ठानसत्त्वै-

कमूर्ति । गुणातीननिर्द्वन्द्वबोधैकगम्या,त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'हे माता ! तुम्हारे आकार और शक्ति को नापने मे कोई भी समर्थ नही (अर्थात् तुम्हारा आकार और शक्ति कल्पनातीत है), चिन्ता द्वारा भी उसे नही पाया जा सकता है। तुम्हारा कोई एक स्थान नही, तुम तो हर मनुष्य मे सत्वमति मे प्रतिष्ठित हो। केवल त्रिगुणातीत अद्वैत ज्ञान मे ही तुम्हारी प्राप्ति सम्भव है। तुम तो केवल परब्रह्म रूप मे ही प्रतिष्ठित रहती हो।'

अगोत्राकृतित्वादनैकान्तिकत्वादलक्ष्यागमत्वादशेषाकरत्वात्। प्रपञ्चालसत्वादनारम्भकत्वात् त्वमेकापरब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'तुम अगोत्र हो, आकार रहित हो, तुम स्थिर पदार्थ नही हो, तुम्हारी गति को लक्ष्य करना सम्भव नही, अखिल वस्तु की तुम आकार हो, इस विश्व-प्रपञ्च मे तुम विचलित नही होती, तुम किसी की आरम्भक नही हो, तुम तो केवल परब्रह्म सिद्ध हो।'

असाधारणत्वादसम्बन्धकत्वादभिन्नाश्रयत्वादनाकारकत्वात्। अविद्यात्मकत्वादनाद्यन्तकत्वात् त्वमेका परब्रह्मरुपेण सिद्धा।

'तुम असामान्य हो, जगत के बाह्य प्रपञ्चो मे अयग हो, परन्तु हर पदार्थ मे सयुक्त हो, तुम निराकार हो, अविद्या रूप वाली हो, अनादि और अनन्त रूपिणी हो, तुम परब्रह्म रूप मे ही सिद्ध हो।'

काली सबकी कारणभूता है--

यदा नैव धाता न विष्णुर्न रुद्रो न कालो न वा पञ्चभूतानि नाशा। तदा कारणीभूत सत्त्वैकमूर्तिसत्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'जब ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र नही थे, काल, पञ्चभूत और

दिक् कुछ भी नही था तब तुम इन सबकी कारणभूता एक मात्र सत्व-मूर्ति से अधिष्ठित थी, तुम्ही एक परब्रह्मरूप से सिद्ध हो।'

न बाला न च त्व व्ययस्था न वृद्धा न च स्त्री न षण्ड, पुमान्नैव च त्वम्। न च त्व सुरो नासुरो नो नरो वा त्वमेका परब्रह्मरूपेण सिद्धा ॥

'न तो तुम बाला हो, न वयस्का हो, न वृद्धा हो, न स्त्री हो, न नपुसक हो, न पुरुष हो, न देव हो न असुर और न ही मनुष्य हो, तुम तो केवल परब्रह्म रूपिणी सिद्धा हो।'

विशुद्धापरा चिन्मयी स्वप्रकाशामृतानन्दरूपा जगद्व्यापिका च। तवेदृग्विधा या निजाकारमूर्ति किमस्माभिरन्तर्हृदि ध्यायितव्या ॥

'हे माता तुम विशुद्ध, चिन्मय, स्वप्रकाश, अमृत व आनन्दरूपा, जगद्व्यापिका हो, तुम्हारे इस प्रकार के स्वरूप का हम किस प्रकार से ध्यान करें?'

काली के गुणो पर प्रकाश डालने वाला काली अष्टोतर कालनाम स्तोत्र है जिसमे काली के १०८ नाम दिए गए हैं वे इस प्रकार हैं—

काली कपालिनी कान्ता कामदा कामसुन्दरी।
कालरात्रि कालिका च काल भैरव पूजिता ।१।
कुरुकुल्ला कामिनी च कमनीयस्वभाविनी।
कुलीना कुलकर्त्री च कुलवर्त्म प्रकाशिनी ।२।
कस्तूरिरसनीला च काम्या कामस्वरूपिणी।
ककारवर्णनिलया कामधेनु करालिका ।३।
कुलकान्ता करालास्या कामार्त्ता च कलावती।
कृशोदरी च कामाख्या कौमारी कुलपालिनी ।४।
कुलजा कुलमन्या च कलहा कुलपूजिना।

कामेश्वरी कामकान्ता कुञ्जरेश्वरगामिनी ।५।
कामदात्री कामहर्त्री कृष्ण चैव कपर्दिनी ।
कुमुदा कृष्णदेह च कालिन्दी कुलपूजिता ।६।
काश्यपी कृष्णामाता च कुलिशाङ्गी कला तथा ।
क्रीरूपा कुलगम्या च कमला कृष्णपूजिता ।७
कृशाङ्गी किन्नरी कर्त्री कलकण्ठी च कार्तिकी ।
कम्बुकण्ठी कौलिनी च कुमुदा कामजीविनी ।८।
कलस्त्री कीर्तिका कृत्या कीर्तिश्च कुलपालिका ।
कामदेवकला कल्पलता कामागवर्द्धिनी ।९।
कुन्ता च कुमुदप्रीता कदम्बकुसुमोत्सुका ।
कादम्विनी कमलिनी कृष्णानन्दप्रदायिनी ।१०।
कुमारीपूजनरता कुमारीगणशोभिता ।
कुमारीरञ्जनरता कुमारीव्रतधारिणी ।११।
कङ्काली कमनीया च कामशास्त्रविशारदा ।
कपालखटवागधरा कालभैरव रूपिणी ।१२।
कोटरी कोटराक्षी च काशीकैलास वासिनी ।
कात्यायनी कार्य्यकरी काव्यशास्त्रप्रमोदिनी ।१३।
कामाकर्पणरूपा च कामपीठनिवासिनी ।
कङ्किनी काकिनी क्रीडा कुत्सिता कहलप्रिया ।१४।
कुण्डगोलोद्भवप्राणा कौशिकी कीर्तिवर्द्धिनी ।
कुम्भस्तनी कलाक्षा च काव्या कोकनदप्रिया ।१५।
कान्तारवासि कान्ति कठिना कृष्णावल्लभा ।
इति ते कथितम् देवि गुह्याद्गुह्यतरम् परम् ।१६।

अर्थात्, 'काली कपाल धारण करने वाली—कान्ता अर्थात्

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी - कालरात्रि - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीताकामना के योग्य - काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका - कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से आर्त - कला से पूर्ण - कृश उदर वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहर - कुलराश्रिता - कामेश्वरी कामकान्ता - कुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कपार्दिनी - कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी - कृष्ण माता - वज्र के समान अङ्गों वाली - कला-की रूप वाली - कुल-गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कृश अङ्गो वाली - किन्नरी - कर्त्री - कल (मधुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली कौलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीर्ति-कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथो को पूर्ण करने वाली - कल्पलता - कामाङ्ग के बढाने वाली - कुन्तार - कुमुद प्रीता - कदम्ब के कुसुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली - कुमारियो के गुणो स शोभायुक्त - कुमारियो के रञ्जन रत - कुमारी व्रतको धारण करने वाली - कङ्काली - कमनीया-कामशास्त्र की पण्डित - कपाल और खाट का पाया धारण करने वाली - काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रो वाली - काशी और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आकर्षण करने वाले रूप से युक्त - काम के पीठ(सिंहासन)पर निवास करने वाली - कङ्किनी - काकिली - क्रीडा कुत्सिता - कलह को प्यार करने वाली - कुण्ड गोल से उद्भव प्राणों वाली - कौशिकी - कीर्ति को बढाने वाली - कुम्भ के समान स्तनो वाली - कलाक्षा - काव्या - कोकनद को प्रिय मानने वाली -

जगल मे वास करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की वल्लभा—हे देवि ! यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है।"

काली तत्व को जानने के लिए निम्न श्लोको का विश्लेषण आवश्यक है—

शवारूढा महाभीमा घोरदंष्ट्रा हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम्॥
मुण्डमालाधरा देवी ललज्जिह्वा दिगम्बराम्
एवं सञ्चिन्तयेत काली श्मशानालयवासिनीम्।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

'वह काली शवारूढा, भयाकृति वाली, बडी तीक्ष्ण व भयावह दंष्ट्रा वाली, हसमुखी, चतुर्भुज है। एक हाथ मे खड्ग, एक मे नरमुण्ड, एक मे अभय मुद्रा और एक मे वर है। उसके गले मे मुण्डमाल, जिह्वा बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है। उसका निवास श्मशान है।'

काली का यह ध्यान अलङ्कारिक शैली मे वर्णित है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शवारूढा है। शव का अभिप्राय किसी प्राणी के मुर्दे से नही है वरन् शक्तिहीन विश्व स है। जब विश्व शक्तिमान् होता है तो उसकी सज्ञा—शिव है। जब उसस शक्ति निकल जाती है तो वह शव बन जाता है। विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की है। काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्य काल से है। इसीलिए वह कृष्ण वर्णा कहलाती है। वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है। शव रूपी विश्व ही उसका आधार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है। इसलिए काली को शव पर खडी दिखाया जाता है।

काली भयानक आकृति वाली है। सहार उसका धर्म है। सहार

सुन्दरी—कामनाओं के दान करने वाली - काम के समान सुन्दरी - कालरात्रि - कालिका - काल भैरव के द्वारा पूजित - कुरुकुल्ला - कामिनी सुन्दर स्वभाव वाली - कुलीना - कुल के करने वाली - कुल के मार्ग प्रकाशित करने वाली - कस्तूरी रस के समान नीलाकामना के योग्य - काम स्वरूप वाली - ककार वर्ण के विलय वाली - कामधेनु - करालिका - कुलकान्ता - कराल मुख वाली - काम से आर्त - कला से पूर्ण - कृश उदर वाली - कुलजा - कुलमन्या - कलहृर - कुलरात्रिता - कामेश्वरी कामकान्ता - कुञ्जरेश्वर के समान मन्द गमन करने वाली - कामनाओं की देने वाली - कामदेव का हरण करने वाली - कृष्णा - कपार्दिनी - कुमुदा - कृष्ण देह वाली - कालिन्दी - कुल के द्वारा पूजित - कश्यपी - कृष्ण माता - वज्र के समान अङ्गों वाली - कला-की रूप वाली - कुल-गम्या - कमला - कृष्ण के द्वारा पूजित - कृश अङ्गों वाली - किन्नरी - कर्त्री - कल (मधुर) कण्ठ वाली - कार्तिकी - कम्बु के तुल्य कण्ठ वाली कौलिनी - कुमुदा - काम जीविनी - कलस्त्री - कीर्तिका - कृत्या कीर्ति-कुल पालिका - कामदेव की कला - मनोरथों को पूर्ण करने वाली - कल्पलता - कामाङ्ग के बढ़ाने वाली - कु्ंतार - कुमुद प्रीता - कदम्ब के कुसुम के लिए उत्सुक - कदम्बिनी - कमलिनी - कृष्ण को आनन्द प्रदान करने वाली - कुमारियों के गुणों स शोभायुक्त - कुमारियों के रञ्जन रत - कुमारी व्रतको धारण करने वाली - कङ्काली - कमनीया-कामशास्त्र की पण्डित - कपाल और खाट का पाया धारण करने वाली - काल भैरव के रूप वाली - कोटरी - कोटर के तुल्य नेत्रों वाली - काशी और कैलाश पर निवास करने वाली - काम के आकर्षण करने वाले रूप से युक्त - काम के पीठ(सिंहासन)पर निवास करने वाली - ककिनी - काकिली - क्रीडा कुत्सिता - कलह को प्यार करने वाली - कुण्ड गोल से उद्भव प्राणों वाली - कौशिकी - कीर्ति को बढ़ाने वाली - कुम्भ के समान स्तनों वाली - कलाक्षा - काव्या - कोकनद को प्रिय मानने वाली -

जगल मे वास करने वाली - कान्ति - कठिना - कृष्णा की वल्लभा—हे देवि ! यह आपका अष्टोत्तरशत नाम वाला स्तोत्र परम गोपनीय से भी अति गोपनीय है, जो इस समय कहा गया है।"

काली तत्व को जानने के लिए निम्न श्लोको का विश्लेषण आवश्यक है—

शवारूढा महाभीमा घोरदंष्ट्रा हसन्मुखीम्।
चतुर्भुजा खड्गमुण्डवराभयकरा शिवाम्॥
मुण्डमालाधरा देवी ललज्जिह्वा दिगम्बराम्
एवं सञ्चिन्तयेत काली श्मशानालयवासिनीम्।

(शक्ति प्रमोद-काली तन्त्र)

'वह काली शवारूढा, भयाकृति वाली, बडी तीक्ष्ण व भयावह दंष्ट्रा वाली, हसमुखी, चतुर्भुज है। एक हाथ मे खड्ग, एक मे नरमुण्ड, एक मे अभय मुद्रा और एक मे वर है। उसके गले मे मुण्डमाल, जिह्वा बाहर को निकली हुई और दिगम्बरा है। उसका निवास श्मशान है।'

काली का यह ध्यान अलङ्कारिक शैली मे वर्णित है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

काली शवारूढा है। शव का अभिप्राय किसी प्राणी के मुर्दे से नही है वरन् शक्तिहीन विश्व से है। जब विश्व शक्तिमान् होता है तो उसकी संज्ञा—शिव है। जब उससे शक्ति निकल जाती है तो वह शव बन जाता है। विश्व जब शक्तिहीन होता है तो वह स्थिति प्रलय की है। काली का सम्बन्ध प्रलय-रात्रि के मध्य काल से है। इसीलिए वह कृष्ण वर्णा कहलाती है। वह विश्व का नाश करने वाली कालरात्रि है। शव रूपी विश्व ही उसका आधार है, यही उसकी प्रतिष्ठा है। इसलिए काली को शव पर खडी दिखाया जाता है।

काली भयानक आकृति वाली है। संहार उसका धर्म है। संहार

करने वाले योद्धा का रूप भयानक होना स्वाभाविक है। इसीलिए काली को प्रलयरात्रि रूपा संहारकारिणी शक्ति के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

युद्ध के दो पक्षों में से एक की विजय निश्चित होती है। विजेता को अपनी शक्ति पर गर्व होने लगता है और वह अपने शत्रु की निर्बलता पर हँसता है। काली तो शक्ति पुञ्ज है, जब वह आसुरी शक्तियों पर विजय प्राप्त करती हैं, तो वह भी शत्रु पक्ष की निर्बलता पर अट्टहास करती है। इसलिए उसे 'हसन्मुखीय' कहा गया है।

काली की चार भुजाएँ हैं। यह चार भुजाएँ पूर्णत्व की द्योतक हैं क्योंकि पूर्ण वस्तु को चतुरस्र कहा जाता है। उसके एक हाथ में खड्ग है जो नाश शक्ति का चिन्ह है। नरमुण्ड विनष्ट प्राणियों का प्रतीक है। वह स्वयं निर्भय रहती हैं। जो भी उसका आश्रय ग्रहण करता है, वह भी निर्भय रहता है। इस आश्वासन के रूप में वह एक हाथ में अभय मुद्रा धारण करती है और एक में वर। इसीलिए वह 'वराभयकरा' कहलाती है। ऐसी बात नहीं कि वह केवल विनाश ही विनाश करती है, उसमें अपने भक्तों के प्रति अपार दया और करुणा भी है। अपनी शक्ति का जितना भाग संहार में व्यय करती है, उतना ही वह कारुण्य में करती है क्योंकि उसके दो हाथ एक कार्य करते हैं और शेष दो हाथ दूसरा काम।

जीवित प्राणियों के अतिरिक्त मृत प्राणियों का आश्रय भी काली ही है। इसलिए मुण्डमाला पहनती हैं। निरुत्तर तन्त्र और कामधेनु तन्त्र में एक और भाव भी दिया गया है—

पञ्चाशद्वर्णमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्।

(निरुत्तर तन्त्र)

'पचास वर्ण वाले मुण्डों से टपकते हुए रुधिर से आप चर्चित होती हैं।'

ममकण्ठे स्थित बीज पञ्चाशद्वर्णमद्भुतम् ।
(कामधेनु तन्त्र)

'मेरे कण्ठ में स्थित बीज भी पचास वर्णों वाला अतीव अद्-भुत है ।'

विश्व ही ब्रह्मरूपा काली का आवरण-वस्त्र है । काली का सम्बन्ध तो प्रलय रात्रि मे है जब सारा विश्व नष्ट और लीन हो जाता है । विश्व के अभाव मे वह 'अवस्त्रा' नग्न रह जाती है । केवल दिशाएं ही उसके वस्त्र रह जाते है । इसी स्थिति को 'नग्न' संज्ञा दी गई है ।

जब जगत् का लय हो जाता है, जब सारा जगत् श्मशान बन जाता है, तभी काली का विकास माना जाता है । उसका पूरा विकास-काल विश्व का प्रलय काल है ।

साधना में इसका एक और भाव भी है । भगवती की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि अपने हृदय को श्मशान बनाया जाय । राग, कामादि का नाश किया जाए । इस जगत् की आसक्ति, मोह, लगाव और लिप्तता को दूर किया जाए । जगत् भाव को बनाए रखने वाले जितने भी आसुरी तत्व हैं, उनसे अलिप्त रहा जाए तभी विश्व मे रहते हुए विश्व का विनाश समझा जायेगा और जगत् श्मशान तुल्य लगेगा । जब तक इस भावना का जागरण नहीं होता भगवती का वर व अभय मुद्रा वाले हाथ आशीर्वाद के लिए नही उठने ।

२– तारा

परिभाषा

तारा के नाम से ही विदित होता है कि इसका सम्बन्ध 'तारण' अथवा 'तरण' से है । वास्तव मे तारण करने वाली शक्ति को 'तारा'

कहते हैं। इसका शब्दार्थ भी यही है—'तरत्यनया सा तारा' अर्थात् इस भवसागर से जो तारती है, वह तारा है। तारा ने स्वयं भी कहा है—

तारयिष्याम्यहं नाथ! नाना भवमहार्णवात् ।
तेन तारेति मां लोके गायन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥

अर्थात् 'हे नाथ! मैं अनेक प्रकार के संसार रूपी महासागर से तार दूँगी। इसी कारण से लोक में मुझको मुनियों में श्रेष्ठ लोग 'तारा' नाम से गान किया करते हैं।'

त्रितापों—आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक से तारने वाली को तारा कहते हैं। सांसारिक बन्धनों, विपत्तियों और कठिनाइयों से मुक्ति दिलाती है। संसार सागर से तारती है, उबारती है, तभी तारा कहलाती है।

वैदिक साहित्य में जगत् की सृष्टि सूर्य से मानी गई। वही इसका आधार है। सूर्य अग्नि का महापिण्ड है। अग्नि हिरण्यरेता कहलाती है और सौरमण्डल हिरण्यमय। इस हिरण्यमय मंडल के मध्य में सारे ब्रह्मतत्त्व अधिष्ठित हैं। इसलिए सौरब्रह्म—हिरण्यगर्भ' कहलाता है। इसी हिरण्यगर्भ की शक्ति को तारा कहते हैं। जिस तरह महाकाली महाप्रलय की अधिष्ठात्री हैं, उसी तरह 'उग्रतारा' सूर्य प्रलय की अधिष्ठात्री है। दोनों समानधर्मा हैं।

सूर्य का नाम रुद्र भी है। इसके दो रूप हैं—शान्त और घोर। हिरण्यगर्भ की उग्रता क्षुधा के कारण थी। अन्न की आहुति से उसकी शान्ति रहती है। उसी उग्र—हिरण्यगर्भ की शक्ति को 'उग्रतारा' कहते हैं।

तारा के विविध नाम हैं। तारा, तरणि, तरला, तारिणी, प्रभा,

त्रिरूपा, तत्वज्ञानप्रदा, अनघा, सत्वरूप, रजोरूपा तमोरूपा, परानन्दा साक्षात् चैतन्य शक्ति स्वरूपा आदि।

तारा को द्वितीय महाविद्या अथवा सिद्ध विद्या कहते हैं। तारा की तीन शक्तियां हैं। वह सरलता से ज्ञान देती है इसलिए नील सरस्वती कहलाती है। वह कैवल्य दायिनी है इसलिए एक जटा है। वह उपासकों की उग्र आपत्तियों का निवारण करती है इसलिए 'उग्रतारा' नाम पड़ा। विद्वानों का यह भी विश्वास है कि योग दर्शन में जिस 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' की चर्चा है, वह इसी विद्या का स्पष्टीकरण किया गया है।

तारा परमशक्तिरूपा है। यह परब्रह्म परमात्मा से अभिन्न है। कथा आती है कि जब देवासुर संग्राम हुआ तो देवों के नेता इन्द्र ने असुरों पर विजय पाने के लिए भगवती तारा की उपासना की थी, जिससे उन्हें अभीष्ट सिद्धि मिली थी।

महिमा

शास्त्रों में तारा की महिमा इस प्रकार वर्णित है—

ब्रह्मतरी जय तारिणि मुक्ते
ब्रह्मविष्णुशिवशाखयुक्ते।
मोक्षफल फलमद्भुतमरस
नित्यानन्दमये कुरु कुरु शम्॥

अर्थात् 'आप ब्रह्म के तरु के स्वरूप वाली हैं तथा मुक्त और तारण करने वाली हैं। आपकी जय हो। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसी ब्रह्म तरु की शाखाएँ हैं। मोक्ष रूपी इसका फल है जो अतीत अद्भुत और सरस है। आप नित्य ही आनन्द से परिपूर्ण रहती हैं—कल्याण करो—मङ्गल करो।

किमन्यन्महेशि! प्रियत्वेन देवा
भवत्पादधूलीलवैकेन देवा

त्वया यन्न सूत्रीयपुत्रीस्वरूपो
निरीहो नरीनर्त्यसौ विश्वरूप ।
त्वयैवोज्जिहीते परेशोऽपि शक्त्या
नमामीश्वरि ! त्वामह देविभक्त्या ॥
मूलप्रकृतिविकृतिर्महदाद्या, प्रकृतिविकृतय. सप्त ।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष ॥

अर्थात् 'हे महेशि ! अन्य क्या कहा जावे । ये देवगण आपके ही प्रियपात्र होने वाले हैं । समस्त देवगण आपके चरण की धूलि के एक कण के समान हैं । जिसको सूत्रीय पुत्र स्वरूप नहीं किया है, वह निरीह विश्वरूप नृत्य किया करता है । परेश को भी आपने ही अपनी शक्ति के द्वारा प्रभावशाली बना दिया है । हे ईश्वरि ! हे देवि ! मैं भक्ति-भाव से आपकी सेवा मे नमस्कार समर्पित करता हूँ । प्रकृति मूलस्वरूपा है और महत्तत्वादि सातो उसी की विकृतियां हैं । इस प्रकार से सोलह विकृतियां हैं । प्रकृति में कोई भी विकार नही हैं और पुरुष भी विकृत नही होता ।'

नील तन्त्र के अनुसार--

ज्वलत्पावकज्वालजाभिभास्व-
च्चितामध्यसस्था सुपुष्टा सुखर्वाम् ।
शव वामपादेन कण्ठे निपीड्य
स्थिता दक्षिणेनाङ्घ्रिणाङ्घ्रि निपीड्य ॥

अर्थात् 'जलती हुई अग्नि की ज्वालाओ के जाल के कारण अभि-भास्वमाण चिता के मध्य मे स्थित—सम्पुष्ट और सुखर्वा आप हैं । बांये पाद से शव को कण्ठ में निपीडित करके सस्थित है तथा दाहिने पाद से चरण को निपीडित करने वाली हैं ।'

और भी कहा है—

विना ध्यान विना जाप्य विना पूजादिभि प्रिये ।

विना वलि विनाभ्यास भूतशुद्धयादिभिर्विना ॥
विना क्लशादिभिर्देवि देहदु खादिभिर्विना ।
सिद्धिराशु भवेद्यस्मात्तस्मात्सर्वोत्तमा मता ॥

अर्थात् 'विना ध्यान, जप, पूजा, बलि, अभ्यास, भूतशुद्धि, क्लेश, देह दु ख से ही इसकी सिद्धि प्राप्त होती है । इसीलिए सभी प्रकार की सिद्धियो ने इसे सर्वोत्तम माना जाता है ।

अन्य धर्मो व देशो मे तारा-भक्ति का प्रसार

तारा इतनी लोकप्रिय देवी है कि इसकी पूजा केवल हिन्दू धर्म मे ही नही, अन्य धर्मो और सम्प्रदायो मे भी होती है । इस देश मे ही नही, विदेशो मे भी इसका उच्च सम्मान था ।

जैन धर्म मे 'सुतारा' व 'सुतारका' नाम से देवी की उपासना होती है । श्वेताम्बर शाखा इसे सुविधि नाथ की शासन देवी या यक्षिणी मानती है ।

तारा बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय की एक प्रसिद्ध देवी है । हिन्दू धर्म मे जो प्रतिष्ठा तारा अथवा दुर्गा की है, वही महायान मे तारा की है । जैसे शिव की शक्ति को 'दुर्गा' नाम दिया गया है, वैसे बौद्ध धर्म मे तारा अवलोकितेश्वर की शक्ति है । तारा को वहाँ देवमाता के सम्माननीय पद से विभूषित किया गया है ।

तारा की उपासना तिब्बत मे भी प्रचलित थी । मगोलिया मे भी तारा की उपासना होती थी । वहाँ इसका नाम 'दर-एके (Dara-eke) था ।

तारा तत्व को जानने के लिए उसके विभिन्न प्रकार के ध्यानो का अवलोकन करना होगा । मन्त्र-शास्त्र मे तारा का ध्यान इस प्रकार है—

विश्वव्यापकदारिमध्यबिलसच्छ्वेताम्बुजन्मस्थिता
कर्त्रीखड्गकपालनीलनलिनैं राजत्करा नीलभाम् ।
काञ्चीकुण्डलहारकङ्कणलसत्केयूरमञ्जीरता-
माप्तैर्नागवरैर्विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ॥

पिङ्गोग्रैकजटा ललत्सुरशना दंष्ट्राकरालानना
चर्म द्वैपि वर क्टौ विदधती श्वेतास्थिपट्टलिकाम् ।
अक्षोभ्येण विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहा
तारा शावहृदासना दृढकुचामम्बा त्रिलोक्या स्मरेत् ॥

अर्थात् 'विश्वव्यापी जल से निकले हुए एक सफेद कमल पर अधिष्ठित, कैंची, खड्ग, कपाल, और नीलोत्पल को हाथो मे धारण किए हुए, सर्पों से बने काञ्ची, कुण्डल, हार, कङ्कण, केयूर, मञ्जीर, (नूपुर) से विभूषित, तीन रक्त नेत्रो वाली, एक पीली जटा वाली, सुन्दर रशना से मण्डित, विकराल दंष्ट्रा से युक्त, कटि प्रदेश में चीते के चर्म को लपेटे हुए, श्वेत हड्डियों की पट्टालिका धारण किए हुए, शव-हृदयासना, जिसके सर पर 'अक्षोभ्य' प्रतिष्ठित है, ऐसी स्मितवदना, त्रैलोक्य-जननी भगवती तारा का स्मरण करे।'

'नील तन्त्र' में इस प्रकार ध्यान करने का आदेश दिया गया है—

प्रत्यालीढपदा घोरा मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरी भीमा व्याघ्रचर्मावृता कटौ ।
नवयौवनसम्पन्ना पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजा ललज्जिह्वा महभीमा वरप्रदाम् ॥

खड्गकर्त्रीधरा सव्ये यामे मुण्डोत्पलन्विताम् ।
पिंगोग्रैकजटा ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ॥

बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रय भूषिताम् ।
प्रज्वलत्पितृ भूमध्यगता दंष्ट्राकरालिनीम् ॥

सावेशस्मेरवदनामस्थ्यालकार भूपिताम् ।
विश्वव्यापकतोयान्त श्वेतपद्मोपरिस्थिताम् ॥

अर्थात् 'पद को प्रत्यालीढ करने वाली—घोर और मुण्डो की माला से विभूपित हैं। खर्व (छोटे कद वाली)—लम्बे उदर से युक्त—भयानक कटिभाग में व्याघ्र के चम को धारण करने वाली हैं। नूतन यौवन से युक्त तथा पाच भुजाओ से समलकृत हैं। चार भुजाओ वाली तथा जीभ को वाहर निकाले हुए महान् भीम स्वरूप वाली एव वरदान प्रदान करने वाली है। बाये हाथ मे खड्ग और कर्त्री धारण करने वाली तथा नरमुण्डो के कपालो से युक्त हैं। पिग एव उग्र आगे की जटा वाली मस्तक मे अक्षिमाला से विभूपित का ध्यान करना चाहिए। बाल सूर्य-मण्डल के आकार वाले तीन लोचनो से अलकृत हैं। प्रज्वलित पितृभूमि (श्मशान) के मध्य मे रहने वाली, बडी बडी दाढो से कराल स्वरूप से युक्त, आवेश से युक्त, मुस्कान पूर्ण मुख वाली, अस्थियो के भूपणो से भूपित एव विश्व में व्यापक जल के अन्दर श्वेत पद्म पर स्थित हैं।'

मन्त्र चूडामणि मे तारा का ध्यान इस प्रकार दिया गया है—

तस्योपरिगृहे देवी खर्वां नीलमणिप्रभाम् ।
लम्बोदरी व्याघ्रचमसमावृतनितम्बिनीम् ॥

पीनोन्नतपयोभारा रक्तवर्त्तुललोचनाम् ।
ललज्जिह्वा महाभीमा दष्ट्राकोटिसमुज्ज्वलाम् ॥

नीलोत्पललसन्माला बद्धजूटा भयकरीम् ।
श्वेतास्थिपटिकायुक्तकपालरञ्जशोभिताम् ॥

ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णावतसकाम् ।
अतिशुभ्रमहानागहारमहोज्जवलाम् ॥

दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ।
चतुर्भुजा रक्तमासखण्डमण्डितमुष्टिना ।

जटाजूटाक्षसूत्रेण शोभिता तीक्ष्णधारया ।
खड्गेन दक्षिणस्यार्ध्वे शोभिता घोरनादिनीम् ॥
तदधःस्थाद्दीप्तकृत्तकर्तकालकृता पराम् ।
वामोर्ध्व रक्तनालेन दिगम्बरमनोहराम् ॥
दधती नीलपद्मञ्च तदधःस्थान् कपालकम् ।
जगता जाड्यसंयुक्त दधती कुन्दसन्निभाम् ॥
धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसत्वराम् ।
सुवर्णवर्णनागेन कंकणोज्ज्वलपाणिकाम् ॥
शुभ्रवर्णमहादेवकृतसद्विमलासनाम् ।
नियन्त्रणगियातद्भवत् सकुचत् प्रपदात्मिकाम् ॥
शवपादद्वयारूढवामपादा हसन्मुखीम् ।
कुन्दाभनागसंशोभिकटिसूत्रा त्रिलोचनाम् ॥
असृग्रक्तेन नागेन कृतनूपुरपल्लवाम् ।
सद्यश्छिन्नगलद्रक्त मुण्डैरक्तविभूषणैः ॥
अन्योन्यकेशग्रथित पादपद्मविलम्बितैः ।
पञ्चाशद्भिर्महामालाशोभिता परमेश्वरीम् ॥
ज्वलच्चितामध्यसंस्था द्वीपिचर्मोत्तराशुकाम् ।
अक्षोभ्यनागसम्बद्धजटाजूटा वरप्रदाम् ॥
एवंभूता महादेवीमात्मानं यागवस्तु च ।
विज्ञापयेन्महादेव पण्डितान्हे महाकवि ॥

अर्थात् 'उसके ऊपर गृह में स्वर्ण और नीलमणि की प्रभा के समान प्रभा वाली है। लम्बे उदर से युक्त तथा बाघ के चर्म से ढके हुए नितम्बों वाली हैं। पीत एवं उन्नत स्तनों से समन्वित तथा रक्त और और वर्तुल लोचनों वाली हैं। जीभ को बाहर निकाले हुए—अति

भयानक तथा करोड़ो दाँतो से समुज्ज्वल हैं। नील कमलों की माला से शोभित और अपने जूटे को बाँधे हुए भयङ्कर रूप वाली है। श्वेत अस्थियों के पट्टिका से युक्त पाँच कपालों से शोभा वाली हैं। ललाट में रक्त नाग से कर्णावतंस बनाये हुए तथा अत्यन्त शुभ्र महानाग का हार धारण करके महान् उज्ज्वल स्वरूप वाली है। दूर्वा के दल और श्याम नाग का यज्ञोपवीत धारण करने वाली है। चार भुजाओं से युक्त तथा रुधिर और मांस के टुकड़ो से मण्डित मुष्टि वाली हैं। जटाजूट और अक्षों के सूत्र से शोभित—तीक्ष्ण धार वाले खग से दक्षिण भाग के ऊपर वाले भाग में शोभा से पूर्ण हैं तथा वीर-नाद करने वाली हैं। उसके नीचे रहने वाले भाग में वीज वृन्त को करने वाली से भूषित परा तथा वाम ऊर्ध्व भाग में रक्त नाग से युक्त और दिगम्बर एवं मनोहर रूप वाली हैं। नील पद्म और उसके नीचे कपाल को धारण करने वाली हैं। जगतों की जड़ता से संयुक्त को धारण किये हुए कुन्द के तुल्य हैं। धूम्र की आभा वाले नागों के समूह से केयूरों वाली—सत्वर हैं। सोने के वर्ण वाले नागों से हाथों में उज्ज्वल कङ्कण धारण करने वाली हैं। शुभ्र वर्ण वाले महादेव के साथ सत् और विमल आसन वाली हैं। नियन्त्रण के भय से आपके साथ संकोच वाले प्रपदों से युक्त हैं। शव के दोनों पादों पर अपना बाँया पाद समारूढ करने वाली हैं। हास्ययुक्त मुख वाली है। कुन्द के पुष्प की आभा वाले भाग में शोभित कटिसूत्र वाली एवं नील लोचनों से युक्त हैं। रुधिर के समान रक्त नाग से नूपुर पल्लवों की रचना करने वाली हैं। तुरन्त ही भेदन करने से जिनमें रुधिर वह रहा है ऐसे रक्त से भूषित मुण्डों से जिनके केश एक दूसरे से ग्रथित हो रहे हैं और चरण कमल तक लटके हुए हैं ऐसे पचास मुण्डों की महामाला से शोभा वाली परमेश्वरी है। जलती हुई चिता के मध्य में स्थित हाथी के चर्म से उत्तरीय वस्त्र धारण करने वाली हैं। अक्षोभ्य नाग से जटाजूट को बाँधने वाली तथा वर देने वाली हैं। ऐसी महादेवी

को अपने आप को समर्पित करना है। महादेव को महाकवि पण्डित के द्वारा विज्ञापित करना चाहिए।'

उपरोक्त ध्यानों में जो विषय आए हैं, उनका स्पष्टीकरण यहाँ किया जाता है—

✧ जगत्व्यापी जल में कमल पर स्थित

भगवती तारा विश्वव्यापी जल से निकले एक श्वेत कमल पर खड़ी हैं। इससे सूचित होता है कि वह जल-प्लावन के भय का निवारण करती है। यह लघुभट्टारक रचित 'लघु स्तव' के निम्न पद से स्पष्ट हो जायगा।

लक्ष्मी राजकुले जया रण भुवि क्षेमङ्करीम ध्वनि
क्रव्यादद्विपसर्प भाजि शबरी कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचराक्षसभये स्मृत्वा महाभैरवी
व्यामोहे त्रिपुरा तरन्ति विपदस्तारा च तोयप्लवे॥

अर्थात् 'राज-कुल में लक्ष्मी - रणभूमि में जया - मार्ग में क्षेम करने वाली - क्रव्याद - हाथी - सर्प वाले कान्तार दुर्ग तथा गिरि में - भूत-प्रेत पिशाच और राक्षसों के द्वारा होने वाले भय में महा भैरवी का स्मरण करे। व्यामोह होने पर त्रिपुरा को और तोय प्लव में तारा का स्मरण करने पर विपत्तियों से उद्धार हो जाता है।'

ब्रह्माण्ड पुराण से ललितोपाख्यान में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है—

सतो नाम महाशाल . . . .
तन्मध्यकक्ष्या भागस्तु सर्वाप्यमृतवापिका।
न तत्र गन्तु मार्गोऽस्ति नौकावाहनमन्तरा॥
तारा नाम महाशक्तिर्वर्त्तते तोरणेश्वरी।

बह्वयरतत्रोत्पलश्यामास्ताराया परिचारिका ॥
रत्ननौकासहस्रेण खेलन्त्यस्सरसीजले ।
अपर पारमायान्ति पुनर्यान्ति पर तटम् ॥
कोटिशस्तत्र ताराया नाविक्यो नवयौवना. ।
मुहुर्गायन्ति नृत्यन्ति देव्या पुण्यतम यश ।
अरित्रपाणय काश्चित्काश्चिच्छृगाम्बुपाणय ।
पिबन्त्यस्तत्सुधातोय सञ्चरन्त्यस्तरीशतै ॥
तासा नौकावाहिकाना शक्तीना श्यामलत्विषाम् ।
प्रधानभूता ताराम्बा जलौघशमनक्षमा॥
आज्ञा विना तयोस्तारा मन्त्रिणीदण्डनाथयो ।
त्रिनेत्रस्यापि नो दत्ते वापिकाभ्यन्तरम् ॥
तारातरणिशक्तीना समवायोऽतिसुन्दर ।
इत्थ विचित्ररूपाभिर्नौकाभि परिवेष्टिता ॥
ताराम्बा महती नौकामधिगम्य विराजते ॥

अर्थात् ' मनो नाम वाली एक महाशाला है, उसके मध्य वाले कक्ष मे एक ऐसा भाग है जहां पर अमृत की बावडी है। वहां पर नौका वाहन के बिना जाने का कोई मार्ग नही है। वहां तारा नाम वाली महाशक्ति तोरणेश्वरी विद्यमान है वहां बहुत-सी उत्पल के समान श्याम वर्ण वाली तारा की परिचारिकाएं भी विद्यमान रहती हैं। सहस्रो रत्नो की नौकाओ से वे सरसी के जल मे विहार किया करती हैं। दूसरे तट पर आ जाती हैं और फिर इस तट पर आ जाती हैं। वहां पर करोडो नवीन यौवन वाली तारा की नाविकाएं हैं। वे बारम्बार देवी के पुण्यतम् यश का गायन किया करती हैं और नृत्य किया करती हैं। कुछ के हाथो मे अस्त्र हैं तो कुछ के हाथो मे शृगाम्बु है। वे उस अमृत जल का पान किया करती हैं और सैकडो नौकाओ मे सञ्चरण किया

करती है। श्यामल कान्ति वाली उन नौका वाहिनी शक्तियो मे प्रधान-भूत ताराम्बा है जो बलवान् पापो के शमन करने मे समर्थ है। दण्डनाथ उन दोनो की आज्ञा के बिना ही मन्त्रिणी तारा पूर्ण समय हैं। उस वापिका के जल मे वह त्रिनेत्र को भी अन्तर नही देती है। तारा तरणी की शक्तियो का अत्यन्त सुन्दर समवाय है। इस प्रकार से विचित्र रूप वाली नौकाओ से वह परिवेष्टित है। ताराम्बा एक बडी नौका मे बैठ कर विराजमान होती हैं।'

इसका एक और भाव भी हैं। जगत् मे जल के अतिरिक्त और कुछ नही है, इस स्थिति को श्रुति मे 'निरति शयानन्दामृतसागर' की सज्ञा दी है। इस आनन्दामृत सागर मे भगवती श्वेत कमल पर स्थित हैं। श्वेत वर्ण विशुद्ध सत्व का प्रतीक है। अर्थात् यही कमल उनका आसन है।

✧ चतुर्भुजा

चार भुजाओ मे खड्ग, कैंची, कपाल और कमल है। विष्णु-पुराण १।५२।७४ के अनुसार खड्ग अविद्यामय कोश से आच्छादित विद्यामय ज्ञान का प्रतीक है। भगवती तारा आध्यात्मिक ताप के निवारण के लिए, कर्म बन्धन को ज्ञान रूपी खड्ग से काटती है। जीव के आत्म विकास के लिए इस अस्त्र का रहना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि हमारे चारो ओर का वातावरण तामसिक व राजसिक प्रवृत्तियो से ओतप्रोत है। आसुरी शक्ति घात लगाए बैठी रहती है, थोडी-सी असावधानी से वह आक्रमण करके अपना प्रभुत्व जमा लेती हैं। कैंची से भगवती आधिभौतिक या आधिदैविक तापो को दूर करती है। खड्ग और कैंची दोनो का भाव एक ही है, अन्तर केवल बडे और छोटे अस्त्र का है। सकुचित स्थानो पर जहाँ खड्ग से प्रहार नहीं किया जा सकता, वहाँ कैंची से काम लिया जाता है।

कपाल से रक्तपान का आभास होता है। रक्त वर्ण रजोगुण का

द्योतक है। भगवती रजोगुण अथवा मोह का पान या निवारण करती है। जीव को भी मोह रूपी रक्त को पान करने के लिए सदैव प्रयत्न-शील रहना चाहिए।

कमल अलिप्तता का प्रतीक है। भगवती अज्ञानान्धकार, अविद्या, त्रितापों और मोहादि से संघर्ष करती है, उन पर विजय ही प्राप्त करती है, किसी से प्रभावित नहीं होती, रजोगुण रूपी रक्त का पान करती हैं परन्तु एक भी छींटा उन पर पड़ नहीं पाता। साधक को भी ऐसी ही स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि जगत् में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहें।

अष्टनाग विभूषिता

भगवती अष्टनागों से बने विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करती है। इसका अभिप्राय आठ प्रकार की प्रकृतियों से है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। वह अष्टधा सिद्धियों से विभूषित है। यह सिद्धियाँ प्रदान करने की भी सामर्थ्य रखती है, परन्तु आत्मविकास के मार्ग में वह बाधक का काम करती है, इसलिए नाग रूप में उन्हें प्रद-र्शित किया गया है जो भौतिक शरीर की इहलीला समाप्त करने की शक्ति रखते हैं अर्थात् जीव की यात्रा में बधक सिद्ध होते हैं। एक भाव यह भी है कि पूर्णता की प्राप्ति के लिए यम, नियमादि योग के आठ अङ्गों का पालन आवश्यक है। भगवती के साधक को इस मार्ग पर चलना ही चाहिए।

त्रिनयना

भगवती तारा के तीन नेत्र हैं जो चन्द्र, सूर्य और अग्नि के प्रतीक हैं। इससे वह सर्वसाक्षी और अन्तर्यामी सिद्ध होती है। वह ज्ञान, इच्छा और क्रिया—त्रिशक्ति की द्योतक है। किसी भी सिद्धि के लिए सर्व प्रथम उसका ज्ञान अर्जित करना आवश्यक होता है। फिर इसे

व्यवहारिक रूप देने के लिए इच्छा जाग्रत होती है। इच्छा बलवती होने पर क्रिया रूप धारण करती है।

भगवती त्रिकालदर्शी है। वह भूत, भविष्यत् और वर्तमान में जो कुछ हुआ है, हो रहा है या होने वाला है, सबको जानती है। इन तीनो की गतिविधि का ध्यान रखते हुए कार्य करने वाले को ही त्रिकालदर्शी कहते हैं। अत भगवती का आदेश है कि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों को देखो, त्रिकालदर्शी बनो और विवेक, अनुभव, स्थिति तथा दूरदर्शिता के आधार पर अपने कार्यक्रम बनाओ। ससार मे जितने भी दुख हैं, उनके तीन कारण हैं--अज्ञान, अशक्ति और अभाव। भगवती का इन तीनो पर नियन्त्रण है और उन्हे दूर करने की क्षमता रखती हैं।

भगवती तीन नेत्रो से भुवनत्रय, भू, भुव स्व पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक को देखती है। उसकी दृष्टि बडी पैनी है, उससे कुछ छिपा नही है। अत छिप कर पाप करना, मानसिक पाप करना व्यर्थ है। इन सबको वह क्षण भर मे जान जाती है और चित्रगुप्त को लिखने के लिए सूचित कर देती है।

वह अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत--इस त्रिदर्शन की अधिष्ठात्री है तभी पराविद्या सिद्ध होती है।

तारा त्रिदेवो--ब्रह्मा, विष्णु और महेश की उत्पत्ति, पालन और सहार का सभी प्रकार का कार्य करती है क्योंकि सूर्य, चन्द्र और अग्नि इन तीन स्थितियो के प्रतीक हैं।

भगवती का गुणत्रय--सत्य, प्रेम और न्याय की ओर निरन्तर ध्यान रहता है। सत्य की प्राप्ति के लिए विवेक का आश्रय लेना आवश्यक होता है। दूसरो के प्रति निःस्वार्थ आत्मीयता का होना ही सच्चा

प्रेम है। न्याय का अर्थ है--सन्तुलन। न अपना अधिकार हरण करने देना और न किसी का करना। भगवती की व्यवहार-नीतियाँ इन्हीं गुणों पर आधारित है। भगवती को प्राप्त करने के लिए इन गुणों का विकास आवश्यक है।

◈ पिंगैकजटा

भगवती तारा की एक जटा पिंग वर्ण की है। एक जटा का अभिप्राय केशों को वेणी के रूप में बनाना है। केश का आध्यात्मिक अर्थ त्रिदवता--ब्रह्मा, विष्णु और महेश है जिसमे 'क' का प्रतीक ब्रह्मा, 'अ' का प्रतीक विष्णु और 'ईश' का महेश है। ब्रह्मा सतोगुण का, विष्णु रजोगुण का और महेश तमोगुण का द्योतक हैं। एक जटा मे तीनो गुण मिश्रित हैं। उनको अलग करना असम्भव है। वह तो साथ-साथ ही रहते हैं। सात्विकता की वृद्धि चाहने वाले को रज और तम से घृणा नहीं करनी चाहिए, वह भी इस जीवन की स्थिरता के लिए आवश्यक हैं। केवल आवश्यकता इस बात की है कि उनके प्रभाव से अनासक्त व अलिप्त रहा जाए। एक जटा से अभिप्राय तीनों गुणों की एकता से है। सत्, रज और तम के प्रतीक वर्णों को यदि मिलाया जाए तो परिणाम पिंग वर्ण ही होगा। भगवती को तीनों की एकता ही अभीष्ट है, तभी वह जटा मे पिंग वर्ण धारण करती है और यह भी संकेत करती है कि इस अभीष्ट सिद्धि के लिए घोर परिश्रम, तप की अपेक्षा है (पिंग वर्ण तप का द्योतक है)। सात्विकता के विकास के लिये आवश्यक है कि रज और तम को कम किया जाए, दबाया जाए, इसके लिये तप करना होगा।

◈ दंष्ट्राकोटिसमुज्ज्वला

इसका तात्पर्य समुज्ज्वल दशन पंक्ति से है जिससे लपलपाती जिह्वा को दबा कर रखती है। उज्ज्वलता का प्रतीक सतोगुण है।

लाल जिह्वा रजोगुण की द्योतक है। यहां सतोगुण ने रजोगुण को दबा रखा है। भगवती के उपासकों को भी यही प्रयत्न करना चाहिए। उन्हे रजोगुण को नियन्त्रण मे रखना चाहिये।

✧ चीते के चर्म को ओढने वाली

तारा चीते के चर्म को ओढती हैं। चीता महान क्रूर स्वभाव का है। अत: तमोगुण का प्रतीक है। किसी पशु का चर्म ओढने के लिए उसका वध आवश्यक है। वध करने वाला उससे शक्तिशाली होता है तभी वह साहस कर सकता है। चीते के चर्म के ओढने का अभिप्राय तम को नियन्त्रण मे रखना है। सतोगुण के विकास के लिए तम को दबाना ही पडेगा।

✧ श्वेतास्थिपट्टिकायुक्त

तारा श्वेत अस्थियों के आभूषणों से विभूषित है। अस्थि मांस मज्जा से तभी अलग होती है जब मृत्यु होती है। सारे जगत के प्राणियों की मृत्यु का अभिप्राय प्रलय से है। इस समय भी तारा श्वेत आभूषण धारण किए हुए है। श्वेत वर्ण सतोगुण का प्रतीक है। चाहे अपने पर कैसी भी आपत्ति क्यों न आ जाए, कैसी भी गिरी हुई परिस्थितियों से क्यों न गुजरना पड रहा हो, अपनी आत्मा के स्वाभाविक गुण-- सत् को ही अपनी शोभा समझना चाहिए।

✧ शवासना

प्राणी शव रूप मे तभी आता है जब उसमे आत्मशक्ति का अभाव हो जाता है। शव प्रलयावस्था का सूचित करता है। प्रलय में सभी कुछ निर्जीव हो जाता है केवल भगवती ही अपने स्वाभाविक रूप मे विद्यमान रहती है। प्रलय विनाश का चिन्ह है। भगवती इस व्यापक विनाश से अप्रभावित रहती है बल्कि उस पर नियन्त्रण रखती है।

शव से यह भी लक्षित होता है कि यह भौतिक जगत अनित्य है। जो अनित्य जगत के मोह में फंस जाता है, वह सदैव दुखी रहता है क्योंकि नष्ट होने वाली वस्तु का स्वभाव ही नाश है। यदि उसमें आसक्ति रही तो शोक होगा ही। भगवती ने इस अनित्यता की भावना को अपने पैरों के नीचे दबा रखा है और उस पर स्वयं खड़ी हैं ताकि वह उठ न सके। आत्मा नित्य है। जिनमें आत्म प्रकाश होता है, वह इसी प्रकार अनित्यता रूपी शव पर खड़े दृष्टिगोचर होते हैं।

◈ अक्षोभ्यनाग सम्बद्ध जटाजूटाम्

तन्त्र-ग्रन्थों में अक्षोभ्य शिव का ही नाम है। तारा तन्त्र अथवा तोडल तन्त्र में कहा है--

समुद्रमथने देवि ! कालकूट समुत्थितम्।
सर्वे देवाश्च देव्यश्च महाक्षोभमवाप्नुयु ॥
क्षोभादिरहित यस्मात् पीत हालाहल विषम्।
अतएव महेशानि ! अक्षोभ्य परिकीर्तित ॥
तेन सार्द्धं महामाया तारिणी रमते सदा।

अक्षोभ्य नाम का सम्बन्ध पुराणों की समुद्र मन्थन की कथा में है। समुद्र मन्थन करते हुए जब हलाहल विष निकला तो चारों ओर का वातावरण विषाक्त होने लगा, सारे विश्व में खलबली मच गई तो देवताओं ने भगवान शङ्कर से प्रार्थना की कि वे इस सङ्कट से उबारें। शङ्कर ने इस विष का पान कर लिया और विश्व में शान्ति स्थापना हुई। सभी को यह विश्वास था कि शङ्कर को इससे क्षोभ होगी परन्तु ऐसा नहीं हुआ। वे क्षोभरहित रहे, इसलिए उनका 'अक्षोभ्य' का आध्यात्मिक अर्थ 'अहङ्कार शून्य' है। 'अहङ्कार' महान विष है, उसे जो पीता है और अप्रभावित रहता है, वही अक्षोभ्यावस्था से प्राप्त होता है। यह शान्ति की उच्चतम अवस्था है। तारा को कैसी भी

आसुरी शक्तियों से जूझना पड़ा हो, विषैले वातावरण के सम्पर्क में आना पड़ा हो, वह अक्षोभ्य ही रहती है। उसके मस्तिष्क में स्थायी शान्ति स्थिर रहती है। नाग 'क्षोभ' का प्रतीक है, उसके रहते हुए भी वह क्षुब्ध नहीं होती, यही इसकी विशेषता है। तभी इसी अवस्था के द्योतक अक्षोभ्य को उन्होंने अपने मस्तक पर धारण कर रखा है, अर्थात् उच्च सम्मान प्रदान किया है।

◈ प्रत्यलीढा

प्रत्यलीढा का अर्थ है बांया पैर आगे और दांया पीछे। स्त्री या शक्ति जब क्रियाशील होने लगती है तो बांया पग ही पहिले उठता है। यह सक्रियता का द्योतक है। तारा सतोगुण के विकास की प्रतीक है और सदैव रजोगुण और तमोगुण को नियन्त्रण में रखने को तत्पर रहती है, यह उनकी इस विशेष मुद्रा में ही लक्षित होता है।

◈ मुण्डमाला धारिणी

मुण्डमाला प्रलयावस्था की सूचक है। तारा उसे अपने नियन्त्रण में रखती है।

पचास मुण्ड वर्णों के भी प्रतीक हैं। इससे तारा का वाङ्मय रूप शब्द ब्रह्म प्रतीत होता है।

◈ खप्पर युक्त

तारा प्रलयावस्था से सम्बन्ध रखती है। जिस तरह महाकाली को महाप्रलय की अधिष्ठात्री माना जाता है, उसी तरह 'उग्रतारा' को सूर्य-प्रलय की अधिष्ठात्री स्वीकार किया गया है। सौर प्रलय के समय सूर्य सभी प्राणियों का रस सुखा देता है और उग्रतारा उसे पी जाती है। रस विशेष रूप से शिर के कपाल में रहता है। इसीलिए खप्पर से सम्बन्ध है।

◈ स्थूल उदर वाली

स्थूल उदर से ब्रह्म के विराट् विश्व रूप की ओर सकेत है। जैसे वह कूटस्थ व सूक्ष्म होता है, वैसे वह स्थूल होता है। इससे प्रणव के आकार का भी बोध होता है क्योंकि उकार का अभिप्राय हिरण्यगर्भ का तैजस् रूपी सूक्ष्म शरीर और मकार से अव्याकृत प्रज्ञा-रूप कारण शरीर है। भगवती का स्थूल शरीर प्रणव का विराट् विश्व शरीर है।

◈ कराल वदना

भगवती तारा कराला है, उसे देख कर भय लगता है। ब्रह्म के परम उग्र रूप को ही उग्रतारा कहते हैं। तारा ब्रह्म की मूल सत्ता व पराशक्ति है, वह नित्य विराट् सत्ता है जिसके आदेश पर सभी अपरा शक्तियां कार्यरत रहती हैं। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्य नक्षत्र, वायु आदि सभी प्राकृतिक शक्तियों का सञ्चालन भगवती करती है। उसके भीषण रूप को देख कर सभी अपने-अपने कार्य में रत रहते हैं। इस उग्रता से विराट् ब्रह्म का तेजस्वी रूप ही सूचित होता है।

◈ खर्वा

तारा को खर्वा इसलिए कहते हैं कि वह एक क्षण मात्र में विरोधियों के अहङ्कार को चकना-चूर कर देती है, गर्व को खर्व कर देती है। इसीलिये इसका भोजन भी अहङ्कार मात्र बताया जाता है। वह इसी पर जीवित रहती है।

एक भाव और है। खर्वा का अर्थ नाटी भी होता है। तारा स्थूल उदर वाली है, उसका विराट विश्व रूप है, जितनी वह विराट है, उतनी सूक्ष्म भी है। ब्रह्म के यह दोनों रूप हैं, विराट भी और अणु से अणु भी। इन दोनों में सादृश्यता है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की शक्तियां एक ही हैं। विष्णु विराट हैं, विश्वव्यापी देव हैं, वही वामन—

बौने रूप मे अवतरित हुए। वह पहले छोटा था, अल्प था, फिर वह बडा और विराट हो गया। अणिमा ही भूमा बनता है। अणु ही विस्तार पाकर महत् बनता है, वामन ही विस्तृत हो कर विष्णु बनता है, विराट बनता है। तारा के भी यह दोनो रूप हैं, वह विराट भी है और अणु भी है।

✧ व्याघ्र चर्म्मावृता

तारा ने बाघ के चर्म का अधोवस्त्र धारण कर रखा है। बाघ वन का राजा कहलाता है, वह शक्ति सम्राट है परन्तु वह शक्ति स्थूल है, अनित्य है। पशुत्व उसका वास्तविक रूप है, अज्ञानता ने उसे घेर रखा है। वह रजोगुण का प्रतिरूप है। इसे मार कर भगवती ने उसके चर्म को ओढ रखा है, अर्थात् उसे अपने नियन्त्रण मे कर रखा है क्योकि उसका वध किए बिना चर्म प्राप्त नही किया जा सकता। इससे विदित होता है कि तारा का रजोगुण पर अधिकार है।

✧ नवयौवनावस्था

साधारण जीवो का यौवन अस्थायी रहता है क्योकि उत्पत्ति, स्थिति और लय उनका धर्म होता है। इस जगत की हर वस्तु उत्पन्न होकर बढती है, एक सीमा तक बढ कर विनष्ट होने लगती है। किसी के लिये किसी भी अवस्था मे स्थिर रहना सम्भव नही है। वह तो प्रकृति के नियमो के विरुद्ध हो जायेगा। परन्तु तारा की स्थिति असामान्य है। वह नित्य यौवनावस्था मे ही रहती है, उसका विनाश नही होता, परिवर्तन नही होता, काल का उस पर कोई प्रभाव नही। इसलिये वह 'नवयौवनावस्था' कहलाती है।

✧ पञ्चमुद्रा विभूषित

मुद्रा आनन्द की बोधक है। पञ्च मुद्राएं पांच क्लेशो का

का निवारण करती है। योग दर्शन साधना पाद के तीसरे सूत्र के अनुसार क्लेश पाँच प्रकार के हैं—१- अविद्या २ अस्मिता ३- राग ४- द्वेष ५- अभिनिवेश। इन क्लेशों को मिथ्या ज्ञान, विपर्यय ज्ञान, भ्रान्ति ज्ञान, अज्ञान भी कहते हैं। सांख्य परिभाषा में अविद्या को तम, अस्मिता को मोह, राग को महामोह, द्वेष को तामिस्र अभिनिवेश को अन्धतामिस्र कहते हैं। भगवती का इन पर अधिकार है, वह इन्हें दूर करने की क्षमता रखती है।

तारा के आभूषण पाँच महाभूत हैं। इनकी गतिविधियाँ भगवती की इच्छा पर सञ्चालित होती हैं। यह मानव देह इन्हीं भूतों से बना है। इससे स्पष्ट है कि सभी प्राणधारियों में क्रियाशीलता का मूल कारण भगवती हैं।

मानव शरीर में पाँच कोश हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय। यौगिक भाषा में यह जीवात्मा के पाँच बन्धन हैं। इनका खोलना मानव का परम लक्ष्य है। भगवती के पास इनकी चाबी है। वह इन्हें खोल सकती है अथवा सहयोग दे सकती है। आत्मिक उन्नति के इन पाँच द्वारों तक पहुँचना भगवती की कृपा से ही सम्भव है।

पाँच मुद्राओं का अभिप्राय पञ्च रश्मि से भी है जिसका प्रणव की ओर संकेत है। भगवती का आभूषण प्रणव है।

✧ पीनोन्नत पयोधरा

तारा के स्तन दूध से भरे हैं। माता अपने दूध से शिशु का पालन करती है। तारा सारे ब्रह्माण्ड के पालन पोषण की क्षमता रखती है। उसके पास आहार की कमी नहीं रहती। उसके स्तन सदैव दूध से भरे रहते हैं। तारा का रूप केवल उग्र ही नहीं, वह नाश हो-

नाश नही करती रहती, पालन भी करती है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश—त्रिशक्तियो का काय करती है। 'पीनोन्नतपयोधरा' से पालन शक्ति का बोध होता है।

◈ नीलवर्णा

तारा का वर्ण नीला है। जब आकाश मे मेघ नही होते तो वह नीला होता है। आकाश व्यापकत्व का प्रतीक है। भगवती का भी यही गुण है।

जैसे श्याम वर्ण तमोगुण का प्रतीक माना जाता है, वैसे नील वर्ण सतोगुण का प्रतीक स्वीकार किया गया है भगवती सात्विकता, पवित्रता, निमलता, शुद्धता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है।

◈ अट्टहास की मुद्रा

बडी जोर की हँसी को अट्टहास कहते हैं। हँसी प्रसन्नता का परिणाम है। भौतिक सफलताओ के कारण जब मानव को अतीव प्रसन्नता प्राप्तहोती ह तो गम्भीर मुद्रा के सकोच को छोड कर वह मुक्त रूप से हँसता ह। इससे उसकी हार्दिक प्रसन्नता का बोध होता है। आनन्दमय स्थिति का भी यह द्योतक है। भगवनी तो आनन्द ब्रह्म है। उसे भौतिक त्रितापो से क्या सम्बन्ध है ? वही सदैव आनन्दमयी रहती है। अट्टहास इसी अवस्था का प्रतीक है।

◈ ज्वलच्चितामध्यसस्था

भगवती जलती हुई चिता के मध्य मे निवास करती है। मानव देह के नाश के बाद चिता जलाई जाती है। भौतिक शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा का नाश नही होता, वह तो अपनी नित्य की स्थिति मे रहती है। तारा का भी यही रूप है। उसके चारो ओर अग्नि की

लपटे रहती हैं जो भौतिक वस्तुओं को नष्ट करने की क्षमता रखती है, परन्तु तारा का निवास ही वहीं है।

मृत्यु इस जीवन का सबसे बड़ा कष्ट है, चिता उसका रूप है। इस जीवन की महानतम् विपत्तियों के आने पर भी तारा की स्थिति सदैव की तरह एक जैसी रहती है, यही अन्तिम प्राप्ति का चिन्ह है। तारा अपने भक्तों को इसी मार्ग की ओर ले जाती है।

◈ चन्द्रार्धकृतशेखर

तारा मस्तक पर चन्द्रकला को धारण किए रहती है। इस स्थान विशेष का सम्बन्ध सोम मण्डल से है, जो ब्रह्मरन्ध्र से नीचे और आज्ञा चक्र के ऊपर स्थित है। इस सोममण्डल से अमृत की धारा का अखण्ड प्रवाह चलता है। इस स्थान पर चन्द्रकला को धारण करने का तात्पर्य यही है कि तारा अमृत रूपा है, अमृत की सरिता का मूल प्रवाह उसी से होता है।

उपरोक्त स्पष्टीकरण से तारा के तत्व-ज्ञान पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

तारा-पूजन-विधान

भगवती तारा देवी का मंत्र चार प्रकार से वर्णन किया गया है। इन चारों में से किसी भी एक मंत्र के द्वारा उपासना की जा सकती है -

(१) ह्रीं स्त्रीं हूं फट्
(२) ओम् ह्रीं स्त्रीं हूं फट्
(३) श्रीं ह्रीं हूं फट्
(४) ओं ऐं ह्रीं क्रीं हुं फट्

दिक्पालन्यास:

१—ह्रीं त्री हुँ अ उ ऋ लृ ए ओ अ ललाटपूर्वे इन्द्राय-नम । २—ह्रीं त्रीं हुँ आ ई ॠ लॄ ऐ औ अ ललाटा-ग्नेय्या दिशिअग्नयेनम. । ३—ह्रीं त्री हुँ क ख ग घ ङ ललाट दक्षिणे यमाय नम । ४—ह्रीं त्री हुँ च छ ज झ ञ ललाटनैऋत्या दिशि निऋतये नम । ५—ह्रीं त्री हुँ ट ठ ड ढ ण ललाट पश्चिमाया दिशि वरुणाय नम । ६—ह्रीं त्री हुँ त थ द ध न ललाट वायव्यादिशि वायवे-नम. । ७—ह्रीं त्री हुँ प फ ब भ म ललाटोत्तरस्या दिशि सोमायनम । ८—ह्रीं त्री हुँ य र ल व ललाटैशान्या दिशो ईशानायनम । ९—ह्रीं त्री हुँ श ष स ह ललाटो-र्ध्वायादिशि ब्रह्मणेनम । १०—ह्रीं त्री हुँ ल क्ष ललाट-धोदिशि अनन्तायनम ।

षट्चक्र न्यास:

१—ह्रीं त्री हुँ व श ष स डाकिनीयुत ब्रह्मणा चतुर्दलस-मन्वितमूलाधारे न्यसेत् । २—ह्रीं त्री हुँ ब भ म य र ल राकिनीयुत श्री विष्णुलिंगस्य षड्दले स्वाधिष्ठानचक्रे न्यसेत् ३—ह्रीं त्री हुँ ड ढ ण त थ द ध न प फ लाकिनीयुतरुद्र दशदलचक्रनाभिस्थे मणिपूरके न्यसेत् । ४—ह्रीं त्री हुँ क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ काकिनीयुतमीश्वर अनाहते द्वादशदले चक्रे हृदिन्यसेत् । ५—ह्रीं त्री हुँ अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः शाकिनी-युत सदाशिव विशुद्धस्य षोडशदले कण्ठस्थे विन्यसेत् । ६—ह्रीं त्री हुँ ह क्ष हाकिनी युत पर शिवमाज्ञाचक्रे मनोहरे भ्रू मध्यसस्थिते प्रविन्यसेत् ।।

ताराादिन्यास:

१—ह्री त्री हुँ अ आ क ख ग घ ङ तारायैनमो ब्रह्मरन्ध्रे। ह्रीं श्री हुँ इ ई च छ ज झ उग्रायै नमोललाटे। ह्री त्री हुँ उ ऊ ट ठ ड ढ ण महोग्रायैनमो भ्रूमध्ये। ह्री त्री हुँ ऋ ॠ त थ द ध न वज्रायै नम कंठदेशे। ह्री त्री हुं लृ लॄ प फ ब भ म महाकाल्यैनमोहृदि। ह्री त्री हुँ ए ऐ य र ल व श सरस्वत्यैनमो नाभौ ह्री श्री हुँ ओ औं श ष स ह कामेश्वर्यै नमो लिंगमूले। ह्री त्री हुँ अ अ. ल क्ष चामुण्डायैनमोयिगमूले।

पीठ न्यास:

ह्री ३ अ इ उ ऋ ॠ ए ओ अ कामरूप पीठायनम आधरे। ह्री ३ आ ई ॠ लृ औं अ जालधरपीठाय नमोहृदि। ह्रीं ३ क ख ग घ ङ पूर्णगिपीठाय नमोललाटे। ह्री ३ च छ ज झ ञ उड्डियान पीठायनम केशरन्धौ। ह्री ३ ट ठ ड ढ ण वाराणसी पीठायनमोभ्रुवो। ह्री ३ त थ द ध न अवन्ति पीठाय नमो नयनद्वये। ह्री ३ प फ ब भ म माया पुरी पीठायनमो मुखे। ह्री ३ य र ल व मथुरापीठायनमो कण्ठे। ह्री ३ श ष स ह अयोध्या पीठाय नमो नाभौ। ह्री ल क्ष काञ्चीपुरी पीठाय नम कट्यो ॥ इति पीठ-न्यास ॥

१—हा त्रा हा एकजटाये ह्यदयातनम। हा त्रा हा तारिण्यै शिर से स्वाहा। हा त्रा हा वज्रोदाकयं शिखायै वषट्। हा त्रा हा उग्रतारिण्यै कवचाहुँ। हा त्रा हां महापरिसरायै नेत्रत्रयायवौषट्

हा त्रा एक जटायै अगुष्ठाभ्या नम.। हा त्रां हा तारिण्यै

तर्जनीभ्या स्वाहा । हा त्रा हा वज्रोदकायै मध्यमाभ्या वषट् । हाँ त्राँ हा उग्रतारायै अनामिकाभ्या हु । हा त्रां हा महापरिसरायै कनिष्ठिकाभ्याँ वोपट् ।

ध्यानम्--विश्वव्यापक वारिमध्य विलसच्छ्वेताबुजन्मस्थिता ।
कर्त्री खड्गकपाल नीलनलिनं राजत्करा नीलभा ।
काञ्चीकुण्डलहार ककणलसत्केयूर मञ्जीरताम् ।
आप्तं नागवरं विभूषिततनूमारक्तनेत्रत्रयाम् ।१।
पिगोग्रं कजटा लसत्सुरसनां दष्ट्राकरालाननाम् ।
चर्मद्धं पिवर कटौविदधनी श्वेनास्थि पट्टालिकाम् ॥
अक्षोभ्येण विराजमानशिरस स्मेराननाम्भोरुहां ।
तारा शावहृदासना दृढकुचामम्बा त्रिलोक्यो. स्मरेत् ।२।

एक मन्त्र है—

ओ ह्री त्री फट् ।

यह पञ्च अक्षर का मन्त्र है। जब इस मन्त्र मे ओकार न लगाया जाए तो इसे 'एकजटा' कहते हैं और 'ओ फट्' को निकाल देने पर 'नील सरस्वती' कहलाती है।

आसन देनेका मन्त्र—'सा ह्रीं सरस्वती योगपीठात्मने नम';
जल देने का मन्त्र—"ओ वज्रोदके हुँ फट्" ।

आचमन मन्त्र "ह्री सुविशुद्धधर्म सर्व पापानि शामभ्या शेपविकल्पानपनय स्वाहा"

शिखा बन्धन मन्त्र—ओ मणिधरिवज्त्ररिय सर्व वशकरणि क ह फट् स्वाहा"

भूमि शोधनका मन्त्र—ओ रक्ष २ हु फट् स्वाहा '।
विघ्न निवारण मन्त्र—'ओ सर्वविघ्नानुमारय हुँ फट् स्वाहा

तारोपनिषत् में तारा के कुछ ध्यान इस प्रकार दिये गए हैं—

विरुद्धवाक्यार्थशरीरमण्डले नवाम्बुदाभा गुरुमुन्नतोदरीम्।
अतिवखर्वां नवयौवनस्थामथ - स्थशार्दूलकक्त्तिमूवजाम्॥

अनैक्यमाहृत्य शवोपरिस्थिता शवाथमालीढ-पगीतमध्यमाम्।
विशीर्णवर्णा नृशिर स्त्रजोदवा त्रयीविवर्त्तारुणलोचनत्रयाम्

अभेदपिंगं कजटाविरजिता विभूषणाच्छिन्न सितास्थि भीषणाम्। महाष्टसिद्धि प्रकाशहिभूषणामट्ट हासंजगतामभीतिदाम्॥

जटाम्वनन्त श्रवसोऽव तक्षको महाहिपद्मो हृदिहार भूषणम्। तथैव कर्कोटकृतोपवीतिका सुमेखलायामथ देववासुकि॥

सशंखपाल किल कंकणे मत पदेषु पद्म किल नूपुरश्रियम्।
भुजेषु नाग कुलिकोङ्ग दोमतो भुजाऽक्षमालामहतास्थिति स्थिता॥

सितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तथैव नागोऽथ सितश्च पाण्डर। भुजगमानामिह वर्णजातयो भवन्ति सर्वे मुनिभिर्व्वलञ्चिताम्॥

कपालकर्त्री ग्रथितोग्रमूधजा सनालमिन्दीवरकान्तिमालाम्।
नकोपखड्ग सतत च दक्षिणे स्वपौरुपार्थंर्दवती भुजे सदा॥
पदार्थदष्टाद्वय पञ्चमुद्रया विराजमानामभि तोत्पलस्त्रजम्।
विचिन्तयेत्ता च कवित्वकारिणीमन्यागतार्थं प्रजपेच्च तारिणीम्॥

तारा के जप का पुरश्चरण चार लाख मन्त्र का है। रक्त-कमल के दूध और घी मिलाकर दशांश अर्थात् ४० हजार आहुतियों का हवन ... चाहिए।

तारा मन्त्र

सुवर्णादि पीठे गोरोचनाकुकुमादिलिप्ते 'ओ अ सुरेखे वज्रुरेखे ओ फट् स्वाह, इति मन्त्रेणाधोमुख त्रिकोणगर्भाष्ट दलपद्म वृत्त चतुरस्र चतुर्द्वारियुक्त मन्त्रमुद्धरेत् ।

"स्वर्ण आदि से बनी चौकी पर गोरोचन, कुकुम आदि से लेप करके 'ओ आ सुरेखे, इत्यादि मन्त्र से अधोमुखी त्रिकोण मे, अष्टदल कमल बनावे और उसके बाहर गोलाकार चौकोर और चतुर्द्वार युक्त यन्त्र का लेखन करे" ।३।

लक्षद्वय जपेद्विद्या हविष्याशी जितेन्द्रिय ।
पलाश कुसुमैर्देवी जुहुयात्तद्दशाशत ॥

"हविष्याशी और जितेन्द्रिय रहता हुआ साधक दो लाख बार मन्त्र-जप करे और पलाश पुष्प के द्वारा उसका दशाश होम करे" ।

दिव्य हि कवच देवि तारायाः सर्व्वकामदम् ।
शृणुष्व परम तत्तु तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥

'भैरव बोले—हे देवि ! भगवती तारा का यह कवच परम श्रेष्ठ और सभी कामनाओ का देने वाला है । तुम्हारे प्रति स्नेह होने से ही उसे प्रकट करता हूँ" ।१।

अक्षोभ्य ऋषिरित्यस्य छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
तारा भगवती देवी मन्त्रसिद्धौ प्रकीर्त्तितम् ।२।

"इस कवच के ऋषि अक्षोभ्य, छन्द त्रिष्टुप, देवता भगवती तारा देवी और मन्त्र सिद्धि मे इसका विनियोग है" ।२।

ओकारो मे शिर पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।
ह्रीङ्कार पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी ॥
स्त्रीङ्कार पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी ।

हुङ्कार पातु हृदये तारिणी शक्तिरूपधृक् ।३।

"ओंकार युक्त ब्रह्मरूप महेश्वरी मेरे शिर की रक्षा करे, ह्रींकार बीज रूपा महेश्वरी मेरे ललाट की रक्षा करें, स्त्रींकार लज्जा रूपा महेश्वरी मेरे मुख की रक्षा करें और हुंकार शक्ति रूपा तारिणी देवी मेरे हृदय की रक्षा करें" ।३।

फट्कार पातु सर्व्वांगे सर्वसिद्धि फलप्रदा ।
खर्वा मा पातु देवेशी गण्डयुग्मे भयापहा ॥
लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी ।
व्याघ्र चर्मावृता कटिं पातु देवी शिवप्रिया ।४।

'फट् युक्त सर्व सिद्धियों का फल देने वाली देवी मेरे सर्वांग की रक्षा करें, खर्वा देवी मेरे दोनों कपोलों की रक्षा करें, लम्बोदरी महेश्वरी मेरे दोनों स्कंधों की सदा रक्षा करें, और व्याघ्र चर्म से आवृत्त भगवती शिव प्रिया मेरी कटि देश की रक्षा करें' ।४।

पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी ।
रक्तवर्त्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावतु ॥
ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी ।
करालास्या सदा पातु लिंगे देवी हरप्रिया ।५।

'पीनेस्तनी महेश्वरी मेरे दोनों पार्श्व को रक्षा करें, रक्त वर्ण के गोल नेत्र वाली भगवती मेरे कटि देश की रक्षा करे, लोल जिह्वा भुवनेश्वरी माता मेरी नाभि की रक्षा करें और शंकर की प्रियतमा कराल वदना देवी मेरे उपस्थ की रक्षा करे" ।५।

विवादे कलहे चैव अग्नौ चरणमध्यत ।
सर्व्वदा पातु मा देवी झिण्टीरूपा वृकोदरी ।६।

"विवाद, कलह, अग्नि के मध्य में और संग्राम भूमि में झिंटी रूपा वृकोदरी देवी मेरी सदा ही रक्षा करती रहे" ।६।

सर्व्वदा पातु मा देवी स्वर्गे मर्त्ये रसातले ।
सर्व्वास्त्रभूषिता देवी सर्व्वदेवप्रपूजिता ॥
क्रीं क्रीं हु हु फट् फट् पाहि समन्तत ।७।

"स्वर्ग लोक में या मत्य लोक में सदा ही भगवती मेरी रक्षिका हो। वह देवी सभी देवताओं द्वारा पूजिता और सभी प्रकार के अस्त्रों से विभूषिता है। 'क्रीं क्रीं हु हु फट् फट्' यह बीज मेरी सब ओर से रक्षा करने वाले हो" ।७।

कराला घोरदशना भीमनेत्रा वृकोदरी ।
अट्टहासा महाभागा विघूर्णितत्रिलोचना ॥
लम्बोदरी जगद्धात्री डाकिनी योगिनीयुता ।
लज्जारूपा योनिरूपा विकटा देवपूजिता ॥
पातु मा चण्डी मातगी ह्युग्रचण्डा महेश्वरी ।८।

"कराल रूप वाली, घोर दांतो वाली, भीषण नेत्र वाली, वृकोदरी, महाभाग, अट्टहास करने वाली, घूर्णित नयनत्रय वाली, लम्बोदरी, जगत के रचने वाली, डाकिनी और योगिनियों को साथ रखने वाली, लज्जा रूपिणी, विकटा, चण्डी, मातगी, उग्र चण्डा, देव पूजिता महेश्वरी सदैव रक्षा करने वाली हो" ।८।

जले स्थले चान्तरिक्षे तथा च शत्रुमध्यत ।
सर्वंत पातु मा देवी खड्गहस्ता जयप्रदा ।९।

"जल, स्थल एव शून्य मे तथा शत्रुओं के मध्य में भी जय प्रदायिनी भगवती खड्ग हाथ में लिये हुए सर्वत्र ही मेरी रक्षा करे" ।९।

कवच प्रपठेद्यस्तु धारयेच्छृणु यादपि ।
न विद्यते भय तस्य त्रिपु लोकेपु पार्वति ।१०।

"जो व्यक्ति इस कवच का पाठ करते, इसे धारण करते अथवा

सुनते हैं, उनके लिए तीनों लोको में कही भी भय उपस्थित नहीं होता' ।१०।

३–षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी)

मध्याह्न को जब सूर्य की शक्ति उग्र होती है, तब उसका नाम रुद्र होता है और उसकी शक्ति का नाम तारा । प्रात कालीन सूर्य शक्ति शिवात्मक है जिसे 'पञ्चवक्त्र शिव' की सज्ञा 'शिव तन्त्र' मे दी गई है । इसकी शक्ति 'षोडशी' है । निर्माण का कार्य इसी शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है । यह कहना चाहिए कि प्रशान्त हिरण्य-गर्भ या सूर्य शिव है और इनकी शक्ति का नाम षोडशी ।

चारो दिशाओ और ऊर्ध्व दिशा के अभिमुख होने के कारण से शिव का नाम पञ्चवक्त्र' पडा ।

शङ्कर के अघोर तत् पुरुष, वामदेव सद्योजात और ईशान पाच मुख बताए जाते हैं । ईशान का लाल रग बताया जाता है । यह अग्नि प्रधान है और स्वयम्भू मण्डल का प्रतीक है । यह सबसे ऊपर स्थित रहता है । श्वेत रूप का तत्पुरुष पूर्व की ओर सूर्य मण्डल में स्थित रहता है । सूर्य किरणो मे सात रग होते है, उनके मिलने पर सफेद रूप बन जाता है । कृष्ण वर्ण का अघोर रूप दक्षिण की ओर होता है और उप् प्रधान जनलोक का प्रतिनिधि माना जाता है । यह मूर्ति मध्य मे रहती है । पीत वर्ण में सद्योजात मूर्ति पश्चिम की ओर होती है जो महर्लोक में स्थित मानी जाती है । श्वेत वर्ण के वामदेव का मुख उत्तर की ओर रहता है । यह तपोलोक का प्रतीक है ।

इससे स्पष्ट हैं कि शिव के यह पाच मुख पांच लोको के प्रतीक हैं ।

शिव पुराण, वायु संहिता (उत्तर भाग) मे इन पाच मूर्तियो का विवरण इस प्रकार दिया है -

शिवजी की पंच ब्राह्ममूर्ति सम्पूर्ण विश्वव्याप्त हैं। ईशान, पुरुष, घोर, वामदेव और सद्योजात यह उनकी पंचमूर्ति विश्व-विख्यात हैं। उनकी ईशान नामक प्रथम मूर्ति प्रकृति की भोक्ता होकर क्षेत्र मे स्थित तत्पुरुष नामक स्थाणु की मूर्ति गुणाश्रय होकर भोगती है, वह अव्यक्त मे स्थित हैं।

अघोर मूर्ति शिव के बुद्धित्व मे पूजित है तथा धर्मादि अष्टाङ्ग से युक्त होकर स्थित है।। विधाता या वामदेव नामक शिव-मूर्ति को शास्त्रज्ञ-जन अहङ्कार मे स्थित रहने वाली कहते है। शिव की सद्योजात मूर्ति को ज्ञानी जन मन मे स्थित होने वाली बताते हैं। श्रोत्र, वाणी, शब्द और आकाश की विभु तथा सब की ईश्वरी मूर्ति को ज्ञानियो ने 'ईशान' कहा हैं। त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु की अधीश्वरी मूर्ति को पुराणवेत्ता जन पुरुष' कहते हैं चक्षु, चरण अग्नि की अधीश्वरी मूर्ति को विद्वानो ने अघोर कहा है। रसना, वायु रस और जल के अधीश्वर मूर्ति को उसके ज्ञाताओं ने 'वामदेव' कहा है। घ्राण, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी की अधीश्वरी मूर्ति 'सद्योजात' नाम वाली कही गई हैं।

इसी शिवात्मक शक्ति का नाम 'षोडशी' है। इसमे षोडश कला पुरुष का पूर्ण विकास है। भूः भुवः स्वः रूपी तीनो ब्रह्मपुरो को यही उत्पन्न करती है। अतः तन्त्र में इसका नाम 'त्रिपुर सुन्दरी' पडा। श्रीविद्या का नामान्तर ही त्रिपुरा है। तीन पुर मन, बुद्धि और चित्त के प्रतीक है, वह इनमे निवास करती है, इसलिए त्रिपुरा कहलाती है। तीन योगिक नदियो--इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना को भी त्रिपुरा कहा जाता है। वह सत्, रज, तम को अपने नियन्त्रण मे रखने की क्षमता रखती है। अत. त्रिपुरा है। उसके ज्ञान, क्रिया और इच्छा शक्ति—

तीन रूप हैं। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश को उत्पन्न करती है, वह ऋक्, यजु और साममयी है। इसलिए त्रिपुरा है।

'श्रीविद्या' ही षोडषी, महात्रिपुरा सुन्दरी, राजराजेश्वरी, पञ्च-दशी, ललिता, बाला आदि नामों से प्रसिद्ध है। दस महाविद्याओं में षोडशी विद्या 'श्री विद्या का ही परिणत स्वरूप है। यह श्री विद्या ही ब्रह्मविद्या है। 'श्री' शब्द श्रेष्ठता, सम्मान और उच्चता का द्योतक है। इसलिए सम्माननीय व्यक्तियों के साथ यह सम्बन्ध किया जाता है। त्यागमूर्ति संन्यासी श्रेष्ठता का प्रतीक माना जाता है इसलिए उसे 'श्री १०८' के श्रेष्ठता सूचक नाम से विभूषित किया जाता है। 'श्री' का अर्थ महालक्ष्मी गौण है। हरितायन संहिता और ब्रह्माण्डपुराणोत्तर खण्ड के अनुसार श्री का मुख्य अर्थ 'महा त्रिपुर सुन्दरी' है। श्री विद्या के उपासक को लोक और परलोक दोनों में सिद्धि प्राप्त होती है। शास्त्र का प्रमाण है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

अर्थात् 'जहाँ पर भोग है वहाँ मोक्ष नहीं होता जहाँ मोक्ष है वहाँ भोग का अभाव है। यह साधारण नियम है, किन्तु श्री सुन्दरी के सेवाराधन में तत्पर रहने वाले पुरुषों को भोग और मोक्ष दोनों ही पदार्थ साथ साथ हाथ में रहा करते हैं।

श्री शङ्कर भगवत्पादाचार्य ने सौन्दर्य लहरी स्तोत्र में कहा है—

त्वदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगण-
स्त्वमेका नैवासि प्रकटितवरा भीत्यभिनया।

भयात् त्रातु दातु फलमपि च वाञ्छासमधिक
शरण्ये लोकाना तव हि चरणादेव निपुणौ ॥

अर्थात् 'आपसे अन्य कोई भी देवगण नहीं है जो दोनो हाथो से अभय का वरदान प्रदान कर देवे। अभीति के अभिनय वाली और वरदान प्रकट करने वाली आप एक ही हैं अन्य कोई भी नहीं। भय से परित्राण करने को और फल देने के लिए जो कि इच्छा से भी कहीं अधिक होता है आप ही एक हैं। जो आपकी शरणागति मे आ जाते हैं उनकी पूर्ण सुरक्षा करने मे आपके चरण परम निपुण हैं। आपके चरण की शरण मे प्राप्त होने पर फिर अमङ्गल रहता ही नहीं।'

श्री विद्या आत्म शक्ति हैं, त्रिपुराम्बा आत्म शक्ति है। हरितायन संहिता में श्री दत्तात्रेय गुरु ने परशुराम जी से 'त्रिपुराम्बा' के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि उस शक्ति का वर्णन करना सम्भव नहीं है, वेद-शास्त्र और तन्त्र इस कार्य में असमर्थ रहते हैं, ब्रह्मा विष्णु और महेश भी इस शक्ति के स्वरूप से अनभिज्ञ हैं, इस पराशक्ति की महिमा का गान कौन कर सकता है? क्योंकि शक्ति-महिमा स्तोत्र मे देशिकेन्द्र दुर्वासा ने इनकी उत्पत्ति ही त्रिपुर सुन्दरी से मानी है।

त्रयी तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरानकारा-
द्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृत ।
तुरीय ते धाम ध्वनिभिखरू‍धानमणुभि ।
समस्त व्यस्त त्वा शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥
(म० स्तो०)

'त्रयी अर्थात् वेदत्रयी है—तीन वृत्तियाँ हैं—भुवन भी तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु और महेश यह देव भी तीन हैं। तीन विकृति भी

अवकारादि वर्णो के द्वारा तीन प्रकार से कही गई है । ध्वनियो मे अवरुद्ध आपका धाम तुरीय है । अणुओ समस्त और व्यस्त आपको हे शरणद ! ओम्—यह पद ग्रहण किया करता है ।

आद्यै रग्निरवीन्दुबिम्बनिलयैरम्बत्रिलिङ्गात्मभि-
र्मिश्रारक्तसितप्रभैरनुपमैर्युष्मत्पदैस्तैस्त्रिभि ॥
स्वात्मोत्पादितकाललोकनिगमावस्थामरादित्रयै-
रुद्भूत त्रिपुरेति नाम कलयेद्यास्ते स धन्यो बुध' ॥
—क्रोधभट्टारक (श० म० स्तोत्र

अर्थात् 'हे अम्बा ! आद्य अग्नि--रवि--शशि के बिम्ब में विलय वाले त्रिलिङ्ग स्वरूप से युक्त--मिश्र, आरक्त और सित प्रभा से समन्वित--अनुपम आपके उन तीन पदो से—अपनी आत्मा से उत्पादित काल, लोक--निगमावस्था और अमरादित्रय से सद्भूत त्रिपुरा—इस नाम को जो लेता है वह मनुष्य परम् बुध और इस विश्व मे अतीव धन्य है ।

भावनोपनिषद् के अनुसार 'इच्छाशक्ति महात्रिपुर सुन्दरी' इच्छा शक्ति ही महात्रिपुर सुन्दरी नामक आराध्य भगवती है ।

इसका ध्यान इस प्रकार है--

बालार्क मण्डलाभासा चतुर्बाहा त्रिलोचनाम् ।
पाशाकुशधनुर्बाणान् धारयन्ती शिवा भजे ॥
(शक्ति प्रमोद--षोडशी तन्त्र)

अर्थात् 'उस बालार्क मण्डल की तरह आभा वाली अग्नि, सूर्य और सोम रूपी त्रिनेत्र वाली, चतुर्भुज, पाश अकुश चाप और शर को धारण करने वाली का ध्यान करना हूं ।'

सूर्य की उग्रता मे जब सोम की आहुति दी जाती है, तब उसकी

उग्रता शान्त हो जाती है। रुद्र--शिव बन जाते हैं। मध्याह्न मे उग्रता रहती है और प्रात शान्ति। प्रात. कालीन सूर्य को ही 'बाल-सूर्य' के नाम से अभिहित किया गया है।

सूर्य की शक्ति सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक रूप से विद्यमान रहती है। यह ब्रह्माण्ड चतुर्भुज है। इसलिए षोडशी को 'चतुर्बाहों' कहा है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश और यम चारो देवता इसके नियन्त्रण मे रहते हैं, 'चतुर्बाहों' का एक भाव यह भी है।

त्रिलोचना का अभिप्राय सूर्य, सोम और अग्नि नामक तीन नेत्रो से है।

सूर्य में इतनी आकर्षण शक्ति है कि वह पृथ्वी व अन्य ग्रह-नक्षत्रो को एक व्यवस्थित नियमानुसार अपने चारो ओर घुमाने की शक्ति और सामर्थ्य रखता है। इन पर निवास करने वाले समस्त प्राणी उस पर आश्रित हैं, उनका जीवन सूर्य के कारण ही क्रियाशील रहता है, अत सभी उसके च गुल मे, पाश मे हैं। पाश का आध्यात्मिक अर्थ राग है 'राग पाश' (भाव सूत्र ३३)। राग को मातेश्वरी ने अपने अधिकार मे ले रखा है।

इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं और इन्द्र, वायु, यमराज अपने-अपने कार्यों में लगे हुए है—

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम ॥
(कठ० २।३।३)

इससे अंकुश का भाव विदित होता है। अंकुश का आध्यात्मिक भाव है--द्वेष, 'द्वेषोऽङ्कुश' (भाव० २४)। वह द्वेष भाव को विकसित नही होने देती।

यजुर्वेद में वर्षा, पवन, और अन्न को 'इषु' (वाण) कहा है-

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवियेषा वर्षमिषव ।

(१६।६४)

'जो रुद्र स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके वाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषा वातऽइषवः ।

(१६।६५)

'जो रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिनके वाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है ।

नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्या येषामन्नमिषव. ।

(१६।६६)

'जो रुद्र पृथ्वी पर विद्यमान हैं, जिनके वाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार-विहार द्वारा रोगोत्पत्ति कर मारते हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है ।'

पञ्चवाणों का अभिप्राय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूपी पञ्चतन्मात्राएं हैं। शब्दादितन्मात्रा पञ्च पुष्पवाणा (भाव २१) ।

मन ही इक्षधनु है। 'मन इक्षु धनु,' (भाव० २२) । उत्तर चनु शती शास्त्र में पाशु, अ कुश, धनुष और वाण का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया गया है—

इच्छाशक्तिमय पाशम कुश ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये वाणधनुषी दधदुज्जवलम् ॥

अर्थात् 'इच्छा शक्ति—पाश, ज्ञान शक्ति, अ कुश, और क्रिया-शक्ति स्वरूप—यह वाण और धनुष हैं । महात्रिपुर सुन्दरी इनका प्रतिनिधित्व करती हैं ।

षोडशी पूजन विधि-मन्त्र

श्री ह्री क्ली ऐं सौं ओ ह्री श्री क ए ई
ल ह्वी ह्सकह्ल ह्री सकलह्री सो ऐं क्ली ह्री श्री ।

कवचम्

श्रीदेव्युवाच—

भगवन् देवदेवेश लोकानुग्रहकारक ।
यदुक्त मे महादेव कवच सुन्दरीप्रियम् ॥
तन्मे कथय देवेश यदि स्नेहोऽस्ति मा प्रति ।

श्रीमहादेव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवच मन्त्रविग्रहम् ।
सर्वार्थसाधक देवि सर्वसम्पत्तिपूरकम् ॥

अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रवर्णात्मककवचमहा मन्त्रस्य दक्षिणा मूर्तिभंगवान् ऋषि अनुष्टुप्छन्द श्री महात्रिपुरसुन्दरी देवता । ऐं बीजम् । सौ शक्ति । क्ली कीलकम् । मम शरीररक्षणार्थे जपे विनियोग । ह्रामित्यादि करहृदयन्यास ॥

ध्यानम्

बालार्कमण्डलाभासा चतुर्बाहां त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशधनुर्बाणान् धारयन्ती शिवा भजे ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा ऐ ह्रीं श्री योग्या प्रणम्य—

ककार. पातु मे शीर्ष एकार पातु फालकम् ।
ईकार पातु मे वक्त्र लकार पातु कर्णकम् ॥

ह्रीङ्कार पातु हृदय वाग्भवञ्च सदाऽवतु ।
हकार पातु जठर सकारो नाभिदेशकम् ॥

ककारोऽव्याद्वस्तिभाग हकार पातु लिङ्गकम ।
लकारो जानुनी पातु ह्रीङ्कारो जङ्घयुग्मकम ॥

कामराजस्सदा पातु जठरादिप्रदेशकम् ।
सकार पातु मे जङ्घे ककार पातु पृष्ठकम् ॥

लकारोऽव्यान्नितम्ब मे ह्रीङ्कार, पातु मूलकम् ।
शक्तिबीजस्सदा पातु मूलाधारादिदेशकम् ।

त्रिपुरा देवता पातु त्रिपुरेशा च सर्वदा ।
त्रिपुरा सुन्दरी पातु त्रिपुरा श्रीस्तथाऽवतु ॥

त्रिपुरा मालिनी पातु त्रिपुरा सिद्धिदाऽवतु ।
त्रिपुराम्बा तथा पातु पातु त्रिपुरभैरवी ॥

अणिमाद्यास्तथा पान्तु ब्राह्मयाद्या पान्तु मा सदा ॥
दशमुद्रास्तथा पान्तु कामकर्षणपूर्विका ॥

पान्तु मा षोडशदले यन्त्रेऽनङ्गकुमारिका,
पान्तु मा पृष्ठपत्र तु सर्वसक्षोभणादिका ॥

पान्तु मा बाह्यदिक्कोणा मध्यदिक्कोणके तथा ॥

सर्वज्ञाद्यास्तथा पान्तु सर्वाभीष्टप्रदायिका ।
वाशन्याद्यास्तथा पान्तु वसुपत्रस्य देवता, ॥

त्रिकोणस्यान्तराले तु पान्तु मामायुधानि च ।
कामेश्वर्यादिका पान्तु त्रिकोणे कोणसस्थिता ॥

बिन्दुचक्रे तथा पातु महात्रिपुरसुन्दरी ।
पृष्ठद्वमादिर्योनिमुद्रा प्रणामान्त श्री ह्रीं ऐं श्री—

इतीद कवच देवि कवच मन्त्रसूचकम् ।
यस्मै कस्मै न दातव्य न प्रकाश्य कथञ्चन ॥
यस्त्रिसन्ध्य पठेद्देवि लक्ष्मीस्तस्य प्रजायते ।
अषम्या च चतुर्दश्या य पठेत् प्रयतस्सदा ॥
प्रसन्ना सुन्दरी तस्य सर्वसिद्धिप्रदायिनी ।

ध्यानम्

अरुणा करुणातरङ्गिताक्षी धृतपाशाङ्कुशपुष्पबाणचापाम् ।
अणिमादिभिरावृता मयूखैरहमित्येव भवानीम् ॥
ध्याये पद्मासनस्था विकसितवदना पद्मापत्रायताक्षी
हेमाभा पीतवस्त्रा करकलितलसद्धेमपद्मा वराङ्गीम् ।
सर्वालङ्कारयुक्ता सततमभयदा भक्तनम्रा भवानी
श्रीविद्या शान्तमूर्ति सकलसुरनुतां सर्वसम्पत्प्रदात्रीम् ॥
सकुकुमविलेपनामलिकचुम्बिकस्तूरिका
समन्दहसितेक्षणा सशरचापपाशाकुशाम् ।
अशेषजनमोहिनीमरुणमाल्यभूषा वरा
जपाकुसुमभासुरा जपविधौ स्मरेदम्बिकाम् ॥
—अथ खड्गमालापारायण कृत्वा—
—तत न्यासजालात्मक कुर्यात्—

मुन्यादिन्यासः

ह्री श्री दक्षिणामूर्तये नम   मूर्ध्नि
,,   पङ्क्तये नम   मुखे
,,   त्रिपुरसुन्दर्यै नम.   हृदि

,, ऐं बीजाय नमः गुह्ये
,, सौः शक्त्यै नमः पादयोः
,, क्लीं कीलकाय नमः नाभौ
इति मुन्यादिन्यासः ॥

अथ बहिर्मातृका

अस्य श्रीबहिर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि) गायत्र्यै छन्दसे नमः (मुखे) श्रीबहिर्मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः (हृदये) हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नमः (पादयो) बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः (नाभौ) मम श्रीविद्याङ्गत्वेन बहिर्मातृकाप्रसादसिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगाय नमः (करसम्पुटे) सर्वमातृकया त्रिर्व्यापकं सर्वाङ्गे अञ्जलिना ।

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय नमः
,, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः शिरसे स्वाहा
,, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः शिखायै वषट्
,, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः कवचाय हुं
,, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः नेत्रत्रयाय वौषट्
,, अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः अस्त्राय फट्

ध्यानम्

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदो पादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ॥
अक्षस्रक्कुम्भचिह्नामभयवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्था-
मिच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

दक्षोर्ध्वकरमारभ्य दक्षाध करपर्यन्त प्रादक्षिण्येन आयुधस्थिति

ऐं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः अं नमः मूर्ध्नि
,, आं ,, मुखवृत्ते
,, इं ,, दक्षनेत्रे
,, ईं ,, वामनेत्रे
,, उं ,, दक्षकर्णे
,, ऊं ,, वामकर्णे
,, ऋं ,, दथनासापुटे
,, ॠं ,, वामनासापुटे
,, ऌं ,, दक्षकपोले
,, ॡं ,, वामकपोले
,, एं ,, ऊर्ध्वोष्ठे
,, ऐं ,, अधरोष्ठे
,, ओं ,, ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ
,, औं ,, अधोदन्तपङ्क्तौ
,, अं ,, जिह्वाग्रे
,, अः ,, शिरावृत्ते
,, कं ,, दक्षिणबाहुमूले
,, खं ,, तद्बाहुमध्ये

,, ग ,, दक्षिणमणिबन्धे
,, घ ,, दक्षिणकराङ्गुलिमूले
,, ङ ,, दक्षिणकरागुल्यग्रे
ऐं ह्री श्री ए क्ली सौ च नम वामवाहुमूले
,, ज ,, तत्कूर्परे
,, झ ,, वामकराङ्गुलिमूले
,, ञ ,, तदङ्गुल्यग्रे
,, ट ,, दक्षिणपादमूले
,, ठ ,, तज्जानुनि
,, ड ,, तद्गुल्फे
,, ढ ,, तदङ्गुलिमूले
,, ण ,, तदङ्गुल्यग्रे
,, मोरुमूले
,, थ ,, वामजानुनि
,, द ,, वामगुल्फे
,, ध ,, वामपादाङ्गलिमूले
,, न ,, वामपादाङ्गुल्यग्रे
,, प ,, दक्षपार्श्वे
,, फ ,, वामपार्श्वे
,, ब ,, पृष्ठे
,, भ ,, नाभौ
,, म ,, जठरे
,, य ,, हृदये
,, र ,, नम दक्षकक्षे
,, ल ,, गलपृष्ठे
,, व ,, वामकक्षे

ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं श नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तं
" ष " हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तं
" स " हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तं
" ह " हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तं
" ल " पादादिनाभ्यन्तम्
" क्ष " नाभ्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्

ह्सौं अ+क्ष ह्स्‌सौं नमः इति त्रिव्यापकत्वेन सर्वाङ्गव्यापकं न्यसेत्

इति बहिर्मातृका

अथ अन्तर्मातृका

अस्य श्री अन्तर्मातृकासरस्वतीन्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मणे ऋषये नमः (शिरसि) गायत्र्यै छन्दसे नमः, (मुखे) अन्तर्मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः (हृदये) हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः (गुह्ये) स्वरेभ्यश्शक्तिभ्यो नमः. (पादयोः) बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमः (नाभौ) अन्तर्मातृकासरस्वतीप्रसादसिद्ध्यर्थे न्यासे विनियोगाय नमः ॥

करहृदयादिन्यासं बहिर्मातृकान्यासवत्

ध्यानम्

आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठमूले स्वराणां
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलयुतं वर्णरूपं नमामि ॥

लमित्यादि पञ्चपूजा

(हंसस्सोह सोहं हसः)

विशुद्धचक्रे षोडशारे अ नम +अ नम हसस्सोह ।
अनाहतचक्रे द्वादशदले क नम +ठ नम हसस्सोह ।
मणिपूरकचक्रे दशदले ड नन +फ नम। हसस्सोह ।
स्वाधिष्ठानचक्रे षड्दले ब नम +ल नम हसस्सोह ।
मूलाधारचक्रे चतुर्दले व नम +स नम हसस्सोह ।
आज्ञाचक्रे द्विदले ह नम क्ष नम हसस्सोह ।

ब्रह्मरन्ध्र सहस्रारे पञ्चाशद्वर्णान् अनुलोमप्रतिलोमेन अकारादि क्षकारान्त क्षकाराद्यकारान्त विन्यसेत्

इत्यन्तर्मातृकान्यास

करशुद्धिन्यास·

दक्षकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पार्श्वे सौ. नम वामकरतले अ नम तत्पृष्ठे आ नम तत्पार्श्वे सौ नम मध्यमयो, अ नम अनामिकयो आ नम कनिष्ठिकयो सौ नम अगुष्ठयो अ नम तर्जन्यो औ नम, करतलकरपृष्ठयो सौ नम ॥

इति करशुद्धिन्यास

आत्मरक्षान्यास

ऐ ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौ महात्रिपुरसुन्दरि आत्मान रक्ष रक्ष इत्यञ्जलिं हृदये दद्यात्

इत्यात्मरक्षान्यास

चतुराव्यास

ह्रीं क्लीं सौ श्रीदेव्यात्मासनाय नम पादयो. ४

है ह्रीं हसौ श्रीचवस्त्रासनाय नम जङ्घयो हसैं हस्ल्क्री हसौ सर्वमन्त्रासनाय नम जान्वो' ह्रीं क्लीं ब्लें साद्ध्यसिद्धासनाय नम, मूलाधारे ॥

इति चतुरासनन्यास।

वालाडङ्गन्यासः

ऐं हृदयाय नम
क्लीं शिरसे स्वाह
सौ शिखायै वषट्
सौ कवचाय हु
क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्
ऐं अस्त्राय फट्

इति बालापडङ्गन्यास

वाग्देवतान्यास

ओम . अ, १ २ब्लू वशिनीवाग्देवतायै नमः शिरसि-क २ क्लीं कामेश्वरीवाग्देवातायै नम ललाटे च ५ न्क्लीं मोदिनी- वाग्देवतायै नम, भ्रूमध्ये ट ५ ल्यू विमलवाग्देवतायै नम कण्ठेत ५ ज्म्री अरुणावाग्देवतायै नम, हृदये प हस्लव्यू जयिनी वाग्देवतायै नम नाभौ य ४ झ्म्रयू सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नम गुह्ये श ३ क्ष्म्री कौलिनी वाग्देवतायै नम. मूलाधारे ॥

इति वाग्देवतान्यास

मूलविद्यान्यासः

मूर्धिन क-मूले ए हृदये ई दक्षिणनेत्रे ल-वामनेत्रे ह्रीं-भ्रूमध्ये ह दक्षिणश्रोत्रे स वामश्रोत्रे क मुखे ह

दक्षिणभुजे न वामभुजे ह्रीं पृष्ठे म दक्षजानुनि क वाम-
जानुनि ल नाभौ ह्रीं ॥

इति मूलविद्यान्यास. ॥

तत्वन्यासः

दक्षपादे आत्मतत्वाय नम वामे क्रियाशक्त्यै
नम दक्षपार्श्वे विद्यातत्वाय नम वामे ज्ञानशक्त्यै नम
दक्षकपोले शिवतत्वाय नम वामे इच्छाशक्त्यै नम
मूर्ध्नि सर्वतत्वाय नम तत्रैव तुर्यै शक्त्यै नम ॥

इति तत्वन्यास ॥

अथान्तश्चक्रन्यास

अथ सहस्रारे अ आ सौ चतुरस्रत्रयात्मक त्रैलो
क्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्य अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहि
तप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नम. तदुपरि विपु-
सज्ञे षड्दले ऐं क्लीं सौ षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरि
पूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तिसहित
गुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नम, आधारे ह्रीं
क्लीं सौ अष्टदलपद्मात्मकसर्वसंक्षोभणचक्राधिष्ठात्र्यै
अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तिसहितगुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुर
सुन्दरीदेव्यै नम नम स्वाधिष्ठाने हैं हक्लीं ह्सौ,
चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायकचक्राधिष्ठात्र्यै सवस
क्षोभिण्यादि चतुर्दशशक्तिसहितसम्प्रदाययोगिनीरूपायै
त्रिपुरवासिनीदेव्यै नम मणिपूरे हसैं हक्लीं हसौ.
बहिर्दशारात्मकसर्वार्थसाधकचक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसिद्धिप्र
दादिदशशक्तिसहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्री-

देव्यै नम अनाहते ह्री क्ली ब्ले अन्तर्दशारात्मकसर्वरा क्षाकरचक्राधिष्ठात्र्यै ९ वज्रादिदशशक्तिसहितनिगर्भयोगिनीरूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नम विशुद्धौ ह्री श्री सौ. अष्टात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्तिसहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै नम लम्बिकाग्रे हसै हस्क्ली हसौ त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधिष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुराम्बादेव्यै नम आज्ञाया क १५ विन्द्वात्मकसर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्तिसहितपरापररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नम पुन, आज्ञाचक्रोपरि एकैकाङ्गुलदेशे बिन्दौ अ आ सौ नम अर्धचन्द्र ए क्ली सौ नम रोधिन्या ह्री क्ली सौ नम नादे हैं हक्ली हसौ नम. नादान्ते हसै हस्क्री हसौ नम शक्तौ ह्री क्ली ब्ले नम व्यापिकाया ह्री श्री सौ नम समनाया हस्रै हस्क्ली हस्रौ नम उन्मनाया क १५ नम ब्रह्मरन्ध्रे महाबिन्दौ क १५ श्री नम इत्यादिचक्रेश्वरी मन्त्रान् न्यसेत् ॥

इत्यन्तश्चक्रन्यास ॥

अथ बहिश्चक्रन्यास

पादयो अ आ सौः चतुरश्चत्रयात्मकत्रैलोक्यमोहनचक्राधिष्ठात्र्यै अणिमाद्यष्टाविंशतिशक्तिसहितप्रकटयोगिनीरूपायै त्रिपुरादेव्यै नम जान्वो ऐं क्ली सौः षोडशदलपद्मात्मकसर्वाशापरिपूरकचक्राधिष्ठात्र्यै कामाकर्षिण्यादिषोडशशक्तिसहितगुप्तयोगिनीरूपायै त्रिपुरेश्वरीदेव्यै नम. ऊरुमूलयो ह्रीं क्लीं सौं अष्टदलपद्मा-

मकमर्वमक्षोभरणचक्राधिष्ठात्र्यं अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्ति सहितगुप्ततरयोगिनीरूपायै त्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नम नाभौ है हक्लीं हसौ चतुर्दशारात्मकसर्वसौभाग्यदायक चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशशक्तिसहितस म्प्रदाययोगिनीरूपायै त्रिपुरवासिनीदेव्यै नम, हृदये हसैं हस्क्लीं हसौं सहितकुलोत्तीर्णयोगिनीरूपायै त्रिपुराश्री-देव्यै नम कण्ठे ह्रीं क्लीं ब्लें अन्तर्दशारात्मकरक्षाकर-चक्राधिष्ठात्र्यै सर्वज्ञादिदशशक्तिसहितनिगर्भयोगिनी रूपायै त्रिपुरमालिनीदेव्यै नम, मुखे ह्रीं श्रीं सौं अष्टद-लपद्मात्मकसर्वरोगहरचक्राधिष्ठात्र्यै वशिन्याद्यष्टशक्ति-सहितरहस्ययोगिनीरूपायै त्रिपुरासिद्धादेव्यै यम नेत्रयो, हस्रैं हस्क्लीं हस्रौं त्रिकोणात्मकसर्वसिद्धिप्रदचक्राधि-ष्ठात्र्यै कामेश्वर्यादित्रिशक्तिसहितातिरहस्ययोगिनीरू-पायै त्रिपुराम्बादेव्यै नम मूर्ध्नि क १५ बिन्द्वात्मक सर्वानन्दमयचक्राधिष्ठात्र्यै षडङ्गायुधदशशक्तिसहित परापररहस्ययोगिनीरूपायै महात्रिपुरसुन्दरीदेव्यै नम ॥

इति बाह्यचक्रन्यास ॥

कामेश्वर्यादिन्यास

मूलाधारे ए ५ अग्निचक्रे कामगिरीपीठे मित्रेश-नाथात्मिके जाग्रद्दशाधिष्ठायिके इच्छाशक्त्यात्मकरुद्रा-त्मशक्तिश्रीमहाकामेश्वर्यै नम, अनाहते क्लीं ह ३ सूर्य-चक्रे जालन्धरपीठे षष्ठीशनाथात्मिके स्वप्नदशाधिष्ठायि के ज्ञानशक्त्यात्मकविष्ण्वात्मशक्तिश्रीमहावज्रेश्वर्यै नम, आज्ञायां सौः स ४ सोमचक्रे पूर्णगिरीपीठे उड्डीशनाथ-

त्मिके सुषुप्तिदशाधिष्ठायिके क्रियाशक्त्यात्मकब्रह्मात्म-
शक्तिश्रीमहाभगमालिन्यै नमः ब्रह्मरन्ध्रे ऐं क्लीं सौः
क १५ परब्रह्मचक्रे महोड्याणपीठे चर्यानन्दनाथात्मिके
तुरीयदशाधिष्ठायिके शान्तिशक्त्यात्मकपरब्रह्मशक्तिश्री-
महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।।

इति कामेश्वर्यादिन्यासः ।।

श्रीषोडशाक्षरीन्यास

श्रो ऐं ह्रीं श्रीं मूलविद्यामुच्चर्य नमः इति दक्षम
ध्यमानाभ्यां शिरसि न्यसेत् ।

पुनस्तां दीपाभां स्रवत्सुधारसां महासौभाग्यदां
ध्यात्वा पुनस्तथैव तामुच्चार्य महासौभाग्यं मे देहि पर-
सौभाग्यं दण्डयामि इति सौभाग्यदण्डिन्या मुद्रया वामक-
णसवेष्टनपूर्वकं आमस्तकचरणं वामङ्गे न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चा मम शत्रून् निगृह्णामीति
रिपुजिह्वाग्रया मुद्रया वामपादाधो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चाय त्रैलोक्यस्याहं कर्तेति त्रिख-
ण्डा फाले न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य वदने वेष्टनत्वेन न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य दक्षकर्णादिवामकर्णान्त
मुखवेष्टनत्वेन यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्यं गलोर्ध्वमाशिरो न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामाद्यन्तप्रणवमुच्चार्य मस्तकात् पाद-
पर्यन्तं पादादामस्तकं च न्यसेत् ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य योनिमुद्रया मुखे न्यस्य ।

पुनस्तथैव तामुच्चार्य योनिमुद्रया ललाटे न्यसेत् ॥
इति षोडशाक्षरीन्यास. ॥

सम्मोहनन्यास:

श्रीविद्या स्मृत्वा तत्प्रभया जगदरुण विभावयन् अनामिका ऊर्ध्वं परिभ्राम्य मूलविद्यां पुन पुनरुच्चर्य ब्रह्मरन्ध्रे मणिबन्धद्वितये फाले च विन्यसेत् ॥

इति सम्मोहनन्यास ॥

सहारन्यास:

ओं ऐं ह्रीं श्रीं श्रीं नम पादयो.
,, ह्रीं ,, जङ्घयो
,, क्लीं ,, जान्वो
,, ऐं ,, कटिभागद्वये
,, सौ. ,, पृष्ठे
,, ओं ,, लिङ्गे
,, ह्रीं ,, नाभौ
,, श्रीं ,, पार्श्वयो
,, क-५ ,, स्तनयो.
,, सौं ,, मूर्ध्नि
,, ऐं ,, मुखे
,, क्लीं ,, नेत्रयो
,, ह्रीं ,, कर्णयुगसन्निधौ
,, श्रीं ,, कर्णवेष्टनयो,

इति सहारन्यास. ॥

सृष्टिन्यासः

ओ ए ह्री श्री श्री नम ब्रह्मरन्ध्रे
,, ह्रीं ,, फाले
,, क्ली ,, नेत्रयो
,, ऐ ,, कर्णयो
,, सौं ,, नासापुटयोः
,, ओ ,, गण्डयो
,, ह्री ,, दन्तपङ्क्तौ
,, श्री ,, ओष्ठयो
,, क-५ ,, जिह्वाया
,, ह-६ ,, चोरकूपे
,, स ४ ,, पृष्ठे
,, सौ ,, सर्वाङ्गे
,, ऐं ,, हृदि
,, क्ली ,, स्तनयोः
,, ह्री ,, उदरे

ओ ऐ ह्री श्री श्री नम लिङ्गे च न्यस्य मूलेन व्यापकं कुर्यात्

इति सृष्टिन्यासः

स्थितिन्यासः

ओ ऐं ह्रीं श्री श्री नम. अङ्गुष्ठयो
,, ह्री ,, तर्जन्यो
,, क्ली ,, मध्यमयो.

„ ऐं „ अनामिकयो.
„ सौ „ कनिष्ठिकयो
„ ओं „ मूर्ध्नि
„ ह्रीं „ मुखे
„ श्रीं „ हृदि
„ क-५ „ नाभौ
„ ह-६ „ कण्ठादिनाभिपर्यन्त
„ स-४ „ मूर्धादिकण्ठान्त
„ सौ „ पादाङ्गुष्ठयो
„ ऐं „ पादतर्जन्यो
„ क्लीं „ पादमध्यमयो.
„ ह्रीं , पादानामिकयो
„ श्रीं „ पादकनिष्ठिकयो

इति स्थितिन्यास ।

—तत मूलेन षडङ्गन्यास कुर्यात्—

४—भुवनेश्वरी

पृथ्वीगत शिव का अधिष्ठाता 'त्र्यम्बक शिव माना जाता है, उसकी महाशक्ति 'भुवनेश्वरी' है ।

त्र्यम्बक का शब्दार्थ इस प्रकार है— त्र्यम्बक त्रि + अम्बक अम्बक नाम पिता है । 'त्रयाणां लोकानां अम्बक पिता त्र्यम्बक ।' तीनों लोकों का जो पिता है, वह 'त्र्यम्बक' है । यजुर्वेद ३।५८ में कहा है—

'अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् ।'

रुद्र पापियो को सन्तप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले हैं, उनके नेत्रों से तीनो लोक प्रकाशित होते हैं।

तीनो भुवनो की सञ्चालक शक्ति भुवनेश्वरी है। संहिता मे यहाँ तक लिखा है कि भगवती भुवनेश्वरी चौदह भुवनो पर अपना स्वामित्व रखती है। इसीलिए उसका नाम भुवनेश्वरी' पड़ा।

इसका स्वरूप इस प्रकार है--

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखी वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

अर्थात् 'प्रात कालीन सूर्य की आभा की तरह रक्त वर्ण वाली, चन्द्रमा को मुकुट रूप से ग्रहण कर, उन्नत कुच, त्रिनेत्र, मृदु हास करती हुई, पाश, अङ्कुश, वरद और अभय मुद्रा से युक्त हाथो वाली भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ।'

भगवती के वर्ण की उपमा प्रात कालीन सूर्य की प्रभा से दी गई है जो अरुण वर्ण की होती है। जब सूर्योदय हो रहा होता है, वह रक्त वर्ण का ही होती है। यह रक्त वर्ण प्रकृति के रजोगुण का प्रतीक है। सृष्टि के कार्य मे रजोगुण की ही प्रधानता रहती है। भुवनेश्वरी इससे सम्बन्धित हैं क्योंकि वह चौथी सृष्टि की धारा है, चौथी सृष्टि विद्या है।

मुकुट रूप चन्द्रमा सोम का प्रतीक है। सोम जगत का पोषण करता है। इसीलिए सोम को शतपथ ब्राह्मण ३।३४।२१ मे विष्णु कहा गया है। सोम को ऋग्वेद ६।८६।४१, ६।६६।२५ व कौषीतक ब्राह्मण ७।१० मे चन्द्रमा कहा है, क्योंकि इसके पान से शीतलता प्राप्त होती है।

ऋग्वेद ६।५१।२, ६ ६७।३२ में इसे अमृत की संज्ञा दी गई है क्योंकि इसे ग्रहण करने वाला सदैव निरोगी रहता है, रोग और व्याधि उसके पास फटकने भी नहीं पाती। शतपथ ५।१।३।७ में इसे प्रजापति कहा है क्योंकि यह नई शक्तियों का सृजन करता है। शतपथ १२।७।३।१३ में इसे दुग्ध कहा गया है क्योंकि उसकी तरह पोषण का गुण रखता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।७।४-५ में साम को सुवर्ण कहा है इसका गुण स्वास्थ्य की स्थिरता व सुदृढ़ता है। सोम भी यही करता है।

'उन्नत कुच' का अभिप्राय पालन पोषण की शक्ति-सामर्थ्य रखने की क्षमता से है क्योंकि कुच में विद्यमान दुग्ध का कार्य शिशु का पालन ही है।

'नयनत्रयमुक्ताम्' का अर्थ सूर्य चन्द्रमा और अग्नि नामक तीन तेजों से है। तीन नेत्र इच्छा, ज्ञान और क्रिया के भी प्रतीक हैं।

'स्मरमुखी' का अर्थ नित्यानन्द स्वरूपा है। मृदु हास आनन्द रूपता को ही प्रकट करता है। मन्द हास्य से कृपा दृष्टि का भी निदान बनाया गया है।

भगवती के चारों हाथों में पाश, अङ्कुश, वर और अभय मुद्राएँ हैं। इनमें पाश अर्थ की सूचना देता है क्योंकि इसी शक्ति के बन्धन में बँध कर मनुष्य आवागमन के चक्र में घूमता रहता है। इसी लिए पाश को आकर्षण शक्ति कहा जाता है।

अङ्कुश धर्म का रूप है क्योंकि वातावरण से प्रभावित होकर जब मनुष्य बुरे मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है तो धर्म ही उसे अङ्कुश की तरह रोकने की शक्ति रखता है। इसमें स्तम्भन की शक्ति होती है। पाश और अङ्कुश शासन शक्ति के भी सूचक हैं।

वर मुद्रा से भगवती की सांसारिक ऐश्वर्यों का वरदान देती हैं।

अभय मुद्रा का यह अभिप्राय है कि भगवती सभी प्रकार के भयो से मुक्त करने वाली है। यह मुद्रा मोक्ष की सूचक है।

भुवनेश्वरी पूजन विधि-मन्त्र

'नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान्' अर्थात् नकुलीश (ह्), अग्नि (र्), वामनेत्र (ई, अर्द्धचन्द्र (ँ) इन चार वर्णों को मिलाने से 'ह्रीं' बीज बनता है जो भुवनेश्वरी का मन्त्र है।

भुवनेश्वरी का प्रात-सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम्।
ब्रह्मादयोपि या ज्ञात्वा लेभिरेश्रियमूर्जिताम॥
नकुलीशोग्निमारूढो वामनेत्रार्घचन्द्रवान्।
बीज तस्या समाख्यान सेवित सिद्धिकाक्षिभि॥
ऋषि शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री देवता मनो।
कथिता सुरसङ्घेन सेविता भुवनेश्वरी।
षडदीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गानि षटक्रमात्।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटा तुङ्गकुचा नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखी वरदाकुशपाशाभीतिकरा प्रभजेद्भुवनेशीम्॥

मध्यान्ह सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्भव शम्भुवनिता रमाबीजत्रयात्मकम्।
मन्त्र समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम्॥
षडदीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मन्त्रवित्॥

और ध्यान इस प्रकार है—

सिन्दूरारुणविग्रहा त्रिनयना माणिक्यमौलिस्फुरत्

तारानायकशेखरा स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषक रक्तोत्पल विभ्रती,
सौम्या रत्नघटस्थ सव्यचरणा ध्यायेत् परामम्बिकाम

सायंकालीन सन्ध्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

वाग्बीजपुटिता माया विद्येय त्र्यक्षरी मता ।
मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटेन प्रकल्पयेत् ॥
अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मनुवित्तम। ।

ध्यान यह है—

श्यामाङ्गी शशिशेखरा निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पल,
रत्नाढ्य चषक परभयहर सविभ्रती शाश्वतीम् ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनुता नेत्रत्रयोल्लासिनी,
वन्देऽहं सुरपूजिता हरवधू रक्तारविन्दस्थिताम् ॥

अन्तर्मातृका न्यास

विनियोग—

ॐ अस्य श्रीअन्तर्मातृका महासरस्वती मन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषय ऋग्यजुसामानि छन्दांसि अन्तर्मातृका महासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वरा,· शक्तय बिन्दव, कीलकानि अन्तर्मातृका महासरस्वती प्रसाद सिद्ध्यर्थे जपेविनियोग ।

ऋष्यादि न्यास

शिरसि ब्रह्मविष्णुऋषिभ्यो नम ।
मुखे गायत्री त्रिष्टुब अनुष्टुब छन्दोभ्यो नम ।
हृदि अन्तर्मातृका महासरस्वतीदेवतायै नमः ।

गुह्ये ॐ व्यञ्जनेभ्यो बीजेभ्यो नमः ।
पादयो ओ स्वरे,भ्य शक्तिभ्यो नमः ।
सर्वाङ्गे बिन्दुभ्य कीलकेभ्यो नमः ।

प्राणायाम

ओ ऐ ह्री श्री आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ अ आ इन स्वरो से पूरक, ओ एँ ह्री श्री क ख ग घ ङ-च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म इन व्यञ्जनो से कुम्भक और ओ ए ह्री श्री य र ल व श स ह —

इनसे रेचक प्राणायाम करना चाहिए ।

कराग और षडङ्ग न्यास

ओ आ ह्री क्रौं अ क ख ग घ ङ पृथिव्यप्तुजो वाटबाकाशात्मने आ अङ्गुष्ठाभ्या नमः ।

ओ आ ह्रीं क्रौं इ च छ ज झ ञ शब्दस्पर्शरूपरस गन्धात्मने ई तर्जनीभ्या स्वाहा' ओ आ ह्री क्रौं ङ ट ठ ड ढ ण वाक् पाणिपादपायुप स्थात्मने, ओ मध्यमाभ्या वषट्। ओ आ ह्री क्रौं ए त थ द ध न श्रोत्रग्त्वक्चक्षु-र्जिह्वाघ्राणात्मने एँ अनामिकाभ्या हुँ। ओ ह्री क्रौं प फ ब भ म मनोबुद्धिचिन्तविज्ञानानन्दात्मने औं कनि-ष्ठिकाभ्या वौषट्। ओ आ ह्री क्रौं य र ल व श प स ह वचनादानगमन विसर्गानन्दात्मने अ करतलकरपृष्ठाभ्या फट्।

ओ आ ह्री क्रौं अ क ख ग घ ङ पृथिव्यप्तेजो-

वखाकाशात्मने ग्रा हृदयाय नम ।

(इसी प्रकार ग्रन्य ग्रङ्गो मे न्यास करना चाहिए।)

ध्यान

ग्राधार तु चतुर्दलारुणरुचि वासान्तवर्णावृत ।
स्वाधिष्ठानमनेकविद्युतनिभ बालान्तषट्पत्रकम् ॥
रक्ताभ मणिपूरक दशदलैर्ठाद्यै फकारान्तकै,,
पत्रैर्द्वादशभिस्त्वनाहतपुर हैम ठकारान्तकम्
मात्राभि स्वरषोडशच्छदयुत ज्योतिर्विशुद्धाम्बुज ।
ह क्ष द्वयक्षरपद्मपत्रयुगल मुक्ताममाज्ञाम्बुज
तस्मादूर्ध्वगत सदा विकसित पद्म सहस्रच्छद ।
नित्यानन्दमय सदाशिवमय तत्व पद शाश्वतम् ॥
शरत्पूर्णेन्दुशुभ्रा सकललिपीमयी लोलरक्त त्रिनेत्रा ।
शुक्लालङ्कारभासा शशिमुकुट जटा जूटायुक्ता प्रसन्नाम् ॥
विद्यास्रकपूर्णकुम्भान् वरमपि दधती शुल्कपुष्पाम्बराढ्या,
वाग्देवी पद्मवक्त्रा स्तनभरनमिता चिन्तयेत् साधकेन्द्र ॥

ध्यान के बाद मातृका वर्णं के शुरू मे 'ग्रो ऐ ह्री श्री' ग्रौर ग्रन्त मे 'नम' हम सोह' लगाकर चक्रदलो में न्यास करना चाहिए।

मूलाधार के ग्ररुण ग्राभावाले चतुर्दलकमल मे–
व, श ष स ।

स्वाधिष्ठान के विद्युत प्रकाश वाले षट्दलकमल
मे-- ब भ, म, य, र, ल ।

नाभि के मणिपूरक के रक्तवर्ण दश- दलकमल
मे-- ड, ढ ण, त, थ, द, ध न, प, फ।

हृदय के अनाहत के सुवर्णवर्ण द्वादशदल कमल मे - क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ ।

कण्ठ के विशुद्ध के उज्जवल षोडसदलकमल मे-- अ, आ, इ, उ ऊ, ऋ, ॠ, लृ, लॄ ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः ।

भौहो के बीच आज्ञा के मुक्तावर्ण-द्विदलकमल मे --ह, क्ष ।

अब सहस्त्र दल कमल मे सारे मातृका मे आने वाले वर्णों का अनुलोम और विलोम क्रम से न्यास करना चाहिए। यथा-- अ, आ, इ, ई, श ष स ह ल क्ष और विलोम क्ष, ल, ह, स.... ..ई, इ, आ, अ ।

अथ बहिर्मातृका

ओ अस्य श्रीअन्तर्मातृका महासरस्वती मन्त्रस्य ब्रह्माविष्णु महेश्वरा ऋषय. ऋग्युजु सामानि छन्दासि बहिर्मातृका महासरस्वती मन्त्रस्य देवता हलो बीजानि स्वरा. शक्तय विन्दव कीलकानि बहिर्मातृका महा-सरस्वती प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोग ।

ऋष्यादिन्यास, प्राणायाम करन्यास एव षडङ्गन्यास आदि अन्तर्मातृका न्यास की तरह करना चाहिए ।

ध्यानम्

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभिन्न मुखदोर्पन्ममध्यवक्षस्थली ।
भास्वन्मोलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।।
मद्र माक्षगुण सुधाढ्यकलश विद्याञ्च हस्ताम्बुजे-

विभ्राणा विशदप्रभा त्रिनयना वाग्देवतामाश्रये ॥

वहिर्मातृका न्यास करते समय हर मातृका वर्ण के शुरू मे 'ओं' और अन्त मे 'नमः' लगाना चाहिए ।

अं ललाटे	अनामा से ।
आं मुखमण्डले	मध्यमा से ।
इं दक्षनेत्रे	अंगूठा और अनामिका से ।
ईं वामनेत्रे	अंगूठा और अनामिका से ।
उं दक्षकर्णे	,, ,,
ऊं वामकर्णे	,, ,,
ऋं दक्षनासायाम्	अंगूठा और कनिष्ठा से ।
ॠं वामनासायाम्	,, ,,
लृं दक्षगण्डे	तर्जनी मध्यमा अनामा से ।
ॡं वामगण्डे	,, ,, ,,
एं ऊर्ध्व ओष्ठे	मध्यमा से ।
ऐं अधरोष्ठे	,,
ओं ऊर्ध्व दन्तपंक्तौ	अनामा से ।
औं अधो दन्तपंक्तौ	,,
अं जिह्वाया	मध्यमा से ।
अः लम्बिकाया	,,
कं दक्ष बाहुमूले	मध्यमा अनामिका कनिष्ठका से ।
खं दक्षकूर्परे	,, ,, ,,
गं दक्षमणिबन्धे	,, ,, ,,
घं दक्षकरतले	,, ,, ,,
ङं दक्ष कराग्रे	,, ,, ,,

च वाहुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
छ कूपरे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ज वाम मणिबन्धे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
झ वाम करतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ञ वाम कराग्रे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ट दक्षोरुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ठ दक्ष जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ड गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ढ दक्ष पादतले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
ण दक्ष पादाग्रे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
त वामोरुमूले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
थ वाम जानुनि कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
द वाम गुल्फे कनिष्ठा अनामिका मध्यमा

ध वाम पाद तले कनिष्ठा अनामिका मध्यमा
न वाम पादाग्रे „ „ „
प दक्ष पार्श्वे „ „ „
फ वाम पार्श्वे „ „ „
ब पृष्ठे „ „ „
भ नाभौ अगुष्ठा कनिष्ठा अनामा मध्यमा
म जठरे अगुष्ठ तर्जनी मध्यमा अना० कनि०

य त्वगात्मने हृदि मध्यमा अनामिका
र असृगात्मने दक्षांशे „ „
ल मासात्मने ककुदि „ „
व मेदात्मने वामांशे „ „
श अस्यात्मने हृदादि दक्ष कराङ्गुल्यन्तम् ।

प मज्जात्मने हृदादि वाम कराङ्गुल्यन्तम् ।
म शुक्रात्मने नाभ्यादि दक्ष पादान्तम् ।
ह जीवात्मने नाभ्यादिवाम वाम पादातम् ।
ल परमात्मने हृदादि कुक्षौ ।
क्ष ज्ञानात्मने हृदादि मुखे ।

मूल मन्त्र न्यास

विनियोग—

अस्य श्रीभुवनेश्वरी मन्त्रस्य शक्ति ऋषि गायत्री छन्द श्रीभुवनेश्वरी देवता ह्री बीज श्रीं शक्ति क्ली कीलक श्रीभुवनेश्वरी देवता सिद्धयर्थे विनियोग ।

ऋष्यादिन्यास

शिरसि शक्ति ऋषये नम । मुखे गायत्री छन्दसे नम, हृदि श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नम । गुह्ये ह्रीं बीजाय नम । पादयो श्री शक्तये नम । सर्वाङ्गे क्ली कीलकाय नम ।

करन्यास

ओ ह्रा अगुष्ठाभ्या नम । ओ ह्री तर्जनीभ्या स्वाहा । ओ ह्रू मध्यमाभ्या वषट् । ओ अनामिकाभ्या हैं । ओ ह्रौ कनिष्ठिकाभ्या वौषट् । ओ ह्र करतलकरपृष्ठाभ्या फट् ।

षडङ्गन्यास

ओ ह्रा हृदयाय नम । ह्री ओ शिरसेस्वाहा ।

ओं ह्रू शिखायै वषट्। ओं ह्रैं कवचाय हुं। ह्रौं नेत्र-त्रयाय वौषट्। ओं ह्रः अस्त्राय फट्।

बीजमन्त्रन्यास

ओं हृल्लेखायै नमः मस्तके। ओं ऐं गगनगायै नमः मुखे। ओं ऊं रक्तायै नमः हृदये। ओं ईं करालिकायै नमः गुह्ये। ओं श्रौं महोच्छुष्मायै नमः पादयोः। ओं ऐं ऊं ईं श्रौं हृल्लेखायै नमः सर्वाङ्गे।

ओं हृल्लेखायै नमः ऊर्ध्वमुखे। ओं ऐं गगनगायै नमः पूर्वमुखे। ओं ऊं रक्तायै नमः दक्षिणमुखे ओं ईं करालिकायै नमः उत्तरमुखे। ओं श्रौं महोच्छुष्मायै नमः पश्चिममुखे।

व्यापक न्यास

इस तरह से न्यास करके तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिए। यह शिर से पैर तक और पैरों से शिर तक करना चाहिए।

भुवनेश्वरी कवच

पातक दहनं नाम कवचं सर्वकामदम्।
शृणु पार्वति वक्ष्यामि तव स्नेहात्प्रकाशितम्॥१॥

शंकर बोले—हे पार्वती! मैं तुम्हारे प्रति भुवनेश्वरी कवच कहता हूं। उसका नाम 'पातक दहन' है। इस कवच से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है। तुम्हारे प्रति स्नेह के वश होकर ही इसे प्रकट करता हूं॥१॥

पातक दहनस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च भुवनेशी प्रकीर्त्तिता।

धर्म्यर्थकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्त्तित ।२।

पातक दहन के ऋषि सदाशिव छंद अनुष्टुप् देवता भुवनेश्वरी और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष आदि मे है ।२।

ए बीज मे शिर पातु ह्रीं बीज वदन मम ।
श्री बीज कटिदेशन्तु सर्वाङ्ग भुवनेश्वरी ।।
दिक्षु चैव विदिक्षीय भुवनेशी सदावतु ।३।

ऐं बीज मेरे मस्तक की, ह्रीं मुख की, श्री कमर की और भुवनेश्वरी सर्वांग की रक्षा करें। दिशा-विदिशा सभी मे भुवनेश्वरी मेरी रक्षा करे ।३।

अस्यापि पठनात्सद्य कुबेरोऽपि धनेश्वर ।।
तस्मात्सदा प्रयत्नेन पठेयुर्म्मानवा भुवि ।।

इस कवच के पढने से ही कुवेर तुरन्त धनाधिप हुए इस लिये प्रयत्न पूर्वक इसका सदा पाठ करना उचित है ।४।

स्तव

अथानन्दमयी साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
ईडे सकल सम्पत्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ।१।

'जो भगवती आनन्दमयी साक्षात् शब्द रूप वाली एव ब्रह्म स्वरूपा हैं, जो जगन्माता और जगत्कारण रूपा हैं उन देवी की सपत्ति लाभ के निमित्त स्तुति करता हूँ ।१।'

आद्यामशेपजननीमरविन्दयोने-
र्विष्णो शिवस्य च वपु प्रतिपादयित्रीम् ।।
सृष्टिस्थितिक्षयकरी जगता त्रयाणा
स्तुत्वा गिर विमलयाम्यहमम्बिके वाम् ।२।

'हे माता ! तुम संसार की आद्या हो, ब्रह्माण्ड तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी तुम्ही से प्रकट हुए हैं। त्रैलोक्य की रचयित्री, स्थित और विनाश करने वाली हो। तुम्हारी स्तुति के द्वारा मैं अपनी वाणी को पवित्र करता हूं।२।'

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण
हात्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाज ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता
हेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ।३।

हे पार्वती ! जो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश अग्निहोत्री, सोम, सूर्य के रूप में जो देवी स्थित हैं तथा जिन्होंने कामदेव को भस्म किया था, उन भगवान् शंकर की भी त्रैलोक्य संहारिणी शक्ति तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न होती है।३।'

त्रिस्त्रोतस सकललोकसमर्चिचताया
वैशिष्टचकारणमवैमि तदेव मात, ।
त्वत्पादपंकजपरागपवित्रितासु
शम्भोर्जटासु नियत परिवर्तन यत् ।४।

'हे माता ! तुम्हारी चरण-रेणु से पवित्र हुई, शंकर की जटा मे तीन स्रोत वाली भागीरथी सदा प्रवाहित रहती हैं इस लिए उनका सभी पूजन करते हैं और इसी लिए वह गंगाजी प्रधानता को प्राप्त हुई है।४।'

आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिप कलाना
नान्यामिन कमलिनीमथ नेतरा वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेकमीष्टे
त्वन्तु प्रपञ्चमभिन्दयसि स्वदृष्ट्या ।५।

'जैसे कलावन्त चन्द्रमा कुमुदिनी को आनन्द देते हैं और किसी

को नहीं अथवा सूर्य भी केवल कमल का ही आनन्द-वर्द्धन करते हैं अन्य किसी का नहीं करते। जिस प्रकार एक एक द्रव्य के आनन्द वर्द्धन को एक एक द्रव्य ही निर्दिष्ट है, वैसे ही इस सम्पूर्ण विश्व को एक तुम्ही अपनी दृष्टि से आनन्द प्रदान करती हो।५।'

आद्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि।
त्रय्याः प्रसूरपि तया न समीक्षितासि
ध्येयापि गौरि मनसो न पथि स्थितासि।६।

'हे माता! सब की आद्या होकर भी तुम नवयुवती ही हो। पर्वतराज की पुत्री होकर भी तुम अत्यन्त कोमलांगी हो। जो वेद तुम से प्रकट हुए हैं वे तुम्हारा तत्व निरूपण करने असमर्थ हैं। हे भगवती! तुम ध्यानगम्या होते हुए भी मन में अवस्थित नहीं हो पाती।।'

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं
तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम्।
नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ये त्वां
निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति।७।

'इस असाध्य मनुष्य जन्म को प्राप्त होकर भी और इंद्रियों के विभिन्न सामर्थ्य को पाकर भी जो मनुष्य तुम्हारी पूजा नहीं करते, हे माता! वे मुक्ति की सीढ़ियों पर चढ़ भी जांय, तो वहीं से पुनः गिर जाते हैं'।७।

कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः।
आराधयन्ति हि भवानि समुत्सुकास्त्वां
ते खल्वशेषभुवनाधिपतां प्रयान्ते।८।

'हे माता ! कर्पूर चूर्ण मिले ठन्डे जल मे घिसे हुए चन्दन और श्रेष्ठ सुगंध वाले पुष्पों के द्वारा उत्कंठित मनोभाव से तुम्हारी आराधना करते हैं, वे मनुष्य सब भुवनों के स्वामी होते हैं' ।८।

आविश्य मध्यपदवी प्रथमे सरोजे
सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती
पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ।६।

'हे माता ! तुम मूलाधार कमल मे शयन करते हुए सर्प राज के समान विराजती हुई जगत की रचना करती हो और वहाँ से विद्युत रेखाओं के समान क्रमानुसार ऊर्ध्व स्थित पंच दल कमल को भेद कर सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य में स्थित परम शिव सहित मिलती हो ।६।'

तन्निर्गतामृतरसैं रभिषिच्य गात्रं
मार्गेण तेन विलय पुनरप्यवाप्ता ।।
येषा हृदि स्फुरति जातु न ते भवेयु-
र्मातर्महेश्वर कुटुम्बिनि गर्भभाज ।१०।

'हे माता ! तुम सहस्रदल कमल से निकलते हुए सुधारस से देह को अभिषिक्त करती हुई सुषुम्ना के मार्ग मे जाकर लीन हो जाती हो। जिस मनुष्य के हृदय पद्म मे तुम्हारा उदय नही होता, वह मनुष्य बार बार गर्भ धारण का दुःख उठाता है ।१०।'

आलम्बिकुन्तलभरामभिरामवक्त्रा-
मापीवरस्तनतटी तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्ता,
मातनमामि मनसा तव गौरि मूर्तिम् ।११।

हे माता! तुम्हारे केश लम्बे हैं, तुम्हारा मुख अत्यन्त रमणीक है, उन्नत वक्ष, पतली कमर और चार भुजाओ से युक्त हो। उन भुजाओ मे ज्ञानमुद्रा, जप माला, कलश और पुस्तक सुशोभित है। हे देवी! तुम्हारे गौरी स्वरूप को हम नमस्कार करते हैं।११।'

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिपटक-
मावध्य चेन्द्रियगण मनसि प्रसन्ने।
पाशाकुशाभयवराढ्यकरा सुवक्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ।१२।

'हे भुवनेश्वरी! योग का अवलम्बन करने वाले योगी कामादि वैरियो को जीत कर इन्द्रिय निग्रह पूर्वक प्रफुल्लित मन से पाशाकुश, अभय वर युक्त तुम मनोहारिणी का दर्शन करते हैं।१२।'

उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि
रावर्तितामृतघटैरभिषिच्यमाना।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्तो
पद्मापि साभयकरा भवसि त्वमेव ।१३।

'हे जननि! तप्त स्वर्ण के समान वर्ण वाली, हाथो मे पद्म और दो हाथो में अभय एव वर मुद्रा धारिणी चार हाथी जनका जल पूर्ण घट मे अभिषेक करते हैं, वह देवी रूपिणी लक्ष्मी तुम्ही हो।१३।'

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम्।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान्
न्यक्कुर्व्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गे ।१४।

'हे भगवती! सिंह पर आरोहण कर विभिन्न शस्त्रास्त्र युक्त आठ हाथो से सुशोभित दूर्वादल के समान उज्वल वर्ण वाली, देवताओ को भी जीत लेने वाली दुर्गा तुम्हीं हो ।१४।'

आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
रत्नांशुकामसितकान्तिमलङ्कृतान्त्वा
माद्या पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मरामि ।१५।

श्रम विन्दुओ के द्वारा जिनका मुख मडल सुशोभित है, जिन्होने घौटली का हार धारण किया हुआ है पत्रावली जिनके वस्त्र रूप हैं, उन्ही श्याम वर्ण वाली आद्या पुलिंद तरुणी काली का मे ध्यान करता हूं ।१५।'

हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्ट-
मूर्तौ रिवाप्तवचनैरनु म्यमानौ ।
पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ
श्रीकण्ठपत्नि शिरसैव दधे तवाङ्घ्री ।१३।

हे नीलकण्ठ-प्रिये ! नूपुर के शब्द को सुन कर जैसे हंस दूर से खिंचे चले आते हैं वैसे ही सब शास्त्र तुम्हारे पद पद्मो का अनुगमन करते हैं। तुम्हारे वे पद पद्म सुन्दर नील कमल के समान सुशोभित है, जिन्हे मैं अपने शिर पर सदा धारण करता हूं ।१६।'

द्वाभ्या समीक्षितुमतृप्तिमितेन दृग्भ्या
मुत्पाद्यता त्रिनयने वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागभवनेन निरीक्ष्यमाणे
जघे उभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि ।१७।

'वृषकेतु भगवान् शकर अपने दो नेत्रो से तुम्हारे रूप का अवलोकन करते हुए तृप्ति को न प्राप्त होकर ही मानो तीसरे नेत्र को प्रकट कर तुम्हारा रूप दर्शन करते हैं। अत, मैं तुम्हारे जानुओ को नमस्कार करता हूं ।१७।'

कण्ठातिरिक्तगलदुज्जवलकान्तिधरा

शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ
मातर्मम स्मृतिपथं न विलंघयेताम् ।१८।

'हे माता ! तुम्हारे दोनों हाथ देखने पर अनुमान होता है कि काम देव ने ही अपने शत्रु स्वरूप शंकर का कंठ पकड़ने के निमित्त दीर्घ पाश की रचना की हो। मैं तुम्हारे उन दोनों हाथों को कभी भी न भूलूं ।१८।'

नात्यायत रचितकम्बुविलासचौर्य्यं
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ।१९।

'हे पार्वती ! तुम विविध प्रकार के वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो। कंठ अत्यन्त मनोहर है। मैं उसका ध्यान करता हुआ कभी भी तृप्त न होऊँ ।१९।'

अत्यायताक्षमभिजातललाटपट्टं,
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ।२०।

'हे जननि ! तुम्हारे मुख मण्डल पर सुन्दर और विस्तृत नयन सुशोभित हैं। तुम्हारा ललाट अत्यन्त रमणीय दृष्टिगत होता है। मृदु हास्य के कारण कपोल भी प्रफुल्लित हैं। बिम्ब के समान अधर और उन्नत तथा लम्बी नासिका शोभा पा रही है। जो तुम्हारे ऐसे मुख मन्डल का ध्यान करते हैं, उनका जन्म धन्य है ।२०।'

श्रुतिसुरचितपाकं धीमता स्तोत्रमेतत् ।
पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनम्र ।

क्षितिपमुकुटलक्ष्मी लक्षणाना चिराय ।२१।

'जो व्यक्ति मेधावी जनो द्वारा रचित इस सुन्दर स्तोत्र को आर्द्र अन्तरात्मा द्वारा नित्य पढते हैं, सभी सम्पदाऐं उनकी आश्रित होती हैं और राजा भी उनके चरणो मे शिर झुकाते हैं।२१।'

५—छिन्नमस्ता

व्याख्या

भगवती छिन्नमस्ता के एकनिष्ठ साधको में जहां योगी, ऋषि रहे हैं वहां असुरो की भी वह आराधिका रही हैं। योगियो में गोरखनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ का नाम उल्लेखनीय है। ऋषियो मे याज्ञवल्क्य का नाम सबसे ऊपर आता है। इन्होने जनक की सभा मे शाकल्य का मस्तक इसी शक्ति से काटा था। भगवान परशुराम भी भगवती के उपासक थे। असुरो में हिरण्यकशिपु और वैरोचन का नाम आता है। जिन्होने भगवती की साधनासे महान शक्तियाँ उपलब्ध की थी। भगवान् बुद्ध भी इसके उपासक बताए जाते हैं। देवी भागवत की हयग्रीव विद्या और वृहदारण्यक की मधु विद्या यही है। भगवती धर्म, अर्थ काम और मोक्ष सभी प्रकार के फल प्रदान करती है। उसे जैसे भाव से पूजा जाए, वैसा ही फल प्राप्त होता है। इसीलिए असुरो और ऋषियो दोनो की आराध्य रही हैं।

विपरिणमान विश्व का अधिष्ठाता केतन कबन्ध शिव माना जाता है, उसकी महाशक्ति छिन्नमस्ता है।

छिन्नमस्ता सृष्टि प्रक्रिया से सम्बन्धित है। सूर्य जगत का मूल कारण है। श्रुति कहती है—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।

(यजुर्वेद)

सूर्य जगत का आत्मा है। उससे सृष्टि सञ्चालित होती है। उसके अभाव में यह सब विश्व की व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाए। इसीलिए इसे यज्ञ पुरुष कहा गया है। 'सूर्यो वा ज्योतिष्टोम, सूर्यो ह वा अग्निहोत्रम्।'

सूर्य की दो शक्तियाँ हैं, एक का उससे घनिष्ठतापूर्वक सम्पर्क रहता है और दूसरी उससे अलग होकर विश्व का निर्माण व पालन-पोषण करती है। जो सूर्य से अप्रथक रहती है, उसे वैदिक भाषा में 'ब्रह्मौदन' कहते हैं और जो प्रथक होकर जगत की सृष्टि करती है, उसे 'प्रवंज्य' नाम दिया गया है। सूर्य अग्नि का महापिण्ड है। जो अग्नि सदैव उसका एक अंग बनी रहती है, जो किरण के माध्यम से चारों ओर बरसती है। वनस्पतियों व अन्य प्राणियों में प्रविष्ट होकर उनमें प्राण शक्ति का सञ्चार करती है, वह 'प्रवंज्य' कहलाती है। उन दोनों को वैदिक भाषा में सूर्य पुरुष के दो मस्तक कहा गया है। गोपथ ब्राह्मण ३।७ में सूर्य पुरुष को 'द्वे शीर्षे' कहा गया है।

विश्व-निर्माण के लिए प्रवंज्य शक्ति आवश्यक है। यदि वह सङ्कोच करे तो जगत का निर्माण खतरे में पड़ जाय। वह ऐसा नहीं करता। इसलिए उसे यज्ञ रूप कहा गया है। यह प्रवंज्य भाग सूर्य से अलग होता रहता है, कटता रहता है, इसलिए कटा मस्तक की संज्ञा दी गई है। इसे ही 'छिन्न शीर्ष' कहते हैं। तभी कहा है 'छिन्नशीर्षो वै यज्ञ,।' इस छिन्न शीर्ष को 'कबन्ध' भी कहते हैं। इसकी शक्ति 'छिन्नमस्ता' है।

महिमा

श्री भैरव तन्त्र मे छिन्नमस्ता की उपासना से लौकिक और पारलौकिक सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन है—

प्रचण्डचण्डिका वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदाम् ।
यस्या स्मरणमात्रेण सदाशिवो भवेन्नर ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनवान भवेत् ।
कावत्व दीर्घपाण्डित्य लभते नात्र सशय ॥

अर्थात् 'प्रचण्ड चण्डिका श्री छिन्नमस्ता के सम्बन्ध मे कहते हैं, जिनकी उपासना से सब काम फलप्रद होते हैं, साधक स्वय सदाशिव बन जाता है, अपुत्रो को पुत्र और धनहीन को धन प्राप्त होता है। कविता शक्ति और पाण्डित्य शक्ति का विकास होता है, इसने कुछ भी सशय नही।'

'उमा सहस्रम' नामक काव्य में छिन्नमस्ता भगवती की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

तव छिन्न शीर्ष विदुरखिलधात्र्यागमविदो।
मनुष्याणामस्ते बहुलतपसा यद्विदलिते ॥
सुषुम्नाया नाड्या तनुकरणसम्पर्करहिता बहि ।
शक्तया युक्ता विगत चिरनिद्रा विलससि ॥

अर्थात् 'आपके छिन्न शीर्ष को हे अखिलधात्रि ! आगम के ज्ञाता मनीषी लोग जानते हैं। मनुष्यो के अत्यधिक तप से जो विदलित होता है उसमे और सुषुम्ना नाडी मे तनुकरण के सम्पर्क मे बाहर शक्ति मे युक्त विगत चिर निद्रा विलसित होती है—चिर निद्रा से रहित होकर आप शोभा को प्राप्त होती हैं।'

गोरक्ष संहिता मे योगीराज गोरखनाथ ने भगवती की वन्दना इस प्रकार की है—

नाभौ शुभ्रारविन्द तदुपरि विमल मण्डल चण्ड-रश्मे, सामारस्यैकरूपा त्रिभुवनजननी धर्मदात्री नरा-णाम्। तस्मिन् मध्ये त्रिमार्गे त्रितयतनुधरा छिन्नमस्ता प्रशस्ता, ता वन्दे ज्ञानरूपा मरणभयहरा योगिनी योग-मुद्राम् ॥

(गो० प० २ ७६)

अर्थात् 'नाभि मे स्फटिक वर्ण कमल पर अधिष्ठित पवित्र सूर्य मण्डल का चिन्तन करता हुआ, जगत की त्रिभुवन जननी, धर्म दात्री, दयामूर्ति, प्रशस्ता, ज्ञान रूपा, मरण भय का हरण करने वाली योग-मुद्रा, योगिनी छिन्नमस्ता देवी की मैं व दना करता हूँ।'

ध्यान

छिन्नमस्ता भगवती का ध्यान इस प्रकार है—

प्रत्यालीढपदा सदैव दधती छिन्न शिर. कर्तृका
दिग्वस्त्रा स्वकबन्धशोणितसुधाधारा पिबन्ती मुदा।
नागाबद्धशिरोमणि त्रिनयना हृद्युत्पलालङ्कृता
रत्यासक्तमनोभवोपरि दृढा ध्यायेज्जवासन्निभाम् ॥

दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्री तथा खर्पर
हस्ताभ्या दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी।
देव्याश्छिन्नकबन्धत पतदसृग्धारा पिबन्तो मुदा
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सा सुरै ॥

प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्त पिबन्ती मुदा

संषा या प्रलये समस्त भुवन भोक्तु क्षमा तामसी ।
शक्ति सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी ।।
(शाक्त प्रमोद छिन्नमस्तातन्त्र)

अर्थात् 'प्रत्यालीढ पद वाली, छिन्न शिर और खड्ग धारिणी, दिगम्बरा, छिन्न कण्ठ से निकलते हुए रक्त का पान करती हुई, मस्तक मे सर्प से बँधी हुई मणि, तीन नेत्र कमल माल से अलकृत वक्षस्थल, जवाकुसुम के समान वर्ण वाली, दाहिने भाग मे श्वेत वर्ण, मुक्त केशी कैंची और खप्पर धारिणी वर्णिनी देवी हैं। यह गले से निकलने वाली रक्त धारा को पान करती हुई, मस्तक मे नाग से बँधी मणि वाली, बाँए भाग मे खड्ग और खर्पर धारण किये श्याम वर्ण की दूसरी देवी हैं, यह भी गले से निकले रुधिर को पीती हुई, दाँए पाव को आगे किए और बाँए पाँव को पीछे किए स्थित हैं। प्रलय काल मे यह सम्पूर्ण विश्व को भक्षण करने मे समर्थ डाकिन' नाम वाली हैं।'

उत्पत्ति की अलकारिक कथा—

एक बार वह अपनी सखियो—जया और विजया के साथ मन्दाकिनी नदी में स्नान के उद्देश्य से गई। स्नान के पश्चात् उनमे कामाग्नि भडक उठी। इससे उनका वर्ण कृष्ण हो गया। तभी सखियो ने भोजन की माँग की तो उन्हें कुछ समय बाद देने का आश्वासन दिया। वह क्षुधा से पीडित हो रही थी, अत उन्होने बार-बार माँगना शुरू किया और प्रार्थना की माता तो भूख लगने पर अपने बच्चो को अवश्य भोजन देती है, अत हमे भी मिलना ही चाहिए। भगवती ने कराग्र से अपना शिर काट डाला। उससे रक्त की तीन धाराएँ निकली। दो धाराएँ तो जया और विजया (जिन्हें डाकिनि और वर्णिनी भी कहते हैं) के मुख मे जाने लगीं। तीसरी धारा भगवती अपने कटे हुए

शिर से पीने लगी। तभी से भगवती छिन्नमस्ता कहलाती हैं। इस तरह की और भी कथाएं उपलब्ध होती हैं।

स्पष्टीकरण

इस अलङ्कारिक कथा का सम्बन्ध योग साधना से है। योग-शास्त्र मे तीन सूक्ष्म बन्धनो का वर्णन आता है, जिन्हे यौगिक भाषा मे ग्रन्थियो के नाम से अभिहित किया गया हैं। उनके नाम हैं--रुद्र ग्रन्थि, विष्णु ग्रन्थि, ब्रह्म ग्रन्थि। यह तीन ग्रन्थियाँ जब सुप्तावस्था में रहती हैं, तब तक जीव साधारण दीन हीन दशा मे पडा रहता है, उसे अशक्ति, अज्ञान और अभाव के दुःख बने ही रहते हैं, परन्तु जब यह ग्रन्थियाँ खुलने लगती हैं, तो लौकिक व पारलौकिक सभी प्रकार की सिद्धियाँ उसके समक्ष नतमस्तक होकर उपस्थित हो जाती हैं, आत्मिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, क्षुद्रता महानता मे परिवर्तित होने लगती है, द्वैत से अद्वैत की ओर मार्ग खुल जाता है।

रुद्र ग्रन्थि आज्ञा चक्र में, ब्रह्म ग्रन्थि मूलाधार मे व विष्णु ग्रन्थि मणिपूर मे अवस्थित है। योगियो का मत है कि विष्णु और ब्रह्म ग्रन्थियो के खुलने पर भी यदि अहङ्कार दूर न हो पाया तो रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है, इसलिए इसका खुलना अत्यन्त आवश्यक होता है तभी आवागमन के चक्र से छुटकारा सम्भव है। योग शास्त्र के इस मार्ग का सबसे बडा बाधक काम तत्व को माना है तभी भगवती को कामाग्नि से पीडित होकर कृष्ण वर्ण का होना प्रदर्शित किया गया है। भगवती के ध्यान मे इसका आभास मिलता है।

'अस्थिमालाधरा देवी नागयज्ञोपवीतिनी।
रतिकामोपविष्टा च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिण ॥'
विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद्रतिमनो भुवौ।'

अर्थात् 'हड्डियो की माला को धारण करने वाली—नागो के यज्ञोपवीत वाली—रतिकाम मे उपविष्टा देवी का मन्त्र के ज्ञाता सदा ध्यान किया करते हैं। विपरीत रति में समारूक्त रति और कामदेव का ध्यान करना चाहिए।'

योगियो का विश्वास है कि मणिपूर चक्र के बीच की नाड़ियो मे काम का निवास रहता है। इसी पर छिन्नमस्ता भगवती का अधिष्ठान है। वह काम के निम्नगामी प्रवाह को रोकती है। उसकी दशा को मोड़ती है और ऊर्ध्वगामी बनाती है। जब तक काम का प्रवाह नीचे की ओर होता रहता है, तभी तक रुद्र ग्रन्थि का भेदन रुका रहता है। जब वह ऊपर की ओर प्रवाहित होने लगता है, तब उसका मार्ग प्रशस्त होता है और साधक पूर्णता की ओर पग बढाने की क्षमता वाला हो जाता है।

भगवती छिन्नमस्ता चाहती हैं कि काम-तत्व को नियन्त्रण में करके मुक्ति मार्ग के तीन बन्धनो को खोलता हुआ साधक अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुचे।

छिन्नमस्ता-पूजन-विधि-मन्त्र

विश्वसार और रुद्रयामल तन्त्रो मे छिन्नमस्ता देवी का षोडशाक्षर इस प्रकार लिखा है—

श्री क्ली ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा।

यह समस्त कार्यों में मगल कारक माना जाता है।

पत्नी को अनुकूल मे करने का मन्त्र है—

क्ली श्री ह्री ऐं वज्रवैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा।

पापो के नाश का मन्त्र है—

ह्री श्री क्ली ऐं वज्रवैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा।

मुक्ति पथ प्रशस्त करने वाला मन्त्र है—

ऐ श्री क्ली ह्री वज्रवैरोचनीये- हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

अन्य मन्त्र इस प्रकार हैं—

ह्री क्लीं श्री ऐं हुँ फट् ।

श्री ह्री ह्रीं वज्रवैरोचनीये हुँ फट् स्वाहा ।

हूँ

हू स्वाहा

ॐहू स्वाहा

ॐ वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

श्रीं ह्री हुँ ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ह्री श्री हुँ ऐ वज्रवैरोनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

हुँ श्री ह्री ऐं वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा

ऐ श्री ह्री हुँ वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ह्री श्री हु ए वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा श्री ।

हुँ श्री ह्री ऐ वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट स्वाह हुँ ।

ऐं श्री ह्री हुँ वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ऐं ।

ॐ श्री ह्री हुँ ऐ वज्रवैरोचनीये हुँ हुँ फट् स्वाहा ।

ॐ श्रीं ह्री हुँ ऐं वज्रवैरोचनीये श्री ह्री ऐं फट् स्वाहा ।

अथ बहिर्मातृका

विनियोग—

अस्य श्री बहिर्मातृका मन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्द श्री मातृका सरस्वती देवता, हलो बीजानि, स्वराः शक्तयोऽव्यक्त कीलक, देहशुद्धिसिध्यर्थे विनियोग ।

ऋष्यादि न्यास

ओ ब्रह्मणे नम शिरसि।
ओ गायत्री छन्दसे नम मुखे।
ओ मातृका सरस्वती देवतायै नम हृदि,
ओ हलभ्यो नम. गुह्ये ।
ओ स्वरेभ्यो नम पादयो ।
ओ अव्यक्तकीलकाय नम, सर्वाङ्गे ।

करन्यास

ओ अ क ख ग घ ङ आ अगुष्ठाभ्या नम.।
ओ इ च छ ज झ ञ ई तर्जनीभ्या स्वाहा।
ओ उ ट ठ ड ढ ण ऊ मध्यमाभ्या वषट्।
ओ ए त थ द ध न ऐ अनामिकाभ्या हु।
ओ ओ प फ ब भ औ कनिष्ठिकाभ्या वौषट्।
ओ अ य र ल व श ष स ह ल क्ष अ करतल-करपृष्ठा-भ्या फट्।

कठे धूम्रवर्णे षोडशदले विशुद्धे—ओ अ नम । ओ आ नम.। ओ इ नम.। ओ ई नम। ओ उ नम। ओ ऊ नम। ओ ऋ नम। ओ ॠ नम। ओ लृ-नम,। ओ ल नम। ओ ए नम ओ ऐ नम ओ ओ-नम। ओ औं नम ओ अ नम। ओ अ, नम।

हृदये रक्तवर्णे द्वादशदले अनाहते—ओ क नमः। ओ ख नम.। ओ ग नम। ओ घ नम। ओ ङ नम। ओ च नम। ओ छ नम। ओ ज नम.। ओ झ नम ओ ञ नम.। ओ ट नम। ओ ठ नम।

नाभौ मेघवर्णे दशदले मणिपूरे—ओं ड नम :
ओं ढ नम । ओं ण नम. । ओं त नम । ओं थ नभ,
ओं द नम । ओं ध नम । ओं न नम । ओं प नम
नम ओं फ नम ।

लिङ्गमूले विद्युद्वर्णे षट्दले स्वाधिष्ठाने ओं ब
नम । ओं भ नम । ओं म नम. । ओं य नम, । ओं र
ओं ल नम ।

सुवर्णे चतुर्दले मूलाधारे—ओं व नम । ओं श
नम । ओं ष नम । ओं स नम ।

भ्रूमध्ये श्वेतवर्णे द्विदले आज्ञाके—ओं ह नम ।
ओं क्ष नम ।

अब शरीर के बाहरी अंगों में मातृका वर्णों का न्यास करना चाहिए। पहले बाह्यमातृका सरस्वती का ध्यान किया जाय। यथा—

पञ्चाशल्लिपिर्विभक्तिमुखदो पन्मध्यवक्षस्थला ।
भास्वन्मौलिनिबद्धशकलानापीनतुङ्गस्तनीम् ॥
मुद्रामक्षगुणं सुधाढचयकलशं विद्या च हस्ताम्बुजैं
बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ॥

इस प्रकार ध्यान कर न्यास करे—

ओं अ नम शिरसि । ओं आ नम मुख वृत्ते ।
ओं इ नम दक्ष नेत्रे । ओं ई नम वाम नेत्रे । ओं उ
नम दक्ष कर्णे । ओं ऊ नम वाम कर्णे । ओं ऋ
नम. दक्ष नासायाम् । ओं ॠ नम वाम नासायाम् ।
ओं लृ नम दक्ष गण्डे । ओं लॄ नम वाम गण्डे । ओं ए
नम ऊर्ध्वं ओष्ठे । ओं ऐ नम अधोओष्ठे ओं ओ नम

ऊर्ध्व दन्तपङ्क्तौ। ओ ॵं नम अधो दन्तपङ्क्तौ। ओ अ नम ब्रह्मरन्ध्रे। ओ अ. नम मुखे ।

ओ क नम दक्ष वाहुमूले। ओ ख नम दक्ष कूर्परे। ओ ग नम दक्ष मणिवन्धे ओ घ नम. दक्ष अगुलिमूले। ओ ङ नम. दक्ष कराग्रे। ओ च नम वाम वाहुमूले। ओ छ नम वाम कूर्परे। ओ ज नम वाम मणिवन्धे। ओ झ नम वाम अगुलिमूले। ओ ञ नम वाम कराग्रे। ओ ट नम दक्षोरु मूले। ओ ठ नम दक्ष जानुनि। ओ ड नम गुल्फे। ओ ढ नम दक्ष पादतले। ण नम दक्ष पादाग्र। ओ त नम वामोरु मूले। ओ थ नम वाम जानुनि। ओ द नम. वाम गुल्फे। ओ ध नम वाम पादतले। ओ न नम वाम पादाग्रे ओ प नम दक्ष पार्श्वे। ओ फ नम वाम पार्श्वे। ओ ब नम पृष्ठे। ओ भ नम नाभौ। ओ म नम जठरे। ओ य त्वगात्मने नम हृदि। ओ र नम दक्षांशे। ओ ल नम ककुदि। ओ व नम वामांशे। ओ श नम. हृदादि दक्ष करागुल्यन्तम्। ओ ष नम हृदादि वाम करागुल्यन्तम् ओ स नम नाभ्यादि वाम पादान्तम्। ओ ल नम हृदादि कुक्षौ। ओ क्ष नम हृदादि मुखे।

बीज न्यास

श्रीं मुखे ह्रीं दक्षनासापुरे हूं वामनापुरे ऐं दक्ष नेत्रे क्लीं वाम नेत्रे श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षकर्णे ऐं वाम कर्णे हूं नाभौ क्रों हृदये क्रौं शिरसि।

ध्यानम्

नाभि मे इस तरह ध्यान करना चाहिए—

स्वानाभी नीरज ध्यायेदर्धं विकसित मित्त :
तत्पद्मकोषमध्ये मण्डल-चण्रोचिप, ॥
जपा कुसुम सङ्काश रक्त वन्धूकसन्निभ ।
रज सत्वतमो रेखायोनिमण्डलमण्डितम् ॥

मध्ये तु ता महादेवी सूर्यकोटिसमप्रभाम् ।
छिन्नमस्ता करे वामे धारयन्ती स्वमस्तकम् ॥

प्रसारित मुखी भीमा लेलिहानाग्रजिह्विका ।
पिबन्ती रौधरी धारा निजकण्ठविनिर्गता ॥
विकीर्णकेशपाशाञ्च नानापुष्पसमन्विताम् ।
दक्षिणे च करे कर्त्री मुण्डमालविभूपिताम् ॥

दिगम्बरा महाघोरा प्रत्यालीढपदस्थिताम् ॥
अस्थिमालाधरां देवि नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥
रतिकामोपविष्ठा च सदा ध्यायति मन्त्रिण. ।
सदा षोडशवर्षीया पीनोन्नतपयोधराम् ॥

छिन्नमस्ता के दांये ओर स्थित वर्णिभी शक्ति का इस प्रकार ध्यान करें।

वर्णिनी लोहिता सौम्याम् मुक्तकेशी दिगम्वरा ।
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापान प्रकुर्वतीम् ॥
नागयज्ञोपवीताङ्गी कर्त्रिखर्परहस्तकाम् ॥
सदा द्वादशवर्षीया मुण्डमालाविभूषिताम् ॥

फिर बांयी ओर स्थित डाकिनी शक्ति का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए।

डाकिनी वामपार्श्वे तु कल्पान्तदहनोपमाम् ।
विद्युच्छटाभनयनां दन्तपंक्तिवलाकिनीम् ॥

दंष्ट्रा करालवदना पीनोन्नतपयोधराम् ।
महादेवी महाघोरा मुक्तकेशी दिगम्बराम् ।।
लेलिहानमहाजिह्वा मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्ता सदाभीपरात्परिणीम् ।।
देवीगलोच्छन्नरक्त धारापान प्रकुर्वतीम् ।।
नाभौ शुद्धारविन्द तदुपरि कमल मण्डल चण्डरश्मे
ससारस्यैकसारा त्रिभुवनजननी धर्मकामोदयाढ्या ।।
तस्मिन् मध्ये त्रिकोणे त्रितयतनुधरा छिन्नमस्ता प्रशस्ता
ता वन्दे ज्ञानरूपा निखिलभयहरा योगिनी योग मुद्रा

छिन्नमस्ता कवच

हु बीजात्मिका देवी मुण्डकर्तृधरापरा ।
हृदयं पातु सा देवी वर्णिनी डाकिनीयुता ।१।

'वर्णिनी डाकिना युक्त मुण्डकर्त्त को धारण करने वाली, हुं बीजात्मिका देवी मेरे हृदय की रक्षा करे' ।१।

श्री ह्री हु ऐं चैव देवी पूर्व्वस्या पातु सर्वदा ।
सर्व्वाङ्ग मे सदा पातु छिन्नमस्ता महाबला ।२।

'श्री, ही, हुं, ऐ बीजात्मिका देवी पूर्व दिशा में तथा महाबला छिन्नमस्ता मेरे देह के सम्पूर्ण अगो की रक्षा करे ।२।

वज्रवैरोचनीये हु फट् बीजसमन्विता ।
उत्तरस्या तथाग्नौ च वारुणे नैर्ऋतेऽवतु ।३।

'वज्र वैरोचनीयै हु फट्' इस बीज से समन्विता देवी उत्तर, आग्नेय, वारुण और नैर्ऋत्य इन दिशाओ मे मेरी रक्षा करने वाली हों' ३।

इन्द्राक्षी भैरवी चैवासितांगी च संहारिणी ।
सर्व्वदा पातु मां देवी चान्यान्यासु हि दिक्षु वै ।४।

'इन्द्राक्ष, भैरवी, असितांगी और संहारिणी देवी सब दिशाओं में मेरी रक्षा करे ।४।'

६—भैरवी

दक्षिणामूर्ति काल भैरव की महाशक्ति भैरवी है । काल भैरव की विशेषता उनके नाम से ही स्पष्ट है । वे विनाश करते हैं । जिस तरह छिन्नमस्ता का सम्बन्ध महाप्रलय से है, उसी तरह काल भैरव नित्य प्रलय का अधिष्ठाता है, यह हर समय वस्तुओं का नाश करता रहता है । अतः 'यम' नाम पड़ा । यम को दक्षिण दिशा का लोकपाल माना जाता है क्योंकि यमाग्नि इसी दिशा में अवस्थित रहती है । इसीलिए इसका नाम दक्षिणामूर्ति पड़ा । इनकी महाशक्ति त्रिपुर भैरवी है । यह तीनों भुवनों के हर समय विनाश में संलग्न रहती है । त्रिपुर सुन्दरी का कार्य इनकी रक्षा करना है ।

इसका ध्यान इस प्रकार है—

उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां ।
रक्तालिप्तपयोधरां जपपटीं विद्यामभीतिं वरम् ।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम् ।।'

अर्थात् 'उदय होने वाले हजारों सूर्यों के समान अरुण कान्ति वाली क्षौमाम्बर को धारण किए मुण्डमाला पहने हैं । उनके पयोधर

रक्त से लिप्त हैं, त्रिनेत्रा हैं, हिमांशुबद्ध मुकुट को धारण किए हुए हैं, हाथ मे जपवटी, विद्या, वर और अभय मुद्रा हैं।'

त्रिपुर भैरवी प्रतिक्षण विनाश ही करती रहती है, सारे विश्वमे यह प्रक्रिया चल रही है। परन्तु साथ ही साथ निर्माण की शक्तियाँ भी अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही हैं। पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों मे विनाश और निर्माण के दोनो विरोधी कार्य हर क्षण होते रहते हैं। हमारे शरीर मे भी परमाणुओ के विनाश का कार्य निरन्तर चलता रहता है परन्तु निर्माण कार्य इतनी शीघ्रता से होता है कि विनाश का अनुभव नही हो पाता। जब तक निर्माण विनाश पर अपना प्रभुत्व जमाए रहताहै, तब तक स्वास्थ्य सुदृढ बना रहता है परन्तु जब विनाश की गति बढ जाती है और निर्माण काय शिथिल होता जाता है, उस स्थिति मे तो शरीर रोगी, निर्बल और विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। जब निर्माण कार्य बिल्कुल बन्द हो जाता है, तभी मृत्यु हो जाती है। यदि हमे जीवित रहना है तो निर्माण की गति को बनाए रखना होगा, वैसे ही उपायो को अपनाना होगा, स्वास्थ्य को नियमो का पालन करना होगा। विनाश के साधनों को रोकना होगा, सिगरेट, बीडी, शराब मांस जैसे तामसिक भोजन विनाश के परमाणुओ के सहायक सिद्ध होते हैं, मिठाई, चाट-पकौडी, तले पदार्थ, रवडी आदि राजसिक पदार्थ भी पेट को खराब करते हैं और नाना प्रकार के रोगो की उत्पत्ति का कारण बनते हैं, अश्लील कहानी, उपन्यास व चलचित्रो से काम तत्व का जागरण होता है, भोग की लिप्सा बढती है, वीर्य का क्षय होता है, यह विनाश के सशक्त साधन हैं। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से मस्तिष्क की नसे जलती हैं। इन पर ही सारे शरीर का स्वास्थ्य निर्भर रहता है। विकृत विचारो से स्वास्थ्य भी विकृत होता है।

यह तत्व त्रिपुर भैरवी के कार्यो मे हाथ बटाते हैं। विनाश से बचने के लिए इनके कुप्रभावो से बचना होगा, अपने निर्माण की

गतिविधियों को तीव्र करना होगा तभी शरीर को स्थिर रखना सम्भव होता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक को यदि नित्य होने वाले विनाश का ध्यान रहे तो वह पापों, बुराइयों और कुप्रवृत्तियों से बचा रहेगा। आत्मिक उन्नति चाहने वाले के लिए यह ध्यान आवश्यक है।

भैरवी पूजन-विधि

भैरवी के अनेक भेद हैं जैसे त्रिपुर भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, सकल सिद्धदा भैरवी, भय विध्वंसिनी भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षट्कूटा भैरवी, नित्या भैरवी। इनके विधान में कुछ-कुछ अन्तर है।

त्रिपुर भैरवी का मन्त्र है—'ह्स्रैं ह्स्कलरीं ह्स्रौः'

ध्यान इस प्रकार है—

पद्ममष्टदलोपेतं नवयोन्याढ्य कर्णिकम्।
चतुर्द्वार समायुक्तं भूगृहं विलिखेत्ततः॥

"नव योनि मय कर्णिका अंकित कर उसके बाहर अष्ट दल कमल और उससे भी बाहर चतुर्द्वार और भू-गृह बनावे। यह भैरवी पूजा मंत्र है।

दीक्षां प्राप्य जपेन्मंत्रं तत्त्वं लक्षं जितेन्द्रियः।
पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद् ब्रह्मवृक्षजैः॥

"जितेन्द्रिय रहता हुआ दीक्षा प्राप्त साधक दश लाख मन्त्र जपे और ढाक के फूलों द्वारा बारह हजार आहुतियां दे"।

भैरवी कवचस्यास्य सदाशिव ऋषिः स्मृतः।
छन्दोऽनुष्टुब् देवता च भैरवी भयनाशिनी।

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग प्रकीर्त्तित ॥

"भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भयनाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में है ।१।

हसरैं मे शिर, पातु भैरवी भयनाशिनी ।
हसकलरी नेत्रञ्च हसरौश्च ललाटकम् ।
कुमारी सर्व्वगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ॥
पूर्व्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
दिग्विदिक्षु सर्व्वत्रैव भैरवी सर्व्वदावतु ॥
इद कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम् ।
कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

"हसरैं मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरौ ललाट की और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर में वाराही, पूर्व वैष्णवी, दक्षिण में इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा मे भैरवी मेरी रक्षा करे । इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सौ करोड कल्प मे सिद्धि प्राप्त नही कर सकते" ।२।

७–धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बर ।
विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरला द्विज ॥
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धघोणा तु भृश कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्च्छिता नित्य भयदा कलहास्पदा।।
(शाक्त प्रमोद–धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन अम्बर वाली विधवा रूप में निवास करने वाली, काक ध्वज वाले रथ पर आरूढ़, लम्बे पयोधर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नासिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख प्यास से पीड़ित, नित्य भयप्रद और कलह रूपिणी है।'

धूमावती विधवा है। विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है। दुःख और दरिद्रता उसे हर समय घेरे रहते हैं। वह अपने को निःसहाय समझती है। निराशा उसके अंग-अंग से टपकती है। वह जीवन को एक बोझ सा समझती है। मंगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है। यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बौछार उस पर होने लगती है। वह अमंगल की प्रतिमा ही दृष्टिगोचर होती है। इसलिए विश्व की अपांगला स्थिति की द्योतक धूमावती हैं जिसे 'अलक्ष्मी' भी कहा जाता है। वह दरिद्रता का रूप है। वह निर्ऋति रूपा है। निर्ऋति दरिद्रता, कलह, क्लेश और रोगादि की अधिष्ठात्री है। शास्त्रकारो का मत है कि चतुर्मास में इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निर्बल हो जाते और आसुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं यह काल अषाढ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता हैं। यही कारण है कि निर्ऋति के साम्राज्य काल मे विवाहादि कोई भी शुभ कार्य नहीं किया जाता है। निर्ऋति की अन्तिम तिथि कातिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे धार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है क्योंकि निर्ऋति नारकीय कार्यो की सञ्चालिका है। इसी रोग को

धर्मार्थकाममोक्षेपु विनियोग प्रकीर्त्तित ॥

"भैरवी कवच के ऋषि सदाशिव, छन्द अनुष्टुप, देवता भयनाशिनी भैरवी, और विनियोग धर्मार्थ काम मोक्ष की प्राप्ति मे है ।१।

हसरैं मे शिर; पातु भैरवी भयनाशिनी ।
हसकलरी नेत्रञ्च हसरौश्च ललाटकम् ।
कुमारी सर्व्वंगात्रे च वाराही उत्तरे तथा ॥
पूर्व्वे च वैष्णवी दवी इन्द्राणी मम दक्षिणे ।
दिग्विदिक्षु सर्व्वत्रैव भैरवी सर्व्वदावतु ॥
इद कवचमज्ञात्वा यो जपेद्देविभैरवीम् ।
कल्पकोटि शतेनापि सिद्धिस्तस्य न जायते ॥

"हसरैं मेरे मस्तक की, हसकलरी नेत्रे की, हसरौ ललाट की और कुमारी मेरे गात्र की रक्षा करे । उत्तर मे वाराही, पूर्व वैष्णवी, दक्षिण मे इन्द्राणी तथा सभी दिशा, विदिशा मे भैरवी मेरी रक्षा करे । इस कवच को जाने बिना जो भैरवी मन्त्र का जप करता है, वह सौ करोड कल्प मे सिद्धि प्राप्त नही कर सकते" ।२।

७–धूमावती

धूमावती का ध्यान इस प्रकार है—

विवर्णा चञ्चला दुष्टा दीर्घा च मलिनाम्बर ।
विमुक्तकुन्तला वै सा विधवा विरला द्विज ॥
काकध्वजरथारूढा विलम्बितपयोधरा ।
शूर्पहस्तातिरूक्षाक्ष धूमहस्ता वरानना ॥

प्रवृद्धघोणा तु भृश कुटिला कुटिलेक्षणा ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्य भयदा कलहास्पदा ॥
(शाक्त प्रमोद–धूमावती तन्त्र)

अर्थात् 'विवर्णा, चञ्चला, दुष्टा, दीर्घ तथा मलिन अम्बर वाली विधवा रूप में निवास करने वाली, काक ध्वज वाले रथ पर आरूढ़, लम्बे पयोधर वाली, हाथ में शूर्प ग्रहण करने वाली, कांपते हाथ, लम्बी नासिका, कुटिल स्वभाव, कुटिल नेत्र, भूख प्यास से पीडित, नित्य भयप्रद और कलह रूपिणी है ।'

धूमावती विधवा है । विधवा का जीवन समस्या पूर्ण रहता है । दुःख और दरिद्रता उसे हर समय घेरे रहते हैं । वह अपने को निःसहाय समझती है । निराशा उसके अंग-अंग से टपकती है । वह जीवन को एक बोझ सा समझती है । मंगल पदार्थों का उपयोग उसके लिए वर्जित माना जाता है । यदि वह इसके विपरीत व्यवहार करे तो सामाजिक आलोचना की बौछार उस पर होने लगती है । वह अमंगल की प्रतिमा ही दृष्टिगोचर होती है । इसलिए विश्व की अमांगला स्थिति की द्योतक धूमावती हैं जिसे 'अलक्ष्मी' भी कहा जाता है । वह दरिद्रता का रूप है । वह निर्ऋतिरूपा है । निर्ऋति दरिद्रता, कलह, क्लेश और रोगादि की अधिष्ठात्री है । शास्त्रकारो का मत है कि चतुर्मास मे इसका प्रभुत्व रहता है जबकि देव प्राण (आग्नेय और ऐन्द्र) निर्बल हो जाते और आसुर प्राण (आप्य) सबल रहते हैं यह काल अषाढ शुक्ला एकादशी से कार्तिक शुक्ला एकादशी तक रहता हैं । यही कारण है कि निर्ऋति के साम्राज्य काल मे विवाहादि कोई भी शुभ कार्य नही किया जाता है । निर्ऋति की अन्तिम तिथि कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी है जिसे धार्मिक जगत में 'नरक चतुर्दशी' के नाम से सम्बोधित किया जाता है क्योकि निर्ऋति नारकीय कार्यो की सञ्चालिका है । इसी रोग को

किन्तु नि-दरिद्रता के जाने से दूसरे दिन लक्ष्मी का अवतरण होता है और दीपावली उत्सव मनाया जाता है।

विधि

धूमावती देवी का मन्त्र इस प्रकार है—

धूं धूं धूमावती स्वाहा।

धूमावती स्तव

भद्रकाली महाकाली डमरूवाद्यकारिणी।
स्फारितनयना चैव टकटकितहासिनी॥
धूमावती जगत्कर्त्री शूर्पहस्ता तथैव च।
अष्टनामात्मक स्तोत्रं य पठेद्भक्तिसंयुत॥
तस्य सर्व्वार्थसिद्धि स्यात्सत्यं सत्य हि पार्वति॥

"भद्रकाली, महाकाली, डमरू बजाने वाली, विस्फारित नयन वाली, किटकिटा कर हँसने वाली, संसार की रचयित्री धूमावती छाज हाथ मे धारण किये हुए हैं, उनका यह आठ नाम वाला स्तोत्र पाठ करने से सर्वार्थ सिद्ध होता है"।

धूमावती कवच

धूमावती मुख पातु धूं धूं स्वाहास्वरूपिणी।
ललाटे विजया पातु मालिनी नित्यसुन्दरी।१।

धूं धूं स्वाहा स्वरूप वाली धूमावती मेरे मुख की तथा नित्य सुन्दरी मालिनी और विजया मेरे ललाट की सदा रक्षा करें।

कल्याणी हृदय पातु हसरीं नाभिदेशके।
सर्व्वांग पातु देवेसी निष्कला भम मालिनी।२।

"कल्याणी मेरे हृदय की, हसगी नाभिदेशकी और निष्कला भगमालिनी देवी मेरे सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करें।

सुपुण्य कवच दिव्य य पठेद्भक्तिसयुत ।
सौभाग्यमतुल प्राप्य चाते देवीपुर ययौ ।३।

"यह कवच अत्यन्त पुण्यमय एव दिव्य है। भक्तिपूर्वक इसका पाठ करने पर साधक इस लोक मे सर्व सौभाग्य को प्राप्त करता हुआ अन्त मे भगवती के लोक को प्राप्त होता है"।

८—बगलामुखी

एक वक्त्र महारुद्र की महाशक्ति 'बगलामुखी' है । वैदिक शब्द 'वल्गा' है, उसका विकृत आगमोक्त शब्द 'बगला' है । अत वल्गामुखी' को 'बगलामुखी' कहा जाता है । इसका सम्बन्ध प्राणी के 'अथर्वा सूत्र' से है जिसके सहयोग से मारण, मोहन, उच्चाटन आदि के अभिचार प्रयोग किए जा सकते हैं । पुराण कथाओ के अनुसार देवता इसी के द्वारा कृत्या प्रयोग किया करते थे, अपने शत्रु-पक्ष पर वे सूक्ष्म प्रहार करते थे ।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवी वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढया द्विभुजा नमामि

(शाक्तप्रमोद—बगलामुखी तन्त्र)

अर्थात् शत्रु के हृदय पर आरूढ, बाँये हाथ से शत्रु की जिह्वा को खीच कर दाँये हाथ से गदा का आक्रमण करने वाली, पीताम्बर धारण किए हुए, द्विभुजा बगला है । उसे नमस्कार करता हूँ ।

"मध्ये सुधाब्धि मणिमण्डपरत्नवेदी सिंहासनोपरिगता परिपीतवर्णाम् । पीताम्बराभरणमाल्य विभूषितांगी देवी नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥"

अर्थात् 'सुधा समुद्र के बीच अवस्थित मणि मण्डप पर रत्नवेदी है, उस पर रत्न सिंहासन पर पीत वर्ण और पीत वर्ण के आभूषण माल्य से विभूषित अंगों वाली बगला है, उसके एक हस्त में शत्रु जिह्वा और दूसरे में मुद्गर है, उस बगला देवी को नमस्कार करता हूँ।

कृत्या प्रयोग आदि का माध्यम प्राणी का 'अथर्वा सूत्र' है जिसे विकसित और सक्रिय करके काम में लाया जा सकता है। स्वाभाविक रूप से यह काक और कुत्ते में अधिक विकसित मिलता है। हमें विश्वास नहीं होता है कि हमारे घर में आने वाले की पूर्व सूचना काक दे देता है। राजकीय नियन्त्रण में एक विशेष उद्देश्य से पोषित कुत्तों के चमत्कार तो प्रायः देखने में आते हैं जब अनेक व्यक्तियों में छिपे चोर को वह पहचान लेते हैं। जिस मार्ग से चोर जाता है, उसे सूँघते हुए भी चोर के गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं। यह उनकी विकसित अथर्वा शक्ति का ही परिणाम है। कई बार ऐसा होता है कि सैकड़ों मील दूर अपने किसी परिजन के दुःख से हम आक्रान्त हो जाते हैं। यह अथर्वा सूत्र के ही माध्यम से होता है। इसे एक तरह की वायरलेस टेलीग्राफी भी कह सकते हैं। यह सूक्ष्म होने के कारण दृष्टि में नहीं आ सकता। अनुभव ही किया जा सकता है। इसी के सहयोग से मारण प्रयोग किए जा सकते हैं।

बगला पूजन-विधि

मन्त्र —

ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ।

बगला–गायत्री का मन्त्र एव विनियोग—

मन्त्र

ॐ ह्लीं ब्रह्मास्त्राय विद्महे। स्तम्भनवाणाय धमिहि तन्नो बगला प्रचोदयात्।

विनियोग

ओ अस्य श्रीबगलागायत्रीमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषि., गायत्रीछन्द, बगलानाम्नो चिन्मयशक्तिरूपिणी गायत्री देवता, ओ बीज, ह्लीं शक्ति, विद्महे कीलक गायत्रीजपे विनियोग।

सन्ध्या विधि

आचमन मन्त्र—

'ओ आत्मतत्वाय स्वाहा। ओ विद्यातत्वाय स्वाहा। ओ शिवतत्वाय स्वाहा।'

शिखरा बधन मन्त्र

'ओ मणिधारिणी वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हु फट् स्वाहा।'

मूल मन्त्र से तिलक करके इसी से तीन बार प्राणायाम करे फिर निम्न सकल्प करके विनियोग पढ़े—

संकल्प

देशकालो सकीर्त्य ओमद्य श्रीबगलामुखीप्रतिये प्रात संध्यामह करिष्ये।'

विनियोग

'ओमस्य श्रीबगलामुखीमहामन्त्रस्य नारद ऋषि

बृहती च्छन्द श्रीबगलामुखी देवता ह्ली बीज स्वाहा शक्ति मम सकलकामनासिद्धयर्थे जपे विनियोग ।'

ऋष्यादिन्यास

नारदऋषये नम, शिरसि । वृहतीच्छन्दसे नम, मुखे। बगलामुखीदेवतायैनम, हृदि। ह्ली बीजाय नम, गुह्ये ।

स्वाहाशक्तये नम, पादयो ।

करन्यास

ओ ह्ली अङ्गुष्ठाभ्या नम । बगलामुखि तर्जनीभ्या नम । सर्वदुष्टाना मध्यमाभ्या नम, । वाच मुख स्तम्भय अनामिकाभ्या नम । जिह्वा कीलय कीलय कनिष्ठकाभ्या नम। । बुद्धि विनाशय ह्ली ओ करतलकरपृष्ठाभ्या नम ।

अङ्गन्यास

ओ ह्ली हृदयाय नम बगलामुखि शिरसे स्वाहा । सर्वदुष्टाना शिखायै वषट् । वाच मुख पद स्तम्भय कवचाय हुम् । जिह्वा कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट् । बुद्धि विनाशय ह्ली ओ अस्त्राय फट् ।

प्रातः काल ध्यान

उद्यदादित्यसकाश पुस्तकाक्षकरा स्मरेत् ।
कृष्णाजिनधरा ब्राह्मी ध्यायेत्तराङ्कितातम्बरे ।।

मध्याह्न का ध्यान

शुक्ला शुक्लाम्बरधरा वृषासनकृताश्रयाम् ।

त्रिनेत्रा वरदा पाश शूल च नृकरोटिकाम् ।।
सूर्यमण्डलमध्यस्था ध्यायेद् देवी समभ्यसेत ।।

सायंकाल ध्यान

श्यामवर्णा चतुर्बाहु शङ्खचक्रलसत्कराम् ।
गदापद्मधरा देवी सूर्यासनकृताश्रयाम् ।
सयाह्ने वरदा देवी गायत्री सस्मरेद्धृदि ।।

मार्जन

मूल मन्त्र के उच्चारण से तीन बार इष्टदेव के मस्तक पर, दो बार भुजाओ पर, नीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि मे और दो बार भुजाओ पर, तीन बार हृदय पर, तीन बार नाभि में और दो बार पैरो पर जल छिड़कते हुए मार्जन करे ।

कवच

ओ अस्य श्रीबगलामुखीकवचस्य नारदऋषि अनुष्टुप् छन्द श्रीबगलामुखी देवता ल बीज इँ शक्ति ऐँ
कोलकम् पुरुपार्थचतुष्टयप्राप्तये जपे विनियोग ।
शिरो मे बगला पातु हृदयैकाक्षरी परा ।
ओ ह्री ओ मे ललाटे च बगला वैरिनाशिनी ।१।
गदाहस्ता सदा पातु मुख मे मोक्षदायिनी ।
वैरिजिह्वा धरा पातु कण्ठ मे बगलामुखी ।२।
उदर नाभिदेश च पातु नित्य परात्परा ।
परात्परतरा पातु मम गुह्य सुरेश्वरी ।३।
हस्तौ चैव तथा पातु पार्वती परिपातु मे ।
विवादे विषमे घोरे सग्रामे रिपुसङ्कटे ।४।
पीताम्बरधरा पातु सर्वाङ्ग शिवनर्तकी ।

श्रीविद्या समया पातु मातङ्गी पूजिता शिवा ।५।
पातु पुत्र सुता चैव कलत्र कालिका मम ।
भ्रातर पातु नित्य मे पितर शूलिनी सदा ।६।
रन्ध्रे हि वगलादेव्या कवच मन्ममुखोदितम् ।
नैव देयतमुख्याय सर्व सिद्धिप्रदायकम् ।७।
पठनाद् धारणादस्य पूजनाद् वाञ्छित लभेत् ।
इद कवचमज्ञात्वा यो जपेद् बगलामुखीम् ।८।
पिबन्ति शोणित तस्य योगिन्य प्राप्य सादरा ।
वश्ये चाकर्षणे चैव मारणे मोहने तथा ।९।
महाभये विपत्तौ च पठेद् वा पाठयेत्तु य ।
तस्य सर्वार्थसिद्धि स्याद् भक्तियुक्तस्य पार्वति ।१०।

अंतर्मातृका

अस्य अन्तर्मातृकान्यासमन्त्रस्य ब्रह्माऋषि गायत्री छन्द मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वरा शक्त अव्यक्त कीलक श्रीबालात्रिपुराङ्गत्वेन मम शरीरशुद्धयर्थे अन्तर्मातृकान्यासे विनियोग ।

मातंगी

गुप्त साधना तन्त्र में मातगी भगवती की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

अस्यविज्ञानमात्रेणपुनर्जन्मनविद्यते ।
कामतुल्यश्चनारीणांरिपूणांशमनोपम ॥
कुबेरइववित्ताढ्योधरणीसहशक्षम. ॥

अर्थात् 'जिस व्यक्ति ने इस महाविद्या का विज्ञान समझ लिया, उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह स्त्रियों के समीप कामदेव के समान

दृष्टि वाला होता है, शत्रुओ के समक्ष यमराज की तरह, कुबेर की तरह धनवान होकर, पृथ्वी की तरह क्षमाशील बन जाता है ।'

उद्यदादित्यसङ्काशानयनत्रयशोभिताम् ।
भक्तानांवरदादेवी मातगी तान्नमशय ॥

अर्थात् 'उन मातगी देवी को मैं नमस्कार करता हूं जिनके शरीर की कान्ति उदय होने वाले सूर्य की तरह उज्ज्वल है, वह भक्तो को वर-दाता है और तीन नेत्रो से शोभित है ।'

सौदामिनीसमाभामानानालकारसयुनाम् ।
इन्द्रादिदेवनामेव्यामातङ्गी तानमाम्यहम् ॥

अर्थात् 'उन मातगी देवी को मैं नमस्कार करता हूं जो बिजली के समान प्रभा वाली, अनेकों प्रकार के अलकारो से सयुक्त और इन्द्रादि देवता भी जिनकी सेवा में रत रहते हैं ।'

दिङ्मुखेदशचन्द्राढ्यामुधावर्षणकारिणीम् ।
देववृन्दसमायुक्तांमातगी तानमाम्यह ॥

'उन मातगी देवी को नमस्कार करता हू दशो दिशाएँ जिनके शरीर के समान हैं, जो अपने चन्द्रवत् मुखो से विश्व में अमृत की वर्षा करती हैं और जो देव वन्दित हैं ।'

पूजन-विधि

मन्त्र—

ओ ह्री क्ली हू मातग्यै फट् स्वाहा ।

विराटछन्दोमहेशानिमातगीदेवताम्मृता ।
धर्म्मार्थकाममोक्षेषुविनियोग प्रकीर्त्तित ॥

'हे महेशानि ! इस मन्त्र का छन्द विराट् है और देवता मातगी है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसका विनियोग है अर्थात् इससे प्राप्त होते हैं।'

ध्यान

श्यामा शुभ्राशुभाला त्रिनयनकमला रत्नसिंहासनस्था
नीलाम्भोजाशुकान्ति निशिचरनिकरारण्यदावाग्निरूपा
पाश खड्ग चतुर्भिर्वरकमलकरै खेटकञ्चाङ्कुशञ्च ॥
मातङ्गीमावहन्तीमभिमतफलदा मोदिनी चिन्तयामि।

अर्थात् 'श्याम वर्ण वाली, मस्तक पर चन्द्र को ग्रहण करने वाली त्रिनेत्रा, रत्न जडित सिंहासन पर स्थित, नील वर्ण के कमल की कान्ति वाली राक्षस रूप वन को जलाने मे दावानल रूपा, चार भुजाओ मे पाश, खड्ग, खेटक और अकुश वाली, भक्तो की इच्छाओ की पूर्ति करने वाली और असुरो को मोहित करने वाली मातगी का ध्यान करता हूं।'

मातगी मतग शिव की महाशक्ति है।

मातङ्गी यन्त्र

षट्कोणाष्टदल पद्म लिखेद्यन्त्र मनोहरम् ॥

षट्कोण बना कर उसके बाहर अष्टदल कमल बनावे और षट् कोण में देवी का मूल मन्त्र लिखे। इस प्रकार मातगी यन्त्र प्रस्तुत होता है।

मातङ्गी कवच

त्रैलोक्यरक्षणस्यास्यदक्षिणामूर्त्तिसञ्ज्ञक ।

ऋषिश्छन्दोविराड्देवीमातङ्गीदेवतास्मृता ।।
धर्मार्थकाममोक्षेषुविनियोग प्रकीर्त्तित

इस कवच से त्रिलोकी की रक्षा होती है। इस कवच के ऋषि दक्षिणमूर्ति हैं, छन्द विराट् है, मातंगी देवी देवता हैं और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इसका विनियोग है।

कवच इस प्रकार है—

ओंबीजम्मेशिर पातु ह्रीं बीजम्मेललाटकम् ।
क्लींबीजचक्षुषो पातुनामाराम्परिरक्षतु ।।
माकार वदनम्पातुतकार कण्ठकेऽवतु ।
डुगंकार स्कन्धदेश चफकारम्बाहुयुग्मकम् ।।
टकर हृदयम्पातुम्वकार स्तनयुग्मकम् ।
पृष्ठदेशन्तथानाभिञ्जठरं लिंगदेशकम् ।
पादद्वन्द्व चसर्वांगहाकारम्परिरक्षतु ।
साद्र दशाक्षरीविद्यासर्वाङ्ग परिरक्षतु ।।
इन्द्रासाम्पातुपूर्वेचवह्निकोणेऽनलोऽवतु ।
यमोमादक्षिणेपातुनैऋर्त्यानिऋर्तिश्चमाम् ।
पश्चिमेवरुण पातुवायव्यापवनोऽवतु ।।
कुवेरोदिशिकौवेर्यामाशईशानकोणके ।
ऊर्ध्वंब्रह्मासदापातुअधश्चानन्तएवच ।।
रक्षाहीनन्तुयत्स्थानवर्जितकवचेनतु ।
तत्स वरक्षमेदेविमातंगिसर्वसिद्धिदे ।

कवच की महिमा इस प्रकार वर्णित की गई है—

त्रिसन्ध्यय पठेन्नित्यससाक्षाच्छंकर स्वयम् ।।
पुष्पांजलाष्टकन्दत्वामूले नैवपठेत्सकृत् ।
शतवर्षसहस्राणापूजाया, फलमाप्नुयात् ।।
भूर्जेविलख्यगुलिकाम्वर्णस्याधारयेद्यदि ।

सर्वसिद्धियुत सोऽपिसर्वसिद्धितपोयुतः ॥
ब्रह्मास्त्रदिनिशस्त्राणितगात्रप्राप्यपार्वति ।
माल्यानिकुसुमा येवभवन्त्येवनसशय ॥

'इस कवच का नित्य तीन सन्ध्याओं में पाठ करने वाला साधक साक्षात् शिव स्वरूप हो जाता है। मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पाञ्जलि देकर एक बार कवच का पाठ करने वाला हजार वर्ष की पूजा करने का फल प्राप्त करता है। भोज-पत्र पर लिख कर सोने में मढवा कर पहनने वाला साधक तपस्या से सब तरह की सिद्धियों के अनुकूल बन कर सिद्धि सम्पन्न बन जाता है। ब्रह्मास्त्र जैसे अस्त्रों के लगने पर भी वह शरीर पर फूलों की माला जैसे सुकोमल लगते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं।'

हवन

षट् सहस्र मन्त्र जप करके दशांश हवन करने को कहा गया है—

ब्रह्मवृक्षोद्भवै, काष्ठैर्होमात्सर्वसमृद्धिद' ।
तर्पणाचाभिषेकचदशांशमाचरेत्सुधी ॥

'ढाक की समिधाओं से हवन करना चाहिए। इससे सर्वसिद्धि को प्राप्त होगा है। हवन का दसवां भाग तर्पण और तर्पण का दसवां भाग अभिषेक करना चाहिए।'

पूजा विधि

'मन्त्र महोदधि में 'मातगी' की पूजा विधि इस प्रकार दी है—

श्रीमातगेश्वरिपदसर्वशूलोनलातशम् । करिवह्नि-
प्रियामन्त्रोद्वात्रिंशद्वर्णावानयम् ।१।

मतगोमुनिरस्योक्तोनुष्टुप्छदस्तुदेवता । मातगी-
सर्वजनतावशीकरणतत्परा ।२।

चतुर्भि,षड्भिरङ्गैश्चषड्ष्टनयनैरपि । मन्त्रोस्यवर्णै-
रगानिन्यस्यदेवी विचिंतयेत् ।३।

घनश्यामलांगीरितारत्नपीठे शुकस्योदितश्रृण्वती-रक्तवस्त्राम् । सुरापानमत्तामरोजस्थिताश्रीभजेवल्लकी वादयन्तीमतंगीम् ।४।

जपोयुतसहस्त्र तु होम पुष्पंमधूकजे । मव्वक्तं पूजे-येत्पीठेवक्ष्यमाणविधानत ।५।

त्रिकोणाष्टदलद्व द्व कलास्त्रचतुरस्त्रकम् । पीठकृत्वा-यजेत्तस्मिन्पीठशक्तीर्नवेष्टदा ।६।

विभूतिरुन्नति कान्ति सृष्टि कीर्तिश्चसन्नति । व्युष्टिरुत्कृष्टिऋद्धीचमातग्यता समीरिता ।७।

सर्वशक्तिकमस्यातेलासनायहृदतिक । तारमाया-वाग्रमाद्य पीठमन्त्र कलार्णक ।८।

विश्राण्यासनमेतेनपाद्यादीनिप्रकल्पयेत् । मूलेनपु-ष्पपूजान्तेकुर्यादावरणार्चनम् ।६।

त्रिकोणेष्वर्चयेत्तिस्त्रोररिप्रीतिमनोभव । केसरेपु-षडगानिमातृश्चदलमध्यगा, ।१०।

द्वितीयेष्टदलेपूज्याऽसितागादिभैरवा । षोडशा-ख्येतुवामाख्याज्येष्ठारौद्रीप्रशांतिका ।११।

श्रद्धामाहेश्वरीचापिक्रियाशक्तिश्चसप्तमी । सुल-क्ष्मी, सृष्टिमोहिन्यौप्रथमथाश्वासिनीतथा ।१२।

विद्युल्लताचचिच्छक्तिसुन्दरीनन्दयासह । नन्दबुद्धि, षोडशीतुपूजनीया प्रयत्नत, ।१३।

चतुरस्त्रेचतुर्दिक्षुमातगीसामहादिका । महालक्ष्मी-स्तथासिद्धिपुनर्वन्हयादिकोणत ।१४।

दुर्गावटुकक्षेत्रेशादिग्घवास्तत । वज्राद्या स्युरित्थ-सिद्धिर्मनोर्भवेत् ।१५।

ध्रुवभवानीवाग्वीजरमामादौप्रयोजयेत् । सर्वावर-णदेवानामातगीपदमतत ।१६।

मल्लिकाकुसुमैर्होमाद्धोगोराज्यचबिल्वजै । पत्रै
फलैर्वाविश्यास्याज्जनताब्रह्मशेक्षजै ।१७।

रोगनाशेमृताखर्डैर्निबै श्रीस्तुण्डुलैरपि । आकृष्टि-
र्लवणैर्विद्यात्तगरैर्वेतसैर्जलम् ।१८।

लवणैर्निम्बतैलाक्तै शत्रुनाशोवमाशनम् । निशा-
चूर्णयुतैर्लोणैर्होमात्स्यात्स्तभननृणाम् ।१९।

रक्तचदनकर्चूरमासीकुकुमरोचना चदनागुरुकर्पू
रैर्गंधाष्टककुदीरितम् ।२०।

एतद्धोमाज्जगद्वश्यजायतेमत्रिणोध्रुवम् । एतत्ति-
ष्टशतजप्त्वातिलकेनजगत्प्रिय ।२१।

कदफीलहोमेनसर्वेष्टसमवाप्नुयात् । किंवहूक्तेन-
मातगीपूजिताकामदानृणाम् ।२२।

"ओम् ह्री ऐ नमो भगवती उच्छिष्ट चाण्डालि श्रीमातङ्गे-
श्वरी सर्व जन वशकरि स्वाहा" यह बत्तीस वर्ण वाला मन्त्र है। इसका मतङ्ग ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और समस्त जनो को वश्य करने मे तत्पर मातङ्गी देवता है। इस मन्त्र के चार-छै ,छै-आठ और दो वर्णों का अङ्ग न्यास करे और देवी का ध्यान करे ।१-३।

ध्यान—मेघ के समान श्याम अङ्ग वाली, रत्न निर्मित पीठ पर बिराजमान, शुक्र की कथित वाणी को श्रवण करती हुई, रक्त वस्त्र धारण करने वाली, मदिरा पान मे उन्मत्त, वल्लाकी का वाहन करने वाली और कमल पर स्थित श्रीमातङ्गी का भजन करता हूँ ।१। दश हजार इस मन्त्र का जप और सहस्र मधूक के पुष्प मधु मे अक्त करके होम करे ।४-५।

पीठ पर त्रिकोण, दो अष्ट दलादि पर इच्छा-विभूति आदि नव शक्तियो का "ओम् ह्री ऐ श्री सर्व शक्ति कमलासनाय नम" इस पीठ मन्त्र से भजन करे। पाद्यासनादि होकर मूल मन्त्र से आव-रण का अर्चन करे। त्रिकोण मे रति प्रीति और मनोभव की पूजा करनी चाहिए। केसरो मे छै अङ्ग, दलो में मातृका तथा द्वितीय अष्ट

दलों में अमिताङ्गादि का पूजन करे। षोडश नाम वाले में वामा, ज्येष्ठा आदि का पूजन करे।६-११।

चतुरस्त्र में चारों दिशाओं में महामातङ्गी आदि का पूजन करे। अग्नि आदि कोणों में विघ्नेश दुर्गा वटुक आदि का तथा दिगीश और इनके वज्रादि आयुधों के पूजन करने से मन्त्र की सिद्धि हो जाती है। मल्लिका पुष्पों के होम से भोग की प्राप्ति, विल्व दलों से राज्य, विल्व के फलों से भी राज्याप्ति, ब्रह्म वृक्ष के पुष्पों से जलवश्यता, गिलोय के टुकड़ों से रोग का नाश, निम्ब से श्री तण्डुलों से आकर्षण, लवण से विद्या, तगर अथवा वेतस जल, निम्ब तेलोक्त लवण से शत्रु नाश, हरिद्रा चूर्ण से युक्त लोण से स्तम्भन और चन्दन गुगल-कपूर आदि गन्धाष्टक के होम से समस्त जगत् वश्य होता है। इस पीस कर तिलक से जगत् का प्रिय होता है। कदली फल का होम करने से सब कामनायें पूर्ण होती हैं।

१०—कमला

धूमावती और कमला दो विरोधी शक्तियां हैं। धूमावती अलक्ष्मी है, कमला लक्ष्मी है। वह दरिद्रा है, यह समृद्धि और ऐश्वर्य की देवी हैं। धूमावती का सम्बन्ध ज्येष्ठा नक्षत्र से है जिसमें उत्पन्न व्यक्ति दरिद्रता के चंगुल में फँसा रहता है। इसलिए इसे अवरोहिणी भी कहते हैं क्योंकि कमला का रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्ध है, जिसमें उत्पन्न व्यक्ति ऐश्वर्यशाली होता है।

कमला का महात्म्य इस प्रकार वर्णित है—

कमला च भवेद्देवी कमला सर्व देवता।
कमला पार्वती साक्षात् कमला सर्व कारणम्॥
यस्या पूजनमात्रेण त्रैलोक्य पूजनं भवेत्।
कमला च महादेवी त्रिधामूर्ति व्यवस्थिता।
परा चैवापराचैव तृतीया च परापरा॥

'केवल कमला की पूजा करने से सब देवताओं की, यहाँ तक कि त्रिभुवन की पूजा हो जाती है। कमला साक्षात् पार्वती है और सब का कारण है। वह परा, अपरा और परापरा इन त्रिमूर्तियों से व्यवस्थित होती है।'

कमला पूजनाच्चैव कोटि पूजाफल लभेत्।
हन्ति विघ्नान्पूजिता स तथा शत्रु महोत्कटम्।
व्याधय सर्वारिष्टानि पलायन्ते न सशय।

अर्थात् 'कमला की पूजा से कोटि गुण फल लाभ होता है। सर्व विघ्नों और महातीव्र शत्रुओं का नाश होता है, इसमें कुछ सशय नहीं।'

कमला-पूजन विधि

कमला सदाशिव पुरुष की महाशक्ति है। इसका मन्त्र 'श्री' है। इसका ध्यान इस प्रकार है—

कान्त्या काञ्चनसन्निभा हिमगिरिप्रख्यैश्चतुर्भिर्गजै-
र्हस्तोत्क्षिप्तहिरण्मयामृतघटैरासिच्यमाना श्रियम्।
बिभ्राणा वरमब्जयुग्ममभय हस्तै किरीटोज्ज्वला
क्षौमाबद्धनितम्बबिम्बलिता वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥
(शक्ति प्रमोद कमला तन्त्र)

अर्थात् 'सुवर्ण के समान कान्ति वाली, हिमगिरि के समान श्वेत वर्ण वाले चार हस्तियों के द्वारा शुण्ड से ग्रहण किए हुए सुवर्ण कलशों से स्नापित, चार भुजाओं में वर, अभय, और कमल द्वय और किरीट ग्रहण किए हुए, क्षौम वस्त्र से आवृत कमला का स्मरण करता हूँ।'

द्वादश लक्ष मन्त्र जप से पुरश्चरण करे और मधु-शकरा मिश्रित द्वादस सहस्रकमल और तिलों से हवन करे।

॥ तन्त्र विज्ञान का दूसरा खण्ड समाप्त ॥